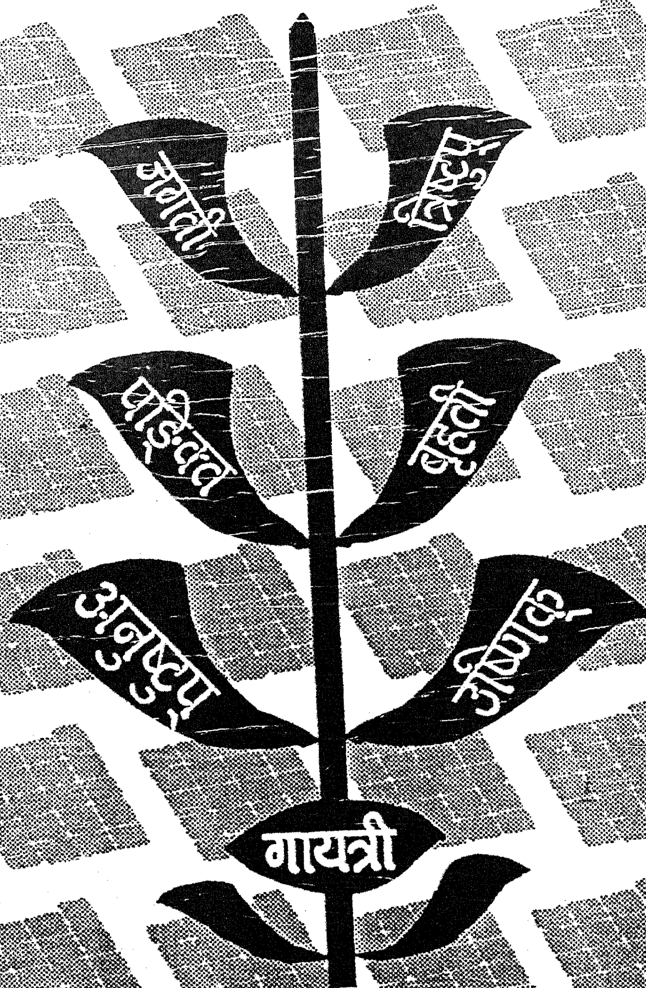
संस्कृत छन्दों का उद्भव तथा विकास



आचार्य रामकिशोर मिश्र

संस्कृत छन्दों का उदभव तथा विकास

(राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित)

रचयिता तथा प्रकाशक

डॉ० आचार्य रामकिशोर मिश्र

पूर्व संस्कृत रीडर तथा विभागाध्यक्ष

[illegible] महाविद्यालय

खेकड़ा (बागपत) उत्तर प्रदेश

आवास—१४/३ पट्टीरामपुर, चौपाल के पास

खेकडा-२०११०१ (बागपत) उ० प्र०

दूरभाषाङ्क—(०१२१) ३३५२७

- मूल्य— ५१ रुपये

प्रकाशन तिथि

मकर संक्रान्ति, वि० सं० २०५८

१४.१.२००२

मुद्रक

ज्ञान प्रकाशन, सुभाष बाजार, मेरठ

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ

छन्दों का संक्षिप्त विवरण

छन्दः शास्त्र विषयक ग्रन्थों का सामान्य परिचय

पृष्ठ

उद्धरण संकेत सूची

अभि० शाकु० = अभिज्ञान शाकुन्तल

ब्रा० = ब्राह्मण

उ० नि० सू० = उपनिदानसूत्र

ऋ० ,ऋक् = ऋग्वेद

ऋक्सर्वा० = ऋक्सर्वानुक्रमणी

ऋक्प्राति० = ऋक्प्रातिशाख्य

किरात० = किरातार्जुनीय

पु० = पुराण

गोपथ ब्रा० = गोपथब्राह्मण

छ० सू० = छन्द सूत्र

छन्दोऽन् = छन्दोऽनुशासन

जा० छ० वि० = जानाश्रयी छन्दोविचिति

ना० शा० = नाट्यशास्त्र

नि० सू० = निदानसूत्र

पद्म पु० = पद्मपुराण

प्रा० पै० = प्राकृतपैगल

मत्स्य पु० = मत्स्यपुराण

मनु० = मनुस्मृति

अथर्व० = अथर्ववेद

यजु० = यजुर्वेद

साम० = सामवेद

र० म० = रत्नमञ्जूषा

वा० भू० = वाणीभूषण

वायु० पु० = वायुपुराण

वृ० जा० स० = वृत्तजातिसमुच्चय

वृ० मु० = वृत्तमुक्तावली

वृ० मौ० = वृत्तमौक्तिक

वृ० र० = वृतरत्नाकर

वै० छ० मी० = वैदिकछन्दोमीमासा

वै० व्या० = वैदिक व्याकरण

वै० सि० कौ० = वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी

शतपथ० = शतपथब्राह्मण

शा० श्रौ० सू० = शाखायन श्रौतसूत्र

शु० य० स० सू० = शुक्लयजु सर्वानुक्रमसूत्र

मेदिनी० = मेदिनीकोश

अमर० = अमरकोष

लेखक परिचय

विविध ग्रन्थो के प्रणेता आचार्य रामकिशोर मिश्र का जन्म विक्रम सवत् १९९५ फाल्गुन कृष्ण पक्ष षष्ठी शनिवार (२५-२-१९३९) को सोरो शूकर क्षेत्र (एटा) मे भारद्वाज गोत्रीय सनाढ्य ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। इनके पिता प० श्री होतीलाल मिश्र और माता श्रीमती कलावती मिश्रा थी। पञ्चवर्षीय अवस्था मे इनकी माता का स्वर्गवास हो गया, जिससे पालन पोषण पिता को करना पडा।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने ही नगर सोरो शूकरक्षेत्र मे हुई। पञ्चम कक्षा के बाद सस्कृताध्ययन के लिए सन् १९५२ मे श्री राजकुमारी सागवेद विद्यालय मे इनका प्रवेश अग्रज श्री फूलसहाय मिश्र ने कराया। स्वमित्र श्री भैरवदत्त उपाध्याय से कविता सुनकर इन्होने १९५५ से ही सोलह वर्ष की अवस्था से सस्कृत मे कविता करना प्रारम्भ किया। अपनी माता की स्मृति मे सर्वप्रथम इन्होने मातृस्मृति नामक कविता लिखी। इनकी कविताएँ और गीत १९५७ से सस्कृत पत्रिकाओ, शिमला से दिव्यज्योति, अयोध्या से सस्कृत साकेत, देहली से सस्कृत प्रतिभा और काठमाण्डू (नेपाल) से जयतु सस्कृतम् मे छपने लगे। ९-२-१९५९ को सस्कृत साकेत मे 'इनकी इत्यादि गाथम्' नामक कविता शिखरिणी छन्द मे छपी, जिससे प्रभावित होकर इनके विषय मे सम्पादक ने लिखा—'यह नवीन कवि अत्यन्त उत्साही है। निबन्धादर्श से इत्यादि विषय पर अनुवाद के रूप मे लिखी गयी कविता कही कही लडखडाती हुई अच्छी छाया का अनुकरण कर रही है। कवि छायोपजीवी होते है। आशा है, भविष्य मे ये महाकवि बने।'[1] सम्पादक की यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। सत्र १९७७-७८ मे इन्होने 'विद्योत्तमाकालिदासीयम्' नामक महाकाव्य की रचना की।

सन् १९६० मे इन्होने वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय से शास्त्री पदवी प्राप्त की। १९६१ मे इन्होने अन्तर्दाह नामक सहशिक्षात्मक सामाजिक उपन्यास की रचना की, जो अखिल भारतीय सस्कृत उपन्यास प्रतियोगिता, शिमला से पद्म पुरस्कार से सम्मानित हुआ। तदनन्तर 'अङ्गष्ठदानम्' नामक नाटक लिखा, जो शारदा साधना मन्दिर, कायमगज से प्रकाशित हुआ। १९६३ मे इन्होने वाराणसेय सस्कृत विश्व विद्यालय, वाराणसी से साहित्य मे आचार्य पदवी प्राप्त की। तत आदर्श इण्टर कॉलिज, मीरपुर (अलीगढ) मे सस्कृत-प्रवक्ता के पद पर ये नियुक्त हुये। २७-५-१९६४ को भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरु के देहावसान से दु खी होकर इन्होने 'गीतजवाहरम्' नामक गीतिकाव्य लिखा, जो ग्रामोदय प्रिटिग प्रेस, मीरपुर से २७-५-१९६५ को प्रकाशित हुआ। आचार्य श्यामसुन्दर शर्मा ने इसका हिन्दी मे अनुवाद किया। यह काव्य सानुवाद प्रकाशित है। १९६६ मे आगरा वि० वि० से एम० ए० किया।

१७-६-१९६६ को बुलन्दशहर जनपद के ग्राम वीरखेडा से श्रीमती देवी के साथ इनका विवाह हुआ। १९-५-१९६७ को रञ्जना नामक पुत्री का जन्म हुआ। तत ३०-४-१९६९ को मेरा जन्म हुआ। जब मै नव, दश मास का था, तब मेरी बालक्रीडाओ से प्रभावित हो पिता जी ने मार्च १९७० मे मुझ पर 'बालचरितम्' नामक काव्य की रचना की, जो १९८१ मे प्रकाशित हुआ। इसमे २३३ पद्य हैं जिनमे २२९ शिखरिणी छन्द है। यह रचना सस्कृत महाविद्यालय, साध्वाश्रम (अलीगढ) मे अध्यापन करते हुये पिता जी ने लिखी थी।

१३—७—१९७२ को महामना मालवीय महाविद्यालय, खेकडा मे सस्कृत-प्रवक्ता के पद पर इनकी नियुक्ति हुई। १९-७-१९७३ को मस्तिष्क ज्वर से मेरी बहिन रञ्जना का देहान्त हुआ, जिससे

---

१ कविरय नवीन परमोत्साही। निबन्धादर्शे 'इत्यादिगाथा' मनुस्मृत्याऽनुवादरूपेण कृता कविता क्वचिद्विसष्ठुला अपि सुष्ठुच्छायामनुकुर्वन्ति। छायोपजीविन कवयो नाम। आशासे, अग्रेऽय महाकवि स्यादिति प्रकाश्यते।' सस्कृत-साकेत , अयोध्या, ९-२-१९५९।

दु खी होकर पिता जी ने 'रञ्जनाषड्विंशकम्' नामक शोक काव्य लिखा। १९७८ मे नवाम्बर और दिशाम्बर मास मे 'विद्योत्तमा कालिदासीयम्' नामक महाकाव्य की रचना की। इसमे २१ सर्ग है, जिनमे १३६१ पद्य है। अन्तिम पॉच सर्ग गीतात्मक है। इस महाकाव्य मे कवि ने बहुत से ऐसे स्वच्छन्द छन्दो का प्रयोग किया है, जो किसी दूसरे पूर्ववर्ती कवि की रचना मे नही मिलते। १९८० मे मेरठ वि० वि० मे पी० एच० डी० प्राप्त की।

१९८० मे इन्होने 'त्यागपत्रनिरासम्' नामक नाटक लिखा, जो अखिल भारतीय सस्कृतनाटक प्रतियोगिता, लखनऊ मे उत्तर प्रदेश सस्कृत अकादमी द्वारा प्रथम पुरस्कार से सम्मानित हुआ। १९८३ मे इन्होने 'काव्य किरणावलि' नामक काव्यसकलन किया, जिसमे ११-७-१९५५ से २३-९-१९८१ तक विरचित कविताऍ और गीत प्रकाशित है। काव्य, महाकाव्य, नाटक, उपन्यास, कथा आदि विधाओ मे इन्होने जो रचनाऍ की है, उनका विवरण निम्नलिखित है—

आचार्य रामकिशोर मिश्र के ग्रन्थ

प्रकाशित तथा उ० प्र० सस्कृत-अकादमी, लखनऊ से पुरस्कृत ग्रन्थ

१ काव्यकिरणावलि (काव्यसग्रह) १९८३
२ विद्योत्तमाकालिदासीयम् (महाकाव्यम्) १९८५
३ श्रीगरुडध्वजसपादशतकम् (स्तोत्रकाव्यम्) १९८६
४ किशोरकथावलि (कथासग्रह) १९८८
५ वसन्ततिलकम् (देवस्तुतिकाव्यम्) १९८९
६ एकाड्कमाला (एकाड्कनाटकसग्रह) १९९०
७ अन्तर्दाह (सामाजिक उपन्यास) १९९३

उत्तर प्रदेश सस्कृत सस्थान लखनऊ से पुरस्कृत

८ देवभक्तितरड्गिणी (देवस्तुतिकाव्यम्) १९९५
९ काव्यश्रीमती (कवितागीतसग्रह) १९९६
१० बालनाट्यसौरभम् (बालनाटकसग्रह) १९९८

दिल्ली-सस्कृत-अकादमी से पुरस्कृत

११ छन्दस्कलावती (छान्दस रचना) १९९२-९३
१२ नाट्यरसानन्द (अष्टनाटकसग्रह) १९९५
१३ सप्तनाट्यगौरवम् (नाटक सग्रह) १९९६
१४ असीम-प्रतिभा (छान्दस इतिहास) १९९८

अन्य प्रकाशित सस्कृत ग्रन्थ

१५ अगुष्ठदानम् (नाटकम्) १९६१
१६ गीत जवाहरम् (गीतिकाव्यम्) १९६५
१७ पतिपत्नीविवादशतकम् (काव्यम्) १९७८
१८ बालचरितम् (काव्यम्) १९८१
१९ देवयानी (नाटिका) १९९२
२० एकाड्कचमत्कृति (नाटकसग्रह) १९९२
२१ छान्दसग्रन्थपरम्परा (छान्दसरचना) १९९४
२२ देवीस्तवतरड्गिणी (स्तोत्रकाव्यम्) १९९६
२३ एकाड्कावलि (नाटक सग्रह) २०००

अप्रकाशित सस्कृत ग्रन्थ

२४ त्यागपत्रनिरासम् (नाटकम्)
२५ वैष्णवभक्तितरड्गिणी (स्तोत्रकाव्यम्)
२६ शैवभक्तितरड्गिणी (स्तोत्रकाव्यम्)
२७ अवतारभक्तितरड्गिणी (स्तोत्रकाव्यम्)
२८ वैदिकच्छन्दोनिरूपणम् (छन्दोग्रन्थ)
२९ लौकिकच्छन्दोनिरूपणम् (छन्दोग्रन्थ)
३० श्रीचन्द्रशेखरम् (नाटकम्)
३१ पत्नीत्यागम् (नाटकम्)
३२ वैदिककविचर्चा (समीक्षा ग्रन्थ)
३३ साहित्यसुरभि (काव्यनाट्यलेखसग्रह)

आचार्य रामकिशोर मिश्र आज भी सस्कृत काव्य विरचन मे सलग्न है। इनके ग्रन्थो पर विभिन्न विश्वविद्यालयो मे शोधकार्य चल रहा है। इनकी रचना एकाकचमत्कृति मे से छ नाटक कुमायूँ वि० वि० नैनीताल में बी० ए० प्रथम वर्ष मे पढाये जाते थे। भारत के प्रसिद्ध सस्कृत कवियो मे इनकी गणना होती है। इस प्रकार इनकी साहित्यिक कृतियो से देश गौरवान्वित है।

दिनाक-५/१/२००२

राजेश कुमार मिश्र
राजकीय इण्टर कॉलिज, नागराजाधार (बमुण्ड)
(टिहरी गढवाल) उत्तराचल

प्राक्कथन

मेरे इस ग्रन्थ का विषय 'सस्कृत छन्दो का उद्‌भव तथा विकास है' जो वैदिक तथा लौकिक एव आधुनिक सस्कृत साहित्य मे प्राप्त होने वाले छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो मे लक्षित छन्दो के उद्‌भव तथा विकास से सम्बन्धित है। छन्दो का विषय अगाध है। इसका क्षेत्र बडा विस्तृत है, जिसमे विश्व का समस्त साहित्य समाहित हो जाता है, किन्तु यहाँ केवल सस्कृत छन्दो का ही प्रारम्भिक उद्‌भव तथा उनके विकास की प्रक्रिया का अध्ययन किया गया है।

इस विषय का वैदिक लौकिक तथा आधुनिक साहित्य से सीधा सम्बन्ध है। अत प्राचीन परम्परा को सुरक्षित रखने वाले चारो वेद, वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत आदि का समावेश इस विषय के अन्तर्गत हो गया है। छन्दो की उत्पत्ति, परिभाषा, भेद, उपभेद, लक्षण, उदाहरण, रचनाप्रक्रिया आदि से सम्बन्धित इतिहास तथा नियमो का वर्णन करने वाले छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो मे वैदिक छन्द शास्त्र प्रवक्ता पतञ्जलि, शौनक, कात्यायन आदि की रचनाओ और लौकिक छन्द प्रवक्ता भरत, पिगल से दु खभञ्जन और दत्त दिनेशचन्द्र पर्यन्त ३६ छन्दोलक्षणकारो की रचनाओ का परिचय दिया गया है।

छन्दो का मूल स्रोत वेद और उसके काल तथा विकास पर विचार करते हुए वैदिक छन्दो के प्रजापति ब्रह्मा आदि छन्दस्कारो के साथ लौकिक छन्दस्कारो मे वाल्मीकि और कृष्ण द्वैपायन व्यास की रचनाओ रामायण तथा महाभारत मे प्रयुक्त छन्दो के अतिरिक्त छन्दोलक्षणकार भरत, पिगल से दु खभन्जन और दत्त दिनेशचन्द्र पर्यन्त लाक्षणिक ग्रन्थकारो को उनकी छन्दोरचनाओ मे समयानुसार लक्षित तथा प्रस्तार प्रक्रिया द्वारा विकसित छन्दोवृत्त भेद प्रभेदो का छन्दस्कार मानने के प्रति सकेत किया गया है। इसमे उक्ता से उत्कृति पर्यन्त २६ छन्दो के २४४ वैदिक छन्दोभेदप्रभेदो और २०४६ लौकिक वृत्तो तथा ४०१ नवीन छन्दो का सकलन है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे २५ वैदिक छन्दोभेद-प्रभेदो और ३८ लौकिकवृत्तो के लक्षण तथा उदाहरण दिये गये है। वैदिक छन्दो के उदाहरण वेदो से और लौकिक वृत्तो के उदाहरण वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भारवि, माघ आदि महाकवियो के काव्यो से प्रस्तुत किये गये है। इसके अतिरिक्त नवीन छन्दो मे से २० छन्दो के लक्षण और उदाहरण प्रदर्शित करने के साथ वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत में प्राप्त अलक्षित पद्यो मे से २५ और आधुनिक सस्कृत पत्र-पत्रिकाओ से सस्कृतीकृत ८ छन्दो के छन्द शास्त्रीय पद्धति के अनुसार नव निर्मित लक्षणो के साथ उनके उदाहरणो के प्रति सकेत किया गया है। आलकारिक काव्यकला और वर्ण्यविषय की दृष्टि से भी सस्कृत छन्दो मे से १२ वृत्तो का प्रयोग भी प्रदर्शित किया गया है।

इस प्रकार इस ग्रन्थ मे ५०० ईसा पूर्व और उससे भी पूर्व समय से आज ईसा की २०वी शताब्दी तक इतस्तत छन्दोलक्षणग्रन्थो मे प्रकीर्ण २४४ वैदिक, २०४६ लौकिक, ४०१ नवीन तथा ३३ अलक्षित = २७२४ छन्दो का एकत्र सकलन कर उनमे से प्रयुक्त तथा अप्रयुक्त ९६ वृत्तो के लक्षणो तथा उदाहरणो के साथ समस्त छन्दो के वर्णिक तथा मात्रिक भेदो मे सम, अर्धसम, विषम भागो मे पाद-पदगत वर्णाधिक्य, न्यूनता, प्रस्तारादि प्रक्रिया से उनके उद्‌भव तथा विकास के साथ पूर्ण दिग्दर्शन करने का प्रयास किया गया है। ग्रन्थ के लेखन मे मुझे समय समय पर डॉ० श्री निरुपण विद्यालकार से वैचारिक सहयोग प्राप्त होता रहा है। अत मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। मेरे इस ग्रन्थ से प्रत्येक व्यक्ति को सस्कृत छन्दो का पूर्ण विवरण एकत्र प्राप्त होगा, ऐसी आशा है।

रामकिशोर मिश्र
पूर्व सस्कृतविभागाध्यक्ष
महामना मालवीय महाविद्यालय
खेकडा-२०११०१ (बागपत) उत्तर प्रदेश

रचनाकाल—१९७८
दिनाक-१०/१/२००२

समर्पण

पूज्य पिता पं० श्री होतीलाल मिश्र
और
पूज्य माता श्रीमती कलावती मिश्रा
को सादर समर्पित

मकर सक्रान्ति २०५८ राम किशोर मिश्र



डॉ रामकिशोर मिश्रः

अक्षरेण मिमते सप्तवाणीः ।

ऋग्वेद-१ ।१६४ ।२४

यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः ।

—कात्यायन

प्रथम अध्याय

छन्दों का संक्षिप्त विवरण

छन्द का अर्थ

अनेकार्थता

पद्यगद्यमयता

उपयोगिता

गुण

प्रभाव

काव्य से सम्बन्ध

छन्द शास्त्र से सम्बन्ध

परिभाषाए

लक्षण

(क) सस्कृत काव्य मे प्रयुक्त छन्द

(ख) जैन काव्य में प्रयुक्त छन्द

(ग) दृश्य काव्यगत छन्द

(घ) अलकार शास्त्र एव दर्शन शास्त्र के छन्द

प्रथम अध्याय

छन्दो का सक्षिप्त विवरण

मस्कृत साहित्य की विधाओ मे प्रचलित छन्दो का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने से पूर्व छन्दो के स्वरूप पर विचार करना युक्ति सगत होगा। छन्द के दो अर्थ होते है, एक तो आच्छादन और दूसरा आह्लादन। आच्छादन से आशय यह है कि छन्द के द्वारा रस, भाव तथा वर्ण्यविषय को आच्छादित किया जाता है और आह्लादन से तात्पर्य है कि छन्दो के द्वारा मानव-मन का मनोरजन होता है। छन्द की व्युत्पत्ति छदि सवरणे, छद् सवरणे, छद् अपवारणे, छदि आह्लादने से बतायी गयी है।[1] यास्क ने छद् सवरणे से छन्द की व्युत्पत्ति मानी है,[2] जिसके अनुसार छन्दो के छद कहे जाने का रहस्य भी यही है कि वे वेदो के आवरण है, ढकने वाले साधन है, जिससे यह अर्थ प्रतीत होता है कि वेदो के भावो तथा वर्ण्यविषयो के छादन करने के कारण वे छन्द कहे जाते है। कुछ वैयाकरण छन्द की व्युत्पत्ति छदि आह्लादने से मानते है, जिसका अर्थ मनोरजन होता है[3], अर्थात् छन्द मानव मन के मनोरजन के साधन भी है।

छन्द सस्कृत के छन्दस् शब्द का अर्धतत्सम रूप है। इसकी निष्पत्ति 'छदि सवरणे' चुरादि से असुन् प्रत्यय करने से होती है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान् कान्त्यर्थक मूल छन्द से ही छन्द की व्युत्पत्ति मानते है[4], जिसके ऋग्वेद मे प्रयोग मिलते है।[5] उससे निष्पन्न छन्द का व्यवहार सामान्यत पद्य, वेद, अभिलाषा, स्वैच्छाचार आदि की सज्ञा के रूप मे होता है।[6] इनमे भी स्वैच्छाचार अर्थ अधिक प्रचलित है। छन्दसा कृत छान्दस्य, स्वच्छन्द आदि प्रयोग उदाहरण स्वरूप उद्धृत किये जा सकते है। आजकल यह छन्द शब्द पद्य और वेद के अर्थो मे रूढ हो गया है। जिसने भी वेद का यह नामकरण किया होगा, उससे भाषागत स्वैच्छाचार समझना ही वक्ता का अभिप्राय रहा होगा, क्योकि वैदिक छन्द स्वय मे पूर्णत स्वतन्त्र और किसी प्रकार के नियम से नियन्त्रित नही है। वेदो में बहुत से ऐसे उदाहरण भी मिलते है, जो छन्दोलक्षणकारों के द्वारा निश्चित छन्दोनियमों से नियन्त्रित नही होते।[7] जिससे सिद्ध होता है कि वेद का छन्दो के आधार पर 'छन्दस्' नामकरण की पृष्ठभूमि मे उसका भाषागत स्वैच्छाचार

---

१ युधिष्ठिर मीमासक, वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० ११-१३, अमृतसर १९५९।

२ 'छदासि छादनात्।' यास्ककृत निरुक्त-७।१२।

३ 'आह्लादकत्वमेव छन्द-स्त्व' चदि आह्लादे असुनि प्रत्यये चन्देरादेश्छत्वे च कृते छन्द इति वैयाकरणा।
अयोध्यानाथ सम्पादित-पिगलछन्दसूत्र-२।१ की टिप्पणी।

४ स्कन्दस्वामी 'छन्द' पद को 'छन्त्सत्' आख्यात की मूल प्रकृति 'छन्द' से निष्पन्न मानता है। वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० १४।

५ छन्ति (ऋग्वेद १।१६३।४), छन्त्सत्-ऋग्वेद १।१३२।६, १०।३२।३, छन्दु ऋग्वेद १।५५।४, चच्छन्द-ऋक्०७।६३।३, छन्दयसे-ऋग्वेद ८।५०।५

६ छन्द पद्ये च वेदे च स्वैराचाराभिलाषयो। मैदिनीकोश सत्रिक २२।

७ ऋग्वेद १।१२७।६ मे शौनक, कात्यायन और वेकट माधव ने अतिधृति छन्द माना है, किन्तु इसमे उक्त छन्द का नियम नहीं घटता और केदारनाथ ने यजुर्वेद २१।४३ में उत्कृति छन्द माना है किन्तु इसमें अक्षर ११७ है, जो छन्द की सीमा से अधिक हैं।

ही प्रधान रहा है। यही कारण है कि महावैयाकरण पाणिनि को भी अधिकतर 'बहुल छन्दसि' कहकर अपने नियमो मे ढील-देकर ही निर्वाह करना पडता है[८], किन्तु पद्य मे उसकी गति-स्वच्छन्दता के साथ एक और कारण जुडा हुआ है, वह है—छन्दयति सवृणोति भावानिति छन्द, अर्थात् धातुमर्यादालभ्य यौगिक अर्थ है—भावसवरण और स्वैच्छागति। अत छन्द नाना वर्ण्यविषयो को अपने मे समेटे रहता है और अपनी स्वेच्छया प्रगति मे किसी का नियन्त्रण स्वीकार नही करता। यही कारण है कि छन्द अनादिकाल से नाना वर्ण्यविषयो को अपने मे सवृत किये हुए स्वेच्छया अबाधगति से बहती हुई कलकलनिनादिनी त्रिपथगा[९] के समान मानवो के अन्तस्तल को उर्वर बनाता चला आ रहा है।

छन्द की अनेकार्थता

वैदिक वाड्मय मे छन्द के अनेक अर्थ प्राप्त होते है। ऋग्वेद मे सूर्यरश्मि के अर्थ मे छन्द का प्रयोग मिलता है।[१०] छन्द अग्नि की प्रिय तनू भी बताये गये है।[११] छन्दो को प्राण भी कहा गया है।[१२] इसके अतिरिक्त उन्हे रस तथा सातो छन्दो को अग्नि के प्रिय सात धाम भी बताया गया है।[१३] और एक स्थल पर उन्हे गोस्थान भी कहा गया है।[१४] गो शब्द यहा रश्मियो का वाचक है और रश्मियो का स्थान सूर्य है[१५], पुराणो मे गायत्र्यादि छन्दो को सूर्य के सात अश्व (रश्मि) कहा गया है।[१६] और सूर्य के उन सात अश्वो के लिये गायत्र्यादि सात छन्दो के नामो का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[१७] जिससे स्पष्ट है कि छन्द का महत्त्व इतना व्यापक हो गया था कि उसका जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे समावेश होने लगा, जिससे उसे सूर्य की किरणे, अग्नि के धाम, प्राण, रस आदि के रूप मे भी माना जाने लगा।

इसके अतिरिक्त लौकिक वाड्मय के अन्तर्गत कोशग्रन्थो मे भी छन्द पद के विभिन्न अर्थ प्राप्त होते है। पद्य और अभिलाषा के अर्थ मे छन्द का प्रयोग बताया गया है।[१८] गायत्री को प्रमुख छन्द कहा गया है।[१९] इच्छा, सहिता = सन्धि, आर्षग्रन्थ, वेद और छन्द = भावसवरणात्मक पद्य के

---

८ पाणिनि, अष्टाध्यायी ७।१।८।

९ त्रिपथगा (गगा) की जैसे तीन धाराए है, वैसे ही छन्दो की पादधारा भी तीन ही मुख्य है। गायत्रत्रैष्टुभ और जागृत।

१० 'श्रिये छन्दो न स्मयते विभाति।' ऋग्वेद १।९२।६।

११ अग्नि वैं प्रिया तनू छन्दासि। तैत्तिरीय सहिता ५।२।१।

१२ प्राणा वै छन्दासि। कौषीतकी ब्राह्मण ७।९, ११।८, १७।२

१३ शतपथब्राह्मण ९।२।३।४४, माध्यन्दिन सहिता १७।७९ की व्याख्या।

१४ 'छन्दासि वै व्रजो गोस्थान'। तैत्तिरीयब्राह्मण ३।२।९।३।

१५ 'यत्र गावो भूरि शृगा अयास।' ऋग्वेद १।१५४।६।

१६ छन्दोभिर्बाजिरूपैस्तु-वायुपुराण ५१।५७, मत्स्य १२४।४, 'हयाश्च सप्त छन्दासि' विष्णुपुराण-२।८।७।

१७ हयाश्च सप्त छन्दासि तेषा नामनि मे शृणु।
गायत्री च बृहत्युष्णिग्जगती त्रिष्टुवेव च।
अनुष्टुप् पक्तिरित्युक्ता श्छन्दासि हरयो रवे ॥विष्णुपुराण भाग २-७।८, वाय-पुराण ५१।६४-६५, मत्स्य पुराण १२४।४६-४७।

१८ 'छन्द पद्येऽभिलापे च।' अमरकोश-३।३।२३२।

१९ गायत्री प्रमुख छन्द। अमरकोश २।७।२२।

अर्थ मे छन्द का उल्लेख मिलता है।[२०] छन्द से गायत्री आदि छन्द, वेद और इच्छा का ग्रहण होता है।[२१] पद्य, वेद, इच्छा और स्वैर = स्वेच्छया अनियन्त्रित आचरण के अर्थ का उल्लेख मिलता है।[२२] कोश ग्रन्थो मे छन्द का अर्थ अधिकतर पद्य ही लिखा है और लोक मे भी यह पद्य के अर्थ मे ही प्रसिद्ध है। अत इससे यहा गायत्री आदि छन्दोबद्ध पद्य-गद्य रचना विशेष ही अभिप्रेत है।

छन्द की पद्य-गद्यमयता

पद्य के अतिरिक्त गद्य भी प्राचीन आर्य परम्परा के अनुसार छन्दोबद्ध माने जाते है, क्योकि छन्द के विना वाणी उच्चरित ही नही होती।[२३] छन्द से रहित कोई शब्द भी नही होता और शब्द से रहित कोई छन्द भी नही होता।[२४] ज्ञानी पुरुष के लिये सारा वाङ्मय छन्दोरूप है, क्योकि छन्द और पृच्छा के विना कोई शब्द प्रवृत्त ही नही होता।[२५] सम्पूर्ण वाङ्मय छन्दोयुक्त है और छन्द के विना कुछ भी नही है[२६], जिससे स्पष्ट है कि गद्य भी छन्दोबद्ध होते थे। वेद के याजुष गद्यमन्त्र छन्दोबद्ध है। यही कारण है कि पतञ्जलि, शौनक, कात्यायनादि आचार्यो ने एक अक्षर से १०४ अक्षर तक के छन्दो का विधान अपने अपने ग्रन्थो मे किया है, जिनमे से गायत्री से धृतिपर्यन्त १३ छन्द ऋग्वेद मे प्राप्त होते है। और शेप दैवादि तथा अतिधृति मे उत्कृति पर्यन्त छन्दो के उदाहरण यजुर्वेद मे मिलते है। छन्द नियताक्षर है और याजुष मन्त्र अनियताक्षर, अत कुछ ऐसे आचार्यो का भी उल्लेख मिलता है, जो याजुष मन्त्रो में छन्द नही मानते थे।[२७] उनके मतानुसार याजुष गद्यमन्त्र अनियताक्षर होने से छन्द नही है। अत वैदिक विवरण के अतिरिक्त पिगल से अधिकतर छान्दस विद्वानो ने पद्यबद्ध रचना को ही छन्द माना है।

छन्द की उपयोगिता

पद्य की रचना मे तो छन्द पूर्ण उपयोगी रहता है, क्योंकि विना छन्द के किसी पद्य का निर्माण नही होता। पद्य छन्दोबद्ध होता है। सस्कृत के कवि तो छन्दोहीन पद्य की कल्पना भी नही करते, छन्दोहीन पदावली को को वे गद्य कहते है।[२८] छन्दो की लयात्मक गेयता उनकी निजी विशेषता है, जो अपरिचित कानो पर भी ऐसा सम्मोहन डालती है कि केवल उसका समुचित ढग से कवितापाठ ही प्रभाव उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त होता है।[२९]

---

२० इच्छासहितयोरार्षे छन्दो वेदे च छन्दसि। 'काशिका-१।२।३६ में उद्धृत।

२१ 'गायत्रीप्रभृतिच्छन्दो वेदे________। शाश्वतकोश-४०२।

२२ 'छन्द पद्येच्छयो श्रुतौ। हैम, अनेकार्थ-५८३-
छन्द पद्ये च वेदे च स्वैराचाराभिलाषयो।' मेदिनीकोश-सत्रिक २२।

२३ नाच्छन्दसि वागुच्चरति। आचार्य दुर्गकृत निरुक्तवृति-७।२।

२४ छन्दो हीनो न शब्दोऽस्ति, न छन्द शब्दवर्जितम्। नाट्यशास्त्र १५।४०।

२५ छन्दोभूतमिद सर्व वाङ्मय स्याद्विजानत।
नाच्छन्दसि न चापृष्ठे शब्दश्चरति कश्चन॥ कात्यायनकृत ऋग्यजुषपरिशिष्ट,
प० श्रीधर शास्त्री वारे (नासिक) द्वारा सपादित कातीय-परिशिष्ट दशक, पृ०९२।

२६ 'छन्दोभाग्वाङ्मय सर्वं न किञ्चिच्छन्दसा विना।
जयकीर्तिकृत छन्दोऽनुशासन-१।२।

२७ यजुषामनियताक्षरत्वादेकेषा छन्दो न विद्यते।
कात्यायनकृत शुक्लयजु सर्वानुक्रमसूत्रम् १।१।

२८ गद्य निगद्यते छन्दोहीन पदकदम्बकम्। सगीत रत्नाकर, पृष्ठ-३०६।

२९ डा० एस० एन० दास गुप्त, सस्कृत साहित्य के इतिहास की भूमिका।

छन्द के गुण

श्रव्यता छन्दो का आवश्यक गुण है। रचना की सफलता के लिए छन्दो के नियमो का पालन ही केवल पर्याप्त नही होता, अपितु सुष्ठुता भी अपेक्षित रहती है। कभी-कभी नियमानुसार शब्द- योजना रहने पर भी विस्वरता आ जाती है, स्पृहणीयता की दृष्टि से जिसका निराकरण आवश्यक होता है, क्योकि श्रव्यता के अभाव मे कवि की हीनता तो प्रकट होती ही है, काव्य भी अनुपादेय बन जाता है, सुन्दर से सुन्दर भाव उसके विना प्राणहीन लगते है। अत कवि और काव्य की सफलता के लिए श्रव्यता का छन्द मे होना परमावश्यक है।[३०] श्रव्य छन्दो के परिधान मे काव्य का सौन्दर्य और भी खिल उठता है।

छन्द का प्रभाव

छन्द प्रावेक्षण की प्रवृत्ति को उत्तेजित कर शब्दो का एक दूसरे से घनिष्ठ सबध कर देता है। छन्द विस्मय द्वारा चेतना को धीमा करके मोहन निद्रा-सी ले आता है और व्यजकता तथा सवेदनशीलता की वृद्धि करता है। छन्द अपनी ध्वनि और गति से अर्थ का प्रकाशन करता है। यदि अन्तर्वेग अति तीव्र होता है तो वह उसकी तीव्रता मे सन्तुलन ला देता है, और यदि अन्तर्वेग अति मन्द हो तो उसे उत्कृष्ट कर देता है। छन्द से कविता का वातावरण उपस्थित हो जाता है और वह काव्यात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति को स्थिर कर उसे भाषा मे परिभाषित कर देता है, पुन कल्पना को दीप्त कर ऐसी दृश्यमान और श्रोतव्य प्रतिमाए प्रदान करता है, जिनसे उसके अनुभव की अभिव्यक्ति स्पष्ट और प्रेरक हो जाती है।[३१]

छन्द और काव्य का सम्बन्ध

छन्द और काव्य का पारस्परिक दृढ सम्बध है। विना छन्द के काव्य चल नही सकता और विना काव्य के छन्द शोभा नही पाता। जब वाणी को किसी विशिष्टगेय छन्द के द्वारा सबल भावमाध्यम बनाया जाता है, तो वह काव्यात्मक वैशिष्ट्य की ओर झुक जाती है। यह छन्द के नाम सौन्दर्य की विशेषता होती है, जो उसे छन्द साहित्य की ओर अग्रसर करती है। समस्त विश्व का साहित्य किसी न किसी छन्द मे निबद्ध है। जब छन्द काव्य मे परिणत हो जाते हैं, तब उन्हे छन्द साहित्य की सज्ञा से अलकृत किया जाता है। छन्दो की उत्पत्ति, भेद, उपभेद, लक्षण उदाहरण, रचना-प्रक्रिया आदि से सम्बन्धित इतिहास तथा नियमो का वर्णन करने वाले शास्त्र को छन्द शास्त्र कहते है।

छन्द और छन्द शास्त्र का सम्बन्ध

छन्द और छन्द शास्त्र का सम्बध भाषा और व्याकरण के सम्बध के समान होता है, जैसे व्याकरण भाषा के प्रचलित शब्दो की सिद्धि करता है और किसी नये शब्द का निर्माण नही करता। यदि वह नये शब्द का निर्माण भी करता है तो वह उसका नव निर्मित शब्द लोक-व्यवहार मे प्रचलित नही होता, क्योकि वह जन-साधारण द्वारा मुखरित भाषा का शब्द नही है, ठीक वैसे ही छन्द शास्त्र भी काव्यो मे प्रचलित शब्दो का विश्लेषण करता है किन्तु नये छन्द की रचना नही करता, और यदि वह किन्ही नये छन्दों को गढता भी है[३२] तो वे उसके गढे हुए बनावटी छन्द जन साधारण के मुखरित

---

३० प० ब्रजमोहन झा, सुवृत्त तिलक, भूमिका, पृ० १६।

३१ श्री लीलाधर गुप्त, 'पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त'।

३२ जयकीर्ति कृत छन्दोऽनुशासन तथा दु खभञ्जनकृत वाग्वल्लभ मे एकाक्षर से अन्त तक बहुत से ऐसे छन्दो के लक्षण मिलते है, जिनके काव्यजगत् में उदाहरण नही मिलते।

सामान्य व्यवहार से अछूते ही रहते है, क्योकि नये छन्दो की रचना करने का उसका काम नही होता, वह तो कवियों का काम है, जो अपने मुखरित भावो को अपनी भाषा की स्वतन्त्र पक्तियो द्वारा प्रकट करता है, जिसे बाद मे अक्षर, गण और मात्राओ से नियमित, पाद, यति-गति से सम्बधित विशिष्ट नियमो मे नियोजित कर छन्द के किसी विशिष्ट नाम से व्यवहार मे लाया जाता है, जो कि छन्द शास्त्र का एक अग है । काव्य जगत् का प्रत्येक छन्द शास्त्र इसी सिद्धान्त को लेकर चलता है ।

सस्कृत मे पिगलाचार्यकृत छन्द सूत्र एक ऐसा छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ है, जो वेदिक और लौकिक दोनो प्रकार के छन्दो का परिचयात्मक तथा लाक्षणिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है । यह वह ग्रन्थ है, जो सस्कृत के वैदिक तथा लौकिक दोनो प्रकार के छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ परम्परा के बीच की कडी है । इस ग्रन्थ के पूर्व प्राय चार ग्रन्थो मे वैदिक छन्द शास्त्रीय विवरण तथा नाट्य शास्त्र मे लौकिक छन्दो के लक्षण सोदाहरण मिलते हैं । जिन ग्रन्थो मे वैदिक छन्दो का विवेचन मिलता है, उनमे शाखायन श्रौत सूत्र को वैदिक छन्द शास्त्र का सर्वप्रिय ग्रन्थ माना जा सकता है, जिसमे वैदिक छन्दो की विश्लेषणात्मक चर्चा प्राप्त होती है । इसके बाद पातञ्जल निदान सूत्र के प्रारम्भ मे वैदिक छन्दो का विवेचन मिलता है । तत ऋक्प्रातिशाख्य मे शौनक ने ग्रन्थ के तीन पटलो (१६-१८) मे वैदिक छन्दो का विस्तृत विवरण दिया है । इन दोनो ग्रन्थो मे उदाहरणार्थ यत्र-तत्र ऋग्वेद की ऋचाओ को सकेतित किया गया है । इसके अतिरिक्त कात्यायनकृत ऋक्सर्वानुक्रमणी मे भी वेदो मे प्रचलित छन्दो पर विचार किया गया है । शौनक कृत अनुक्रमणी का नाम छन्दोऽनुक्रमणी है । जिसमें ऋग्वेद के दशो मण्डलो के छन्दो की सख्या, नाम तथा तद्विषयक महनीय बातो का अनुष्टुप् पद्यो मे क्रमबद्ध विवरण है । कात्यायनकृत अन्य अनुक्रमणियो मे याजुषानुक्रमणी तथा बृहत्सर्वानुक्रमणी भी है, जिनमे वैदिक छन्दो का विवरण मिलता है, किन्तु इन अनुक्रमणियो मे छन्दो के लक्षण नही है ।

आचार्य पिगल नें अपने ग्रन्थ छन्द सूत्र मे छन्दोविषयक आचार्य क्रौष्टुकि, यास्क, ताण्डी, सेतव, काश्यप, शाकल्य, रात और माण्डव्य के नामो का छन्दो के विषय मे उनके द्वारा मान्य छन्दो के नामो के साथ उल्लेख किया है ।[३३] जिससे यह ज्ञात होता है कि उक्त आचार्यो ने भी छन्दोविषयक ग्रन्थ लिखे होगे, जो आचार्य पिगल के पूर्व समाज मे प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे, जिसके आधार पर उन्होने उनका उल्लेख किया है, जो कि अब प्राप्त नही होते । यदि हम उनको उन-उन छन्दो का आविष्कर्ता माने तो उनका कवि के रूप में कोई ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त नही होता और न उनके काव्य ग्रन्थ ही मिलते है । जिन आचार्यो के छन्दो विषयक ग्रन्थ निदानसूत्रादि प्राप्त होते हैं, उनका तो छन्द सूत्र मे कोई उल्लेख प्राप्त नही होता, जबकि वे ग्रन्थ पिगल से पूर्ववर्ती आचार्यो के है। प्रमाणस्वरूप कात्यायन कृत ऋक्सर्वानुक्रमणी के दो सूत्र 'ऊनाधिकेनैकेन' 'निचृद्भुरिजौ' और 'द्वाम्या विराट्स्वराजौ'[३४] पिगलकृत छन्द सूत्र के तृतीय अध्याय में ५९ और ६० वें सूत्र के रूप मे विना किसी परिवर्तन के, अविकल रूप मे एक से ही प्राप्त होते है । उक्त कात्यायन वैयाकरण कात्यायन से सर्वथा भिन्न माने जाते है, क्योकि उनके प्रबन्धो मे अपाणिनीय पदो का बाहुल्य है ।[३५] इससे स्पष्ट है कि छन्द सूत्र के रचयिता ने अपने से पूर्व प्राप्त होने वाले छन्दोविषयक ग्रन्थो के आधार पर अपने ग्रन्थ की रचना की थी ।

पिगल से पूर्व छन्द साहित्य, जिसमे वैदिक तथा लौकिक दोनों का सम्मिश्रण था, पूर्णतया

---

३३ छन्द सूत्र से- स्कन्धोग्रीवी क्रौष्टुके । ३ ।२९, उरोबृहती यास्कस्य-३ ।३०, सतोबृहती ताण्डिन, ३ ।३६, सर्वत सैतवस्य-५ ।१८ । सिहोन्नता काश्यपस्य-७ ।९, उद्धर्षिणी सैतवस्य-७ ।१० ।

३४ कात्यायनकृत ऋक्सर्वानुक्रमणी, पृ० २ ।

३५ बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और सस्कृति, पृ० ३५१ ।

स्वतत्र गति से विकसित होता रहा। उसे अभी तक सम्मिलित रूप से किसी नें शास्त्रीय बन्धन मे नही बाधा था, जबकि पृथक् रूप मे दोनो प्रकार के छन्दो पर कार्य हो चुका था।[३६] उस समय पिगल ने दोनो प्रकार के छन्दो को शास्त्रीय परिधान दिया, जिसमे वैदिक छन्दो के माथ लौकिक छन्द भी, जो इधर-उधर बिखरे हुए थे, उन्हे एकत्रित कर लक्षणो से सुरक्षित किया गया। वैदिक छन्दो को अक्षरच्छन्द और लौकिक छन्दो को वृत्त कहा गया।[३७] वृत्त वे छन्द होते है, जो वर्ण तथा मात्राओ से नियमित होते है। आचार्य हेमचन्द्र ने आह्लादन को छन्द कहा है। और उसमे जब वर्ण तथा मात्राए नियमित कर दी जाती है, तब वे छन्द वृत्त का रूप धारण कर लेते है।[३८] इससे यह स्पष्ट तथ्य प्रकट होता है कि पहले छन्द अपनी पूर्वावस्था मे वर्ण तथा मात्राओ से नियमित नही थे। वे पूर्णत नियमो से स्वतत्र थे। इसीलिये उन्हे छन्द कहा गया। छन्द का अर्थ स्वातन्त्र्य होता है, जिसमे नियमादि परतत्रता की तनिक भी झलक न हो। छन्द अपनी पूर्वावस्था मे ऋग्वेद से पूर्व तथा ऋग्वेद के समय तक उतने ही स्वतन्त्र थे, जितने कि आज वे परतन्त्र है।

छन्द की परिभाषा

वाणी की लय तथा ध्वनि के प्रेमी रसिको ने जब देखा कि अमुक पक्ति मन को बहुत आह्लादित करने वाली है तो उसे वे छन्द कहने लगे। इस प्रकार की पक्तिया जब उन्हे वेदो मे प्राप्त हुई, तो वे उन्हे अक्षरगणना से नियमित कर उनका नामकरण भी करने लगे। ऐसे ही प्राय आठ छन्दोनियामक ऋषियो का उल्लेख पिगल के छन्द सूत्र मे मिलता है, जिनमे तीन वैदिक है और शेष पाच लौकिक।[३९] ये छन्दो के आविष्कर्ता तो नही किन्तु उन्हे नियमो मे बाधने वाले नियामक है।

सम्भवत वैदिक मन्त्रो के साथ जिन ऋषियो का उल्लेख मन्त्र द्रष्टा के रूप मे मिलता है, उनमे से कुछ ऋषि तो वैदिक छन्दो के आविष्कर्ता अवश्य रहे होगे। छन्दो को नियमित करने की प्रवृत्ति वैदिक काल से ही प्राप्त होती है। सर्वप्रथम ऋग्वेद मे गायत्र्यादि सप्त वाणी (छन्दो) का अक्षरो द्वारा परिमित करने का सकेत मिलता है, जिसके अनुसार छन्द को निम्नाकित रूप से परिभापित किया जाता है[४०]—

'अक्षरेण मिमते सप्तवाणी।'[४१] अर्थात् अक्षर से सप्तवाणी (गायत्र्यदि सप्त छन्दो) का मान (परिमाण, माप, तौल) होता है, अर्थात् जिनका अक्षरो से परिमाण होता है, वे छन्द होते है। 'ते छन्दोभिरात्मान छादयित्वोपायस्तच्छन्दसा' छन्दस्त्वम्।[४२] अर्थात् वे (देवगण) छन्दो से अपने को ढक

३६ वैदिक छन्दो पर पतञ्जलि, शौनक और कात्यायन के ग्रन्थ तथा लौकिक छन्दो पर नाट्य शास्त्र मे छन्दोविवरण।

३७ पिगलकृत छन्द सूत्र-५।१।

३८ —छन्दनादाह्लादनाच्छन्दासि वर्णमात्रानियमितानि वृत्तानि तेषाम्।
हेमचन्द्र कृत छन्दोऽनुशासन-१।१ वृत्ति भाग।

३९ वैदिक छन्दो नियामक-क्रौष्टुकि, यास्क और ताण्डी (छन्द सूत्र-३।२९,३०,३६)
और लौकिक छन्दो नियामक सैतव (छन्द सूत्र-५।१८,७।१०) काश्यप, शाकल्य, रात और माण्डव्य (छन्द सूत्र-७।९,११,३६)।

४० छन्द की परिभाषाए रचनाओं के कालक्रम से दी गयी हैं। वैदिक ग्रन्थो का कालक्रम देखे- बलदेव उपाध्यायकृत-वैदिकसाहित्य और सस्कृति, द्वितीय खण्ड, और शेप रचनाओ का कालक्रम द्रष्टव्य-तृतीय अध्याय।

४१ ऋग्वेद १।१६४।२४।

४२ तैत्तिरीय सहिता-५।६।६।१।

कर आये, जिमसे छन्दो का छन्दस्त्व (आवरणत्व) प्रसिद्ध हुआ, अर्थात् उनके आवरण (ढकने के साधन) का नाम छन्द है। 'यदस्मा अच्छदयस्तमाच्छन्दासि।'[४३] अर्थात् जिनसे आच्छादन किया, वे छन्द है। 'छन्दासि छन्दयन्तीति।'[४४] अर्थात् जो (भावो का) सवरण करते है, उन्हे छन्द कहते है। 'देवा वै मृत्योर्विभ्यतस्त्रयी विद्या प्रविशस्ते छन्दोभिरच्छादयन्, यदेभिरच्छादयस्तच्छन्दसा छन्दस्त्वम्।'[४५] अर्थात् देवो ने मृत्यु से त्रस्त हो त्रयी विद्या (ऋक्, यजु सामवेद) मे प्रवेश किया, वे छन्दो से आच्छादित हुए, जिनसे वे आवृत्त हुए, उन आवरणो का नाम छन्द है। 'छन्दासि छादनात्।'[४६] अर्थात् जो आच्छादन करते है वे छन्द है। 'छन्दस्तुरीयेण समानसख्या याश्छन्दस ____।'[४७] अर्थात् जिसके पाद (प्रथम से चतुर्थ पर्यन्त) समानसख्यक हो, उसे छन्द कहते है। 'यदक्षरपरिमाण तच्छन्द।'[४८] अर्थात् जिसमे अक्षरो का परिमाण (गणना) हो, वह छन्द है। छन्दोऽक्षरसख्यावच्छेदकत्वमुच्यते।[४९] अर्थात् अक्षर सख्या का अवच्छेदक (नियामक) छन्द कहलाता है। 'एव नानार्थसयुक्तै पदैवर्णविभूपितैश्चचुर्भिस्तु भवेद् वृत्त छन्दो वृत्ताभिधानवत्।'[५०] अर्थात् विभिन्न अर्थो से युक्त वर्णो से विभूषित चार पदो से निर्मित वृत्त को छन्द कहते हैं। 'यस्मादाच्छादिता देवाश्छन्दोभिर्मृत्युभीरवश्छन्दसा तेन छन्दस्त्व ख्यायते वेदवादिभि।'[५१] अर्थात् मृत्यु से त्रस्त देवो को जिन्होने आच्छन्न किया, वैदिको ने उन्हे छन्द कहा। 'छन्दसा लक्षण' येन श्रुतमात्रेण बुध्यते।[५२] अर्थात् जिसके श्रवणमात्र से बोध हो, उसे छन्द कहते है। 'अकथ्यान्याश्चर्यतया छादयन्तीति छन्दासि।'[५३] अर्थात् अकथ्य विषयो का भी जो आश्चर्य के साथ छादन करते है' उन्हे छन्द कहते है। 'स्वच्छन्द मज्ञा रचटा मात्राक्षरसमोदिता, पादद्वन्द्वसमाकीर्णा सुश्रव्या सैव पद्धति।'[५४] अर्थात् मात्राओ और अक्षरो स समान पदो से युक्त सुश्रव्य पद्धति छन्द है। 'चन्दति ह्लाद करोति दीप्यते वा श्रव्यतया इति छन्द।'[५५] अर्थात् जो आह्लादित करता है और श्रव्य होने से दीप्त (प्रकाशित) होता है, वह छन्द है। ____सरस्वत्या प्रसाधन सुवृत्ततिलक वर्णरुचिर क्रियते————।[५६] अर्थात् जो वाणी के

४३ शतपथब्राह्मण-८।५।२।१।
४४ सामवेदीय दैवत ब्राह्मण-१।३।
छदि सवरणे चुरादि-१५७७, भट्टोजिकृत सिद्धान्त कौमुदी
४५ छान्दोग्योपनिषद् - १।४।२।
४६ यास्ककृत निरुक्त-७।१२।
४७ शौनककृत ऋग्वेदप्रातिशाख्य-१८।२१।
४८ कात्यायनकृत ऋक्सर्वानुक्रमणी-२।६
४९ कात्यायनकृत अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणी, पृ० १।
५० भरतकृत नाट्यशास्त्र - १५।३७।
५१ गार्ग्यकृत उपनिदानसूत्र-८।२।
५२ कालिदासकृत-श्रुतबोध-१।
५३ गणस्वामिकृत जानाश्रयी छन्दोविचितिवृत्ति-१।१।
५४ जयकीर्तिकृत छन्दोऽनुशासन-१।२४।
५५ हर्षटकृत जयदेवच्छन्दोविवृति-२।१, हर्षट के पिता मुकुलभट्ट का समय ९२५ ई० के लगभग माना जाता है। अत हर्षट का समय ९७५ ई० के बाद नही माना जा सकता। देखे-जयदामन् क्रिटिकल इन्ट्रोडक्शन, पृष्ठ ३५ एच० डी० वेलनकर।
५६ क्षेमेन्द्रकृत सुवृत्त तिलक-१।४।

प्रसाधनस्वरूप वर्णो से सुन्दर हो, वह वृत्त (छन्द) है। 'मात्रावर्णविभेदेन छन्दस्तदिह कथ्यते।'[५७] अर्थात् जिन पद्यो मे मात्राओ और वर्णो से विभेद हो, उसे छन्द कहा जाता है। 'चन्दनादाह्लादनाच्छन्दासि वर्णमात्रानियमितानि वृत्तानि———[५८] अर्थात् वर्ण तथा मात्राओ से नियमित वृत्त आह्लादन के कारण छन्द है।' छन्दति छन्द, छन्दयति आह्लादयते छन्द।[५९] अर्थात् जो प्रसन्न करता है, वह छन्द है। अक्षरै पादा परिमीयन्ते, परिमितै पादैश्छन्दासि।[६०] अर्थात् अक्षरो से पाद परिमित होते है और जो पादो से परिमित होते है, उन्हे छन्द कहते है। 'अपमृत्यु वारयितुमाच्छादयतीति छन्द।[६१] अर्थात् अपमृत्युवारणार्थ जो आच्छादन करता है, वह छन्द है। 'वृत्तमक्षरसख्यात जातिर्मात्राकृता भवेत्'[६२] अर्थात् अक्षरसख्या से सीमित वृत्त, मात्राओ से सीमित जाति छद है। 'छन्दयति सवृणोति भावानिति छन्द।'[६३] अर्थात् जो भावो का सवरण करता है, वह छन्द होता है। छन्द्यते अनेन इति छन्द।[६४] अर्थात् जिससे मन प्रसन्न होता है, उसे छन्द कहते है। 'सवृणोति हृदयमानन्दातिरेकेणेति छन्द।'[६५] अर्थात् जो आनन्दातिरेक से हृदय को सवृत करता है, उसे छन्द कहा जाता है।

उक्त परिभाषाओ के अनुसार अक्षरो के मर्यादित प्रक्रम का नाम छन्द है। जहा छन्द होता है, वहा मर्यादा आ जाती है।[६६] किसी पदार्थ के आयतन को उसका छन्द कहा जाता है। जिस प्रकार आयतन मे पदार्थ समाता है, उसी प्रकार छन्द मे मानव जीवन के समस्त भाव समा जाते है। अत भावो के सवरण को छन्द कहते है। सवरण का तात्पर्य मर्यादा से है। अत छन्द मर्यादित होते है। और मर्यादित जीवन मे ही साहित्यिक छन्द जैसी स्वस्थ प्रवाहशीलता और लयात्मकता के दर्शन होते है। छन्द के मुख्य लक्षण है—(१) भावों का सवरण, (२) प्रकाशन तथा (३) आह्लादना। इस दृष्टि से रुचिकर और लययुक्त वह वाणी जिसे सुनते ही मन आह्लादित हो जाता है, छन्द है। अत उपर्युक्त लक्षणो को ध्यान मे रखते हुये समन्वयात्मक दृष्टि से छद का लक्षण इस प्रकार किया जा सकता है-**भावो को आच्छादित कर अपने मे सीमित करने वाली शब्द सघटना को, जिसमे अक्षरो के क्रम, मात्राओ की**

---

५७ भट्टकेदारकृत वृत्तरत्नाकर-१।४।

५८ हेमचन्द्रकृत छन्दोऽनुशासनवृत्ति-१।१।

५९ क्षीरस्वामिकृत अमरकोश व्याख्या-२।७।२२,३।२।२० क्षीर स्वामी का समय १२ वी शती विक्रमी है। देखें-वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० १२।

६० सायणभाष्य की पादटिप्पणी देखें-वै० छ० मी०, पृ० १०। सायण का समय १३६४ ई० मे १३८७ ई० माना जाता है। देखे-बलदेव उपाध्यायकृत वैदिक साहित्य और सस्कृति, पृ० ५४-५५।

६१ यह सायणकृत छन्दोलक्षण है। इसका विशेष अर्थ है-जो किसी को अपमृत्यु से बचाने के लिये शब्दो से आवृत्त करता है, वह छन्द होता है। छन्दो मे मृत्यु से बचाने की शक्ति होती है और अमरत्व प्रदान करने की क्षमता। अत छन्दोबद्ध कविता करनेवाला व्यक्ति अपमृत्यु को प्राप्त नही होता, क्योकि उसके शरीर छोडने पर भी उसकी कृति उसे अमर बना देती है। देखे-डा० ससारचन्द्रकृत छन्दोलकार प्रदीप, पृ० १७५।

६२ गगादासकृत छन्दोमञ्जरी-१।४।

६३ ब्रजमोहन झा कृत सुवृत्ततिलक भूमिका, पृ० ८।

६४ वाचस्पति गैरोलाकृत, सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ११०।

६५ अयोध्यानाथकृत, पिगलछन्द सूत्र टिप्पणी, पृ० १८।

६६ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, वेदविद्या, पृ० १०२।

गणना, यतिगति से सम्बोधित विशिष्ट नियमो मे नियोजित रुचिकर श्रुतिप्रिय ध्वनि हो, छन्द कह सकते है।[६७]

इससे स्पष्ट है कि छन्द के रूप मे अक्षर मर्यादा का निर्वाह करने का सम्बध शब्द सघटना से है। और प्रकाशन का सम्बन्ध अर्थ से तथा आह्लादन का सम्बन्ध जनमानस के साथ होता है। इसी प्रकार छन्द के प्रथम दो लक्षणो का सम्बध वक्ता से और तृतीय का श्रोता से होता है, जिससे छन्द वक्ता और श्रोता के बीच मे प्रभावशाली सेतु का काम करता है।[६८] वह भावो का सवरण, प्रकाशन और जनमानस का आह्लादन करता है। छन्द के विना किसी भी वस्तु की स्थिति सम्भव नही है। मानव जीवन को भी छन्द कहा जाता है और छन्दो से जीवन मर्यादित है। छन्द के कारण ही मनुष्य स्व और पर की सीमाओ मे बधा हुआ है। स्वच्छन्दत्व उसे प्रिय होता है और परच्छन्दत्व नही। मनुष्य अपने छन्दो को विस्तृत कर मर्यादा के मार्ग का अनुसरण करता हुआ जीवन का उद्देश्य प्राप्त कर लेता है।[६९]

अत छन्द का लक्षण इस प्रकार किया जाये तो मेरी दृष्टि से अनुचित न होगा-यच्छन्दयति छादयति भावानक्षर-मात्रा-गणै प्रकाशयति चार्थैर्जनमानस चाह्लादयति ध्वनिलयेन तच्छन्द ।

जो अक्षरो और मात्राओ से भावों का सवरण, अर्थो से प्रकाशन और जनमानस का ध्वनिलय से आह्लादन करता है, वह छन्द है।

सस्कृत काव्य में प्रयुक्त छन्द

सस्कृत काव्य परम्परा मे सर्वप्रथम आदिकाव्य वाल्मीकि-रामायण माना जाता है। यह एक वीररस प्रधान काव्य है। इसमे सर्वाधिक अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है। किन्तु अनुष्टुप् के अतिरिक्त १५ अन्य छन्दो का भी प्रयोग मिलता है। तदनन्तर महर्षि व्यासप्रणीत महाभारत का स्थान है, जो छन्दो का सागर है। जिस प्रकार समुद्र मे नाना नदियो की धाराए समाहित होती है, उसी प्रकार महाभारत मे विभिन्न छन्दोधाराओ का समावेश है। इन समस्त लौकिक छन्दोधाराओ का मूल-स्रोत वेद हिमपात स्वरूप है, जिसकी छन्दोनदियो से उक्त धाराए प्रवाहित हो लौकिक काव्यधारा को सरस बनाती है। जिनमे कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, जयदेवादि की छन्दोधाराए प्रमुख है, जिनसे आधुनिक नवीन छन्द प्रवाह भी प्रभावित है। भरत से लेकर दत्त दीनेशचन्द्र पर्यन्त छन्दोलक्षणकारो के ग्रन्थो मे २३४५ छन्दो के लक्षण मिलते है, जिनमे प्राय सौ छन्दो का काव्यो मे प्रयोग हुआ है। उनमे भी कुछ छन्द ऐसे है, जिनका प्रयोग यत्र तत्र एक दो पद्य के रूप मे ही मिलता है। जिनका काव्यो मे सर्वाधिक प्रयोग हुआ है, ऐसे २८ प्रमुख छन्द निम्न है।

(१) अनुष्टुप् (२) उपजाति (इन्द्र-उपेन्द्र वज्रा) (३) वशस्थ (४) उपेन्द्रवज्रा (५) इन्द्रवज्रा
(६) पुष्पिताग्रा (७) वैतालीयम् (८) द्रुतविलम्बितम् (९) रथोद्धता (१०) मन्दाक्रान्ता (११) वियोगिनी
(१२) उपजाति (अन्य छन्दों का मिश्रण) (१३) वसन्ततिलका (१४) प्रमिताक्षरा (१५) प्रहर्षिणी
(१६) स्वागता (१७) उद्गता (१८) औपच्छन्दसिकम् (१९) उपगीत्यार्या (२०) मालिनी
(२१) मञ्जुभाषिणी (२२) रुचिरा (२३) शालिनी (२४) शार्दूल विक्रीडितम् (२५) शिखरिणी
(२६) हरिणी (२७) आर्या और (२८) स्रग्धरा।

---

६७ महोपाध्याय विनयसागर, वृत्तमौक्तिक भूमिका, पृ० १।

६८ वही, पृ० ४।

६९ वही, पृ० १।

(ख) जैनकाव्य में प्रयुक्त छन्द

सस्कृत भाषा के अन्तर्गत जैन कवियो के काव्यो मे भी उन्ही छन्दो का प्रयोग मिलता है, जो कि सस्कृत काव्यो मे प्रदर्शित किये गये है। यही कारण है कि जैन छन्दो के लक्षणकार जयदेव, जयकीर्ति, हेमचन्द्रादि ने अपने अपने छन्दोलक्षण ग्रन्थो मे सस्कृत काव्यान्तर्गत छन्दो के ही लक्षण दिये है। उदाहरणार्थ जैन महाकवियो मे 'शर्मधर्माभ्युदय'[७०] नामक महाकाव्य के रचयिता हरिश्चन्द्र का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्हे कालिदास, भवभूति जैसे महाकवियो की श्रेणी मे ही रखा जाता है।[७१] किन्तु जिन जैन कवियो की रचनाए प्राकृत तथा अपभ्रश भाषा मे प्राप्त होती है, उनमे भी सस्कृत के छदो का ही अधिकतर प्रयोग हुआ है, जिन के उदाहरण स्वयम्भूकृत स्वयभूछन्द मे दृष्टिगत होते है।[७२]

सस्कृतमहाकाव्य के इतिहास मे जैन कवियो की रचनाए कुछ कम महत्व की नही है। जैनकवि प्राचीनकाल से ही सस्कृत भाषा तथा साहित्य के विद्वान होते आये हैं, जिन्होने अपने तीर्थकरो का चरित्र सस्कृत की अलकृत शैली मे लिखकर जैनधर्म की महती सेवा की।

(ग) दृश्यकाव्यगत छन्द

सस्कृतदृश्यकाव्यो (नाटको) मे भी अधिकतर वे ही छन्द प्रयुक्त हुए है, जो सस्कृत काव्यो मे प्रयुक्त रूप मे निर्दिष्ट किये गये है। इनके अतिरिक्त नाटको मे निम्नाकित छन्दो के विरल प्रयोग मिलते है-

तोटक, सुबोधिता, मत्तमयूर, नाराचक, अपरवक्त्र, पथ्यावक्त्व, मालभारिणी, क्षमा, प्रमुदितवदना, जलधरमाला, जलोद्धतगति, वशपत्रपतित, धृतश्री, कुररीरुता, सुग्विणी, दोधक, आर्यागीति, भ्रमरविलसित, पृथ्वी, अतिशायिनी, महामालिका, रमणीयक, मेघविस्फूर्जिता, अवितथ, अश्वललित, नन्दन, प्रहरणकलिता और वैश्वदेवी।

इस विषय मे भास, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त, भट्नारायण, भवभूति, राजशेखर, जयदेव आदि नाटककारो के नाटक दर्शनीय है।

(घ) अलकारशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र के छन्द

अलकारशास्त्र के प्रणेता भरत, भामह, दण्डी, वामन, उद्भट, रुद्रट, आनदवर्धन, धनञ्जय, भोजराज, मम्मट, क्षेमेन्द्र, रुय्यक, हेमचन्द्र, विश्वनाथ तथा जगन्नाथ आदि की रचनाओ एव दर्शनशास्त्र विषयक ग्रन्थो मे शास्त्रविषयक प्रतिपादन मे अनुष्टुप् तथा आर्या छन्द का ही प्रयोग मिलता है। निष्कर्ष यह है कि सस्कृत काव्य तथा दृश्यकाव्य के अन्तर्गत प्रदर्शित छन्दो का ही रचनाओं मे अधिकतम प्रयोग हुआ है।

---

७० हरिश्चन्द्र शर्मधर्माभ्युदय, काव्यमाला ८।

७१ सुबन्धौ भक्ति र्न क इह रघुकारे न रमते,
धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिश्चन्द्रोऽपि हृदयम्।
विशुद्धोक्ति सूरे प्रकृतिमधुरा भारविगिर,
तथाप्यन्तर्मोद कमपि भवभूतिर्वितनुते॥ सदुक्तिकर्णामृत।

७२ स्वयम्भूकृत स्वयभूछन्द -१।१३।१,२०।१,२१।१,२७।१,३७।१,४०।१,४७।१,५७।१,५८।१,६०।१,६६।२,२८।४,७२।

द्वितीय अध्याय

छन्द शास्त्र विषयक ग्रन्थो का सामान्य परिचय

(१) वैदिक छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ

१ निदानसूत्रम्
२ ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्
३ ऋक्सर्वानुक्रमणी
४ छन्द शास्त्रम्
छन्द सूत्रम्
५ उपनिदान सूत्रम्
६ अग्नि पुराणम्
७ जय देवच्छन्द
८ छन्दोऽनुक्रमणी
९ वृत्त मुक्तावली

(२) लौकिक छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ

१ नाट्यशास्त्रम्
२ छन्द शास्त्रम्
तथा
छन्द सूत्रम्
३ अग्निपुराणम्
४ श्रुतबोध
५ जानाश्रयी छन्दोविचिति
६ जय देवच्छन्द
७ स्वयम्भुच्छन्द
८ गाथालक्षणम्
९ बृहत्सहितावृत्ति
१० छन्दोऽनुशासनम् (जयकीर्तिकृतम्)
११ वृत्तजाति समुच्चय
१२ छन्द शेखर
१३ सुवृत्त तिलकम्
१४ वृत्तरत्नाकर
१५ रत्नमजूषा
१६ छन्दोऽनुशासनम् (हेमचन्द्रकृतम्)
१७ वृत्तरत्नाकरवृत्ति (सुकविहृदयानन्दिनी)
१८ कविदर्पणम्
१९ अजितशान्तिस्तवटीका
२० प्राकृतपैङ्गलम्
२१ छन्दकोश
२२ वाणीभूषणम्
२३ छन्दोमञ्जरी
२४ वृत्तरत्नावलि
२५ वृत्तरत्नाकरटीका (रामचन्द्र विबुधकृता)
२६ वृत मौक्तिकम्
२७ वृतमौक्तिकम् (भाग-२)
२८ वृतरत्नाकरटीका (समय सुन्दर कृता)
२९ वृत्तरत्नाकरसेतु
३० वृत्तरत्नाकरनारायणी
३१ वृत्तमुक्तावली
३२ वृत्तरत्नाकरभावार्थदीपिका
३३ छन्दकौस्तुभ
३४ वाग्वल्लभ
३५ वाग्वल्लभवरवर्णिनी
३६ छन्द सन्दोह

द्वितीय अध्याय

छन्द —शास्त्र विषयक ग्रन्थो का सामान्य परिचय

छन्द को वेद के षडगो मे स्थान प्राप्त है। जिस प्रकार के अन्य अग महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार छन्द का महत्त्व किसी अन्य अग से कम नही है। छन्द को वेद का पाद कहा गया है।[1] पाद का अर्थ चरण है। जिस प्रकार चरणो से रहित व्यक्ति चलने मे असमर्थ हो जाता है, उसी प्रकार छन्दो के विना वेद की गति नही होती। अत वेद छन्दो पर आश्रित है। इस कारण छन्दो का अधिक महत्त्व है। छन्द जब विकसित हुआ, और उसे उसी रूप मे सुरक्षित रखने के लिए जब छन्दो के ज्ञाता छान्दस आचार्यो ने उसके नियम बनाने प्रारम्भ किये, तब से उसकी गणना छन्द शास्त्र के रूप मे होने लगी।

वेदो मे छन्दोरचना के बाद, ब्राहाण ग्रन्थो मे छन्दो के उल्लेख के पश्चात्, शाखायन श्रौतसूत्र मे सर्वप्रथम छन्द शास्त्रीय चर्चा मिलती है, जिसमे यत्र तत्र छन्दो के पदो का सनाम परिचय है,[2] जिससे गायत्री-उष्णिक्-अनुष्टुप्-बृहती-पक्ति-त्रिष्टुप्-जगती नामक सात छन्दो का स्पष्ट सकेत है।[3] छन्दो के पूर्व त्रिपदा, पुर, ककुप्, विराट्, सत, निचृत्, भुरिक्[4] आदि भैदिक नामोल्लेखों के साथ कुछ छन्दो के पाद तथा अक्षरो की गणना भी बतायी गयी है।[5] तदन्तर पतञ्जलि के निदानसूत्र शौनक के ऋक्प्रातिशाख्य तथा कात्यायन की ऋक्सर्वानुक्रमणी मे छन्दो पर विचार प्राप्त होता है, कतिपय छन्द प्रवक्ताओ का उल्लेख पिगल के छन्द सूत्र मे मिलता है, जिनके नाम है—ताण्डी, कौष्टुकि, यास्क, सैतव, काश्यप, रात और माण्डव्य,[6] किन्तु इनके छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ प्राप्त नही होते।

वैदिक युगारम्भ से वैदिक युग की समाप्ति तक छन्द इतने प्रसिद्ध हो चुके थे कि उन्हे सुरक्षित रखने के लिए छन्द प्रवक्ता आचार्यो ने उन्हे नियमो से नियत्रित किया। इस प्रकार के छन्दोनियामक 'ग्रन्थ' छन्द शास्त्र कहे जाने लगे। प्राचीन सस्कृत वाड्मय मे छन्द शास्त्र के लिए अनेक नामो का व्यवहार मिलता है।[7] जिससे ज्ञात होता है कि छन्दोनियमादि का काफी प्रसार हो चुका था और छन्द शास्त्र सम्बन्धी इधर-उधर बिखरी हुई सामग्री को एकत्रित कर पिगल ने छन्द सूत्र की रचना की, जिसमे छन्दो का सागोपाग वर्णन है।

छन्द शास्त्र के उद्भव का काल अतिप्राचीन है। छन्द शास्त्र षड्वेदागो मे अन्यतम है। इसलिए इस शास्त्र के प्रादुर्भाव का काल भी वही है, जो अन्य वेदागो का है। वेदागो का प्रादुर्भाव न्यूनातिन्यून ग्यारह सहस्र वर्ष पूर्व कृतयुग के अन्त मे हुआ था।[8] इन वेदागो का उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रन्थो मे प्राप्त होता है।[9] पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार छन्द शास्त्र का प्रादुर्भाव उनके कल्पित

---

१ छन्द पादौ तु वेदस्य ......पाणिनीयशिक्षा– श्लोक–४१।

२ शाखायनश्रौतसूत्र-६ ।४ ।५६, पृ० ६३-६५।

३ वही-७ ।२७ ।३०।

४ वही-७ ।२७।

५ वही ७ ।२७ ।१२, १७ ।२२, २५-२८, अध्याय १६ ।२७ । २, १६ ।२९ । २, १६ ।३०।

६ छन्द सूत्र-३ ।३४, ३ ।२९, ३ ।३०, ५ ।१८, ७ ।९, ७ ।३३ और ७ ।३४।

७ छन्दोविचिति, छन्दोमान, छन्दोभाषा, छन्दोविजिनी (पाणिनीय गणनाठ-४ । ३ । ७३। जैनेन्द्रगणपाठ-३ ।३ ।४७, जैनशाकटायनगणपाठ-३ ।१ ।१३६, सरस्वती कण्ठाभरण-४ ।३। गणरत्नमहोदधि-५ ।३४४ तथा छन्दोविजिति, छन्दोनाम, छन्दोव्याख्यान (चान्द्रगणपाठ ३ ।१ ।४५, गणरत्नमहोदधि ५ ।३४४।

८ युधिष्ठिर मीमासक, वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० ४५।

९ बोधायन धर्मसूत्र-२ ।१४। २, गौतमधर्मसूत्र-१५-२८, गोपथब्राहाण-१ ।१। २७, वाल्मीकि-रामायण-बालकाण्ठ-७ ।१५।

सूत्रकाल के पश्चात् हुआ और कई शताब्दियो तक उसका विकास होता रहा। तदनन्तर लगभग २०० वर्ष ईसा पूर्व पिगल ने अपना छन्दोनियामक ग्रन्थ लिखा।[१०] वस्तुत न तो छन्द शास्त्र का प्रादुर्भाव सूत्रकाल के पीछे हुआ न ही पिगल का छन्द सूत्र अपने विषय का व्यवस्थित आद्य ग्रन्थ है। वह तो अपने विषय का सबसे अन्तिम सक्षिप्त आर्षतन्त्र है। इससे पूर्व वैदिक तथा लौकिक छन्दो पर पचासो बृहत्काय ग्रन्थ रचे जा चुके थे। पिगल ने स्वय अपने से पूर्ववर्ती अनेक छन्द प्रवक्ताओ का उल्लेख किया है।[११]

निदानसूत्र मे सात छान्दस आचार्यो के मत सकेत से उद्धृत किये गये है।[१२] छन्द सूत्र मे आठ आचार्यो के नामो के उल्लेख है।[१३] उपनिदान सूत्र मे भी सात आचार्यो का सकेत मिलता है।[१४] छन्दोनुशासन मे जयकीर्ति ने दश प्राचीन आचार्यो का यतिविषयक स्मरण किया है।[१५] हेमचन्द्र ने सात पूर्वाचार्यो के नाम से तथा चौदह के सकेत से मत दिये है।[१६] छन्द सूत्र के भाष्यरचयिता यादवप्रकाश ने भाष्यान्त मे छन्द शास्त्र परपरा निदर्शक दो श्लोक दिये है।[१७] किन्तु राजवार्तिककार ने उससे भिन्न एक अन्य परम्परासूचक उल्लेख किया है।[१८] छन्दोमजरी मे गगादास ने यतिविरोध मे श्वेतमाण्डव्यादि

---

१० एनसिएट इण्डिया एण्ड एण्डियन सिविलाइजेशन, लदन, १९५१, पृ० २६३।

११ वैदिक छन्दोमीमासा-पृ० ४५।

१२ एके (निदानसूत्र, पृ० १,२,५) उदाहरन्ति पृ० २,३,४) ३-पचाला, पृ० २।
४- आचक्षते, पृ० ३ से ७।५- बह्वृचा, पृ० ३। ६-ब्रुवते, पृ० ३। ७-प्रतिजानीते पृ० ५।

१३ १-ताण्डी (छन्द सूत्र-३। ३६) २-क्रौष्टुकि, ३। २९। ३-यास्क ३। ३०,
४-सैतव-५।१८,७।१०। ५-काश्यप, ७।९। ६-रात, ७।३६, ७-माण्डव्य ७।३६। ८-शाकल्य, ७।११।

१४ क- ता ज्योतिष्मतीमिति पाञ्चाला, (उ० नि० सू० पृ० २)। ख- उरोबृहती यास्क (पृ० २)। महाबृहतीत्येके (पृ० २)। घ- द्विपदा ताण्डिन, विस्तारपक्ति स्ताण्डिन (पृ० २)।
ङ- ब्राह्मणात् ताण्डिनश्चैव पिगलाच्च महात्मन।
निदानादुक्थशास्त्राच्च छन्दसा ज्ञानमुद्धृतम् ॥८।१।

१५ वाञ्छन्ति यति पिगल वसिष्ठ कौण्डिन्य कपिल कम्बलमुनय।
नेच्छन्ति भरत-कोहल-माण्डव्याश्वतर-सैतवा ये केचित्।

१६ १- अहीन्द्र, २- सैतव, ३- भरत, ४- काश्यप, ५- पिगल, ६- जयदेव, ७- स्वयम्भू।
सकेत-१- केचित्, २-कश्चित्, ३- अन्य, ४-अन्ये, ५-अपरे, ६-एके, ७-पूर्वाचार्या, ८-मागधा, ९-आम्नाय, १०-यदाह, ११-यदाहु, १२- वृद्धा, १३-सग्रहश्लोका, १४-यत्युपदेशोपनिषद्।

१७ छन्दोज्ञानमिद भवाद् भगवतो लेभे सुराणा गुरु।
तस्माद् दुश्च्यवनस्ततो सुरगुरु र्माण्डव्यनामा तत।
माण्डव्यादपि सैतवस्तत ऋषि यास्कस्तत पिगल।
तस्येद यशसा गुरो र्भुवि धृत प्राप्यास्मदाद्यै क्रमात्॥ द्रष्टव्य-वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग २-, पृ० २४६।

१८ शिवगिरिजा नन्दि कणीन्द्र बृहस्पति च्यवन शुक्रमाण्डव्या।
सैतवपिगल गरुडप्रमुखा आद्या जयन्ति गुरुचरणा॥
सखाराम दीक्षितकृत छन्दसूत्र वृत्ति का हस्तलेख अड्यार (मद्रास) के पुस्तकालय में रखा है। वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० ५८।

का मत प्रकट कर यति के समर्थन मे अपने गुरु पुरुषोत्तमभट्ट का स्मरण किया है।[१९] चन्द्र शेखर भट्ट ने वृत्त मौक्तिक मे अपने ग्रन्थ की रचना के आधार मे चारआचार्यो का और यति के निरूपण मे आठ आचार्यो का नामोल्लेख किया है।[२०] श्री युधिष्ठिर मीमासक ने शिव से लेकर गार्ग्य तक छन्द प्रवक्ताओ के नामो का पौर्वापर्य क्रम ग्रन्थो मे निर्दिष्ट उद्धरणो के अनुसार चारो युगो मे विभक्त कर निम्नाकित रूप से रखा है[२१]—

कृतयुगीन	त्रेतायुगीन	द्वापरयुगीन	कलियुग के प्रारम्भ मे
१ शिव	१० माण्डव्य	१५ यास्क	२५ उक्थशास्त्रकार
२ पार्वती	११ वसिष्ठ	१६ रात	२६ शौनक
३ नन्दी[२२]	१२ सैतव	१७ क्रौष्टुकि	२७ पिगल
४ गुह	१३ भरत	१८ कौण्डिन्य	२८ कात्यायन
५ सनत्कुमार	१४ कोहल	१९ ताण्डी	२९ गरुड
६ बृहस्पति		२० अश्वतर	३० गार्ग्य
७ इन्द्र		२१ कम्बल	
८ शुक्र		२२ काश्यप	
९ कपिल		२३ पाञ्चाल (बाभ्रव्य)	
		२४ पतञ्जलि	

पिगल से पूर्व छन्द शास्त्र विषयक स्वतन्त्र ग्रन्थ तो प्राप्त नही होता, कितु उनसे पूर्व चार आचार्यो ने अपने-अपने ग्रन्थो मे छन्दो के विषयो पर विचार किया है। वे है—आचार्य भरत, पतञ्जलि, शौनक और कात्यायन। किन्तु इनके अतिरिक्त ऐसे आठ आचार्यो का पिगल के छन्द सूत्र मे उल्लेख मिलता है, जिन्होने छन्दो के विषय पर कार्य किया था, परन्तु आज उनके छन्दोविषयक ग्रन्थ प्राप्त नही होते, अपितु छन्दोविषयक मत मिलते है, जिनके आधार पर उनके द्वारा किये गये कुछ विशिष्ट छन्दो के नामकरण का सकेत मिलता है, जिसका क्रमश विवरण निम्नाकित है—

१- माण्डव्य[२३] छन्द सूत्र-७ ।३६ छन्दोनाम-चण्डवृष्टिप्रपात (दण्डक)
२- सैतव छन्द सूत्र-५ ।१८ छन्दोनाम-विपुलाऽनुष्टुप् (सप्तम पाद मे सप्तम वर्ण लघु)
छन्द सूत्र-७ ।१० " " उद्धर्षिणी
३ क्रौष्टुकि[२४] छन्द सूत्र-३ ।२९ छन्दोनाम-स्कन्धोग्रीवी (पिगल के मत मे-न्यङ्कुसारिणी)

---

१९ छन्दोमञ्जरी-१ ।१४, पृ० ९ ।
२० रविकर-पशुपति-पिगल-शम्भुग्रन्थान् विलोक्य निर्बन्धान्। वृत्तमौक्तिक, पृ० २७३।
२१ वैदिकछन्दोमीमासा, पृ० ५९ ।
२२ नन्दी- सभवत यह शिव-भक्त आचार्य रहे हो। राजवातिककार के अनुसार यह पतञ्जलि के गुरु और पार्वती के शिष्य थे (वृत्तमौक्तिक-भूमिका, पृ० ९)।
और वात्स्यायन ने कामशास्त्र के आचार्य के रूप मे नन्दी के नाम का उल्लेख किया है, जो शिव के अनुचर थे (कामसूत्रम्-१ ।१ ।८)।
२३ वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० ५९ ।
२४ यास्क ने निरुक्तकारों, मे क्रौष्टकि का उल्लेख किया है। द्रष्टव्य-बलदेव उपाध्याय, वैदिक माहित्य और सस्कृति, पृ० ३३० ।

४ यास्क[२५]	छन्द सूत्र-३ ।३० छन्दोनाम-उरोबृहती	(पिगल की न्यकुसारिणी)
५ रात	छन्द सूत्र- ७/३६ छन्दोनाम - चण्डवृष्टिप्रपात	(दण्डक)
६ ताण्डी	छन्द सूत्र-३ ।३६ छन्दोनाम- सतोबृहती	(पिगल के मत मे-महाबृहती)।
७ काश्यप	छन्द सूत्र-७ ।९ छन्दोनाम - सिहोन्नता	(" " " वसततिलका)
८ शाकल्य	छन्द सूत्र-७ ।११ छन्दोनाम - मधुमाधवी	(" " " ")

इसके अतिरिक्त वैदिक तथा लौकिक छन्दो का विवरण चार प्रकार के ग्रन्थो मे प्राप्त होता है। उनमे से एक तो वे ग्रन्थ है, जो अन्य विषयो के साथ छन्दो के विषय पर भी विवेचन प्रस्तुत करते है। ऐसे ग्रन्थो मे नाट्यशास्त्र, निदानसूत्र, ऋक्प्रातिशाख्य और अग्निपुराण मुख्य हैं। दूसरे प्रकार के वे ग्रन्थ है, जो अनुक्रमणी साहित्य के अन्तर्गत आते हैं इनमे शौनककृत छन्दोऽनुक्रमणी, कात्यायनकृत ऋक्सर्वानुक्रमणी, शुक्लयुज सर्वानुक्रमसूत्र, बृहत्सर्वानुक्रमणी, माधवभट्कृत, ऋग्वेदानुक्रमणी और वैकटमाधवकृत छन्दोऽनुक्रमणी प्रमुख है, किन्तु इनमे से केवल दो ग्रन्थ कात्यायन की ऋक्सर्वानुक्रमणी और वेकटमाधव की छन्दोऽनुक्रमणी मे ही छन्दो के लक्षण मिलते हैं। तीसरे प्रकार के वे ग्रन्थ है, जो छन्दो के विषय पर स्वतन्त्र रूप से लिखे गये है, जिन मे पिगलकृत छन्द सूत्र से दतदीनेशचन्द्रकृत छन्द सन्दोह पर्यन्त रचनाए आती है। ये लक्षणग्रन्थ सस्कृत और प्राकृत मे लिखित है। प्राकृत भाषा मे लिखित उन लक्षण रचनाओ का भी यहा पर ग्रहण किया गया है, जिनमे सस्कृत छन्दो के लक्षणदिये गये हैं। चौथे प्रकार के वे ग्रन्थ हैं, जो छन्दोग्रन्थो पर टीकारूप में लिखे गये है। ऐसे टीका ग्रन्थो की सख्या यद्यपि बहुल है, तथापि उन टीका ग्रन्थो का यहा पर ग्रहण किया गया है, जिनमे कतिपय छन्द स्वतत्र रूप से लक्षित किये गये है, जिससे छन्दोलक्षणकारो का सस्कृत छन्द शास्त्र प्रक्रिया मे योगदान का सम्यक् मूल्याकन किया जा सके। अत जिन रचनाओ मे सस्कृत छन्दो के लक्षण प्राप्त होते है, उन रचनाओ का वैदिक तथा लौकिक रूप मे सामान्य परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) वैदिक छन्द शास्त्र विषयक ग्रन्थो का सामान्य परिचय

१ निदानसूत्रम्

निदानसूत्र के रचयिता महर्षि पतञ्जलि हैं। मीमासक जी ने पतञ्जलि को आचार्य शौनक से पूर्व माना है।[२६] इनके ग्रन्थ मे १० प्रपाठक के प्रथम सात खण्डों मे छन्दोविषयकवर्णन प्राप्त होता है, जिसमे प्रथम छ खण्डो मे छन्दो के लक्षण हैं और सप्तम खण्ड मे यतिविषयक वर्णन है। शेष सम्पूर्ण ग्रन्थ यज्ञ-सम्बन्धी वर्णन प्रस्तुत करता है।[२७] ग्रन्थ के छन्दोविषयक भाग पर तातप्रसादविरचित एक वृत्ति प्राप्त होती है, जिसका नाम तत्वसुबोधिनी है।[२८] इसमे निम्नाकित वैदिक छन्दो के लक्षण मिलते है—

पतञ्जलि के लक्षित छन्द	पाद वर्ण	सख्या
१ एकपाद गायत्री	(८)	= ८
२ द्विपदा गायत्री	(८ + ८)	= १६

---

२५ शौनक ने यास्क का उल्लेख किया है—न दाशतय्येकपदा काचिदस्तीति वै यास्क। ऋक्प्रातिशाख्यम्-१७ ।२५ ।

२६ वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० ५९ ।

२७ के० एन० भटनागर, निदानसूत्र, पृ० ४८ ।

२८ के० एन० भटनागर द्वारा सम्पादित, निदानसूत्र, पृ० १८९ के बाद पृ० १ से २७ के मध्यनिदानसूत्र वृत्ति के नाम से प्रकाशन।

पतञ्जलि के लक्षित छन्द	पाद वर्ण	सख्या
३ गायत्री	(८ + ८ + ८)	= २४
४ चतुष्पाद गायत्री	(६ + ६ + ६ + ६)	= २४
५ उष्णिक्	(८ + ८ + १२)	= २८
६ ककुबुष्णिक्	(८ + १२ + ८)	= २८
७ पुरउष्णिक्	(१२ + ८ + ८)	= २८
८ चतुष्पादुष्णिक्	(७ + ७ + ७ + ७)	= २८
९ अनुष्टुप् चतुष्पाद्	(८ + ८ + ८ + ८)	= ३२
१० पिपीलिकामध्यानुष्टुप्	(१२ + ८ + १२)	= ३२
११ पुरस्ताज्ज्योतिरनुष्टुप्	(८ + १२ + १२)	= ३२
१२ उपरिष्टाज्ज्योतिरनुष्टुप्	(१२ + १२ + ८)	= ३२
१३ बृहती	(९ + ९ + ९ + ९)	= ३६
१४ पथ्याबृहती	(८ + ८ + १२ + ८)	= ३६
१५ पुरस्ताद्बृहती	(१२ + ८ + ८ + ८)	= ३६
१६ उपरिष्टाद् बृहती	(८ + ८ + ८ + १२)	= ३६
१७ पक्ति	(८ + ८ + ८ + ८ + ८)	= ४०
१८ सिद्धाविष्टारपक्ति	(१२ + ८ + १२ + ८)	= ४०
१९ विपरीतापक्ति	(८ + १२ + ८ + १२)	= ४०
२० आस्तारपक्ति	(८ + ८ + १२ + १२)	= ४०
२१ प्रस्तारपक्ति	(१२ + १२ +८ + ८)	= ४०
२२ सस्तारपक्ति	(१२ + ८ + ८ + १२)	= ४०
२३ विष्टारपक्ति	(८ + १२ + १२ + ८)	= ४०
२४ अक्षरपक्ति	(५ + ५ + ५ + ५)	= २०
२५ द्विपदाक्षरपक्ति	(१० + १०)	= २०
२६ एकपदाविराट्	(१०)	= १०
२७ पदपक्ति	(५ + ५ + ५ + ५+५)	= २५
२८ द्विपदापक्ति	(१२ + ८)	= २०
२९ त्रिष्टुप्	(११ + ११ + ११ + ११)	= ४४
३० ज्योतिष्मतीत्रिष्टुप्	(११ + ११ +११ + ८)	= ४१
३१ पचपदात्रिष्टुप्	(८ + ८ + ८ + ८ + १२)	= ४४
३२ द्विपदात्रिष्टुप्	(११ + ११)	= २२
३३ त्रिपदाविराट्	(११ + ११ + ११)	= ३३
३४ एकपदात्रिष्टुप्	(११)	= ११
३५ एकपाद जगती	(१२)	= १२
३६ जगती	(१२ + १२ + १२ + १२)	= ४८
३७ ज्योतिष्मती जगती	(१२ + १२ + १२ + ८)	= ४४
३८ पचपदाजगती	(८ + ८ + ८ + 12 + १२)	= ४८
३९ विष्टारपक्ति जगती (प्रवृद्धपदा)	(६ + ६ + ६ + ६ + ६ + ६ + ६ + ६) =	

पतञ्जलि के लक्षित छन्द	पाद वर्ण	सख्या
४० षटपदाजगती	(८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८)	= ४८
४१ द्विपदाजगती	(१२ + १२)	= २४
४२ विषमपादजगती	(९ + १४ + ११ + १३)	= ४७
४३ विषमपादजगती	(६ + १० + ११ + ८)	= ३५
अतिच्छन्द (द्वितीय सप्तक)		
४४ विधृति		(५२ वर्ण)
४५ शक्वरी		(५६ वर्ण)
४६ अष्टि		(६० वर्ण)
४७ अत्यष्टि		(६४ वर्ण)
४८ महना		(६८ वर्ण)
४९ सरित्		(७२ वर्ण)
५० सम्पा		(७६ वर्ण)[२९]
तृतीय सप्तक के छन्द[३०]		
५१ सिन्धु		(८० वर्ण)
५२ सलिल		(८४ वर्ण)
५३ अम्भ		(८८ वर्ण)
५४ गगन		(९२ वर्ण)
५५ अर्णव		(९६ वर्ण)
५६ आप		(१०० वर्ण)
५७ सुमुद्र		(१०४ वर्ण)

२९ आचार्य शौनक ने ऋक्प्रातिशाख्य मे द्वितीय, सप्तक के छन्दो के नामो मे अन्तर किया है और पाद विधान मे उनके पादो को अकित किया है। जो आज प्रचलित है। यथा—

४४- अतिजगती	(१२+१२+१२+८+८)	= ५२
४५ शक्वरी	(८+८+८+८+८+८+८)	= ५६
४६- अतिशक्वरी	(१६+१६_१२+८+८)	=६०
४७- अष्टि	(१६+१६+१६+८+८)	= ६४
४८- अत्यष्टि	(१२+१२+८+८+८+१२+८)	= ६८
४९-धृति	(१२+१२+८+८+८+१६+८)	= ७२
५०- अतिधृति	(१२+१२+८+८+८+१२+८+८)	= ७६

ऋक्प्रातिशाख्य-१६ ।५३-५५ ।

३० शौनक ने तृतीय सप्तक के छन्दों के नामो में भी अन्तर किया है जो, आज प्रचलित है ।यथा— ५१-कृति (८०) ५२- प्रकृति (८४), ५३- आकृति (८८), ५४- विकृति (९२), ५५-सकृति (९६), ५६-अभिकृति (१००) ५७-उत्कृति (१०४)। ऋक्प्रातिशाख्य-१६ । ५६-५७ ।

अन्त स्थ छन्द (प्राग्गायत्री पञ्चक) [३१]

	वर्ण
५८ कृति	(४)
५९ प्रकृति	(८)
६० सकृति	(१२)
६१ अभिकृति	(१६)
६२ आकृति	(२०)

द्वापर छन्द (प्रथम सप्तक) [३२]

	वर्ण
६३ राट्	(२२)
६४ सम्राट्	(२६)
६५ विराट्	(३०)
६६ स्वराट्	(३४)
६७ स्ववशिनी	(३८)
६८ परमेष्ठा	(४२)
६९ अन्त स्था	(४६)

द्वितीय सप्तक

	वर्ण
७० प्रल	(५०)
७१ अमृत	(५४)
७२ वृषा	(५८)
७३ जीव	(६२)
७४ तृप्त	(६६)
७५ रस	(७०)
७६ शुक्र	(७४)

तृतीय सप्तक

	वर्ण
७७ अर्ण	(७८)
७८ अश	(८२)
७९ अम्भ	(८६)
८०. अम्बु	(९०)
८१ वारि	(९४)
८२ आप	(९८)
८३ उदक	(१०२)

प्राग्गायत्री पञ्चक

	वर्ण
८४ हर्षीका	(२)
८५ सर्षीका	(६)
८६ मर्षीका	(१०)
८७ सर्वमात्रा	(१४)
८८ विराट् कामा	(१८)

त्रेता छन्द (निचृत्) और कलि (भुरिक्) छन्द [३३]

देव, आसुर, प्राजापत्य और आर्ष छन्द [३४]

प्रथम सप्तक

	वर्ण
८९ दैवी गायत्री	(१)
९० आसुरीगायत्री	(१५)
९१ प्राजापत्यागायत्री	(८)
९२ आर्षी गायत्री	(२४)

---

३१ शौनक ने ऋक्प्रातिशाख्य में इनके नामान्तर मा, प्रमा, प्रतिमा, उपमा, समा दिये हैं और पिगल के छद सूत्र मे नामान्तर उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा मिलते है, जो आज प्रचलित है। ऋक्प्रातिशाख्य १७ ।११, छन्द सूत्र ४ ।९ ।

३२ पिगल ने इन्हे दो वर्णो से कम या अधिक होने से विराट्, स्वराट् कहा है।

३३ पतञ्जलि ने गायत्र्यादि छन्दो को कृत, उनमे से एकाकार न्यून छन्दों को त्रेता, द्वयक्षरन्यून को द्वापर और त्र्यक्षर न्यून छन्दो को कलि सज्ञा से व्यवहृत किया है।

३४ दैवासुर छन्द गायत्री से सम्पातक एक वर्ण से १४ वर्ण तक होते हैं। आसुर छन्द गायत्री से सम्पातक १५ वर्ण से दो वर्ण तक क्रमश घटते है। प्रजापति छन्द गायत्री से सम्पातक ८ वर्ण से ६२ वर्ण तक ४-८ वर्णों से बढते है और ऋषि छन्द पूर्वोक्त तीनों प्रकार के छन्दो की सख्या को एकत्र कर निर्मित होते है, जो गायत्री से सपातक २४ वर्ण से ७६ वर्ण तक ४-४ वर्णों से बढते हैं। निदानसूत्र १ ।२ ।

उष्णिक्	वर्ण
९३ दैवीउष्णिक्	(२)
९४ आसुरी उष्णिक्	(१४)
९५ प्राजापत्या उष्णिक्	(१२)
९६ आर्षी उष्णिक्	(२८)
अनुष्टुप्	
९७ दैवी अनुष्टुप्	(३)
९८ आसुरी अनुष्टुप्	(१३)
९९ प्राजापत्या अनुष्टुप	(१६)
१०० आर्षी अनुष्टुप्	(३२)
बृहती	
१०१ दैवी बृहती	(४)
१०२ आसुरी बृहती	(१२)
१०३ प्राजापत्या बृहती	(२०)
१०४ आर्षी बृहती	(३६)
पंक्ति	
१०५ दैवी पक्ति	(५)
१०६ आसुरी पक्ति	(११)
१०७ प्राजापत्या पंक्ति	(२४)
१०८ आर्षी पक्ति	(४०)
त्रिष्टुप्	
१०९ दैवी त्रिष्टुप्	(६)
११० आसुरी त्रिष्टुप्	(१०)
१११ प्राजापत्या त्रिष्टुप्	(२८)
११२ आर्षी त्रिष्टुप्	(४४)
जगती	
११३ दैवी जगती	(७)
११४ आसुरी जगती	(९)
११५ प्राजापत्या जगती	(३२)
११६ आर्षी जगती	(४८)
द्वितीय सप्तक विधृति (अतिजगती)	
११७ दैवी विधृति	(८)
११८ आसुरी विधृति	(८)
११९ प्राजापत्या विधृति	(३६)
१२० आर्षी विधृति	(५२)

शक्वरी	वर्ण
१२१ दैवी शक्वरी	(९)
१२२ आसुरी शक्वरी	(७)
१२३ प्राजापत्या शक्वरी	(४०)
१२४ आर्षी शक्वरी	(५६)
अष्टि (अति शक्वरी)	
१२५ दैवी अष्टि	(१०)
१२६ आसुरी अष्टि	(६)
१२७ प्राजापत्या अष्टि	(४४)
१२८ आर्षी अष्टि	(६०)
अत्यष्टि (अष्टि)	
१२९ दैवी अत्यष्टि	(११)
१३० आसुरी अत्यष्टि	(५)
१३१ प्राजापत्या अत्यष्टि	(४८)
१३२ आर्षी अत्यष्टि	(६४)
महना (अत्यष्टि)	
१३३ दैवी महना	(१२)
१३४ आसुरी महना	(४)
१३५ प्राजापत्या महना	(५२)
१३६ आर्षी महना	(६८)
सरित् (धृति)	
१३७ दैवी सरित्	(१३)
१३८ आसुरी सरित्	(३)
१३९ प्राजापत्या सरित्	(५६)
१४० आर्षी सरित्	(७२)
सम्पा (अतिधृति)	
१४१ दैवी सम्पा	(१४)
१४२ आसुरी सम्पा	(२)
१४३ प्राजापत्या सम्पा	(६०)
१४४ आर्षी सम्पा	(७६)[३५]

---

३५ विधृति से सम्पा तक कोष्ठान्तर्गत छन्दों के नाम अतिजगती से अतिधृति पर्यन्त पिंगल के छन्द सूत्र में प्राप्त होते हैं।

(२) ऋक्प्रातिशाख्यम्

प्रातिशाख्यग्रन्थो मे ऋक्प्रातिशाख्य प्राचीनता तथा प्रामाणिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसका दूसरा नाम पार्षद या परिषद्-सूत्र भी है और टीकाकार विष्णुमित्र ने शौनक को इस पार्षद का रचयिता बताया है।[३६] इसके रचयिता आश्वलायन के गुरु महर्षि शौनक है।[३७] आचार्य शौनक की रचनाये महर्षि यास्क तथा कात्यायन के मध्यकाल की मानी जाती है। इनकी प्रसिद्ध रचनाओ मे बृहद्देवता एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।[३८] जो यास्क के निरुक्त और कात्यायन की ऋक्सर्वानुक्रमणी के मध्यकाल की एक महनीय कृति है। शौनक ने इसमे निरुक्त की देवताविषयक कल्पना को ही अगीकृत नही किया है प्रत्युत उसके अनेक वाक्यो को भी उद्धृत किया है। कात्यायन ने बृहद्देवता के लगभग ३० श्लोक ज्यो के त्यो अल्प परिवर्तन के साथ ऋक्सर्वानुक्रमणी मे स्वीकृत तथा उद्धृत किये है। अत आचार्य शौनक, कात्यायन से पूर्व और यास्क के परवर्ती सिद्ध होते है।

ऋक्प्रातिशाख्य मे ऋग्वेद की एकमात्र उपलब्ध शाकल शाखा की शैशिरीय उपशाखा का सागोपाग विवेचन है। यह ऐतरेय आरण्यक के सहितोपनिषद् (आरण्यक-३) का अक्षरश अनुसरण करता है और आरण्यक मे निर्दिष्ट माण्डूकेय, माक्षव्य, आगस्त्य, शूरवीर नामक आचार्यो के सहिताविषयक नाना मतो का प्रतिपादन भी करता है। शिक्षा, छन्द तथा व्याकरण के सामान्य नियमो का वर्णन करना प्रत्येक प्रातिशाख्य का प्रयोजन है।[३९] इसमे १८ पटल है, जिनमे स्वर, वर्ण, सधि तथा छन्दो का मार्मिक वर्णन प्राप्त होता है। इसके अतिम तीन (१६-१८) पटलो मे जिन १८८ छन्दो के लक्षण प्राप्त होते है, उनमे उनके स्वतत्र लक्षित निम्नाकित ६४ छन्द है —

शौनक के स्वतन्त्र लक्षित छन्द[४०] —

याजुष, साम, आर्च और ब्राह्म छन्द।[४१]

गायत्री	वर्ण	गायत्री	वर्ण
१- याजुषी गायत्री	(६)	२- साम्नी गायत्री	(१२)
३- आर्ची गायत्री	(१८)	४- ब्राह्मी गायत्री	(३६)

---

३६ शौनक च विशेषेण येनेद पार्षद कृतम्। वर्गद्वयवृति, श्लोक ५। यह वृत्ति ऋक्प्रातिशाख्य पर ऋज्वर्था नाम से डेक्कन कालिज, पूना के पुस्तकालय मे हस्तलिखित प्राप्त है। जिसका हस्तलेख शक स० १५६२ (= १६४० ई०) है।

३७ बलदेव उपाध्याय-वैदिक साहित्य और सस्कृति, पृ० २७८।

३८ ए० ए० मैक्डानल, बृहद्देवता, पृ० २२ (इण्ट्रोडक्शन, पृ० २२)।

३९ शिक्षा छन्दो व्याकरणै सामान्येनोक्तलक्षणम्।
तदैवमिह शाखायामिति शास्त्रप्रयोजनम्॥ उव्बटकृत प्रातिशाख्य भाष्य, प्रारभिकपद्य।

४० यहा पतजलि तक लक्षित छदो के अतिरिक्त शौनक के लक्षित छदो का ग्रहण किया गया है। आचार्य शौनक पतञ्जलि से परवर्ती है।

४१ आचार्य शौनक ने गायत्र्यादि प्रथम सप्तक में याजुष, साम, आर्च और ब्राह्म छद माने है। जिनमे क्रमश गायत्री से जगती तक छ वर्ण से बारह वर्ण तक एक-एक वर्ण की वृद्धि, साम छन्दो मे गायत्री से जगती तक १२ वर्ण से २४ वर्ण तक दो-दो वर्णो की वृद्धि, आर्च छन्दो मे गायत्री से जगती तक १८ वर्ण से ३६ वर्ण तक ३-३ वर्णों की वृद्धि और ब्राह्म छन्दों मे गायत्री से जगती तक ३६ वर्ण से ७२ वर्ण तक ६-६ वर्णों की वृद्धि होती है। दृष्टव्य - ऋक्प्रातिशाख्य १६/६-९

उष्णिक्	वर्ण		वर्ण
५- याजुषी उष्णिक्	(७)	६- साम्नी उष्णिक्	(१४)
७- आर्ची उष्णिक्	(२१)	८- ब्राह्मी उष्णिक्	(४२)
अनुष्टुप्			
९- याजुषी अनुष्टुप्	(८)	१०- साम्नी अनुष्टुप्	(१६)
११- आर्ची अनुष्टुप्	(२४)	१२- ब्राह्मी अनुष्टुप्	(४८)
बृहती			
१३- याजुषी बृहती	(९)	१४- साम्नी बृहती	(१८)
१५- आर्ची बृहती	(२७)	१६- ब्राह्मी बृहती	(५४)
पक्ति			
१७- याजुषी पक्ति	(१०)	१८- साम्नी पक्ति	(२०)
१९- आर्ची पक्ति	(३०)	२०- ब्राह्मी पक्ति	(६०)
त्रिष्टुप्			
२१- याजुषी त्रिष्टुप्	(११)	२२- साम्नी त्रिष्टुप्	(२२)
२३- आर्ची त्रिष्टुप्	(३३)	२४- ब्राह्मी त्रिष्टुप्	(६६)
जगती			
२५- याजुषी जगती	(१२)	२६- साम्नी जगती	(२४)
२७- आर्ची जगती	(३६)	२८- ब्राह्मी जगती	(७२)[४२]

गायत्री	पाद-वर्ण	सख्या
२९- पाद निचृद् गायत्री	(७ + ७ + ७)	= २१
३०- अतिनिचृद् गायत्री	(७ + ६ + ७)	= २०
३१- अतिनिचृद् गायत्री	(६ + ६ + ७)	= १९
३२- वर्द्धमाना गायत्री	(६ + ७ + ८)	= २१
३३- वर्द्धमाना गायत्री	(८ + ६ + ८)	= २२
३४- द्विपदा गायत्री	(१२ + १२)	= २४
३५- यवमध्या गायत्री	(७ + १० + ७)	= २४
३६- उष्णिग्गर्भागायत्री	(६ + ७ + ११)	= २४
३७- पदपक्ति गायत्री	(५ + ५ + ५ + ५ + ६)	= २६
३८- भुरिक्पदपक्ति गायत्री	(५ + ५ + ५ + ६ + ६)	= २७
३९- पदपक्ति गायत्री	(४ + ६ + ५ + ५ + ५)	= २५
४०- भुरिग् गायत्री	(८ + १० + ७)	= २५
उष्णिक्		
४१- ककुम्न्यकुशिरानिचृदुष्णिक्	(११ + १२ + ४)	= २७
४२- पिपीलकमध्या उष्णिक्	(११ + ६ + ११)	= २८
४३- तनुशिरा उष्णिक्	(११ + ११ + ६)	= २८
४४- अनुष्टब्गर्भा उष्णिक्	(५ + ८ + ८ + ८)	= २९

---

४२ ऋक्प्रातिशाख्य १६/६-९ ।

अनुष्टुप्	पाद-वर्ण	सख्या
४५- काविराड् अनुष्टुप्	(९ + ९ + १२)	= ३०
४६- नष्ट रूपा उष्णिक्	(९ + १० + १३)	= ३२
४७- विराट् अनुष्टुप्	(१० + १० + १०)	= ३०
४८- महापदपक्ति अनुष्टुप्	(५ + ५ + ५ + ५ + ५ + ६)	= ३१
बृहती		
४९- विष्टारबृहती	(८ + १० + १० + ८)	= ३६
५०- पिपीलकमध्या बृहती	(१३ + ८ + १३)	= ३४
५१- विषमपदाबृहती	(९ + ८ + ११ + ८)	= ३६
पक्ति		
५२- विराट्पक्ति	(१० + १० + १० + १०)	= ४०
त्रिष्टुप्		
५३- उपजगतीत्रिष्टुप्	(१२ + १२ + ११ + ११)	= ४६
५४- अभिसारिणीत्रिष्टुप्	(१० + १० + १२ + १२)	= ४४
५५- विराट्स्थाना त्रिष्टुप्	(९ + १० + ११ + ११)	= ४१
५६- विराट्स्थाना त्रिष्टुप्	(९ + ९ + १० + ११)	= ३९
५७- विराट्स्थाना त्रिष्टुप्	(१० + १० + ९ + ११)	= ४०
५८- विराट्पूर्वा त्रिष्टुप्	(१० + १० + ८ + ८ + ८)	= ४४
५९- ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्	(१२ + १२ + १२ + ८)	= ४४
६०- ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्	(८ + १२ + १२ + १२)	= ४४
६१- ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्	(१२ + ८ + १२ + १२)	= ४४
६२- ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्	(१२ + १२ + ८ + १२)	= ४४
६३- यवमध्या त्रिष्टुप्	(८ + ८ + १२ + ८ + ८)	= ४४
जगती		
६४- महापक्ति जगती	(८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८)	= ४८[४३]

(३) ऋक्सर्वानुक्रमणी

ऋक्सर्वानुक्रमणी आचार्य कात्यायन की अनुक्रमणियो मे सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना हैं। यह सूत्र रूप मे निबद्ध है। इसमें प्रत्येक सूत्र के आद्य पदो के साथ ऋचाओ की सख्या, सूत्र के ऋषि का नाम तथा गोत्र, सूक्तो और उनके अन्तर्गत मन्त्रों के देवताओ के निर्देश के साथ उनके छन्दो का क्रमबद्ध उल्लेख किया गया है। इस रचना मे अपाणिनीय पदो की बहुल सत्ता के कारण इसके रचयिता कात्यायन वार्तिककार वैयाकरण कात्यायन से सर्वथा भिन्न हैं,[४४] क्योंकि शुक्लयजुर्वेदीय वाजसनेयि प्रातिशाख्य भी इन्ही की रचना है। इसमें आठ अध्याय हैं जिनमे परिभाषा, स्वर तथा सस्कारो (सधिया) का विस्तृत विवेचन है। इसके अनेक सूत्रों में शाकल्य तथा काश्यप की अपेक्षा[४५] शाकटायन के मतो

---

४३ ऋक्प्रातिशाख्य, १६/१३-१६/५० ।

४४ बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और सस्कृति, पृ० ३५०-३५१ ।

४५ वाजसनेयिप्रातिशाख्य-३/१० तथा ४/५ ।

का निर्देश[४६] विशेष मिलता है किन्तु वार्तिककार कात्यायन के निजी विशिष्ट मतो का वहा सर्वथा अभाव है, और यही उन दोनो ग्रन्थकारो की भिन्नता का स्पष्ट प्रमाण है।

वाजसनेयिप्रातिशाख्य के रचयिता कात्यायन वैयाकरण पाणिनि से भी पूववर्ती है, इसका परिचय पाणिनि की रचना शैली की प्रगाढता, उनकी परिभाषाओ एव सज्ञाओ की एकरूपता तथा अविसवादिता के साथ कात्यायनकृत प्रातिशाख्य की शैली की अप्रौढता तथा अव्यवस्था से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है।[४७] आचार्य बलदेव उपाध्याय के मत मे प्रातिशाख्य के प्रथम अध्याय के सूत्र-१३३ से १३७ तक जिस विषय का प्रतिपादन है वह नितान्त व्यवस्थित तथा समुचित है। इन्ही सूत्रो मे से - '**तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य**' और '**तस्मादित्युत्तरस्यादे**' तथा '**षष्ठीस्थाने योगा**[४८]' सूत्रो को पाणिनि ने अपने ग्रन्थ अष्टाध्यायी मे ग्रहण किया है। फलत इस अक्षरश परिशीलन का सामूहिक परिणाम यही है कि कात्यायनकृत प्रातिशाख्य पाणिनि से प्राचीनतर है। अधिकतर विद्वान् पिगल को पाणिनि का समकालीन और अनुज मानते हैं।[४९] अत ऋक्सर्वानुक्रमणीकार कात्यायन वैयाकरण कात्यायन से भिन्न होने के कारण आचार्य पिगल से पूर्ववर्ती है। ऋक्सर्वानुक्रमणी मे ६८ छन्दोभेदो का वर्णन प्राप्त होता है। जिसमे उनके स्वतत्र लक्षित निम्नाकित ९ छन्द है—जिनके लक्षण पूर्व आचार्य की रचनाओ मे प्राप्त नही होते।

कात्यायन के स्वतन्त्र लक्षित छन्द

	पादवर्ण	सख्या
१- स्वराड्गायत्री	(८ + ८ + १०)	= २६
२- प्रतिष्ठा गायत्री	(८ + ७ + ६)	= २१
३- विराट्शकुमती गायत्री	(१० + १० + ५)	= २५
४- विषमपदा उष्णिक्	(७ + १० + ११)	= २८
५- यजुरन्तानुष्टुप्	(८ + ८ + ७ + ८ + १०)	= ४१
६- विपरीता बृहती	(८ + ११ + ८ + १०)	= ३७
७- विराट्पक्ति	(१० + १२ + १० + १२)	= ४४
८- स्वराट्पक्ति	(१० + १० + ११ + ११)	= ४२
९- सावित्री त्रिष्टुप्	(७ + ८ + ८ + ७ + ८ + ६)	= ४४

---

४६ वाजसनेयि प्रातिशाख्य-३/९, १२/४/५, १८९।

४७ वही १/३८, ४०, ५२, ३/९, १०।

४८ वही १/१३४ तथा अष्टाध्यायी १/१/६६।
वही १/१३५ तथा अष्टाध्यायी १/१/६७ और १/१/५४।
वही १/१३६ तथा अष्टाध्यायी १/१/४९।

४९ षड्गुरु शिष्यकृत पिंगल सूत्र की टीका वेदार्थदीपिका-३/३३।

(४) छन्द सूत्रम्

छन्द सूत्र के रचयिता आचार्य पिगल है। अधिकतर विद्वान् पिगल को पाणिनि का समकालीन मानते है। शड्गुरुशिष्य ने अपनी टीका मे पिगल को पाणिनि का अनुज माना है।[५०] और यही मत श्री युधिष्ठिर मीमासक का भी है।[५१] महाभारत मे सर्पसत्र से अवशिष्ट नागो के साथ पिगल की गणना की गई है।[५२] मत्स्यपुराण के अनुसार पिगल नग के पुत्र थे।[५३] अत उन्हे पिगल नाग से कहा जाता है।[५४] कुछ विद्वान् महर्षि पाणिनि और आचार्य पिगल को आचार्य वर्ष का शिष्य मानने के कारण दोनो का भ्रातृत्व मानते है।[५५] नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि के शत पुत्रो मे पिगल का उल्लेख मिलता है।[५६] अत पिगल भरतमुनि से परवर्ती है।

छन्द सूत्र एक सूत्र ग्रन्थ है। इसमे वैदिक तथा लौकिक छन्दो का विवरण प्राप्त होता है। इसमे आठ अध्याय है,जिनमे ३२९ सूत्र है। प्रारम्भ से चतुर्थ अध्याय के सातवे सूत्र तक ११९ वैदिक छन्दो के लक्षण मिलते है। इस ग्रन्थ पर १४ टीकाये प्राप्त होती है।[५७] जिनमे सर्वप्राचीन हलायुध भट्ट की टीका मृतसजीवनी १०वी शती की है।[५८] स्वामी दयानन्द सरस्वती ने छन्द सूत्र पर पिगलाचार्यकृत भाष्य का भी उल्लेख किया है[५९] किन्तु वह प्राप्त नही होता। इस समय हलायुध टीका मृतसजीवनी और अखिलानन्दशर्मकृत वैदिक भाष्य प्रकाशित है।[६०] छन्द सूत्र ही एक जैसा छन्दोग्रन्थ है, जो पतञ्जलि, शौनक, कात्यायन के छन्दोविवरण के पश्चात् स्वतत्र रूप से प्राप्त होता है। इसमे लक्षित ११९ वैदिक छन्दो मे से पिगल के स्वतत्र रूप से लक्षित निम्नाकित १३ छन्द है,जो पूर्व के आचार्यो की रचनाओ मे प्राप्त नही होते।

पिगल के स्वतन्त्र लक्षित छन्द

गायत्री	पादवर्ण	सख्या
१- अतिपादनिचृद् गायत्री	(६ + ८ + ७)	= २१
२- नागी गायत्री	(९ + ९ + ६)	= २४
३- वाराही गायत्री	(६ + ९ + ९)	= २४
४- पिपीलकमध्या गायत्री	(९ + ६ + ९)	= २४

५० युधिष्ठिर मीमासक, सस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, भाग १-पृ० १३२।
षड्गुरु शिष्यकृत पिगल सूत्र की टीका वेदार्थदीपिका-३/३३।
५१ युधिष्ठिर मीमासक, सस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, भाग १, पृ० १३२।
५२ महाभारत, आदिपर्व-३५/९।
५३ मत्स्यपुराण-१९६/६, ३२।
५४ या षट् पिगलनागाद्यै छन्दोविचितय कृता। निदानसूत्र-भूमिका, पृ० २५।
५५ अयोध्यानाथ, छन्द सूत्र-कादम्बिनी टीका, प्राक्कथन, पृ० ८-९।
५६ नाट्यशास्त्र- १/२९।
५७ विनयसागर, वृत्त मौक्तिक, अष्टम परिशिष्ट, छन्द शास्त्र के ग्रन्थ और उनकी टीकाए।
५८ अयोध्यानाथ, छन्द सूत्र, कादम्बिनी टीका, प्राक्कथन, पृ० १०।
५९ दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० २९३।
६० अयोध्यानाथ, छन्द सूत्र-हलायुधवृत्तिसहित, वाराणसी-स० २०२६।
अखिलानन्द शर्मा, छन्द सूत्र, वैदिकभाष्य, शक १८३०, स० १९६५, सन् १९०९, मेरठ।

बृहती	पादवर्ण	सख्या
५- बृहती	(१० + १० + ८ + ८)	= ३६
६- स्कन्धोग्रीवी बृहती	(८ + १२ + ८ + ८)	= ३६[६१]
७- सतोबृहती[६२]	(१२ + १२ + १२)	= ३६
पक्ति		
८- अल्पश अक्षरपक्ति	(५ + ५)	= १०
९- पदपक्ति	(४ + ६ + ५ + ५ + ५)	= २५
त्रिष्टुप्		
१०- पुरस्ताज्योतिस्त्रिष्टुप्	(११ + ८ + ८ + ८ + ८)	= ४३
११- मध्येज्योतिस्त्रिष्टुप्	(८ + ८ + ११ + ८ + ८)	= ४३
१२- उपरिष्टाज्ज्योति स्त्रिष्टुप्	(८ + ८ + ८ + ८ + ११)	= ४३
जगती		
१३- पुरस्ताज्ज्योतिर्जगती	(१२ + ८ + ८ + ८ + ८)	= ४४[६२क]

(५) उपनिदान सूत्रम्

उपनिदान सूत्र एक छन्दोविषयक ग्रन्थ है। इसका दूसरा नाम 'सामगाना छन्द' भी है। इसमे वैदिक छन्दों का विवरण है। इसका रचयिता कौन है ? यह इस ग्रन्थ से ज्ञात नही होता, किन्तु ग्रन्थ के अन्त मे जो उल्लेख मिलता है, इसमे इसके प्रवक्ता के रूप में गार्ग्य का सकेत है, जो ग्रन्थ की प्रथम पाण्डुलिपि बी०-१ और द्वितीय पाण्डुलिपि बी०-२ मे भी प्राप्त होता है।[६२ख] यदि ग्रन्थ मे गार्ग्य के उल्लेख के आधार पर इसे महर्षि गार्ग्य की रचना मानें तो ग्रन्थ के अन्त में पद्यचतुष्टय के अन्तर्गत छन्दोज्ञान परम्परात्मक प्रथम पद्य मे महात्मा पिगल के उल्लेख से यहसिद्ध नही होता।[६३] क्योकि ऐतिहासिक परम्परा से महर्षि गार्ग्य यास्क से प्राचीन हैं और पिगल यास्क से अर्वाचीन है[६४] यास्क ने निरुक्त मे गार्ग्य का निरुक्तकारो मे उल्लेख किया है।[६५] पिगल ने छन्द प्रवक्ताओ मे यास्क का उल्लेख किया है।[६६] यदि यह महर्षि गार्ग्य की रचना होती तो उसमें पिगल का उल्लेख नही होता। इसके रचयिता ने पिगल से छन्दोज्ञान प्राप्ति के साथ निदानसूत्र का भी उल्लेख किया है, अत यह पतञ्जलि और पिगल के बाद की रचना है, जिससे स्पष्ट है कि इसका रचयिता कोई गार्ग्य गोत्रीय गार्ग्य

---

६१ यह छन्द आचार्य क्रौष्टुकि का माना जाता है, जिसका लक्षण पिंगल ने छन्द. सूत्र मे उनके नाम से दिया है। छन्द सूत्र ३/२९।

६२ यह छन्द आचार्य ताण्डी का माना जाता है। जिसका पिगल ने लक्षण दिया है। छन्द सूत्र-३/३६।

६२क-छन्द सूत्र ३/११ से ३/५४।

६२ख- इत्याह गार्ग्यो गार्ग्य पाण्डुलिपि बी०१और इत्याह भगवान् गार्ग्योगार्ग्य पाण्डुलिपि-बी०२।

ये दोनो पाण्डुलिपिया सरस्वती भवन सस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी में प्राप्त है।

६३ ब्राह्मणात्ताण्डिनश्चैव पिंगलाच्च महात्मन ॥ उपनिदानसूत्र-८/१।

६४ डा० मगलदेव, उपनिदानसूत्र-इण्ट्रोडक्शन, पृ० २।

६५ न सर्वाणि इति गार्ग्य। यास्क, निरुक्त-१/१२।

६६ उरोबृहती यास्कस्य। पिगल छन्दसूत्र-३/३०।

नामक विद्वान् है, जो महर्षि गार्ग्य से भिन्न हैं।[६७] अत इसे यहा पिगलीय छन्द सूत्र के पश्चात् स्थान दिया गया है। इसमे ६६ वैदिक छन्दो के लक्षण प्राप्त होते है-जिनमे उपनिदानकार द्वारा स्वतन्त्र रूप से लक्षित निम्नाकित दो छन्द है—

उपनिदानकार गार्ग्य के स्वतन्त्र लक्षित छन्द

१ स्वराड् गायत्री	(९ + ९)	= १८
२ विष्टारपक्ति	(८ + १२ + ८ + १२)	= ४० वर्ण

(६) अग्निपुराणम्

प्राचीन भारतीय साहित्य मे पुराणो का अपना विशिष्ट स्थान है। वे धर्म, दर्शन, राजनीति, भूगोल, इतिहास, कला इत्यादि समस्त ज्ञानो के आगार है। युग-युग की बहुविध ज्ञानराशि एकत्रित होकर पुञ्जीभूत रूप मे पुराणो मे उपलब्ध होती है।[६८] इस पुराण मे ३८३ अध्याय हैं और ११४५७ अनुष्टुप् श्लोक है। इसमे कोष, व्याकरण, साहित्य, छन्द, अलकार, ज्योतिष, आख्यानोपाख्यान इत्यादि नाना विषय सन्निविष्ट है। यह प्राचीन सामग्री का सार सकलन है।[६९] इसमें ३२८ वें अध्याय से ३३५वे अध्याय तक ८ अध्यायो मे छन्दोविषयक विवरण प्राप्त होता है, जिसका आधार पिगलोक्त छन्द सूत्र है, जिससे स्पष्ट है कि अग्निपुराण मे प्राप्त छन्द प्रकरण, जो आचार्य पिगल के छन्द सूत्र के आधार पर लिखा गया है, किसी परवर्ती विद्वान् की रचना है, जो अग्निपुराण मे समाविष्ट कर दी गई है।[७०] छन्दोविषयक अध्यायो मे से प्रथम तीन अध्याय जो छन्द सार के नाम से है, उनमे पिगलोक्त वैदिक छन्दों का विवरण है और शेष पाच अध्यायो मे लौकिक छन्दो का विवरण है। जो छन्दो-जाति, विषम अर्धसम, समवृत्त, प्रस्तार निरूपण नाम से उल्लिखित है। इसके छन्द प्रकरण मे १०० अनुष्टुप् श्लोक है किन्तु लक्षित छन्दो के उदाहरण प्राप्त नही होते।

श्रीराम शर्मा द्वारा सम्पादित अग्निपुराण[७१] के १६९ वें अध्याय से १७३ वे अध्याय तक पॉच अध्यायो में वैदिक तथा लौकिक छन्दों का विवरण प्राप्त होता है। इस सस्करण के छन्दोविवरण मे प्रथम दो अध्याय छन्द सार नाम से दिये गये हैं। जिनमे श्लोक सख्या ८ + २३ = ३१ हैं और शेष तीन अध्याय क्रमश छन्दोजाति निरूपण, विषमार्धसमनिरूपण और समवृत्त निरूपण नाम से हैं, जिनमे श्लोक सख्या क्रमश १८ + १६ + २५ = ६९ है। आचार्य बलदेव उपाध्याय द्वारा सम्पादित अग्निपुराण के प्रथम तीन अध्यायों की श्लोक सख्या क्रमश ३ + ५ + २२ = ३० है और शेष पाच अध्यायो की श्लोक सख्या क्रमश १९ + १० + ६ + ३० + ५ = ७० है। इन दोनों सस्करणों में प्रारम्भ से छन्दोजाति निरूपण के द्वितीय श्लोक तक वैदिक छन्दों का निरूपण और शेष भाग मे लौकिक छन्दो का निरूपण है। इन दोनों प्रतियो के छन्दोविवरण मे श्लोक सख्या तो बराबर है किन्तु अध्यायो में अन्तर है और कहीं-कही पाठभेद भी प्राप्त होता है। इसमे अग्निपुराणकार के स्वतत्र लक्षित वैदिक छन्द ४ है, शेष छन्द पतजलि, शौनक, भरत, पिगल आदि पूर्ववर्ती छन्द प्रवक्ताओं की रचनाओ मे लक्षित हो चुके है। अग्निपुराणकार के छन्द शास्त्र में स्वतत्र लक्षित ४ छन्द है—

१- वर्धमाना गायत्री	(६ + ८ + ८)	= २२[७२]

६७ डा० मगलदेव, उपनिदानसूत्र इन्ट्रोडक्शन, पृ० २।

६८ बलदेव उपाध्याय, अग्निपुराण, भूमिका, प० १।

६९ एस० के० डे, हिस्ट्री आफ सस्कृत पोइटिक्स, पार्टटू। पृष्ठ ५४।

७० छन्दो वक्ष्ये मूलजैस्तै पिगलोक्त यथाक्रमम्। अग्निपुराण-३२८/१।

७१ श्रीराम शर्मा आचार्य-अग्निपुराण, सस्कृति सस्थान, बरेली, १९६९।

७२ अग्निपुराण (श्रीराम शर्मा) - १७०/३ से १७०/७।

२- वर्धमाना गायत्री	(६ + ८ + ७)	= २१
३- परोष्णिक्	(८ + ८ + १२)	= २८
४- पदपक्ति	(५ + ४ + ६ + ६ + ६)	= २७

(७) जयदेवच्छन्द

जयदेवच्छन्द एक छन्दोविषयक रचना है। इसके रचयिता का नाम रचना के नाम से ही ज्ञात हो जाता है। जयदेव छन्द शास्त्रीय प्राचीन लेखक माने जाते है, जिनका परवर्ती कई ग्रन्थो में उल्लेख मिलता है। प्राकृत भाषा के छन्दोग्रन्थ स्वयम्भू छन्द के रचयिता (८०० ई०) यति के समर्थन मे जयदेव के नाम का उल्लेख करते है।[७३] स्वयम्भू ध्रुवधारावर्ष (७८०-७९४ ई०) के मत्री रयडा धनञ्जय के आश्रित कवि थे।[७४] छन्द सूत्र के प्रसिद्ध वृत्तिकार हलायुध (१००० ई०) ने अपनी वृत्ति मे दो वार जयदेव के सूत्रो को, उनके श्वेतपट उपनाम के साथ उद्धृत किया है।[७५] जयदेव एक जैन लेखक थे। अत जैनेतर लेखक उन्हे श्वेताम्बर जैन होने के कारण श्वेतपट विशेषण से अलकृत करते थे। वृत्तरत्नाकर के वृत्तिकार सुल्हण (१२४६ सवत्) ने अपनी वृत्ति मे उनके सूत्रो को उद्धृत करते हुए श्वेतपट जयदेव नाम से उनको उल्लेख किया है।[७६] इसके अतिरिक्त कन्नड छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ छन्दोऽम्बुधि मे उसके रचयिता नागवर्मा ने (९९० ई०) एक स्थल पर जयदेव का उल्लेख किया है।[७७] परवर्ती छन्द शास्त्र रचयिता त्रिविक्रम, जयकीर्ति, हेमचन्द्र, कविदर्पणकार, नारायण, रामचन्द्र बिबुध आदि ने भी[७८] अपनी-अपनी रचनाओ मे जयदेव का नाम अतिसम्मान के साथ लिया है, जिससे जयदेव का समय ७०० ई० के पूर्व ही निश्चित होता है।

जयदेव ने अपनी रचना छन्द सूत्र के आधार पर की। जयदेवच्छन्दस् मे भी आठ अध्याय है।[७९] प्रथम अध्याय मे गण-गुरुलघु यत्यादिविचार, द्वितीय तथा तृतीय अध्याय मे वैदिक छन्दो का विवेचन, चतुर्थ से सप्तमअध्याय तक लौकिक वृत्तो के लक्षण और अष्टमाध्याय मे छन्दो की प्रस्तारप्रक्रिया पर विचार किया गया है।

जयदेवच्छन्दस् पर हर्षटकृत विवृति प्राप्त होती है जिसमे जयेदेवच्दन्दस् के षष्ठ अध्याय मे ३९वें सूत्र तक और सप्तम अध्याय मे ३४वे सूत्र तक विवरण मिलता है।[८०] इसके अतिरिक्त दोनो

---

७३ जयदेव पिगला सक्कयमि दोच्चि अ जह समिच्छति।
मडव्वभरहकासव सेवत पमुहा न इच्छति॥ स्वयम्भूछन्द-१/७१, १/१४४।

७४ राहुल साकृत्यायन, हिन्दीकाव्यधारा-पृ० २२-२३।

७५ वान्तेग्वक्र इति प्रोक्त यैश्च श्वेतपटादिभि। अन्यदतोपि वितानम् श्वेतपटेन यदुक्तम्। दृष्टव्य-पिगलछन्द सूत्रम्, हलायुवृत्ति-१ ।१०,५ ।८।

७६ 'अन्यदतो हि वितानम् इति शूद्र श्वेतपटजयदेवेन यदुक्त भौगितिचित्रपदा ग इत्यनेन गतार्थत्वात्।' P २७,B, of ms No १२१ of BBRAS, Bombay

७७ दृष्टव्य-कुन्दनगर, बम्बई विश्वविद्यालय-पत्रिका, सितम्बर १९४७, पृ०९।

७८ त्रिविक्रमकृत केदारभट्टविरचित वृतरत्नाकर व्याख्या, द्रष्टव्य-पीटरसन की चतुर्थ रिपोर्ट-पृ० २७। जयकीर्तिकृत छन्दोनुशासन-८ ।१९, हेमचन्द्रकृत छन्दोनुशासन-वृत्तिभाग-३ ।५२ ।१ आदि।

७९ ह० दे० वेलणकर सम्मादित जयदाम मे जयदेवछन्द, पृ० १-४०, बम्बई१९४९।

८० दृष्टव्य-'जयदाम' मे प्रकाशित जयदेवच्छन्दोविवृति षष्ठ अध्याय की समाप्ति, पृ३१ और सप्तम अध्याय की समाप्ति, पृ० ३६।

अध्यायो मे निर्दिष्ट सूत्र सख्या से जो अधिक सूत्र मिलते है, वे क्रम भिन्न होने से प्रक्षिप्त है।[८१] अत हर्षटकृत विवृति मे निर्दिष्ट सूत्र सख्या ही मान्य है, किन्तु जयदेवच्छन्दस् का प्रक्षिप्त अश भी जयकीर्ति के छन्दोऽनुशासन मे लक्षित छन्दो से पूर्व का है, क्योकि जयकीर्ति ने मणिमाला छन्द का दूसरा नाम कही-कही अब्जविचित्रता नाम से भी सकेतित किया है।[८२] जो जयदेवच्छन्दस् की समस्त प्रतियो मे पुष्पविचित्रनाम से मिलता है।[८३] अत स्पष्ट है कि जयकीर्ति का मणिमाला जयदेव के क्रमभिन्न प्रक्षिप्ताश में वर्णित पुष्पविचित्रा ही छन्द है। जिससे हर्षटकृत विवृति मे निर्षिष्ट सूत्रो के अतिरिक्त सूत्र भी जयदेवच्छन्दस् की कृतियो मे मिलने से उसके रचयिता जयदेव ही माने जाते है।[८४] इनके द्वारा लक्षित वैदिक छन्दो मे स्वतत्र रूप से लक्षित निम्नाङ्कित १३ छन्द है, शेष पूर्वाचार्यो की रचनाओ मे लक्षित हो चुके है।

जयदेव के स्वतन्त्र लक्षित छन्द	**पादवर्ण**	**सख्या**
१- सतोबृहती	(८ + ८ + १० + १०)	= ३६
२- आर्षीपक्ति	(८ + १२ + १० + १०)	= ४०
३- आर्षीपक्ति	(१२ + १२ + १० + १०)	= ४४
४- आर्षीअक्षरपक्ति	(५ + ५ + १० + १०)	= ३०
५- आर्षीत्रिष्टुप्	(१२ + ८ + ८ + ८ + ८)	= ४४
६- पुरस्ताज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्	(८ + ११ + ११ + ११)	= ४१
७- मध्येज्योतिष्मती त्रिष्टुप्	(११ + ८ + ११ + ११)	= ४१
८- मध्येज्योतिष्मती त्रिष्टुप्	(११ + ११ + ८ + ११)	= ४१
९- उपरिष्टाज्जयोतिष्मती त्रिष्टुप्	(११ + ११ + ११ + ८)	= ४१
१०- आर्षी जगती	(१२ + १२ + ८ + ८ + ८)	= ४८
११- शकुमती	(५ + ६ + ६)	= १७
१२- ऋक्पिपीलकमध्या	(८ + ५ + ८)	= २१
१३- ऋग् यवमध्या	(८ + ९ + ८)	= २५[८५]

(८) वेंकटमाधवकृत छन्दोऽनुक्रमणी

छन्दोऽनुक्रमणी के रचयिता वेकटमाधव दक्षिणापथ के चोलदेश (आन्ध्र प्रात) के निवासी थे। इनके पिता का नामवेंकटाचार्य तथा पितामह का नाम माधव था। इनकी माता का नाम सुन्दरी और मातामह का नाम भवगोल था। यह गोत्र से कौशिक थे।[८६] इन्होने समस्त ऋग्वेद सहिता पर भाष्य लिखा है, और इस भाष्य के ही अन्तर्गत वैदिक छन्दो के विषय मे भी जो उल्लेख किया है, उसे छन्दोनुक्रमणी कहते हैं। केशव स्वामी (१३०० वि० पू०) ने अपने प्रसिद्ध कोष नानार्थार्णवसक्षेप मे

---

८१ षष्ठ अध्याय में ४० वें सूत्र तक सप्तम अध्याय मे ३५वे सूत्र में ३७ वे सूत्र तक क्रमभिन्न छन्दो का वर्णन है। द्रष्टव्य-पृ० ३६।

८२ जयकीर्तिकृत छन्दोऽनुशासन-२ ।१३८।

८३ जयदेवच्छन्दस्-६ ।४५।

८४ दृष्टव्य-जयदामन् में प्रकाशित जयदेवच्छन्दस्-६ ।४-४६ तथा ७ ।३५-३७।

८५ यवमध्या में मध्यम पाद बहुवर्णक होता है और शकुमती में मध्यम पाद न्यूनवर्णक होता है, और जिस छन्द का प्रथमपाद अन्य पादों से अधिकवर्णक हो तो उसे ककुम्मती कहते हैं। छन्दसूत्र ३ ।५७-५८, ५५-५६।

८६ ऋग्भाष्य, अनन्तशयन ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ७-८।

माधवाचार्यसूरि के नाम से उल्लेख किया है,[८७] जिससे ज्ञात होता है कि माधवाचार्यसूरि ने 'कोअप' (ऋग्वेद १।८।४।१६) ऋचा की व्याख्या मे गो शब्द का अर्थ अश्व दिया है, और वेकटमाधव के उक्त ऋचा के भाष्य मे भी यही अर्थ मिलता है। अत इस निर्देश से वेकटमाधव का समय वि० स० १३०० से पूर्व ही ठहरता है,[८८] किन्तु पण्डित साम्बशिव शास्त्री तो उनका समय १०५०-११५० ई० के मध्य मानते है।[८९]

इस ग्रन्थ मे वैदिक छन्दो का वर्णन है जिनमे प्रथम सप्तक के छन्द गायत्री से लेकर जगती तक ५८ छन्दोभेदो के लक्षण मिलते है। द्वितीय सप्तक के छन्दो का विवरण तो इसमे मिलता है किन्तु तृतीय सप्तक के छन्दो के नाम भी नही है अपितु प्रगाथो का वर्णन प्राप्त होता है। इनके द्वारा लक्षित छन्दो मे कोई भी स्वतत्र रूप से लक्षित छद प्राप्त नही होता। जिन छन्दो के लक्षण इन्होने दिये है, वे सब छन्द पतजलि, पिगल आदि पूर्वाचार्यो की रचनाओ मे लक्षित हो चुके है।

(९) वृतमुक्तावली

वृतमुक्तावली के रचयिता तैलगवशीय कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्ट है। इनका जन्मसवत् १७२५ (१६९९ ई०) और प्रयाणकाल सवत् १८०० (१७४४ ई०) के पश्चात् माना जाता है।[९०] इन्होने अपनी विद्वत्ता के कारण कई नरेशो से सम्मान प्राप्त किया, और कई ग्रन्थो की रचनाए की जिनमे बूदीपति बुधसिह के आदेश से ब्रजभाषा मे वृत्तचद्रिका और शृगाररसमाधुरी का, आम्बेरनरेश जयसिह की आज्ञा से ब्रजभाषा मे अलकार-कलानिधि का और सस्कृत मे वृतमुक्तावली तथा रामगीत का, ईश्वरसिह की प्रसन्नता के लिए ईश्वरविलास महाकाव्य का और माधवसिह के लिए पद्यमुक्तावली का, तथा भरतपुराधीश श्री सूर्यमल्ल की प्रेरणा से 'दुर्गाभक्तितरगिणी' का प्रणयन किया।[९१] यह सवाई जयसिह के सभाकवि थे, और सवाई जयसिह ने इन्हे कविकलानिधि की उपाधि से अलकृत किया था। इनकी सस्कृत मे ७ और ब्रजभाषा मे १३ रचनाओ का उल्लेख मिलता है,[९२] जिनमे से दो छन्दोविषयक रचनाए है- ब्रजभाषा मे वृत्त चन्द्रिका और सस्कृत मे वृतमुक्तावली।

वृत्तमुक्तावली मे तीन गुम्फ है। प्रथम गुम्फ मे २०५ वैदिक छन्दो का विवरण है और द्वितीय गुम्फ मे ५४ मात्रिक छन्दो का, जिसमे ब्रजभाषा हिन्दी के कई छदो का सस्कृतीकरण किया गया है, तथा तृतीय गुम्फ मे १६० सस्कृत वृत्तो का सोदाहरण निरूपण है जिनमे ३७ दण्डको के लक्षण है। इसमे द्वितीय और तृतीय गुम्फ के अन्तर्गत कुछ छन्द सस्कृत के नवीन छदो में गिने जा सकते है। २०५ लक्षित वैदिक छन्दो मे से इनके स्वतत्र रूप से लक्षित निम्नाकित चार छन्द है। शेष छन्दो के लक्षण पूर्वाचार्यो की रचनाओ मे प्राप्त होते है।

श्रीकृष्ण भट्ट द्वारा स्वतत्र लक्षित छन्द[९३]	**पादवर्ण**	**सख्या**
१- प्रतिष्ठागायत्री	(७ + ६ + ८)	= २१
२- न्यकुशिराउष्णिक्	(११ + १२ + ११ + १२)	= ४६
३- ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्	(११ + ८ + ८ + ८)	= ३५
४- ज्योतिष्मतीजगती	(११ + ८ + ८ + ८)	= ३६

---

८७ द्वयोस्त्वश्वे तथा प्राह स्कन्दस्वाम्यृक्षु भूरिश।
माधवाचार्यसूरिश्च को अद्येत्यृचि भाषते॥ नानार्थार्णव सदीप।

८८ बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और सस्कृति, पृ० ५२।

८९ स्कन्दस्वामिकृत ऋग्वेदभाष्य की भूमिका, पृ० ७।

९० श्रीकृष्णभट्ट कृत वृतमुक्तावली, प्रारम्भिक निवेदन, पृ० ६।

९१ वही, पृ० ४।

९२ वही, पृ० ५।

९३ वही, पृ० ६।

(२) लौकिक छन्द शास्त्र विषयक ग्रन्थो का सामान्य परिचय

१. नाट्यशास्त्रम्

नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि है। नाट्यशास्त्र को पचम वेद तथा भरत नाट्यम् भी कहते है। इसमे नाट्य की प्रधानता होने पर भी तदुपकारक अलकारशास्त्र सगीतशास्त्र, छन्द शास्त्र आदि शास्त्रो के मूल सिद्धान्तो का भी प्रतिपादन प्राप्त होता है, जिससे इसे भारतीय ललित कलाओ का विश्वकोष भी कह सकते है। इस ग्रन्थ मे ३६ अध्याय तथा ५००० श्लोक है, जो अधिकतर अनुष्टुप् छन्द मे है।

इसमे प्रयुक्त छन्दो मे वैदिक पद्धति का साम्य दृष्टिगत होता है, जिसके आधार पर इसे ५०० वर्ष ईसापूर्व के आदि मे रखा जा सकता है।[९४] वाचस्पति गैरोला इस ग्रन्थ की रचना को कालिदास से पूर्व मानते है।[९५] कालिदास ने विक्रमोर्वशीय मे भरतमुनि को नाट्यशास्त्र का आचार्य स्वीकृत कर उनके द्वारा स्वीकृत आठ रसो की चर्चा की है।[९६] श्री आई० शेखर के अनुसार नाट्यशास्त्र अपने मूलरूप मे २०० वर्ष ईसा पूर्व मे अस्तित्व मे आ चुका था।[९७] श्री कन्हैयालाल पोद्दार तो नाट्यशास्त्र का स्थिति काल वैदिक काल के पश्चात् तथा पुराणकाल से पूर्व मानते है।[९८] युधिष्ठिर मीमासक ने भरत को छन्द प्रवक्ताओ मे त्रेतायुगीन माण्डव्य और सैतव से परवर्ती तथा द्वापरयुगीन यास्क से पूर्ववर्ती माना है।[९९] डा० मदनमोहन घोष तथा म० म० रामकृष्ण कवि, जो नाट्यशास्त्र के अधिकारी विद्वान् तथा सम्पादक भी थे, नाट्यशास्त्र का ईसापूर्व पाचवी शती मे स्थिति काल स्वीकार करते है।[१००] अत विभिन्न विद्वानो के विचारो के निष्कर्ष से यह सिद्ध होता है कि नाट्यशास्त्र ईसापूर्व पाचवी शती या उससे भी पूर्व की रचना है। नाट्यशास्त्र मे भरतमुनि के शत पुत्रो मे पिगल का उल्लेख मिलता है।[१०१] अत नाट्यशास्त्र पिगल के छन्द सूत्र से पूर्व की रचना है।

नाट्यशास्त्र के १५ वे अध्याय मे छन्दो के प्रथमादि तीन सप्तको को क्रमश दिव्य, दिव्येतर और दिव्यमानुष सज्ञा से व्यवहृत किया गया है। इसमे एक से लेकर २६ अक्षरो तक के छदो का भेदोपभेद देते हुए निरूपण किया गया है और अन्त मे गुरु लघु तथा यति मात्रा आदि छन्द शास्त्र के पारिभाषिक शब्दो की व्याख्या दी गयी है। इसी क्रम मे १६वे अध्याय मे भी आगे बढकर वाचिकाभिनय मे उपयोगी वृत्तो का सोदाहरण निरूपण है और अन्त मे सम तथा विषम वृत्त बतलाकर आर्या के प्रभेदो का विवरण दिया गया है। इस अध्याय का नाम छन्दोविचिति है। इसके अतिरिक्त ३२ वे अध्याय मे भी छन्दो के सोदाहरण लक्षण मिलते है। दोनो अध्यायो मे लक्षित छन्दो का विवरण निम्नाकित है—

---

९४ मदन घोष, नाट्यशास्त्र-इन्ट्रोडक्शन, पृ० ६१-६२।

९५ वाचस्पति गैरोला, भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण, पृ० २९-३०।

९६ मुनिना भरतेन य प्रयोगो भवतीष्वष्टरसाश्रय प्रयुक्त। विक्रमोर्वशाय -२।१८॥

९७ आई० शेखर, सस्कृत ड्रामा, पृ० ४३, पादटिप्पणी-१।

९८ बाबूलाल शुक्ल, नाट्यशास्त्र, प्रस्तावना, पृ० ४०-४२।

९९ युधिष्ठिर मीमासक, वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० ५९।

१०० बाबूलाल शुक्ल, नाट्यशास्त्र, प्रस्तावना, पृ० ४३।

१०१ नाटयशास्त्र-१।२९।

	लक्षण	सन्दर्भ ग्रन्थ
१- उक्ता वृत्ति (एकाक्षरपाद के छन्द)		
१- ह्री	(ग)	ना० शा० -३२ ।४६-४७ ।
२- अत्युक्ता वृत्ति (द्व्यक्षरपाद)		
२- आदि	(गग)	ना० शा० ३२ ।४८-४९ ।
३- मध्यमावृति (त्र्यक्षरपाद)		
३- तटि	(र)	ना० शा० ३२ ।५०-५१ ।
४- धृति	(य)	ना० शा० ३२/५२-५३ ।
५- रजनी	(स)	ना० शा० ३२ ।५४-५५ ।
४- प्रतिष्ठावृनि (चतुरक्षरपाद)		
६- जया	(ज ग)	ना० शा० ३२ ।६१-६२ ।
७- पुष्प	(र ग)	ना० शा० ३२ ।५७-५८ ।
८- भ्रमरी	(स ग)	ना० शा० ३२ ।५९-६० ।
५- सुप्रतिष्ठा वृत्ति (पचाक्षरपाद)		
९- विद्युद्भ्रान्ता	(म ग ग)	ना० शा० ३२ ।६३-६४ ।
१०- भूतलतन्वी	(भ ग ग)	ना० शा० ३२ । ६५-६६ ।
११- कमलमुखी	(न ल ग)	ना० शा० ३२ ।६७-६८ ।
१२- वागुरु	(र ल ग)	ना० शा० ३२ ।६९-७० ।
१३- शिखा	(ज ग ग)	भरत ना० शा० ३२ ।७१-७२ ।
१४- घनपक्ति	(स ग ग)	ना० शा० ३२ ।७३-७४ ।
६- गायत्री (षडक्षरपाद)		
१५- तनुमध्या	(त य)	ना० शा० १६ ।२-३, ३ २ ।७६
१६- मकरकशीर्षा	(न य)	ना० शा० १६ ।४-५, ३२ ।८०
१७- मालिनी	(र म)	ना० शा० १६ ।६
नीलतोया	(र म)	ना० शा० ३२ ।९८
१८- मालिनी	(भ र)	ना० शा० ३२ ।७८
१९- विमला	(स य)	ना० शा० ३२ ।८२
२०- वीथी	(म स)	ना० शा० ३२ ।८४,
पक्ति	(म स)	ना० शा० ३२ ।९४
२१- गिरा	(न र)	ना० शा० ३२ ।८६
२२- जला	(त र)	ना० शा० ३२ ।८८
२३- रम्या	(म य)	ना० शा० ३२ ।९०
२४- विक्रान्ता	(भ म)	ना० शा० ३२ ।९२
२५- नलिनी	(स स)	ना० शा० ३२ ।९६
७- उष्णिक् (सप्ताक्षरपाद)		
२६- उद्धता	(र स ग)	ना० शा० १६ ।८
२७- भ्रमरमाला	(त स ग)	ना० शा० १६ ।१०, ३२ ।१०७
२८- द्रुतगति	(न न ग)	ना० शा० ३२ ।१०१ नामान्तर-चपला
२९- विमला	(स ज ग)	ना० शा० ३२ ।१०३

३०- कामिनी	(र ज ग)	ना० शा० ३२ ।१०५
३१- भोगवती	(भ भ ग)	ना० शा० ३२ ।१०९
३२- मधुकरी	(त न ग)	ना० शा० ३२ ।१११
३३- सुभद्रा	(ज र ग)	ना० शा० ३२ ।११३
विलम्बिता (नामान्तर)	(ज र ग)	ना० शा० ३२ ।१२३
३४- कुसुमवती	(न य ग)	ना० शा० ३२ ।११५
३५- मुदिता	(य स ग)	ना० शा० ३२ ।११७
३६- प्रकाशिता	(न र ग)	ना० शा० ३२ ।११९
३७- पचमगति	(भ ज ग)	ना० शा० ३२ ।१२५
३८- दीप्ता	(स र ग)	ना० शा० ३२ ।१२१
८- अनुष्टुप् (अष्टाक्षरपाद)		
३९- चित्रविलसित	(न ज ग ग)	ना० शा० १५ ।१६[१०२]
४०- विद्युल्लेखा	(म म ग ग)	ना० शा० १६ ।१६
माला	(म म ग ग)	ना० शा० ३२ ।१८१
४१- सिहलीला	(र ज ग ग)	ना० शा० १६ ।१२
४२- मतचेष्टित	(ज र ल ग)	ना० शा० १६ ।१४
४३- विमलजला	(स न ल ग)	ना० शा० ३२ ।१२८,
४४- ललितगति	(न ज ल ग)	ना० शा० ३२ ।१३०, १३१
४५- मही	(न स ल ग)	ना० शा० ३२ ।१३३
४६- मधुकरसदृशा	(न न ग ग)	ना० शा० ३२ ।१३५
४७- नदी	(भ न ल ग)	ना० शा० ३२ ।१३९
९- बृहती (नवाक्षरपाद)		
४८- मधुकरिका	(न न म)	ना० शा० १६-१८
४९- रुचिरा	(त भ य)	ना० शा० ३२ ।१४२
५०- कनकलता	(त न म)	ना० शा० ३२ ।२००
५१- शशिरेखा	(न ज य)	ना० शा० ३२ ।२०४
५२- शलभविचलिता	(न स य)	ना० शा० ३२ ।२०६
५३- मणिगण निकर	(न न स)	ना० शा० ३२ ।२०८
५४- सिहाक्रान्ता[१०३]	(भ म स)	ना० शा० ३२ ।२१०
५५- बुद्बुद	(न ज र)	ना० शा० ३२ ।२८४
५६- भाविनी	(र ज र)	ना० शा० ३२ ।३०४
१०-पक्ति (दशाक्षरपाद)		
५७- कुवलयमाला	(म न य ग)	ना० शा० १६ ।२०
५८- शिखिसारिणी	(र ज र ग)	ना० शा० १६ ।२२
५९- प्रमिता	(स ज स ग)	ना० शा० ३२ ।१४४

---

१०२ नाट्यशास्त्र (गायक सस्करण)

१०३ नाट्यशास्त्र, निर्णयसागर सस्करण, बम्बई ।

६०- वृतसमृद्धा[१०४]	(भ म न ग)	ना० शा० ३२ ।२०४
६१- सुरदयिता	(भ त न ग)	ना० शा० ३२ ।२१३
६२- कुसुमसमुदिता	(म न नग)	ना० शा० ३२ ।२१५
६३- वृत (प्रथिता)	(भ भ भ ग)	ना० शा० ३२ ।२१७
६४- उद्धता	(म स स ग)	ना० शा० ३२ ।२१९
६५- विपुलभुजा	(न ज य ग)	ना० शा० ३२ ।२२१
६६- पुष्पसमृद्धा	(भ म स ग)	ना० शा० ३२ ।२२७
११-त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)		
६७-दोधक	(भ भ भ ग ग)	ना० शा० १६-२४
६८- इन्द्रवज्रा	(त त ज ग ग)	ना० शा० १६ ।२८
६९- उपेन्द्रवज्रा	(ज त ज ग ग)	ना० शा० १६ ।३०
७०- स्वागता	(र न भ ग ग)	ना० शा० १६ ।३४
७१-शालिनी	(म त त ग ग)	ना० शा० १६ ।३६
७२- मोटक	(त ज ज ल ग)	ना० शा० १६ ।२६
७३-गतविशोका	(न स न ग ग)	ना० शा० ३२ ।१४६
७४- विश्लोक[१०५]	(त भ ज ल ग)	ना० शा० ३२ ।१४९
७५-रथोद्धता	(र न र ल ग)	ना० शा० १६ ।३२, ३२ ।३०७
७६-पीनश्रोणि	(म भ स ग ग)	ना० शा० ३२ ।२०२
७७-अभिहिता	(त न न ल ग)	ना० शा० ३२ ।२२३
७८-कमललताक्षी	(न य न ल ग)	ना० शा० ३२ ।२२५,
अतिचपला	(न य न ल ग)	ना० शा० ३२ ।२३१
७९-द्रुतपादगति	(न ज ज ल ग)	ना० शा० ३२ ।२२९
८०-विमला	(स म न ल ग)	ना० शा० ३२ ।२३३
८१- रुचिरा	(भ त न ग ग)	ना० शा० ३२ ।२३५
८२-अपरवक्त्र	(न न र ल ग)	ना० शा० ३२ ।२४३
८३-उद्यत	(त न र ल ग)	ना० शा० ३२ ।३०८
१२ जगती (द्वादशाक्षरपाद)		
८४-तोटक	(स स स स)	ना० शा० १६ ।३८, ३२ ।३२३
८५- कुमुदनिभा	(न य र य)	ना० शा० १६ ।४०
८६- चन्द्रलेखा	(म म य य)	ना० शा० १६ ।४२
८७-प्रमिताक्षरा	(स ज स स)	ना० शा० १६ ।४४, ३२/३१७
८८-वशस्थ	(ज त ज र)	ना० शा० १६ ।४६
८९- हरिणप्लुत	(न भ भ र)	ना० शा० १६ ।४८
९०- काममता	(न न र य)	ना० शा० १६ ।५०
९१- अप्रमेया	(य य य य)	ना० शा० १६ ।५२

---

१०४ नाट्यशास्त्र, निर्णयसागर सस्करण, बम्बई ।

१०५ वही ।

९२-पद्मिनी	(र र र र)	ना० शा० १६ ।५४
९३-पुट	(न न म य)	ना० शा० १६ ।५६
९४-गतविशोका	(न स न य)	ना० शा० ३२ ।१४६
९५- ललिता	(त भ ज र)	ना० शा० ३२ ।१४८-४९
९६-विक्रान्ता	(म म म स)	ना० शा० ३२ ।१६२
९७- कमललोचना[१०६]	(न न ज स)	ना० शा० ३२ ।२२५
९८-हसास्य	(ज र भ र)	ना० शा० ३२ ।३२१
१३ अतिजगती (त्रयोदशाक्षरपाद)		
९९-प्रभावती	(ज भ स ज ग)	ना० शा० १६ ।५८
१००-प्रहर्षिणी	(म न ज र ग)	ना० शा० १६ ।६०
१०१-मतमयूर	(म त य स ग)	ना० शा० १६ ।६२
१०२-विलम्बिता	(स ज स ज ग)	ना० शा० ३२ ।१५१
१०३-विद्युन्माला	(म म म न ग)	ना० शा० ३२ ।१६४
१०४-त्वरितगति	(न न न न ग)	ना० शा० ३२ ।२३७
१०५-मदकलिता	(न ज न स ग)	ना० शा० ३२ ।२३९
१०६-कमललोचना	(न न स स ग)	ना० शा० ३२ ।२४१
१०७-बुद्बुदक	(स न स त ग)	ना० शा० ३२ ।३१०
१४-शक्वरी (चतुर्दशाक्षरपाद)		
१०८-असम्बाधा	(म त न स ग ग)	ना० शा० १६ ।६६
१०९-शरभललित	(म भ न त ग ग)	ना० शा० १६ ।६८
११०-भूतलतन्वी	(म त य न ल ग)	ना० शा० ३२ ।१६६
१११-विभ्रमा	(न न स स ग ग)	ना० शा० ३२ ।१६८
१५-अतिशक्वरी (पचदशाक्षरपाद)		
११२-नान्दीमुखी	(न न म य य)	ना० शा० १६ ।७०
११३-भूतलतन्वी	(भ म स भ स)	ना० शा० ३२ ।१७०
१६-अष्टि (षोडशाक्षरपाद)		
११४-स्खलितविक्रमा	(स भ म स भ ग)	ना० शा० १६ ।३२,३२ ।१७२-७३
११५-वृषभगजविलसित	(भ र न न न ग)	ना० शा० १६ ।७२
११६-प्रवरललित	(य म न स र ग)	ना० शा० १६ ।७४
११७-उद्गता	(स ज स स ज ग)	ना० शा० ३२ ।३१२,१३
१७-अत्यष्टि (सप्तदशाक्षरपाद)		
११८-शिखरिणी	(य म न स भ ल ग)	ना० शा० १६ ।७६
११९-वृषभललित	(न म म र स ल ग)	ना० शा० १६ ।७८
१२०-श्रीधरा	(म भ न त त ग ग)	ना० शा० १६ ।८० (यह मन्दाक्रान्ता नाम से प्रसिद्ध है)
१२१-वशदल-वशपत्रपतित	(भ र न भ न ल ग)	ना० शा० १६ ।८२,३२ ।३१५

---

१०६ नाट्यशास्त्र, निर्णयसागर सस्करण, बम्बई ।

१२२-विलम्बितगति	(ज स ज स य ल ग)	ना० शा० १६ ।८४
१२३-रुचिरमुखी	(न ज ज य न ल ग)	ना० शा० ३२ ।१७५
१८-धृति (अष्टादशाक्षरपाद)		
१२४-चित्रलेखा	(म त न य य य)	ना० शा० १६ ।८६
१९-अतिधृति (ऊनविंशत्यक्षरपाद)		
१२५-शार्दूलविक्रीडित	(म स ज स त त ग)	ना० शा० १६ ।८८-८९
१२६-करकलता	(न न न न त न ग)	ना० शा० ३२ ।१७७
२०-कृति (विंशत्यक्षरपाद)		
१२७-सुवदना	(म र भ न य भ ल ग)	ना० शा० १६ ।९१-९२
२१-प्रकृति (एकविंशत्यक्षरपाद)		
१२८-स्रग्धरा	(म र भ न य य य)	ना० शा० १६ ।९४-९५
१२९-श्रेणि	(र ज त त न न स)	ना० शा० ३२ ।२९२
१३०-चपला	(न ज ज य न न स)	ना० शा० ३२ ।२९८
२२-आकृति (द्वाविंशत्यक्षरपाद)		
१३१-मद्रक	(भ र न र न र न ग)	ना० शा० १६ ।९७-९८
१३२-अश्वललित	(न ज भ ज भ ज भ ग)	ना० शा० १६ ।१००-१०१
१३३-क्रौञ्चा	(म त म न न न न ग)	ना० शा० ३२ ।३००
२३-विकृति (त्रयोविंशत्यक्षरपाद)		
१३४-पुष्पसमृद्धा	(भ म न भ न न न ग ग)	ना० शा० ३२ ।२९०
१३५-मत्ताक्रीडा	(म म त न न न न ल ग)	ना० शा० ३२ ।३०२
२४-सकृति (चतुर्विंशत्यक्षरपाद)		
१३६-मेघमाला	(न न र र र र र र)	ना० शा० १६ ।१०३,१०४
१३७-स्खलित	(भ भ भ त न न न स)	ना० शा० ३२ ।२८७-८८
१३८-सभ्रान्ता	(न य भ त न न न स)	ना० शा० ३२ ।२९४
२५-अभिकृति (पचविंशत्यक्षरपाद)		
१३९-क्रौञ्चपदा	(भ म स भ न न न न ग)	ना० शा० १६ ।१०६-१०७
२६-उत्कृति (षड्विंशत्यक्षरपाद)		
१४०-भुजगविजृम्भित	(म म त न न न र स ल ग)	ना० शा० १६ ।१०९ ।११०
१४१-वेगवती	(न ज न स भ न न न ल ग)	ना० शा० ३२ ।२९६ ।

अर्धसमवृत्त[१०७]

१४२-(८,८) पथयावृत्त	(स स ग ग,स स ल ग)	ना० शा० १६ ।१२०
१४३-(८,८) विपरीतपथ्या	(स स ल ग,स स ग ग)	ना० शा० १६ ।१२२
१४४-(१०,११) केतुमती	(स ज स ग, भ र न ग ग)	ना० शा० १६ ।१४०
१४५-(११,१२) अपरवक्त्र	(न न र ल ग,न ज ज र)	ना० शा० १६ ।१४२
१४६-(१२,१३) पुष्पिताग्रा	(न न र य,न ज ज र ग)	ना० शा० १६ ।१४४

१०७ अर्धसमवृत्तों में क्रमाक के बाद ( ) मैं पाद वर्ण सख्या और नाम के बाद ( ) मे प्रथम तथा तृतीय पाद के और द्वितीय तथा चतुर्थपाद के लाक्षणिक चिह्न दिये गये है ।

विषमवृत्त

१४७- (८,८,८,८,८) विपुलावक्त्र (द्वितीय तथा चतुर्थ पाद मे सप्तम वर्ण लघु शेष कोई भी वर्ण) ना० शा० १६ ।१२६ का पूर्वार्द्ध

१४८-(८,८,८,८) विपुलानुष्टुप् (प्रथम तथा तृतीय पाद मे चतुर्थ वर्ण के बाद तीन वर्ण लघु, शेष कोई भी वर्ण) ना० शा० १६ ।१२४-२५

१४९- (८,८,८,८) वक्त्रानुष्टुप् (कोई भी वर्ण-४ + ल म चारो पादो मे) ना० शा० १६ ।१३१

मात्रावृत्त (द्विपदी)

१५०-आर्या (पूर्वार्द्ध मे ३० और उत्तरार्द्ध मे २७ मात्रा) ना० शा० १६ ।१५२-१५८,१६३

१५१-पथ्या आर्या (प्रति अर्ध भाग मे १२ मात्रा पर यति) ना० शा० १६ ।१५९

१५२-विपुला आर्या (प्रत्यर्धभाग मे १२ मात्रा के बाद कही भी यथेच्छयति) ना० शा० १६ ।१५९

१५३-चपला आर्या (प्रत्यर्धभाग मे द्वितीय तथा चतुर्थ चतुर्मात्रागण जगणात्मक हो) ना० शा० १६ ।१६१

१५४-मुखचपला आर्या (आर्या के पूर्वार्द्ध मे द्वितीय तथा चतुर्थ चतुर्मात्रागण जगणात्मक हो) ना० शा० १६ ।१६२

१५५-जघनचपलाआर्या (आर्या के उत्तरार्द्ध मे द्वितीय तथा चतुर्थ चतुर्मात्रागण जगणात्मकहो) ना० शा० १६ ।१६२

१५६-आर्यागीति (आर्या के प्रत्यर्धभाग मे ८ चतुर्मात्रागण हो, अर्थात् ३२ मात्रा) ना० शा० १६ ।१६७

मात्रावृत्त (चतुष्पदी)

१५७-वानवासिका (१६,१६,१६,१६ मात्राए, जिनमे नवमी तथा द्वादशी मात्रा लघु) ना० शा० १६ ।१४६

१५८-केतुमती (१४,१६,१४,१६ मात्राएँ) ा० शा० ३२ ।३१९[१०८]

---

१०८ भरत द्वारा लक्षित इन समस्त छन्दो के लिए दृष्टव्य - नाट्यशास्त्र, हरिदास सस्कृत ग्रन्थमाला, न० ६०, बनारस, १९२९

(२) छन्द सूत्रम्

छन्द सूत्र के रचयिता आचार्य पिगल हैं। इसमे वैदिक तथा लौकिक छन्दों का विवरण प्राप्त होता है। इसमें आठ अध्याय है, जिनमे ३२९ सूत्र है। प्रारम्भ से चतुर्थ अध्याय के सातवे सूत्र तक ११९ वैदिक छन्दो का विवरण मिलता है, जिसे लौकिक छन्द शास्त्र विषयक ग्रन्थो के सामान्य परिचय मे दिया जा चुका है। चतुर्थ अध्याय के ८ वे सूत्र से ग्रन्थ की समाप्ति तक लौकिक छन्दो का विवरण प्राप्त होता है, जिसमे गण, मात्रिक, वर्णिक तथा गाथा छन्दो के विभाजन के साथ १६२ लौकिक छन्दो के लक्षण मिलते है किन्तु उनके उदाहरण प्राप्त नही होते। १६२ लौकिक छदो मे से निम्नाकित छन्द पिगल द्वारा स्वतत्र रूप से लक्षित किये गये है। शेष छन्दो के लक्षण भरत के नाट्यशास्त्र मे प्राप्त होते है।

पिगल के स्वतत्र लक्षित छन्द[१०९]

३- मध्यमा (त्र्यक्षरपाद) ४- **प्रतिष्ठा** (चतुरक्षरपाद)

१- स्त्री (म) छन्दसूत्र- ६ ।४ २- सुमति (म ग) छन्दसूत्र ६ ।५

७- उष्णिक् (सप्ताक्षर पाद)

३- कुमारललिता (ज स ग) छन्द शास्त्र-[११०] ६ ।३

८-अनुष्टुप् (अष्टाक्षरपाद)

४- माणवक	(भ त ल ग)	छन्दसूत्र[१११] ६ ।४,	छन्द शास्त्र ६ ।९
५- चित्रपदा	(भ भ ग ग)	छन्दसूत्र ६ ।५	छन्द शास्त्र ६ ।१०
६- हसरुत	(म न ग ग)	छन्द सूत्र ६ ।७	छन्द शास्त्र ६ ।१२
७- समानी[११२]	(र ज ग ल)	छन्दसूत्र ५ ।६	छन्द शास्त्र ५ ।१

---

१०९ यहा पर पहले क्रम सख्या, छन्द का नाम () कोष्ठक मे छन्द का लाक्षणिक चिह्न (ग से गुरु, ल से लघु और अष्ट गणों में र से रगण, य से यगण, स से सगण, म से मगण, त से तगण, ज से जगण भ से भगण और न से नगण तथा ग्रन्थ का नाम और उसके अध्याय के साथ सूत्र या पद्य का सकेत किया गया है। काल क्रम के अनुसार ग्रन्थकार का पहले उल्लेख किया गया है जिसने उस छन्द का पहले लक्षण किया है किन्तु परवर्ती रचनाओ मे वही छन्द उसी नाम से अथवा नामान्तर से उसी लाक्षणिक चिह्न के साथ यदि प्राप्त होता है तो उसका लक्षण प्राचीन लक्षणकार का ही माना जाता है। जैसे-भरत का ध्रुवागत ह्री छन्द, पिगल का श्री (छद सूत्र ६ ।२) है, किन्तु यह पिगल का स्वतत्र लक्षित छन्द न होकर भरतमुनि का ही लक्षित छन्द है जिसे जनाश्रय ने श्री, जयकीर्ति ने श्री, विरहाक ने गो कविदर्पणकार ने गी-नामान्तरो से स्मृत किया है किन्तु उसका प्रथम लक्षणकार वही है, जिसका यहा कालक्रम के साथ उल्लेख किया गया है।

११० दृष्टव्य- काव्यमाला, (९१, तृतीय सस्करण, बम्बई-१९३८।

१११ अखिलानन्द शर्मकृत वैदिक भाष्य सहित, छन्द सूत्र, बदायू, मेरठ, १९०९।

११२ समानी और प्रमाणी छन्दों के लक्षण आचार्य पिगल ने (छन्द सूत्र ५/६ और ७) मे दिये है जो भरत की लघु गुरुवर्णसूचक पद्धति से किये गये हैं, जबकि उन दोनों के लक्षण उनके द्वारा स्वीकृत अष्टगणात्मक पद्धति से भी किये जा सकते थे, 'जैसे समानी (र ज ग ल) और प्रमाणी (जर ल ग) अत स्पष्ट है कि पिंगल द्वारा भरत की वह लक्षणपद्धति भी आदृत थी किन्तु पिगल ने उसमें सुधार किया और उससे अष्टगणात्मक पद्धति का विकास किया, जिसे कालिदास, जनाश्रय आदि कुछ लक्षणकारो के अतिरिक्त अधिकतर सबने अपनाया।

९- बृहती (नवाक्षरपाद)

८- हलमुखी	(र न स)	छन्दसूत्र ६ ।८,	छन्द शास्त्र ६ ।१४
१०- पक्ति (दशाक्षरपाद)			
९- शुद्धविराट्	(म स ज ग)	छन्दसूत्र ६ ।९,	छन्द शास्त्र ६ ।१५
१०- मत्ता	(म भ स ग)	छन्द सूत्र ६ ।१३	छन्द शास्त्र ६ ।१९
११- उपस्थिता	(त ज ज ग)	छन्द सूत्र ६ ।१४	छन्द शास्त्र ६ ।२०
११-त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)			
१२- वातोर्मि	(म भ त ग ग)	छन्द सूत्र ६ ।२०,	छन्द शास्त्र ६ ।२६
१३- भ्रमरविलसित	(म भ न ल ग)	छन्दसूत्र ६ ।२१	छन्द शास्त्र ६ ।२७
१४- वृन्ता	(न न स ग ग)	छन्दसूत्र ६ ।२४,	छन्द शास्त्र ६ ।३०
१५- श्येनी	(र ज र ल ग)	छन्दसूत्र ६ ।२५,	छन्द शास्त्र ६ ।३१
१६- विलासिनी	(ज र ज ग ग)	छन्द सूत्र ६ ।२६,	छन्द शास्त्र ६ ।३२
१२- जगती (द्वादशाक्षरपाद)			
१७- इन्द्रवशा	(त त ज र)	छन्द सूत्र ६ ।२९,	छन्द शास्त्र ६ ।३५
१८- जलोद्धतगति	(ज स ज स)	छन्द सूत्र ६ ।३३,	छन्द शास्त्र ६ ।३९
१९- तत	(न न म र)	छन्द सूत्र ६ ।३४,	छन्द शास्त्र ६ ।४०
२०- कुसुमविचित्रा	(न य न य)	छन्द सूत्र ६ ।३५,	छन्द शास्त्र ६ ।४१
२१- चचलाक्षी	(न न र र)	छन्द सूत्र ६ ।३६,	छन्द शास्त्र ६ ।४२
गौरी	(न न र र)	छन्दसूत्र ८ ।५,	छन्द शास्त्र ८ ।५
२२- कान्तोत्पीडा	(भ म स म)	छन्द सूत्र ६ ।४०,	छन्द शास्त्र ६ ।४६
२३- वाहिनी	(त य म य)	छन्द सूत्र ६ ।४२,	छन्द शास्त्र ६ ।४८
२४- नवमालिनी	(न ज भ य)	छन्दसूत्र ६ ।४३,	छन्द शास्त्र ६ ।४९
२५- बरतनु	(न ज ज र)	छन्द सूत्र ८ ।३,	छन्द शास्त्र ८ ।३
२६- जलधरमाला	(म भ स म)	छन्दसूत्र ८ ।४,	छन्द शास्त्र ८ ।४
१३- अतिजगती (त्रयोदशाक्षरपाद)			
२७- गौरी	(न न न स ग)	छन्दसूत्र ७ ।४,	छन्द शास्त्र ७ ।४
२८- कुटिलगति	(नन त त ग)	छन्दसूत्र ८ ।८,	छन्द शास्त्र ८ ।८
१४- शक्वरी (चतुर्दशाक्षरपाद)			
२९- अपराजिता	(न न र स ल ग)	छन्दसूत्र ७ ।६	छद शास्त्र ७ ।६
३०- प्रहरणकलिता	(न न भ न ल ग)	छन्दसूत्र ७ ।७	छन्द शास्त्र ७ ।७
३१- वरसुन्दरी	(भ ज स न ग ग)	छन्दसूत्र ८ ।९	छन्द शास्त्र ८ ।९
३२- कुटिला	(म भ न य ग ग)	छन्दसूत्र ८ ।१०	छन्द शास्त्र ८ ।१०
१५- अतिशक्वरी (पचदशाक्षरपाद)			
३३- चन्द्रावर्ता	(न न न न स)	छन्दसूत्र ७ ।११,	छन्द शास्त्र[११३] ७ ।१२

---

११३ पिगल ने चन्द्रावर्ता छन्द के नामान्तर माला में षष्ठाक्षर पर और मणिगुण निकर मे अष्टामाक्षर पर यति का निर्देश किया है (छन्द सूत्र ७/१२,१३ और १३,१४) जयकीर्ति ने इसी छन्द के नामान्तर रुचिरा में ४,४ पर यति मानी है (छन्दोनुशासन २/१८७)। दुखभजन ने इसमें दशमाक्षर पर यति से मणिनिकर और ५,५,५ पर यति से शरभ छन्द माने हैं। (वाग्वल्लभ-(१५-३९) और यतिरहित छद को शशिकला कहा है।

१६- अष्टि (षोडशाक्षरपाद)			
३४- गीत्यार्या	(न न न न न ल)	छन्दसूत्र ४ ।४८,	छद शास्त्र ४ ।४९
३५- शैलशिखा	(भ र न भ भ ग)	छन्दसूत्र ८ ।११,	छद शास्त्र ८ ।११
३६- वरयुवति	(भ र य न न ग)	छन्दसूत्र ८ ।१२,	छद शास्त्र ८ ।१२
१७- अत्यष्टि (सप्तदशाक्षरपाद)			
३७- अतिशायिनी	(स स ज भ ज ग ग)	छन्दसूत्र,८ ।१३,	छंद शास्त्र ८ ।१३
३८- अवितथ	(न ज भ ज ज ल ग)	छन्दसूत्र ८ ।१४,	छद शास्त्र ८ ।१४
१८- धृति (अष्टादशाक्षरपाद)			
३९- विबुधप्रिया	(र स ज ज भ र)	छदसूत्र तथा	छद शास्त्र-८ ।१६
४०- नाराचक	(न न र र र र)	छन्दसूत्र -८ ।१७	
१९- अतिधृति (ऊनविंशत्यक्षरपाद)			
४१- विस्मिता	(य म न स र र ग)	छन्दसूत्र तथा	छन्द शास्त्र ९ ।१८
२०- कृति (विंशत्यक्षरपाद)			
४२- वृत्त	(र ज र ज र ज ग ल)	छदसूत्र तथा	छद शास्त्र[११४]-७ ।२४,२५
२१- प्रकृति (त्रयोविंशत्यक्षरपाद)			
४३- शशिवदना	(न ज भ ज ज ज र)	छदसूत्र तथा	छन्द शास्त्र ८ ।१९
२३- विकृति (त्रयोविंशत्यक्षरपाद)			
४४- अश्वललित	(न ज भ ज भ ज भ ल ग)	छदसूत्र तथा	छन्द शास्त्र-७ ।२७-२८
२४- सकृति (चतुर्विंशत्यक्षरपाद)			
४५- तन्वी	(भ त न स भ भ न य)	छदसूत्र तथा	छन्द शास्त्र-७ ।२९-३०
२६- उत्कृति (षड्विंशत्यक्षरपाद)			
४६- अपवाह	(म न न न न न न स ग ग)	छन्दसूत्र तथा	छन्द शास्त्र ७ ।३२-३३
दण्डक			
४७- चण्डवृष्टिप्रपात[११५]	(न न र र र र र र र)	छन्दसूत्र-७ ।३६ ।	
४८- प्रचित	(न न र र र र र र र र)	छदसूत्र ७ ।३७ ।	

अर्धसमवृत	**लक्षण**	**सन्दर्भ ग्रन्थ**
४९- (११,११) उपचित्रक	(स स स ल ग, भ भ भ ग ग)	छन्दसूत्र-५ ।३२
५०- (११,१२) द्रुतमध्या	(भ भ भ ग ग, न ज ज य)	छन्द सूत्र- ५ ।३३
५१- (१०,११) वेगवती[११६]	(स स स ग, भ भ भ ग ग)	छन्दसूत्र ५ ।३४

---

११४ पिगल ने वृत्त छन्द का लक्षण भरत की गुरुलघुवर्णनिर्देशपद्धति में किया है (ग्लति वृत्तम्, छन्द सूत्र ७/२५) जबकि उनके द्वारा स्वीकृत बीजगणितात्मक पद्धति में भी यह किया जा सकता था, जैसे-(र ज र ज र ज ग ल)। अत उन्होने भरत की पद्धति को भी मान्यता दी है।

११५ यह दण्डक ऋषि माण्डव्य का माना जाता है जिसका लक्षण पिगल ने छन्द सूत्र में दिया है। (छन्द सूत्र ७/३६)। भरत ने २६ अक्षरपाद वाले वृत्त से अधिक अक्षरपाद वाले वृत्तों को मालावृत्त कहा है। (नाट्यशास्त्र १६/११२)। किन्तु पिगल ने उन्हें दण्डक कहा है (छन्द सूत्र ७/३५), बाद में ये दण्डक के नाम से ही प्रसिद्ध हुए।

११६ अर्धसमवृतों में क्रमाक के बाद कोष्ठक में पाद वर्ण सख्या और नाम के बाद कोष्ठक में प्रथम तथा तृतीय पाद के और द्वितीय तथा चतुर्थ पाद के लाक्षणिक चिह्न दिये गये हैं।

५२- (१०,११) भद्रविराट्	(त ज र ग, भ स ज ग ग)	छन्दसूत्र- ५ ।३५
५३- (११,११) आख्यानकी	(त त ज ग ग, ज त ज ग ग)	छन्दसूत्र-५ ।३७
५४- (११,११) विपरीताख्यानकी	(ज त ज ग ग, त त ज ग ग)	छन्दसूत्र- ५ ।३८
५५- (११,१२) हरिणप्लुता	(स स स ल ग, न भ भ र)	छन्दसूत्र-५ ।३९
५६- (१२,१३) यवमती	(र ज र ज, ज र ज र ग)	छन्दसूत्र-५ ।४२
५७- उपजाति	(त त ज ग ग, ज त ज ग ग)	छन्द सूत्र-६ ।२३

विषमवृत्त

५८- (८,८,८,८) वक्त्रानुष्टुप् (कोई भी वर्ण च + य + कोई भी वर्ण-१) छदसूत्र ५ ।१३

५९- (८,८,८,८) पथ्यावक्त्र (कोई भी वर्ण ४ + ज + कोई भी वर्ण-१) द्वितीय तथा चतुर्थ पाद मे छन्दसूत्र-५ ।१४

६०- (८,८,८,८) विपरीतपथ्या (कोई भी वर्ण ४ + ज + कोई भी वर्ण १-प्रथम तथा तृतीय पाद मे) छन्दसूत्र-५/१५

६१- (८,८,८,८) चपलावक्त्र (प्रथम-तृतीय पाद मे ४ वर्ण + न + १ वर्ण द्वितीय -चतुर्थ पाद मे ४ वर्ण + च + १ वर्ण) छद सूत्र-५ ।१६

६२- (८,८,८,८) भ-विपुला (प्रथम-तृतीय पाद मे ४ वर्ण + भ + १ वर्ण द्वितीय चतुर्थ पाद मे सप्तम-ल) छदसूत्र-५ ।१९

६३- (८,८,८,८) र-विपुला (प्रथम तृतीय पाद मे ४ वर्ण + र + १ वर्ण द्वितीय चतुर्थ पाद मे सप्तम ल) छदसूत्र-५ ।१९

६४- (८,८,८,८) न-विपुला (प्रथम, तृतीय पाद मे ४ वर्ण + न + १ वर्ण द्वितीय चतुर्थ पाद मे सप्तम-ल) छदसूत्र-५ ।१९

६५- (८,८,८,८) त-विपुला (प्रथम-तृतीय पाद मे चार वर्ण + त + १ वर्ण, द्वितीय चतुर्थ पाद मे सप्तम-ल) छद सूत्र-५ ।१९

६६- (८,१२,१६,२०) पदचतुरूर्ध्व (आनुष्टुभ पाद से प्रतिपाद मेचतुरक्षर वृद्धि) छन्दसूत्र-५ ।२०

६७- (८,१२,१६,२०) आपीड (६ ल + २ ग, १० ल + २ ग, १४ ल + २ ग, १८ ल + २ ग) छद सूत्र- ५ ।२१

६८- (८,१२,१६,२०) प्रत्यापीड (२ ग + ६ ल, २ ग + १० ल, २ ग + १४ ल, २ ग + १८ ल) छदसूत्र-५ ।२२

६९- (८,१२,१६,२०) प्रत्यापीड (२ग + ४ल + २ ग, २ग + ८ ल + २ग, २ग + १२ल + २ ग, २ग + १६ ल + २ग) छन्दसूत्र ५ ।२३ ।

७०- (१२,८,१६,२०) मञ्जरी (द्वितीय आनुष्टुभपाद-यथेच्छ कोई भी वर्ण) छदसूत्र-५ ।२४

७१- (१२,१६,८,२०) लवली (तृतीयआनुष्टुभपाद-यथेच्छ कोई भी वर्ण) छदसूत्र-५ ।२४

७२- (१२,१६,२०,८) अमृतधारा (चतुर्थ आनुष्टुभपाद-यथेच्छ कोई भी वर्ण) छदसूत्र-५ ।२४

७३- (१०,१०,११,१३) उद्गता (सजसल, नसजग, भनजलग, सजसजग) छदसूत्र-५ ।२५

७४- (१०,१०,१०,१३) सौरभक (स जसग, न सजग, रनभग, सजसजग) छदसूत्र-५ ।२६

७५- (१०,१०,१२,१३) ललित (सजसल, नसजग, ननस, सजसजग) छदसूत्र-५ ।२७

७६- (१४,१३,९,१५) उपस्थितप्रचुपित (मसजभगग, सनजरग, ननस, नननजय) छदसूत्र-५ ।२८

७७- (१४,१३,१८,१५) वर्धमान (भसजभगग, सनजरग, सनसननस, नननजय) छदसूत्र-५ ।२९

७८- (१४,१३,९,१५) शुद्धविराडृषभ (मसजभगग, सनजरग, तजर, नननजय) छद सूत्र-५ ।३०

७९- (११,११,११,११) उपजाति (ततजगग, ततजगग, जतजगग, जतजगग) छद-सूत्र-६ ।१७,२३

८०- गाथा- (अनुक्त छन्द) छद सूत्र-८ ।१

मात्रावृत्त द्विपदी

८१- गीति (आर्या के पूर्वार्द्धवत् उत्तरार्द्ध भी हो, अर्थात् ३०,३० मात्रा) छद सूत्र ४ ।२८,२९

८२- उपगीति (आर्या का पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्धवत् हो, अर्थात् २७,२७ मात्रा) छद सूत्र-४ ।२९,३०

८३- उद्गीति (पूर्वार्द्ध मे २७ और उत्तरार्द्ध मे ३० मात्रा) छद सूत्र- ४ ।३०,३१

८४- गीत्यार्या (३२ ल + ३२ ल) १६ ल पर यति छद सूत्र- ४ ।४९

८५- ज्योति शिखा (३२ल + १६ ग) छद सूत्र-४ ।५०,५१

८६- सौम्याशिखा (१६ ग + ३२ ल) छद-सूत्र-४ ।५०,५२

८७- चूलिका (पूर्वार्द्ध में २७ ल + ग और उत्तरार्द्ध मे २९ ल + ग) छद-सूत्र-४ ।५३

मात्रावृत (चतुष्पदी)

८८ वैतालीय (६ + रलग, ८ + र लग, ६ + रलग, ८ + रलग, १४, १६, १४, १६ मात्राए) छद सूत्र - ४ ।३२,३३

८९ औपच्छन्दसक (६ + रय, ८ + रय, ६ + रय, + ८ + रय, १६, १८, १६, १८ मात्राए) छद सूत्र-४ ।३३ ।३४

९० आपातलिका (१४, १६, १४, १६ मात्राए, जिनमें प्रथम तृनीयपाद में ६ + भगग और द्वितीय चतुर्थ में ८ + भगग) छदसूत्र-४ ।३४,३५

९१ प्राच्यवृति (१४, १६, १४, १६ मात्राए, जिनमे ६ + रलग, ३ + ग + ३ + रलग, ६ + रलग, ३ + ग + ३ + रलग) छद सूत्र-४ ।३७,३८

९२ उदीच्यवृर्ति (१४, १६, १४, १६ मात्राए, जिनमें ल ग + ३ + रलग, ८ + रलग, १,३,२,४पादो मे) छद सूत्र-४ ।३८,३९

९३ प्रवृतक (१४, १६, १४, १६ मात्राए जिनमें लग-३ + रलग, ३ + ग + ३ + रलग, १,३,२,४ पादों में) छद-सूत्र-४ ।३९,४०

९४ चारुहासिनी (६ + रलग, ६ + रय, ६ + रय, ६ + भगग, १४, १६, १६, १४ मात्राए) छद सूत्र-४ ।४०,४१

९५ अपरान्तिका (६ + रलग, ६ + भगग, ६ + भगग, ६ + रलग, १४, १४, १४, १४ मात्राए), छद-सूत्र-४ ।४१,४२

९६ मात्रासमक (प्रत्येकपाद में १६ मात्राए जिनमे नवम लघु और अतिम गुरु), छद-सूत्र-४ ।४२,४३

९७ विश्लोक (प्रत्येक पाद मे १६ मात्राए, जिनमे पचमी और अष्टमी मात्रा लघु तथा अन्त मे गुरु) छद सूत्र-४ ।४४,४५

९८ चित्रा (प्रत्येक पाद मे १६ मात्राए, जिनमे पचमी, अष्टमी, नवमी मात्रा लघु और अतिम गुरु) छद-सूत्र - ४ ।४५ ।४६

९९ उपचित्रा (प्रत्येकपाद मे १६ मात्राए, जिनमे नवमी, दशमी मात्रा के स्थान पर गुरु और अन्त में गुरु) छद-सूत्र - ४ ।४६ ।४७

१०० पादाकुलक (मात्रासमक से उपचित्रा पर्यन्त छन्दों के पादो से यथेच्छ पाद रचनाहो) छद सूत्र - ४ ।४७ ।४८

१०१ शिखा (२८ ल + ग, ३० ल + ग, २८ल + ग, ३० ल + ग, ३०, ३२, ३०, ३२ मात्राए), छदसूत्र-५ ।४३

१०२ खञ्जा (३० ल + ग, २८ल + ग, ३० ल + ग, २८ल + ग, अर्थात् ३२, ३०, ३२, ३० मात्राए) छद सूत्र-५ ।४४

महर्षि सैतव द्वारा लक्षित छन्द

१०३-उद्धर्षिणी (तभजजगग) छन्दसूत्र ७ ।१०

सैतव के उद्धर्षिणी छद को भरत ने वसन्ततिलका कहा है।[११७] पिगल ने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा स्वीकृत उसके नामान्तरों का भी उल्लेख किया है। जिसमे काश्यप ने इसे सिहोन्नता और शाकल्य ने मधुमाधवी कहा है,[११८] किन्तु पिगल ने इसे वसन्ततिलका के नाम से पुकारा।[११९] कवि सुन्दर ने इसे कर्णोत्पल और भुजगाधिप ने शौभावती नाम दिया,[१२०] किन्तु यह वसन्ततिलका के नाम से ही प्रसिद्ध है।

(३) अग्निपुराणम्

अग्निपुराण का लौकिक छन्द शास्त्रविषयक ग्रन्थो के सामान्य परिचय मे विवरण दिया जा चुका है। इसके दो सस्करण सम्प्रति उपलब्ध है। जिनमे से श्रीराम शर्मा द्वारा सम्पादित अग्निपुराण के अध्याय १७१ से १७३ तक और आचार्य बलददेव उपाध्याय द्वारा सम्पादित अग्निपुराण के अध्याय ३३१ से ३३५ तक लौकिक छन्दो का विवरण मिलता है। इसमे अग्निपुराणकार के स्वतत्र लक्षित छद ३३ है। शेष छन्द भरत और पिगल पूर्ववर्ती छन्दप्रवक्ताओ की रचनाओं मे लक्षित हो चुके है। अत अग्निपुराणकार का लौकिक छन्द शास्त्र मे स्वतत्र लक्षित छन्दो के रूप मे निम्नाकित योगदान है—

समवृत्त

अनुष्टुप् (अष्टाक्षरपाद)	**लक्षण**	**सन्दर्भ ग्रन्थ**
१ चित्रपदा	(त त ग ग)	अग्निपुराण[१२१] १७३ ।१, ३३४ ।१
२ विद्युन्माला	(र त ल ग)	अग्निपुराण १७३ ।२
बृहती (नवाक्षरपाद)		
३ कुमारललिता	(य य स)	अग्निपुराण १७३ ।१, ३३४ ।१
४ विद्युन्माला	(म म म)	अग्निपुराण ३३४ ।२
पक्ति (दशाक्षरपाद)		
५ शुद्धविराड्	(स म ज ग)	अग्निपुराण १७३ ।३
६ उपरिस्थिता	(भ ज त ग)	अग्निपुराण १७३ ।४, ३३४ ।४
७ विलसिता	(न भ न ल)	अग्निपुराण १७३ ।७, ३३४ ।७
त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)		
८ शालिनी	(म त भ ग ग)	अग्निपुराण-१७३ ।६, ३३४ ।६

११७ नाट्यशास्त्र-१६/६४।

११८ छन्द सूत्र-७/९, ११।

११९ वही ७/८।

१२० जगदामन में प्रकाशित वृत्तरत्नाकर-३/७५/३,४।

१२१ श्रीराम शर्मा द्वारा सपादित-अग्निपुराण-१७१-१७३, सस्कृति सस्थान, बरेली, १९५७।
आचार्य बलदेव उपाध्याय द्वारा सपादित, अग्निपुराण-३३१-३३५, वाराणसी।

जगती (द्वादशाक्षरपाद)

९ प्रणव	(न त य म)	अग्निपुराण १७३ ।४ ,३३४ ।४
१० वृत्त	(न न स म)	अग्निपुराण १७३ ।८ ,३३४ ।८
११ श्रीपुट	(न र स य)	अग्निपुराण १७३ ।१० ,३३४ ।१०
१२ कान्तोत्पीडा	(म त स म)	अग्निपुराण १७३ ।१२,३३४ ।१२
१३ असम्बाधा	(न त न म)	अग्निपुराण १७३ ।१५,१६,३३४ ।१५।
अतिजगती (त्रयोदशाक्षरपाद)		
१४ गौरी	(न र न स ग)	अग्निपुराण १७३ ।१५,३३४ ।१५
धृति (अष्टादशाक्षरपाद)		
१५ पृथ्वी	(ज स ज स ज न)	अग्निपुराण १७३ ।२०,३३४ ।२०
अतिधृति (ऊनविंशत्यक्षरपाद)		
१६ हरिणी	(न स म र स न ग)	अग्निपुराण १७३ ।२१,३३४ ।२१
सकृति (चतुर्विंशत्यक्षरपाद)		
१७ क्रौञ्चपदा	(भ म त त न न न ग)	अग्निपुराण १७३ ।२७,३३४ ।२७
उत्कृनि (षड्विंशत्यक्षरपाद)		
१८ उपहार	(म न न न न त म स ग ग)	अग्निपुराण १७३ ।२९,३३४ ।२९

अर्द्धसमवृत्त

१९ उपचित्रक	(ससमन,भजभग)	अग्निपुराण १७२ ।११,३३३ ।१
२० उपचित्रक	(ससमनग,तभय ग)	अग्निपुराण ३३३ ।१
२१ द्रुतमध्या	(ततभगम,नतजम)	अग्निपुराण १७२ ।११,३३३ ।१ ।
२२ वेगवती	(ससमग,भभभगग)	अग्निपुराण - १७२ ।१२,३३३ ।२
२३ रुद्रविस्तार	(तसभग,ससजगग)	अग्निपुराण -१७२ ।१२,३३३ ।३
२४ केतुमती	(रजसगग,तरनगग)	अग्निपुराण १७२ ।१३,३३३ ।३
२५ विपरीताख्यानकी	(ततजगग,ततजगग)	अग्निपुराण १७२ ।१४,३३३ ।४
२६ हरिणवल्लभा	(स समलग,लभभर)	अग्निपुराण १७२ ।१४,३३३ ।४
२७ अपराक्रम	(ललरनग,नजजम)	अग्निपुराण १७२ ।१५,३३३ ।५

विषमवृत्त

२८ उद्धता	(ससजसन,नसजग,भभनजनग,सजसगग)	अग्निपुराण३३२ ।७-८
२९ सौरभ	(ससजसन,नसजग,नभग,सजसगग)	अग्निपुराण ३३२ ।७-८
३० उद्धता	(ससजसन,नसजग,भभनजयग,सजसगग)	अग्निपुराण १७२ ।७-८
३१ सौरभ	(ससजसन,मसजग,नभग,सजसगग)	अग्निपुराण १७२ ।७-८
३२ ललित	(ससजसन,मसजग,नमजस,सजसगग)	अग्निपुराण १७२ ।८,३३२ ।८
३३ उपस्थित प्रचुपित	(समजसगग,मलज,रगसम,रजय)	अग्निपुराण १७२ ।९,३३२ ।९

(४) श्रुतबोध

श्रुतबोध एक छन्दोविषयक लघुग्रन्थ है। इसके रचयिता महाकवि कालिदास माने जाते है। राजशेखर (१० शती ई०) ने तीन कालिदासो की सत्ता के प्रति सकेत किया है।[१२२] काव्यजगत् मे कालिदास की प्रसिद्धि से अवान्तरकालीन बहुत से कवियो ने कालिदास का प्रसिद्ध अभिधान धारण कर अपने व्यक्तित्व को छिपा दिया था। अत कालिदास की सत्ता ईसापूर्व परमारवशीय प्रथम विक्रमादित्य से लेकर धारानगरी के राजा भोज के समय (१२०० ई०) तक मानी जाती है। यह पता नही चलता कि श्रुतबोध उनमे से कौन से कालिदास की रचना है। कालिदास के नाम से प्रकाशित होने के कारण उसे यहा शेष लौकिक छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो से पूर्व ही स्थान दिया गया है।

श्रुतबोध मे कुल ४३ श्लोक है, जिनमे प्रथम तीन श्लोको मे ग्रन्थ के नाम, गुरु वर्ण तथा गण लक्षण पर प्रकाश डाला गया है और ४० श्लोको में आर्या से स्रग्धरा तक प्रसिद्ध ४० छन्दो का वर्णन है। इस ग्रन्थ की यह विशेषता है कि इसमे छन्दो को गुरु लघु वर्णो के आधार पर लक्षित किया गया है। यह ग्रन्थ लक्ष्य-लक्षण प्रधान है, इसमे जिस छन्द का जिस पद्य मे लक्षण किया गया है, उस छन्द का वही पद्य उदाहरण भी है।

इसके छन्दो पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि श्रुतबोध मे केवल मात्रिक तथा वर्णिक लौकिकछन्दो का ही वर्णन है। मात्रिक छन्दो मे केवल तीन छद ही वर्णित है और वर्णिक छन्दो मे ३७ छन्द, जिनमे ३६ छन्द समवर्णिक है और केवल एक छद अर्धसमवर्णिक। छन्दो की एकाक्षर से २६ अक्षरो तक वृत्तिया होती है, उनमे से इसमे उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा, अष्टि, कृति, आकृति, विकृति, सकृति, अभिकृति, और उत्कृति नामक छन्दोवृतियो मे किसी भी छन्द का विवरण प्राप्त नही होता और विषमपाद के भी किसी छन्द का विवरण नही मिलता। अनुष्टुप् और पद्य तथा उपजाति और आख्यानकी छन्द लक्षणानुसार एक ही है।[१२३] केवल उनके नाम ही पृथक्-पृथक् दिये हैं। सम्भवत ग्रन्थ का रचयिता इन्द्रवज्रा छन्द के प्रथमपाद और उपेन्द्रवज्रा छन्द के अन्तिम तीनपादो से युक्त छन्द को उपजाति का भेद न मानकर आख्यानकी नामक छन्द के रूप मे उसकी पृथक् सत्ता स्वीकार करता है,[१२४] और अनुष्टप् छन्द को ही पद्य नाम प्रदान करता है।[१२५] इससे स्पष्ट है कि ग्रन्थ मे कुछ प्रसिद्ध तथा प्रचलित छन्दो का ही वर्णन है।

श्रुतबोध मे दिये गये उपजाति और आख्यानिकी छन्द के पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता के समय मे पिंगलीय छन्द सूत्र के अतिरिक्त पश्चाद्वर्ती छन्द शास्त्रीय जानाश्रयी छन्दोविचिति आदि रचनाए विद्यमान नही थी, जिनमें उपजाति (इन्द्रमाला) छन्द के १४ भेद प्रदर्शित किये गये है।[१२६] उक्त चतुर्दश भेदों में पिगलोक्त उपजाति और आख्यानिकी तथा विपरीताख्यानिकी छन्द समाहित हो जाते हैं किन्तु श्रुतबोधकार ने उपजाति का लक्षण पिगलोक्त लक्षण के आधार पर दिया है और उसके अन्य भेदो का उल्लेख नही किया। जैसा कि उन्होने आख्यानिकी के लक्षण मे उसे विपरीतपूर्वा कहकर

१२२ एको न जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
शृगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु॥
सूक्ति मुक्तावली, (दृष्टव्य) बलदेवउपाध्याय, सस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० १८२।

१२३ कालिदासकृत श्रुतबोध, पद्य-१०, ११ तथा २३, २४, कनकलाल ठक्कुर, वाराणसी १९७२।

१२४ श्रुतबोध पद्य-२४ जबकि जानाश्रयी छन्दोविचित्ति-वृत्ति ४/३६-३७ में आख्यानिकी को उपजाति (इन्द्रमाला) के चतुर्दशभेदो मे समाहित कर दिया गया है।

१२५ श्रुतबोध, पद्य-१० और ११।

१२६ जानाश्रयी छन्दोविचिति४/३६, ३७, त्रिवेन्द्रम, १९४९, वृत्तरत्नाकरनारायणी टीका ३/३२, हेमचन्द्रकृत छन्दोनुशासन-२/१५६।

उमके दोनो भेदो के प्रति सकेत किया है। यदि श्रुतबोध जानाश्रयी छन्दोविचिति के बाद की भी रचना होती तो उसके उपजाति छन्द के लक्षण मे भेदो का निर्देश अवश्य होता। पिगल ने उपजाति छन्द वही माना है, जिसमे इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के दो दो पाद हो।[१२७] इसके अतिरिक्त उन्होने अन्य भेदो का उल्लेख नही किया और इसे ही श्रुतबोध कार ने भी मान्यता दी है।[१२८] जानाश्रयी छन्दोविचिति मे तो आख्यानिकी और विपरीताख्यानिकी छन्द के पाद उपजाति छन्द मे समाहित कर दिये गये है, जिससे वहा आख्यानिकी छन्द के दोनो भेदो की स्वतत्र सत्ता नही रहती, क्योकि उनमे इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के चरणो का विधान है, जो कि उपजाति के चतुर्दश भेदो मे गृहीत कर लिये गये है,[१२९] किन्तु पिगल ने उन दोनो छन्दो को स्वतत्र मानकर लक्षित किया है,[१३०] और इसी आधार पर कालिदास ने भी आख्यानिकी छद को एक स्वतत्र छन्द माना है तथा पिगलोक्त लक्षण से भी भिन्न लक्षित किया है।[१३१] यह श्रुतबोध का स्वतत्र छन्द है जो जानाश्रयी के इन्द्रमाला (उपजाति) के चतुर्दश भेदो मे गृहीत किया गया है।[१३२] अत श्रुतबोध मे इस छन्द की स्वतत्र सत्ता के आधार पर यह माना जा सकता है कि कालिदास की यह रचना जानाश्रयी छदोविचिति से पूर्व की है, अन्यथा इस पर उसका प्रभाव अवश्य होता।

जयदेव ने श्रुतबोधकार का अन्य मत से चम्पकमाला छन्द का उल्लेखकर निर्देश किया है।[१३३] अत जयदेव के समय (६००-७०० ई०) मे श्रुतबोध का प्रचार हो चुका था। इसमे प्रसिद्ध ४० लौकिक छन्दो के लक्षण सोदाहरण मिलते है, जिसमे कालिदास का लौकिक छन्द शास्त्र मे स्वतत्र लक्षित छन्दोरूप मे निम्नाकित योगदान है—

कालिदास के स्वतत्र लक्षित छन्द

उष्णिक् (सप्ताक्षरपाद)

१ मदलेखा (म स ग) श्रुतबोध[१३४] - पद्य-९

पक्ति (दशाक्षरपाद)

२ हसी (म भ न ग) श्रुतबोध पद्य-१९

अतिजगती (त्रयोदशाक्षरपाद)

३ प्रभावती (तभसजग) श्रुतबोध - पद्य-३५

विषमवृत

४ (८,८,८,८) अनुष्टुप् (श्लोक) (सर्वत्र पचम लघु तथा षष्ठ गुरु और द्विचतुष्पाद मे सप्तम लघु तथा प्रथम तृतीय पाद मे गुरु) श्रुतबोध-पद्य-१०

५ (८,८,८,८) पथ (सर्वत्र पचम लघु तथा षष्ठ गुरु और द्विचतुष्पाद मे सप्तम लघु) श्रुतबोध-पद्य-११

६ (११,११,११,११) विपरीताख्यानिकी (प्रथम चरण मे—ततजगग, शेष तीनो पादो मे जतजगग) श्रुतबोध-पद्य-२४)

---

१२७ छन्द सूत्र-६/२३, अखिलानन्द शर्मा, मेरठ १९०९।

१२८ श्रुतबोध, पद्य-२३, कनकलाल ठक्कुर वाराणसी, १९७२।

१२९ जानाश्रयी छन्दोविचिति-वृत्ति ४/३७।

१३० छन्द सूत्र-५/३७, ३८।

१३१ श्रुतबोध, पद्य-२४।

१३२ जानाश्रयी छन्दोविचिति-४/३६, ३७ के वृत्तिभाग में "पर्याप्तपुष्पस्तबकस्तनीभ्य' पद्य, पृ० ३९, त्रिवेन्द्रम, १९४९।

१३३ चम्पकमाला वान्यमतेन-जयदेवच्छन्द—६।१४।

१३४ श्रुतबोध-विद्याभवन, सस्कृत ग्रन्थमाला, न० ३४, चौखम्बा, वाराणसी, १९७२।

(५) जानाश्रयी छन्दोविचिति

जानाश्रयी छन्दोविचिति एक प्रसिद्ध छन्दोविषयक रचना है। इसके रचयिता जनाश्रय है। रचना के व्याख्याकार गणस्वामी ने स्वय छन्दोविचिति को जानाश्रयी कहा है।[१३५] छन्दोविचिति मे सूत्रकार ने एकस्थल पर पिगल का उल्लेख किया है।[१३६]

जिससे रचना पिगल से परवर्ती है और जयकीर्ति के छन्दोनुशासन (४१०० ई०) से पूर्ववर्ती है, क्योकि उसमे जानश्रय का उल्लेख मिलता है।[१३७] राजा जनाश्रय के उल्लेख से रचना के समय निर्धारण मे सहायता मिलती है। पोलागुरु की नक्काशी युक्त चादरो पर जनाश्रय उपाधिधारी राजा माधव वर्मा का उल्लेख मिलता है।[१३८] रामकृष्ण कवि ने सकेत किया है कि "जनाश्रय" एक उपाधि थी, जिसे विष्णुकुण्डीन राज्य के शासक माधव वर्मा द्वितीय ने धारण किया था, जिसका समय ५८०-६१५ ई० है।[१३९] किन्तु डा० डी० सी० सरकार ने उक्त चादरो को माधव वर्मा प्रथम से सम्बधित बताया है,[१४०] जिसका समय ५३५ से ५८५ ई० है और बी० बी० कृष्णा राव ने उन चद्दरो को माधव वर्मा तृतीय से सम्बन्धित माना है, जिसका समय ५४६-६११ ई० है।[१४१] इस छन्दोविचिति मे बुद्धचरित, रघुवश कुमार सम्भव, जानकीहरण तथा किरातार्जुनीय की कुछ पक्तिया उदाहरण रूप मे वृत्ति मे मिलती है, जिनमे अन्तिम रचना भारविकृत किरातार्जुनीय ५७० ई०[१४२] की है। इससे यह स्पष्ट है कि वृत्तिकार भारवि से परवर्ती है, जो जनाश्रय के समसामयिक ज्ञात होते है। अत सूत्रकार जनाश्रय और वृत्तिकार गणस्वामी का समय समसामयिक होने से ६००ई० निश्चित होता है।[१४३]

यह ग्रन्थ सूत्र शैली मे है। इसमे ६ अध्याय है, जिनमे ३१८ सूत्र और १९७ श्लोक है। उद्धृत श्लोक वृत्तिकार के अपने है। सूत्रकार जनाश्रय ने अपने ग्रन्थ के चतुर्थ अध्याय मे आचार्य पिगल का उल्लेख किया है।[१४४] जिससे स्पष्ट है कि जनाश्रयी छन्दोविचिति छद सूत्र के बाद की रचना है। उक्त दोनो ग्रन्थो के पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि जनाश्रय ने आचार्य पिगल से बहुत कुछ सीखा है। जहा उनके ग्रन्थ मे नवीनता मिलती है, वहा बहुत से स्थलो पर छन्द साम्य भी प्राप्त होता है। छन्द सूत्र के प्रथमाध्याय मे आठ गणो का उल्लेख है।[१४५] किन्तु जनाश्रय ने अपनी रचना के प्रथम अध्याय मे २६

---

१३५ ___ जानाश्रयी छन्दोविचिति गणस्वामिविरचितव्याख्या व्याख्यास्याम। दृष्टव्य-जानाश्रयी छन्दोविचिति-टी० एस० एस० न० १६३, प्रथम अध्याय, प्रथम पद्य के बाद वृत्ति भाग, त्रिवेन्द्रम, १९४९।

१३६ अस्यैव मे पिगलस्य। छन्दोविचिति-४।१०२,पृ० ६१।

१३७ माण्डव्य पिगल जनाश्रय सैतवाख्य श्रीपादपूज्य जयदेवबुधादिकानाम्।
जयकीर्तिकृत छन्दोनुशासन-८।१९ स० ११९२ आषाढ, सुदि, शनौ लिखितम्।

१३८ ___ एकादशाश्वमेधावभृतस्नानविगतजगदेनस्क सर्वभूत परिरक्षणचन्चुर्विद्वदि्द्वजगुरुवृद्धतपस्वि जनाश्रयो महाराज माधववर्मा। दृष्टव्य-पालामारु प्लेट्स, एडीटेड बाई-सुब्बाराम-इन दी जनरल आफ दी आन्ध्रा हिस्टोरीकल रिसर्च सोसायटी वोल्यूम-६, पृ० १७ एफ० एफ०।

१३९ जानाश्रयी छन्दोविचिति-इन्ट्रोडक्शन, पृ० ८, त्रिवेन्द्रम, १९४९।

१४० इडियन हिस्टोरीकल क्वार्टरली, वोल्यूम-९, पृ० २७३-७८, ९५६-६६, १९३३।

१४१ बी० वी० कृष्णा राव, अरली डायनेस्टिक आफ आन्ध्रादेश, पृ० ४१४-४२१, मद्रास।

१४२ अथ वासवस्य वचनेन, किरातार्जुनीय, छन्दोविचिति-२।६ का वृतिभाग, पृ० १५।

१४३ छन्दोविचिति, इन्ट्रोडक्शन, पृ० ९, त्रिवेन्द्रम, १९४९।

१४४ अस्यैव मे पिगलस्य, छन्दोविचिति-४।१०२, पृ० ६१।

प्रकार के छन्दो के उल्लेख के बाद उन आठ गणो के साथ अन्य १० गणो का विकास कर १८ गणों का निर्देश किया है।[१४६] छन्द सूत्र मे वैदिक छन्दो के बाद लौकिक वृत्तो का विवेचन है किन्तु छन्दोविचिति केवल लौकिक वृत्तो का ही विवेचन करती है। दोनो ग्रन्थो मे लौकिक सस्कृत वृत्तों का वर्गीकरण एक-सा ही है, जिसके अनुसार इसके द्वितीय तथा तृतीय अध्याय मे मात्रावृत्त तथा वर्णवृत्त विभाग मे विषम, अर्द्धसम और सम वृत्त एव समान-प्रमाण-वितान वृत्तो का ग्रहण होता है।[१४७] चतुर्थ अध्याय मे एकाक्षरपाद उक्ता छद से लेकर षड्‌विशत्यक्षरपाद उत्कृति छन्द तक दण्डक सहित समस्त भेदोपभेदो का विवेचन है। पचम अध्याय मे वैतालीय-मात्रासमक-आर्या प्रकरण के साथ छन्दो की विभिन्न जातियो का विवरण है। षष्ठ अध्याय में छन्दों का प्रस्तार प्रकरण है, जिसमें जनाश्रय ने नष्ट, उद्दिष्ट, सख्यादि का विकास किया है, किन्तु पिगल ने प्रस्तार के बाद उक्त नामो का उल्लेख नही किया।[१४८] दोनों ग्रन्थों के कुछ सूत्रों में भी साम्य मिलता है,[१४९] और कुछ सूत्र ऐसे भी है, जो दोनो में एक से मिलते है।[१५०] छन्द सूत्र मे वैदिक छन्दो के अतिरिक्त लौकिक छन्दो के जो लक्षण मिलते हैं, उन छन्दो के लक्षण छन्दोविचिति में भी मौलिक सूत्रो द्वारा प्राप्त होते हैं। लौकिक छन्दोलक्षणकारों मे आचार्य पिगल का स्थान सर्वोपरि है। वैदिक छन्दोलक्षणकारो मे जो स्थान पतजलि का है, वही स्थान लौकिक छन्दोलक्षणकारो में पिगल का है। जिस प्रकार छन्द सूत्र का वैदिक छन्दोभाग पतजलि, शौनक तथा कात्यायन द्वारा लक्षित छन्दो का विकसित रूप है, उसी प्रकार जानाश्रयी छन्दोविचिति छन्द सूत्र का एक पूर्णविकसित रूप है।[१५१] इसमे १८३ छन्दो के लक्षण मिलते हैं। इनमे जनाश्रय का स्वतत्र लक्षित छदोरूप मे निम्नाकित ३२ वृत्तो का योगदान है—

अनुष्टुप् (अष्टाक्षरपाद)	**लक्षण**	**सन्दर्भ ग्रन्थ**
१ पद्मिनी	(र र ग ग)	छन्दोविचिति-४ ।२१
त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)		
२ सगता	(ज स य ल ग)	छदोविचिति-४ ।४६
अतिजगती (त्रयोदशाक्षरपाद)		
३ भद्रा	(म भ न य ग)	छदोविचिति-४ ।६६
अष्टि (षोडशाक्षरपाद)		
४ ललना	(र न न न न ग)	छदोविचिति-४ ।८२
५ चन्द्रलेखा	(न ज भ ज त ग)	छदोविचिति-४ ।८३
अतिधृति (ऊविशत्यक्षरपाद)		
६ वायुवेगा	(म स ज स न न ग)	छदोविचिति-४ ।९४

---

१४५ छन्द सूत्र-१ ।१ ।८ ।

१४६ छन्दोविचिति-१ ।१८ से ३५, पृ० ७,८ तथा इन्ट्रोडक्शन, पृ० १८ ।

१४७ वही, इन्ट्रोडक्शन, पृ० १२ ।

१४८ वही, ६ ।१,११,१४,२३,२४ तथा छन्द सूत्र-८ ।२०-३४

१४९ छद सूत्र-१ ।५,५ ।१८,२४,७ ।३६, छदोविचिति १ ।३१,२ ।१७,२७,४ ।१२०
छन्द सूत्र-४ ।२४,४८,७ ।९ तथा छन्दोविचिति-५ ।३५,२२,४ ।७३ ।

१५० छन्दोविचिति-इन्ट्रोडक्शन पृ० १९ ।

१५१ वही, पृ, पृ० १९

दण्डक

७ जलद	(म म त न न न न ज भ र) (३० वर्ण)	छदोविचिति ४ ।११५
८ मेघ	(म म त न न त न नस ज ज ग) ३४	छदोविचिति -४ ।११६
९ प्लव	(न न + १० रगण) (३६ वर्ण)	छदोविचिति -४ ।११९
१० पिपीलिका	(म म त + ७ न + र स ल ग) ३८	छदोविचिति -४ ।११६
११ व्याल	(न न + ११ रगण) (३९ वर्ण)	छदोविचिति -४ ।११६
१२ पणव	(म म त + ८ नगण + जभर (४२ वर्ण)	छदोविचिति - ४ ।११६
१३ जीमूत	(न न + १२ रगण,४२ वर्ण)	छदोविचिति -४ ।११६
१४ लीलाकर	(न न + १३ रगण,४५ वर्ण)	छदोविचिति -४ ।११९
१५ करभ	(म म त + ९ न + स स ज ग,४६ वर्ण)	छदोविचिति -४ ।११९
१६ उद्दाम	(न न + १४ रगण,४८ वर्ण)	छदोविचिति -४ ।११९
१७ ललित	(म म त + ११ नगण + र स ल ग ५० वर्ण)	छदोविचिति -४ ।११९
१८ सिह	(न न + १५ रगण,५१ वर्ण)	छदोविचिति -४ ।११९
१९ निचित	(ममत + १२ नगण + ज भर) ५४	छदोविचिति -४ ।११७ (५४ वर्ण)
२० समुद्र	(न न + १६ रगण,५४ वर्ण)	छदोविचिति -४ ।११६
२१ भुजग	(न न + १७ रगण,५७ वर्ण)	छदोविचिति -४ ।११९

असीमित दण्डक

२२ प्रचित (नन + कितने भी रगण) छदोविचिति-४ ।१२०

अर्घसमवृत्त

२३ (१५,१५) देवगीति (रजरजर,१,३ पाद में,जरजरय,२,४ पाद मे) छन्दोविचिति-३ ।१३

विषमवृत्त

२४ (११,११,११,११) इन्द्रमाला (उपजाति),(इन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्रा में से एक,दो,तीन पद मिश्रित १४ भेद) छदोविचिति-४ ।३७

मात्रावृत्त (द्विपदी)

२५ चूलिका	(२७ ल + ग, २७ ल + ग)	छन्दोविचिति-५ ।२५
२६ तारा	(३१ ल ३१ ल)	छदोविचिति-५ ।२६
२७ वामनिका	(२७ मात्रा,१२ पर यति,आर्या के पूर्वार्द्ध मे षष्ठगण केवल लघु	छदोविचिति-५ ।३६)
२८ गीति	(३० + २७ मात्रा,१२ मात्रा पर यति,उत्तरार्द्ध मे और पूर्वार्द्ध मे षष्ठगण दकार या इकार हो)	छदोविचिति-५ ।४०
२९ ध्रुवा	(३० + ३० मात्रा,१६ पर यति अर्थात् चतुर्थ गण पर यति)	छदोविचिति-५ ।४१
३० गीतिका	(३० + ३०) तृतीय,पचम या सप्तम गण मे यकार या ईकार हो)	छदोविचिति--५ ।४२,४३

मात्रावृत (चतुष्पदी)

३१.उपजाति (६ + रय,८ + रय,६ + भ गग,८ + भगग,१६,१८,१४,१६ मात्राए)

३२ दक्षिणान्तिका (१४,१६,१४,१७ मात्राए) छदोविचिति-५ ।७,५ ।१३

इसके अतिरिक्त जनाश्रय ने अपने ग्रन्थ छन्दोविचिति मे उस समय लोक मे प्रचलित कुछ जनभाषा के छन्दो को सस्कृत मे लक्षित किया है।[१५२] जिसका विवरण सस्कृतेतर प्राकृतापभ्रश के छदो का सस्कृतीकरण विभाग मे दिया जायेगा।

(६) जयदेवच्छन्द

जयदेवच्छन्द एक छन्दोविषयक रचना है, जिसके रचयिता का नाम जयदेव है। इस ग्रन्थ का परिचय वैदिक छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो के सामान्य परिचय मे दिया जा चुका है। इसमे चतुर्थ अध्याय से सप्तम अध्याय तक लौकिक वृत्तो के लक्षण और अष्टमाध्याय मे छन्दो की प्रस्तार प्रक्रिया पर विचार किया गया है। इसमे १४२ लौकिक छदो के लक्षण मिलते है, जो पूर्ववर्ती छान्दस आचार्यो की रचनाओ मे लक्षित हो चुके है। जिनमे से लौकिक छन्द शास्त्र मे स्वतत्र लक्षित छन्दोरूप मे जयदेव का निम्नाकित-५ वृत्तो का योगदान है—

त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)

१ उपस्थित	(ज स त ग ग)	जयदेवच्छन्द -६ ।४१

जगती (द्वादशाक्षरपाद)

२ चन्द्रवर्त्य	(र न भ स)	जयदेवच्छन्द- ६ ।४३
३ पुष्पविचित्रा	(त य त य)	जयदेवच्छन्द-६ ।४५
४ चलनेत्रिका	(न न भ र)	जयदेवच्छन्द-६ ।४६

दण्डक

५ प्रचित (२ न ७ य अथवा म, त, ज, भ, न, स गणो मे से कोई गण ७ वार) जयदेव० ७ ।३४।

(७) स्वयम्भूच्छन्द

स्वयम्भूच्छन्दस् के रचयिता स्वयम्भू हैं। ये प्राचीन छन्द शास्त्री है। स्वयम्भू एक जैन साधु थे, जो ध्रुवधारावर्ष (७८०-७९४ ई०) के मन्त्री रयडा धनञ्जय के आश्रित कवि थे। इन्हें अपभ्रश की प्रसिद्ध रचना "पउमचरिउ" तथा हरिवशपुराण का रचयिता भी माना है।[१५३] किन्तु कुछ विद्वान् छन्द शास्त्री स्वयम्भू को "पउमचरिउ" के रचयिता स्वयम्भू से भिन्न मानते है।[१५४] भिन्नता की दृष्टि से डा० वेलणकर ने स्वयम्भू को अनुमानत १०वी शती का माना है और १२वी शती के आचार्य हेमचन्द्र ने अपने छन्दोविषयक ग्रन्थ छन्दोऽनुशासन की स्वोपज्ञवृत्ति मे मेघविस्फूर्जिता छन्द के नामातर मे स्वयम्भू का उल्लेख किया है।[१५५] किन्तु अभिन्नता की दृष्टि मे [१५६] रयडा धनञ्जय के आश्रित होने से स्वयम्भू का समय ८वी शती निश्चित होता है। इनकी प्रसिद्ध रचना "पउमचरिउ" मे आचार्य रविषेण

१५२ इदानीमन्याश्च काचिज्जातयो लोके प्रचुरन्त्यो वक्ष्यन्ते। जानाश्रयी छदोविचिति-५ ।४४-४५ के मध्य वृत्ति भाग।

१५३ राहुल साकृत्यायन, हिन्दी काव्यधारा, पृ० २२-२३।

१५४ डा० हीरालाल जैन, स्वयम्भू एण्ड हिज टू पोइम्स इज-अपभ्रश (नागपुर यूनिवर्सिटी जरनल, वोल्यूम १,१९३५।)

१५५ ह० द० वेलणकर-स्वयभूच्छन्द की भूमिका, रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, सन् १९६२। रम्भेति स्वयम्भू। दृष्टव्य-जयदामन् मे प्रकाशित छन्दोऽनुशासन-२ ।३२३।

१५६ इनकी अभी तक कुल तीन रचनाए मिली हैं। "पउमचरिउ" रिट्ठनेमिचरिउ और "स्वयम्भूच्छन्द"। दृष्टव्य-महाकवि **स्वयम्भू**, डा० एच० सी० भायाणी सपादित "पउमचरिउ" भाग-१, कविविषयक लेख, पृ० १६।

का उल्लेख मिलता है, जिसका समय ६७७ ई० है और अपभ्रश कवि पुष्पदन्त ने स्वयम्भू का उल्लेख किया है, पुष्पदन्त का समय ९५९ ई० के लगभग था। अपनी द्वितीय रचना "रिट्ठनेमिचरिउ" मे स्वयम्भू ने आचार्य जिनसेन का उल्लेख किया है, जिनका समय ७८३ ई० है।[१५७] अत आचार्य जिनसेन के समय और रयडा धनञ्जय के समय मे साम्य होने से स्वयम्भू का समय ८वी शती का उत्तरार्द्ध प्रतीत होता है। इनके पिता का नाम मारुत देव तथा माता का नाम पद्मिनी था और दो पत्नियाँ थी तथा कई पुत्रो व शिष्यो मे त्रिभुवन ने उत्तराधिकार के रूप मे पिता से साहित्य परम्परा पायी थी।[१५८] जिसने रिट्ठनेमिचरिउ को पूर्ण किया था।[१५९] "पउमचरिउ" के अनुशीलन से स्वयम्भू दक्षिणवासी होने से कर्नाटक के माने जाते है।[१६०]

स्वयम्भू का छन्दोग्रन्थ स्वयम्भूच्छन्दस् आठ अध्यायो मे विभक्त है। इसके दो भाग है।[१६१] पूर्व भाग मे ६३ प्राकृत पद्य है और उत्तर भाग मे ३७१ प्राकृत पद्य है। दोनो भागो के उदाहरणो मे २९० प्राकृत पद्य है। इसमे प्रथम तीन अध्याय सस्कृत छन्दो से सम्बद्ध है, जिनमे १५७ वर्णवृत्तो का निरूपण है। और शेष पाच अध्याय प्राकृत तथा अपभ्रश छन्दो का विवरण प्रस्तुत करते है।[१६२] ग्रन्थ का प्रथम अध्याय अपूर्ण है, जिसमे प्रारम्भिक अश त्रुटित है, शेष अश मे शक्वरी से उत्कृति पर्यन्त छन्दो तथा अन्त मे दण्डको का विवरण है। सस्कृत छन्दो के लक्षण तथा उदाहरण प्राय प्राकृत भाषा मे निबद्ध है। द्वितीय अध्याय मे १४ अर्द्धसम वृत्तो का और तृतीय अध्याय मे उद्गतादि विषम वृत्तो का तथा वृत्त-पथ्यवृत्तादि श्लोक-भेदो के लक्षणोदाहरण दिये गये है। चतुर्थ अध्याय से अष्टम अध्याय तक विस्तार से ३२१ प्राकृत और अपभ्रश छन्दो का विवेचन मिलता है। ग्रन्थ को स्वयम्भू ने पचाश सारभूत, बहुलार्थ तथा लक्ष्यलक्षणविशुद्ध कहा है, जिसका प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर सकेत मिलता है।[१६३] इन्होने सस्कृतवृत्तो को प्राकृत वृत्तो के रूप मे लिया है। किन्तु उन वास्तविक प्राकृत मात्रिक वृत्तो को लक्षित नही किया, जिनका सकेत बाद मे वृत्तजातिसमुच्चय मे विरहाक ने और छन्दोऽनुशासन मे हेमचद्र ने दिया है।[१६४] ग्रन्थ मे प्राकृत कवियो द्वारा प्राकृत भाषा मे निबद्ध सस्कृत भाषा के वर्णिक वृत्तो के उदाहरण दिये गये है। **भाषा अवश्य प्राकृत है, किन्तु उसमे वृत्त सस्कृत के लक्षित किये गये है।** स्वयम्भू की लक्षणप्रक्रिया भी भिन्न है, जिसमे उसने मगणादि गणो का प्रयोग न कर द त च प छ (२,३,४,५,६) मात्रिक गणो का ही प्रयोग किया है। इसमे ९१ कवियो के नामसहित उदाहरण [१६५] मिलते है, जिनमे १० अपभ्रश के कवि है और शेष प्राकृत के। अत स्वयम्भू की रचना

---

१५७ पउमचरिउ-भाग १, महाकवि स्वयम्भू, पृ० १४।

१५८ वही, पृ० १३।

१५९ वही, पृ० १७।

१६० वही, पृ० १४, २५।

१६१ ह० दा० वेलणकर, स्वयम्भू छन्द, पूर्वभाग, पृ० १०३ से १२७ तक और उत्तर भाग, पृ० १ से १०२ तक।

१६२ ह० दा० वेलणकर, स्वयम्भूच्छन्दस्, परिच्छेद-४-८, बम्बई विश्वविद्यालयीय पत्रिका, नवम्बर, १९३६।

१६३ पचससारहूए बहुलत्थे लक्खलक्खणविसुद्धे।
एदि सअभुच्छन्दे अद्धसम परिसमत्तमिणम्॥ स्वयम्भूच्छन्दस्-२।३०।

१६४ हेमचन्द्र कृत, छन्दोऽनुशासन-४ अध्याय तथा विरहाककृत वृत्तजातिसमुच्चय का अध्याय-३,४।

१६५ ह० दा० वेलणकर, स्वयम्भू छन्द, पृ० १५६-५७।

मे सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रश के छन्दो के साथ प्राकृतापभ्रश साहित्य पर विशेष प्रकाश पडता है।

इस ग्रन्थ मे सस्कृत के १५७ वर्णवृत्तो का जो निरूपण मिलता है, उनमे से बहुत से वृत्त भरत पिगलादि छान्दस आचार्यों की रचनाओ मे पहले ही लक्षित किये जा चुके है। अत स्वयम्भू का सस्कृत लौकिक छन्द शास्त्र मे निम्नाकित ५४ वृत्तो का योगदान है।

स्वयम्भू के स्वतत्र लक्षित छन्द	लक्षण	ग्रन्थ सन्दर्भ
बृहती (नवाक्षरपाद)		
१ बृहतिका	(न र र)	स्वयम्भू छन्द (पू०)[१६६]-६ ।८
पक्ति (दशाक्षरपाद)		
२ पक्तिका	(र य ज ग)	स्वयम्भूछन्द (पू०)-६ ।११
त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)		
३ एकरूप	(म स ज ग ग)	स्वयम्भू छन्द (पू०)-६ ।२४
शक्वरी (चतुर्दशाक्षरपाद)		
४ नान्दीमुखी	(न न त त ग ग)	स्वयम्भूछन्द १ ।५
५ करिमकरभुजा	(न न म य ल ग)	स्वयम्भू छन्द १ ।८
६ उपचित्र	(न न न न ग ग)	स्वयम्भू छन्द १ ।९
७ लक्ष्मी	(म र त त ग ग)	स्वयम्भू छन्द १ ।१०
८ ज्योत्स्ना	(मम र म य ल ग)	स्वयम्भू छन्द -१ ।११
९ जया	(म र र स ल ग)	स्वयम्भू छन्द -१ ।१२'
अतिशक्वरी (पचदशाक्षरपाद)		
१० उपमालिनी	(न न त भ र)	स्वयम्भूछन्द-१ ।१४
११ चन्द्रोद्योत	(न न म र र)	स्वयम्भू छन्द -१ ।१५
१२ तूणक-तोणक	(र ज र ज र)	स्वयम्भू छन्द १ ।१६
१३ चित्रा	(म म म य य)	स्वयम्भू छन्द-१ ।१९
अष्टि (षोडशाक्षरपाद)		
१४ पचचामर	(ज र ज र ज ग)	स्वयम्भूछन्द-१ ।२०
१५ चित्रशोभा	(र ज र ज र ल)	स्वयम्भू छन्द -१ ।२१
१६ चित्र	(र ज र ज र ग)	स्वयम्भू छन्द-१ ।२२
१७ मदनललिता	(म भ न म न ग)	स्वयम्भू छन्द-१ ।२४
अत्यष्टि (सप्तदशाक्षरपाद)		
१८ हारिणी	(म भ न म य ल ग)	स्वयम्भूछन्द-१ ।२९
१९ पद्म	(न स म त त ग ग)	स्वयम्भू छन्द-१ ।३२
२० रोहिणी	(न स म म य ल ग)	स्वयम्भू छन्द-१ ।३३
२१ भावाक्रान्त	(न भ न र स ल ग)	स्वयम्भू छन्द-१ ।३५
धृति (अष्टादशाक्षरपाद)		
२२ चित्रलेखा	(म भ न य य य)	स्वयम्भूछन्द-१ ।३६

---

१६६ स्वयम्भूच्छन्द-पूर्वभाग, पृ० १०३-२७, रा० पु० ग्र०, जोधपुर, १९६२।

२३ चन्द्रमाला	(न न म म य य)	स्वयम्भू छन्द-१ ।३७
२४ भ्रमरपद	(भ र न न न न स)	स्वयम्भू छन्द-१ ।३८
२५ शार्दूलललित	(म स ज स त स)	स्वयम्भू छन्द-१ ।३९
२६ कुरगिका	(म त न ज भ र)	स्वयम्भू छन्द-१ ।४०
२७ ललित	(न न म त भ र)	स्वयम्भू छन्द-१ ।४१
२८ हरिणीपद	(न स म त भ र)	स्वयम्भू छन्द-१ ।४२
२९ चल	(म भ न ज भ र)	स्वयम्भू छन्द-१ ।४३
३० केसर	(म भ न य र र)	स्वयम्भू छन्द-१ ।४४
३१ अनगलेखा	(न स म म य य)	स्वयम्भू छन्द-१ ।४६
अतिधृति (ऊनविशत्यक्षरपाद)		
३२ पुष्पदाम	(म त न स र र ग)	स्वयम्भूछद-१ ।४८
३३ चन्द्रबिम्ब	(म त न म त त ग)	स्वयम्भू छन्द-१ ।४९
३४ छाया	(य म न स त त ग)	स्वयम्भू छन्द-१ ।५१
३५ मकरदिका	(य म न स ज ज ग)	स्वयम्भू छन्द-१ ।५२
कृति (विशत्यक्षरपाद)		
३६ शोभा	(य म न न त त ग ग)	स्वयम्भूछन्द-१ ।५३
३७ चित्रमाला	(म र भ न त त ग ग)	स्वयम्भू छन्द १ ।५४
आकृति (द्वाविशत्यक्षरपाद)		
३८ मदिरा	(भ भ भ भ भ भ भ ग)	स्वयम्भूछन्द-१ ।५८
दण्डक		
३९ पिपीलिकाकरभ	(म म त न न न न न न र स ल ग) ३५ वर्ण[१६७]	स्वयम्भूछद-१ ।६६
४० पिपीलिकापणव	(म म त + ७ न + स ज ज ग) ४० वर्ण)[१६८]	स्वयम्भूछन्द -१ ।६६
४१ पिपीलिकामाला	(म म त + ९ न + ज भ र) ४५ वर्ण	स्वयम्भूछन्द-१ ।६६
असीमित दण्डक		
४२ चण्डपाल	(५ ल + कितने भी रगण)[१६९]	स्वयम्भूछन्द-१ ।७४
४३ सिहविक्रान्त	(५ ल + कितने भी यगण)	स्वयम्भूछन्द-१ ।७५
४४ मेघमाला	(६ ल + ३ ग + यथेच्छ यगण)	स्वयम्भूछन्द १ ।७६
४५ चण्डवेग	(६ ल + यथेच्छ यगण)	स्वयम्भूछन्द १ ।७७
४६ मतमातगलीलाकर	(यथेच्छ रगण)	स्वयम्भूछन्द १ ।७८
४७ अनगशेखर	(यथेच्छ लघु गुरु वर्ण कितने ही)	स्वयम्भूछन्द १ ।७९

---

१६७ स्वयम्भू ने पिपीलिका करभ का लक्षण (म भ त न न न न न ल ल ज भ र) दिया है, जो क्रमश म म त न न न न न न र स ल ग) होता है ।

१६८ स्वयम्भू ने पिपीलिकापणव का लक्षण (म म त न न न न ल ल ल ल ल लल ल ल ल ज भ र) दिया है, जो क्रमश (म म त न न न न न न न स ज ज ग) होता है ।

१६९ चण्डपाल का क्रमश लक्षण होगा—(न स + यथेच्छ यगण + ल ग)।
१६९ब–मेधमाला-का लक्षण होगा (६ + ल न न + म + यथेच्छ यगण)
चण्डवेग का लक्षण होगा (न न + यथेच्छ यगण)

४८ अशोकपुष्पमजरी	(यथेच्छ गुरु लघुवर्ण कितने ही)	स्वयम्भूछन्द १ ।८०
४९ कुसुमास्तरण	(यथेच्छ सगणों की सख्या)	स्वयम्भूछन्द १ ।८१
५० भुजगविलास	(यथेच्छभगण सख्या + गग)	स्वयम्भूछन्द १ ।८२
५१ सिहक्रीड	(यथेच्छ यगणो की सख्या)	स्वयम्भूछन्द १ ।८३
५२ कामवाण	(यथेच्छ तगणो की सख्या + अतिम कोई भी गण तगण को छोडकर)	स्वयम्भूछद-१ ।८४
अर्धसमवृत्त		
५३ (१३,१२ (षट्पदावली)	(ज र ज र ग, र ज र ज)	स्वयम्भू-२ ।१२
विषमवृत्त		
५४ (८८८८) सुवक्त्र	(कोई भी वर्ण-४ + ल थ ल थ)	स्वयम्भूछन्द-३ ।८

(८) गाथालक्षण

गाथालक्षण के रचयिता नन्दिताढ्य है।[१७०] यह प्राकृत तथा अपभ्रश भाषा का छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ है। इसके रचयिता का कोई विशेष परिचय नही मिलता किन्तु रचना के प्रारम्भिक मगलाचरण पद्य से ज्ञात होता है कि रचयिता जैन है।[१७१] जैन आगमो में उपलब्ध छन्दो का ही इसमे विशेषत वर्णन है। यद्यपि हेमचन्द्र ने इस ग्रन्थ के रचयिता का सकेत नही किया है, किन्तु इसके तीन पद्य ४०-४२ हेमचन्द्र के छन्दोऽनुशासन मे प्राप्त होते हैं।[१७२] जिससे यह स्पष्ट होता है कि नन्दिताढ्य आचार्य हेमचन्द्र से पूर्ववर्त्ती हैं। रचना के पद्य ३१ से[१७३] यह ज्ञात होता है कि नन्दिताढ्य के समय प्राकृत भाषा का अधिक आदर था और अपभ्रश को हेय दृष्टि से देखा जाता था। श्री ह० दा० वेलणकर का अनुमान है कि नन्दिताढ्य नाम प्राचीन जैन यति परम्परा का सकेत करता है और अपभ्रश भाषा की साहित्यिक पण्डितमण्डली मे मान्यता न होने से "गाथा-लक्षण" का रचयिता ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों का प्रतीत होता है।[१७४] किन्तु विना किसी पुष्ट प्रमाण के उसे इतना प्राचीन कैसे माना जा सकता है। अत नन्दिताढ्य का समय हेमचन्द्र से पूर्व और प्राकृत छन्द शास्त्री स्वयम्भू के पश्चात् माना जा सकता है, क्योकि स्वयम्भू ने अपने से पूर्ववर्ती प्राकृत तथा अपभ्रश के ९१ छन्द शास्त्री तथा कवियो का अपनी रचना मे उल्लेख किया है।[१७५] किन्तु उसमे नन्दिताढ्य का कही भी किसी भी रूप मे उल्लेख नही मिलता। यदि नन्दिताढ्य स्वयम्भू से पूर्ववर्ती होते तो वे उनका किसी-न-किसी रूप मे उल्लेख अवश्य करते। इससे नन्दिताढ्य को हम स्वयम्भू के पश्चात् नवमी

---

१७० ह० दा० वेलणकर, कविदर्पण, पृ० ८७ पर प्रकाशित-"गाथालक्षण" जोधपुर, १९६२।

१७१ नमिऊण चलणजुअल नेमिजिणिदस्स भाव ओ पयओ ।गाथालक्षण-१।

१७२ कमला ललिया _ जायति। गाथालक्षण-पद्य-४०-४२।
हेमचन्द्रकृत छन्दोऽनुशासन-४ ।५ ।९-११ पर (कमला ललिया _ जा अति।)

१७३ जह वेसाण न नेहो जह सच्च नत्थि कामुयजणस्स।
तह नदियड्ढ भणिए जिह किह तिह पाइए नत्थि। गाथालक्षण-३१।
इससे स्पष्ट है, अपभ्रश के जिह किह तिह शब्द उसी प्रकार नन्दिताढ्य की रचना मे नही मिलेगे जैसे वेश्याओ के हृदय मे स्नेह और कामुक जन मे सत्य नही मिलता।

१७४ ह० दा० वेलणकर, नदिताढ्यकृत गाथालक्षण, परिचय (एनाल्स आफ बी० ओ० आर० आई, १९३२-३३, वोल्यूम १२, पृ० १६)।

१७५ ह० दा० वेलणकर, स्वयम्भूछन्द, पृ० १५६-१५७।

शती मे मान सकते है ।

गाथालक्षण प्राकृत भाषा मे निबद्ध है, इसमे ९२ पद्य है जिनमे गाथा के अनेक भेदो का विस्तार से वर्णन है, जिसमे सस्कृत के २७ मात्रिक वृत्तो का भी विवरण मिलता है । आर्या को गाथा कहते है । इसमे गाथा (आर्या) मात्रिक छन्द को नन्दिताढ्य ने गुरुलघुवर्ण पद्धति से, ३० वर्णिक कमलावृत्त से ५५ वर्णिक गौरी वृत्त तक २७ गुरु और ३ लघुवर्ण निर्देश से २ गुरु और ५३ लघु वर्ण निर्देश पर्यन्त क्रमश एक गुरुवर्ण के ह्रास से और दो लघु वर्णों की वृद्धि से आर्या के २६ भेदो को इस प्रकार विकसित किया है,[१७६] जो सस्कृत के वर्णिक वृत्तो के समान प्रतीत होते है क्योकि इनमे गुरु लघु वर्णो की गणना होती है, जिनका सस्कृत रूप वाग्वल्लभ मे देखने को मिलता है।[१७७] गुरुलघुवर्णपद्धति सस्कृतवृत्त-पद्धति है । अत सस्कृत लौकिक छन्द शास्त्र मे नन्दिताढ्य का निम्नाकित योगदान है—

गाथा (आर्या) के २६ भेद	लक्षण	ग्रन्थ सन्दर्भ
१ कमला	(२७ गुरु ३ लघु = ३० वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
२. ललिता	(२६ गुरु ५ लघु = ३१ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
३ लीला	(२५ गुरु ७ लघु = ३२ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
४ ज्योत्सना	(२४ गुरु ९ लघु = ३३ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
५ रम्भा	(२३ गुरु ११ लघु = ३४ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
६ मागधी	(२२ गुरु १३ लघु = ३५ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
७ लक्ष्मी	(२१ गुरु १५ लघु = ३६ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
८ विद्युत्	(२० गुरु १७ लघु = ३७ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
९ माला	(१९ गुरु १९ लघु = ३८ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
१० हसी	(१८ गुरु २१ लघु = ३९ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
११ शशिलेखा	(१७ गुरु २३ लघु = ४० वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
१२ जाह्नवी	(१६ गुरु २५ लघु = ४१ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
१३ शुद्धि	(१५ गुरु २७ लघु = ४२ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
१४ काली	(१४ गुरु २९ लघु = ४३ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
१५ कुमारी	(१३ गुरु ३१ लघु = ४४ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
१६ मेघा	(१२ गुरु ३३ लघु = ४५ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
१७ सिद्धि	(११ गुरु ३५ लघु = ४६ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
१८ ऋद्धि	(१० गुरु ३७ लघु = ४७ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
१९ कुमुदिनी	(९ गुरु ३९ लघु = ४८ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
२० धरिणी	(८ गुरु ४१ लघु = ४९ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
२१ यक्षिणी	(७ गुरु ४३ लघु = ५० वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
२२ वीणा	(६ गुरु ४५ लघु = ५१ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
२३ ब्राह्मी	(५ गुरु ४७ लघु = ५२ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
२४ गान्धर्वी	(४ गुरु ४९ लघु = ५३ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
२५ मञ्जरी	(३ गुरु ५१ लघु = ५४ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३

---

१७६ नन्दिताढ्यकृत गाथालक्षण-द्रष्टव्य-कविदर्पण, अपेण्डिक्स १ ।पृ० ८७ ।

१७७ दु खभजनकृत वाग्वल्लभ-पृष्ठ ४४ से ५२ ।

२६ गौरी	(२ गुरु ५३ लघु = ५५ वर्ण)	गाथा लक्षण ४०-५३
२७ गाथिनी	(३० + ३२ मात्राए)	गाथा लक्षण-६८

(९) बृहत्सहितावृत्ति

बृहत्सहितावृत्ति के रचयिता भट्ट उत्पल है। यह वृत्ति वराहमिहिरकृत बृहत्सहिता पर सन् ९६६ ई० मे लिखी गई थी।[१७८] बृहत्सहिता ज्यौतिष विषयक रचना है। रचयिता ने इसमे प्रसगवश १०३वें परिच्छेद मे गृह-नक्षत्रो की गतिविधि के साथ छन्दो का भी विवेचन किया है और इसमे ६४ छन्दो का प्रयोग देखने को मिलता है।[१७९] इसके टीकाकार भट्ट उत्पल ने अपनी टीका मे आचार्य वराहमिहिर के एक छन्दोविषयक ग्रन्थ को भी उद्धृत किया है[१८०] किन्तु वैसा ग्रन्थ इस समय प्राप्त नही होता। उत्पल भट्ट ने बृहत्सहिता के अध्याय १०३ के अन्तर्गत अपनी वृत्ति मे जो पद्य उद्धृत किये है उनमे प्रसगवश कुछ छदो के लक्षण भी दिये है।[१८१] उनमे से सस्कृत लौकिक छन्द शास्त्र मे भट्ट उत्पल का निम्नाकित योगदान है—

भट्ट उत्पल के स्वतत्र लक्षित छन्द

पक्ति (दशाक्षरपाद)

१ वितान	(स स स ग)	बृहत्सहितावृत्ति-अध्याय १०३-पद्य ४६

अष्टि (षोडशाक्षरपाद)

२ विनाशिनी	(न ज भ ज भ ल)	बृहत्सहितावृत्ति १०३ पद्य ३५

दण्डक

३ वर्णक	(न न + ७ भगण + ग ग २९ वर्ण) बृहत्सहितावृत्ति १०३ पद्य ६२
४ समुद्र	(न न + ७ र + ज र ३३ वर्ण) बृहत्सहितावृत्ति १०३ पद्य ६३

विषमवृत्त

५ (८,८,८,८) वक्त्रानुष्टुप् (र र ग ग, भ र ग ग, य स ग ग, ज स ग ग)
बृहत्सहितावृत्ति, अध्याय १०३ पद्य ५६

६ (१०,१०,९,११) विलास (तमय ग, ततजग, सतम, सससलग) बृहत्० अध्याय १०३, पद्य ५३

७ (१०,१०,९,११) विलास (तमम, तरजग, सतम, सससलग) बृहत्० अध्याय १०३, पद्य ५३ [१८२]

(१०) जयकीर्तिकृत छन्दोऽनुशासन

छन्दोऽनुशासन सस्कृत छन्दो की लाक्षणिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण रचना है, जिसके रचयिता जयकीर्ति है। जयकीर्ति ने अपनी रचना मे कन्नड भाषा के कवि असग का उल्लेख किया है।[१८३] जिसका समय ईसा की दसवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है।[१८४] अत जयकीर्ति का समय दशवी

१७८ ए पेपर आन वराहमिहिर एण्ड उत्पल (इन रिलेशन टू सस्कृत मीटर्स) बाई एच० डी० वेलणकर पब्लिश्ड एट पृ० १४१-१५२ इन सी० के० राजा कोमीमेरेशन, वोल्यूम मद्रास १९४६।

१७९ ए० वी० कीथ, सस्कृत साहित्य का इतिहास, हिन्दी सस्करण-II पृ० ६७४।

१८० वही, पृ० ५२३।

१८१ उत्पलभट्टकृत बृहत्सहितावृत्ति, अध्याय १०३, विजयनगर, सस्कृत सीरीज न० १०, बनारस, १८६५।

१८२ एकोर्डिग टू वेबर्स मेनुस्क्रिप्ट (१, एस० ८, पृ० ३५७) एण्ड बी० यू० मेनुस्क्रिप्ट न० ३६४ देवस्थलीज-केटेलाग)।

१८३ श्रुतिकान्तमक्षरदक्षैराद्दृतमसगाख्यकविना॥ छन्दोऽनुशासन-७।७।

१८४ ह० दा० वेलणकर, जयदामन्, क्रिटिकल इन्ट्रोडक्शन, पृ० ३७, बम्बई-१९४९।

शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे ९७५ ई० के आस-पास निश्चित होता है।[१८५] जयकीर्ति ने कपिल, माण्डव्य, वसिष्ठ, सैतव, भरत, कोहल, कौडिन्य, अश्वतर, कम्बल और पिगल नामक प्राचीन छान्दस आचार्यो का उल्लेख कर,[१८६] जनाश्रय, पूज्यपाद, जयदेव, स्वयम्भूदेव नामक पूर्ववर्ती आचार्यो के निर्देश के साथ मुनिदमसागर, पाल्यकीर्तीश, स्वयम्भूदेवेश, प्रज्ञामहोदय और चारुकीर्ति नामक समसामयिक आचार्यो का उल्लेख किया है।[१८७]

छन्दोऽनुशासन मे आठ अधिकार है, जिनमे केवल लौकिक सस्कृत वृत्तो पर ही विचार किया गया है। इसके प्रथमाधिकार मे गुरुलघु वर्ण, गण, यति पर विचार के साथ उक्ता से उत्कृति पर्यन्त २६ छन्दो का उल्लेख किया गया है। द्वितीयाधिकार मे २७३ समवृत्तो, तृतीयाधिकार मे २६ अर्धसमवृत्तो, चतुर्थाधिकार मे ३२ विषमवृत्तो, पचमाधिकार मे १४ कर्नाटक भाषा के छन्दो के लक्षण दिये गये है। अष्टमाधिकार मे छन्दो की प्रस्ताग्प्रक्रिया पर विवेचन है। समस्त रचना सूत्रो और पद्यो मे है। द्वितीयाधिकार मे २७१ सूत्र और प्रथमाधिकार से अष्टमाधिकार पर्यन्त २१५ पद्य है। इसमे ४०३ वृत्तो के लक्षण है, जिनमे १४ वृत्त कन्नडभाषीय सगीत से लिये गये है, जो सप्तमाधिकार मे लक्षित किये गये है। जयकीर्ति स्वय कर्नाटक प्रान्त के निवासी थे, अत उन्हे अपनी मातृभाषा के कुछ सगीतमय वृत्तो को भी सस्कृत वृत्तो मे समाविष्ट करने के लिये लक्षित करना स्वाभाविक था।

जयकीर्ति द्वारा निर्दिष्ट पूर्ववर्ती आचार्यो के लक्षित छन्द

१ भरतलक्षित छन्द—	ललितपदा,	छन्दोऽनुशासन-२ ।१३५
२ मुनिदमसागर लक्षित छन्द—	सिह प्लुत	छन्दोऽनुशासन-२ ।१४८
३ पाल्यकीर्तीश लक्षित छन्द—	सुनन्दिनी	छन्दोऽनुशासन-३ ।२१
४ स्वयम्भूदेवेशलक्षित छन्द—	नन्दिनी	छन्दोऽनुशासन-३ ।२२
५ प्रज्ञामहोदय लक्षित छन्द—	चूडामणि	छन्दोऽनुशासन-३ ।२५
६ चारुकीर्तिलक्षित छन्द—	कीर्ति	छन्दोऽनुशासन-४ ।३६

छन्दोनुशासन मे ४०३ वृत्तो के लक्षण मिलते है, जिनमे से जयकीर्ति द्वारा स्वतत्र लक्षित निम्नाकित १६१ छन्द है, शेष छन्द भरत, पिगल आदि प्राचीन आचार्यों की रचनाओं मे लक्षित हो चुके है। सस्कृत लौकिक छन्द शास्त्र मे जयकीर्ति का लौकिक वृत्त रूप मे निम्नाकित योगदान है—

जयकीर्ति के स्वतत्र लक्षिप्त छन्द

१ **उक्ता** (एकाक्षरपाद)	**लक्षण**	**ग्रन्थ सन्दर्भ**
१ नु	(ल)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३
२ **अत्युक्ता** (द्व्यक्षरपाद)		
२ सुख	(ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।५
३ जत्रु	(ग ल)	छन्दोऽनुशासन-२ ।६
४ बलि	(ल ल)	छन्दोऽनुशासन-२ ।७

---

१८५ दी डेट आफ जयकीर्ति, एन आर्टिकल आन मिस्टर गोविन्द पाई इन दी कन्नड क्वार्टरली, प्रबद्ध कर्नाटक (वोल्यूम २८, न० ३, जनवरी १९४७) महाराजा कालेज, मैसूर।

१८६ वाञ्छन्ति यति पिगलवसिष्ठ कौडिन्यकपिलकम्बलमुनय ।
नेच्छन्ति भरतकोहल माण्डव्याश्वतर सैतवाद्या केचित् ॥ छन्दोऽनुशासन-१ ।१३ ।

१८७ वही, ८ ।१९, २ ।१४८, ३ ।२१, ३ ।२२, ३ ।२५, ४ ।४६ क्रमश ।

३ **मध्यमा** (त्र्यक्षरपाद)

५ सेना	(त)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१२
६ सुवस्तु	(ज)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१३
७ हृद्य	(भ)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१४
८ दृक्	(न)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१५
४. **प्रतिष्ठा** (चतुरक्षरपाद)		
९ वृद्धि	(य ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१७
१० तारा	(त ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२०
११ सुमुखी [१८८]	(भ ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२२
१२ वल्ली	(म ल)	छन्दोऽनुशासन २ ।२४ ।
१३ सद्म	(य ल)	छन्दोऽनुशासन २ ।२५ ।
१४ वर्त्म	(र ल)	छन्दोऽनुशासन २ ।२६ ।
१५ कदली	(स ल)	छन्दोऽनुशासन २ ।२७ ।
१६ त्रपु	(त ल)	छन्दोऽनुशासन २ ।२८ ।
१७ जपा	(ज ल)	छन्दोऽनुशासन २ ।२९ ।
१८ जतु	(भ ल)	छन्दोऽनुशासन २ ।३० ।
१९ दयि	(न ल)	छन्दोऽनुशासन २ ।३१ ।
५ **सुप्रतिष्ठा** (पञ्चाक्षरपाद)		
२० प्रीति	(र ग ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३२ ।
२१ रति	(भ ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३६ ।
२२ रमा	(स ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२८ ।
२३ त्रिष्ठद्गु	(त ग ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३९ ।
६ **गायत्री** (षडक्षरपाद)		
२४ विद्युत्लेखा	(म भ)	छन्दोऽनुशासन-२ ।४३ ।
२५ कामलतिका	(भ य)	छदोऽनुशासन-२ ।४५ ।
२६ द्रुत	(य य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।५० ।
२७ हसमाला	(र र)	छन्दोऽनुशासन-२ ।५१ ।
७ **उष्णिक्** (सप्ताक्षरपाद)		
२८ सरल	(म भ ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।५७ ।
२९ चित्र	(भ न ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।५९ ।
३० मदलेखा	(भ स ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।६१ ।
८ **अनुष्टुप्** (अष्टाक्षरपाद)		
३१ अनुष्टुप्	(त ज ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।६२ ।
३२ क्षमा	(म र ल ग)	छदोऽनुशासन-२ ।६३ ।
३३ नाराचक	(त र ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।७०

---

१८८ यह छन्द आचार्य हेमचन्द्र के मत मे ललिता नाम से भरत का माना गया है—हेमचन्द्र कृत छन्दोऽनुशासनवृति-२ ।१६ ।

३४ सुमालती	(न र ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।७२
९ **बृहती** (नवाक्षरपाद)		
३५ बृहत्य	(य य य)	छदोऽनुशासन-२ ।७३
३६ सुन्दरलेखा	(म त य)	छदोऽनुशासन-२ ।७४
३७ अक्षि	(स ज स)	छदोऽनुशासन -२ ।७५
३८ चारुहासिनी	(ज त र)	छन्दोऽनुशासन-२ ।७७
३९ उदय	(भ ज स)	छन्दोऽनुशासन-२ ।७९
४० उत्सुरु	(भ भ र)	छन्दोऽनुशासन-२ ।८०
४१ भद्रिका	(र न र)	छन्दोऽनुशासन-२ ।८१
४२ उपच्युत	(न न र)	छन्दोऽनुशासन-२ ।८२
४३ गाथा	(म स स)	छन्दोऽनुशासन-२ ।८३
१० **पक्ति** (दशाक्षरपाद)		
४४ मदिराक्षी	(त य स ग)	छन्दोऽनुशासन- २ ।८८
४५ मणिरग	(र स स ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।९०
४६ बधूक	(भ भ म ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।९१
४७ त्वरितगति	(न ज न ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।९४
४८ हसव्रीडा	(म भ भ ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।९५
११ **त्रिष्टुप्** (एकादशाक्षरपाद)		
४९ उपस्थिता	(त ज ज ग ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१०३
५० अपरान्तिका	(स भ र ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१०५
५१ अच्युत	(र स म ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१०७
५२ लयग्राहि	(त त त ग ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१०८
५३ पतिता-श्री	(न य भ ग ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।११४
१२ **जगती** (द्वादशाक्षरपाद)		
५४ कामावतार	(त त त त)	छदोऽनुशासन-२ ।११९
५५ मौक्तिकदान	(ज ज ज ज)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१२२
५६ कलहसा	(न भ ज य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१३२
५७ मत्तकोकिल	(न भ ज र)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१३३
५८ ललितपदा	(न ज ज य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१३५ (यह भरत का माना गया है)
५९ पुण्डरीक	(म भ र य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१३६
६० शिविका	(स य स य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१३७ (दूसरा नाम महेन्द्रवज्रा है)
६१ द्रुतपदा	(न भ ज य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१४२ ।
६२ श्रुति	(त भ स य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१४६ ।
६३ स्मृति	(ज भ स य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१४७ ।
१३ **अतिजगती** (त्रयोदशाक्षरपाद)		
६४ कौमुदी	(न त त त ग)	छदोऽनुशासन-२ ।१४९ ।

६५ कुटज-भ्रमरी	(स ज स स ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१५२,१५७ ।
६६ चन्द्रिका	(य म र र ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१५३ ।
६७ मजुभाषिणी	(न ज स ज ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१५६ ।
६८ मणिकुण्डल	(स य स ज ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१५८ ।
६९ सुवक्त्रा-अचल	(न ज ज र ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१६० ।
७० अगरुचि	(भ भ भ भ ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१६१ ।
१४ शक्वरी (चतुर्दशाक्षरपाद)		
७१ चन्द्रशाला	(नरततगग)	छदोऽनुशासन-२ ।१६६ ।
७२ लक्ष्मी	(भ स तत ग ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१६८ ।
७३ प्रथिता	(स ज स य ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१७१ ।
७४ सुदर्शना	(स ज न र ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१७४ ।
७५ मणिकटिक	(न ज भज ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१७५ ।
७६ दर्दुरक	(भ भ र स ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१७८ ।
७७ वनलता	(र न भ भ ग ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१८० ।
७८ सुनन्दा	(स भ स ज गग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१८१ ।
१५ अतिशक्वरी (पचदशाक्षरपाद)		
७९ कपभ	(स ज स स य)	छदोऽनुशासन-२ ।१८२ ।
८० ज्योति-मित्र	(मममममम)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१८८ ।
८१ सुकेसर	(न ज भ ज र)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१८९ ।
८२ अरविदक कलभाषिणी	(न ज ज भ र)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१९२ ।
८३ मयूरललित	(ज ज न भ य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१९४ ।
८४ चन्द्रलेखा	(र र त त म)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१९५ ।
८५ रमणीयक	(र न भ भ र)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१९६ ।
८६ एला	(स ज न न य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१९७ ।
१६ अष्टि (षोडशाक्षरपाद)		
८७ स्मरशरमाला	(भ भ स भ स ग)	छदोऽनुशासन-२ ।१९८ ।
८८ पद्ममुखी	(भ भ भ भ भ ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१९९ ।
८९ मगलमगना	(न भ ज ज ज ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२०० ।
९० कमलदल	(न न न ज स ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२०१ ।
९१ वाणिनी	(न ज भ ज र ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२०४ ।
९२ कान्त	(न य न य स ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२०६ ।
९३ इन्द्रमुखी	(न ज र भ भ ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२०७ (दूसरा नाम चिन्तामणि)
१७ अत्यष्टि (सप्तदशाक्षरपाद)		
९४ वसुधारा	(न न न न न ग ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२१६ ।
१८ धृति (अष्टादशाक्षरपाद)		
९५ मुक्तामाला	(य म न स त स)	छदोऽनुशासन-२ ।२१८ ।
९६ मन्दारमाला	(स त न य य य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२२१ ।

९७ मणिमाला (भ भ भ भ भ स) छन्दोऽनुशासन-२ ।२२२ ।
९८ पकजमुक्ता (न न स स त य) छन्दोऽनुशासन-२ ।२२३ ।
९९ सुरभि (स न ज न भ स) छन्दोऽनुशासन-२ ।२२५ ।

१९ अतिधृति (ऊनविशत्यक्षरपाद)

१०० तरल (न भ र स जज ग) छदोऽनुशासन-२ ।२२६ ।
१०१ शार्ङ्गि (र स स न ज ज ग) छन्दोऽनुशासन-२ ।२२९ ।
१०२ रतिलीला (ज स ज स ज स ग) छन्दोऽनुशासन-२ ।२३० ।

२० कृति (विशत्यक्षरपाद)

१०३ मत्तेभविक्रीडित (स भ र न म य ल ग) छन्दोऽनुशासन-२ ।२३३ ।
१०४ कामलता (भ र न भ भ र ल ग) छन्दोऽनुशासन-२ ।२३४ ।
१०५ भासुर (भ भ भ भ र स ल ग) छन्दोऽनुशासन-२ ।२३५ ।
१०६ मुद्रा-उज्ज्वल (न भ भ म स स ल ग) छन्दोऽनुशासन-२ ।२३६ ।
१०७ पुटभेद (र स स स स स ल ग) छन्दोऽनुशासन-२ ।२३७ ।

२१ प्रकृति (एकविशत्यक्षरपाद)

१०८ वनमञ्जरी (न ज ज ज ज भ र) छन्दोऽनुशासन-२ ।२४० ।
१०९ ललितगति (न न न य य र म) छन्दोऽनुशासन-२ ।२४१ ।
११० तरगमालिका (र न रन रन र) छन्दोऽनुशासन-२ ।२४२ ।
१११ पद्मसद्म (र स न ज न भ र) छन्दोऽनुशासन-२ ।२४३ ।

२२ आकृति (द्वाविशत्यक्षरपाद)

११२ महास्रग्धरा (स त त न स र र ग) छन्दोऽनुशासन-२ ।२४५ ।
११३ मदनसायक (न भ ज भ ज भ ज ग) छन्दोऽनुशासन-२ ।२४७ ।

२३ विकृति (त्रयोविशत्यक्षरपाद)

११४ हसगति (न ज जज जज ज ल ग) छन्दोऽनुशासन-२ ।२४९ ।
११५ चित्रक (र न र न र न र ल ग) छन्दोऽनुशासन २ ।२५१ ।
११६ शख (त ज ज ज ज ज ज ल ग) छन्दोऽनुशासन-२ ।२५२ ।

२४ सकृति (चतुविशत्यक्षरपाद)

११७ ललितलता (न न भ न ज न न य) छदोऽनुशासन-२ ।२५४ ।
११८ हसपद (भ म स भ न न न य) छन्दोऽनुशासन-२ ।२५५ ।
११९ महामदनसायक (न भ ज भ ज भ ज र) छन्दोऽनुशासन-२ ।२५६ ।

२५ अभिकृति (पचविशत्यक्षरपाद)

१२० हसलय (न न न न स भ भ भ ग) छदोऽनुशासन-२ ।२५७ ।
१२१ मतेभ (म म म म म त य म ग) छन्दोऽनुशासन-२ ।२५९ ।

२६ उत्कृति (षड्विशत्यक्षरपाद)

१२२ वनलतिका (न न न न न न न न ग ग) छदोऽनुशासन-२ ।२६२ ।
१२३ मकरन्द (न य न य न न न न ग ग) छन्दोऽनुशासन-२ ।२६३ ।
१२४ सुधाकलश (न ज भ ज ज ज भ ज ल ग) छन्दोऽनुशासन-२ ।२६४ ।

सीमितदण्डक

१२५ विकसितकुसुम (२७ वर्ण) (म भ + ६ न,स) छदोऽनुशासन-२ ।२६५ ।

१२६ मालावृत्त	(२७ वर्ण)	(म म त न भ म म भ म)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२६६ ।
१२७ त्रिपदललित	(२७ वर्ण)	(न न न न भ न भ न स)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२६७ ।
१२८ त्रिभगी	(२७ वर्ण)	(न स भ न त ज त स य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२६८ ।
१२९ मणिकिरण	(२९ वर्ण)	(न न भ न ज न न न न ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२६९ ।
१३० कला	(२९ वर्ण)	(९ नगण + ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२७० ।
१३१ ललितवृत्त	(३० वर्ण)	(भ ज स न भ ज स न भ य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२७१ ।
१३२ लहरिका	(३१ वर्ण)	(१० नगण + ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२७२ ।
१३३ चक्र	(३३ वर्ण)	(भनन भनन भननभ य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२७३ ।
१३४ चित्रलय	(३४ वर्ण)	(भनन भनन भनन भ न ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२७४ ।
१३५ ललितलता	(३८ वर्ण)	(१२ न + ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२७५ ।

असीमित दण्डक

१३६ चण्ड	(५ ल + कोई भी गण सख्या)	छन्दोऽनुशासन-६ ।३३ ।
१३७ वात	(७ ल + कोई भी गण सख्या)	छन्दोऽनुशासन-६ ।३३ ।
१३८ अब्द	(४ ल+ कोई भी गण सख्या)	छन्दोऽनुशासन-६ ।३३ ।
१३९ सिह	(३ ल + कोई भी गण सख्या)	छन्दोऽनुशासन-६ ।३३ ।

अर्धसमवृत्त

१४० प्रवर्तक	(र ज ग, जर ल ग)	छन्दोऽनुशासन-३ ।९ ।
१४१ मानिनी	(भ र न भ न ल ग, नज भज नस)	छन्दोऽनुशासन-३ ।१४ ।
१४२ विबोधिता[१८९]	(स स ज ग, स भ र ल ग)	छन्दोऽनुशासन-३ ।१५ ।
१४३ विलसितलीला	(भ भ त ल ग, न ज न सग)	छन्दोऽनुशासन-३ ।१७ ।
१४४ शान्ति-चूडा	(न न न य, म म ग)	छन्दोऽनुशासन-३ ।१८ ।
१४५ उरुगी	(न न न न स, न न भ न ल ग)	छन्दोऽनुशासन-३ ।१९ ।
१४६ आमलकी-चुक्षा	(भ भ भ भ, भ भ भ ग ग)	छन्दोऽनुशासन-३ ।२० ।
१४७ सुनदिनी[१९०]	(ज त जर, त त ज र)	छन्दोऽनुशासन-३ ।२१ ।
१४८ नन्दिनी[१९१]	(त त जर, जत जर)	छन्दोऽनुशासन-३ ।२२ ।
१४९ भामा	(त भ स य, ज भ सय)	छन्दोऽनुशासन-३ ।२३ ।
१५० विपरीतभामा	(ज भ स य, त भ स य)	छन्दोऽनुशासन-३ ।२४ ।
१५१ चूडामणि[१९२]	(त त ज ग ग, त भ ज ज ग ग)	छन्दोऽनुशासन-३ ।२५ ।

विषमवृत्त

१५२ (१२,१२,१२,१२)	करम्बजाति (इन्द्रवशा-वशस्थ मे से एक-दोतीन पाद मिश्रित १४ भेद) छन्दोऽनुशासन-२ ।१४५ ।
१५३ (१२,१२,१२,१२)	सिहप्लुत (श्रुति-स्मृति मे से एक दो तीन पाद मिश्रित ४ भेद) मुनिदमसागर के मत मे छन्दोऽनुशासन-२ ।१४८ ।

---

१८९ यह छन्द वियोगिनी नाम से प्रसिद्ध है ।

१९० यह छन्द जयकीर्ति ने श्री पाल्यकीर्तीश का माना है । छन्दोऽनुशासन- ३ ।२१ ।

१९१ यह छन्द जयकीर्ति ने स्वयम्भूदेवेश का माना है । छन्दोऽनुशासन- ३ ।२२ ।

१९२ यह छन्द जयकीर्ति ने प्रज्ञामहोदय का माना है । छन्दोऽनुशासन- ३ ।२५ ।

१५४ (१३,१३,१३,१३)	प्रकीर्णक (रुचि रुचिरा मे से एक-दो तीन पाद मिश्रित १४ भेद) छन्दोऽनुशासन-२ ।१६५ ।
१५५ (१०,१०,११,१३) कीर्ति	(स ज स ल, न स ज ग, न भ ज ल ग, स ज सजग) छन्दोऽनुशासन-४ ।३६ ।
१५६ (८,९,९,८) रमा	(प्रतिचरण प्रारम्भ मे जगण + यथेच्छ ल अथवा नगण और ल ग) छन्दोऽनुशासन-६ ।३१ ।

मात्रावृत्त (चतुष्पदी)

१५७ मागधी	(८ + ल + २ + ल ग, १० + ३ + ल ग, अर्थात् १४,१६,१४,१६ मात्राए) छन्दोऽनुशासन-६ ।२६ ।
१५८ गुण	(प्रत्येक पाद मे कोई भी ३ चतुर्मात्रगण किन्तु तृतीय पाद के अत मे दो लघु) छदोऽनुशासन-६ ।२७ ।
१५९ द्विपदी	(प्रत्येक पाद मे एक षण्मात्र, पाच चतुर्मात्र और अत मे एक गुरु) छन्दोऽनुशासन-६ ।२८ ।
१६० अब्जनाल	(प्रत्येक पाद मे वही द्विपदी का लक्षण अन्त मे एक गुरु से अधिक छन्दोऽनुशासन-६ ।२९ ।)
१६१ कामलेखा	(प्रत्येक पाद मे वही द्विपदी का लक्षण, अतिम गुरु से पूर्व, लघु के स्थान पर भी गुरु) छन्दोऽनुशासन-६ ।२९ ।

(११) वृत्तजाति समुच्चय

वृत्तजातिसमुच्चय के रचयिता विरहाक है। विरहाक के समय निर्धारण मे कोई विशेष साहित्यिक उल्लेख नही मिलता। डा० ह० दा० वेलणकर ने उनका समय ९वी या १०वी शती माना है।[१९३] विरहाक ने अपनी रचना मे पिगल, भुजगाधिप, विषधर, वृद्धकवि, सालाहण तथा हाल छन्द शास्त्रियो तथा कवियो का उल्लेख किया है।[१९४] जिससे यह सकेत मिलता है कि विरहाक हेमचन्द्र से प्राचीन है।[१९५] वृत्त जातिसमुच्चय पर सवत् ११९२ (१२४९ ई०) की एक टीका मिलती है, जिसके रचयिता गोपाल है।[१९६] फलत विरहाक का समय टीका के समय से कम से कम २००-२५० वर्ष पुराना तो होना ही चाहिये, अत उसका समय १०वी शती के उत्तरार्द्ध मे जयकीर्ति के पश्चात् निश्चित किया जाता है।

विरहाक विशेषत **प्राकृत छन्द शास्त्री** है। इनकी रचना में ३२४ पद्य है, जो छ नियमो (परिच्छेदो) मे विभक्त है। पचम नियम मे उन ५० सस्कृत वर्णिक छन्दो के लक्षण दिये है, जो प्राय सस्कृत कवियो द्वारा प्रयुक्त किये जाते थे। पचम नियम की भाषा सस्कृत है, जिसमे ५० पद्य है और शेष पाच नियमो, प्रथम से षष्ठ तक की भाषा प्राकृत है, जिसमे २७४ पथ हैं। इसमे प्राकृत द्विपदियो का विवरण छन्द शास्त्री भुजगाधिप, सालाहण तथा वृद्धकवि के अनुसार दिया गया है।[१९७] इस रचना

---

१९३ ह० दा० वेलणकर, वृतजाति समुच्चय, जे० आर० ए० एस०, बम्बई ब्राच वोल्यूम ५ १९२५, पृ० ३२

१९४ वृतजाति समुच्चय-४ ।१३, २ ।८-९ और ३ ।१२, १ ।२२ और २ ।७, २ ।८-९, ३ ।१२, २ ।८-९, ३ ।१२ ।

१९५ डा० भोलाशकर व्यास, प्राकृत पैगलम्, भाग २, पृ० ३६५ ।

१९६ गोपालकृतविरहाक विरचित वृतजातिसुच्चय की टीका, पाण्डुलिपि, जैसलमेर सवत् ११९२ ।

मे प्राकृत के १५१ मात्रिक छन्दो का विवेचन मिलता है और इसमे यति का कही भी उल्लेख नही मिलता। अत ऐसा जान पडता है कि विरहाक उस सम्प्रदाय का छन्द शास्त्री था, जो छन्दो मे यति पर जोर नही देता और छन्दो मे उसके अस्तित्व को आवश्यक नही मानता। सस्कृत के वर्णिक छन्दो के लक्षणो मे नगण, मगणादि वर्णिक गणो को लक्षित न कर उन्ही पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग करता है, जिनकी तालिका प्रथम नियम मे दी गयी है। पचम नियम मे ५० सस्कृत वर्णिक छन्दों के अतिरिक्त अन्य नियमे मे भी कुछ सस्कृत के वृत्त यत्र-तत्र लक्षित किये गये है, जिनमे से विरहाक का लौकिक सस्कृत छन्द शास्त्र मे निम्नाकित १४ वृत्तो का योगदान है, शेष लक्षित छन्द भरत से जयकीर्ति पर्यन्त लक्षणकारो की रचनाओ मे लक्षित हो चुके है।

विरहाङ्क के स्वतन्त्र लक्षित छन्द (समवृत्त)

अनुष्टुप् (अष्टाक्षरपाद)

१ गाथ	(र स ग ग)	वृत्तजातिसमुच्चय-४ ।५७ ।
२ हसिनी	(र य ल ग)	वृत्तजातिसमुच्चय-४ ।७२ ।
३ श्यामा	(त स ग ग)	वृत्तजातिसमुच्चय-५ ।१० ।
४ सुविकसितकुसुम	(न न ल ग)	वृत्तजातिसमुच्चय-५ ।१४ ।

त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)

५ विभूषणा	(न र र ल ग)	वृत्तजातिसमुच्चय-४ ।४ ।

शक्वरी (चतुर्दशादारपाद)

६ तरगक	(भ भ भ भ ग ग)	वृत्तजातिसमुच्चय-५ ।२२ ।

अतिशववरी (पचदशाक्षरपाद)

७ श्री	(स स स स स)	वृत्तजातिसमुच्चय-३ ।२१ ।
८ सगतक	(भ भ य स स)	वृत्तजातिसमुच्चय-४ ।६४ ।

अष्टि (षोडशाक्षरपाद)

९ प्रमुदिता	(भरनरनग)	वृत्तजातिसमुच्चय-५ ।३३ ।

कृति (विशत्यक्षरपाद)

१० शशाकरचित	(त भ ज भ ज भ ल ग)	वृत्तजातिसमुच्चय-५ ।४४ ।

विकृति (त्रयोविशत्यक्षरपाद)

११ हयलीलगति	(न ज भ ज भज ज ल ग)	वृत्तजातिसमुच्चय-५ ।४७ ।

अर्धसमवृत्त

१२ (९,१०,९,१०) भामिनी (स स स, १,३ पाद मे, भ भ भ ग, २,४ पाद मे)
वृत्तजातिसमुच्चय-३ ।५१ ।

१३ (१०,१२,१०,१२) प्रसन्ना (भ भ भ ग, १,३ पाद मे, स स स स, २,४ पाद मे)
वृत्तजातिसमुच्चय-३ ।५२ ।

मात्रावृत (चतुष्पदी)

१४ शम्या (प्रत्येक पाद मे पचमात्र, चतुर्मात्र, जगण या पचमात्र और गुरु हो)
वृत्तजातिसमुच्चय-४ ।२३ ।

---

१९७ भुजआहिवसालाहण बुड्ढकइनिरुविआण दुवईण ।
णामाइ जाइ साहेमि तुज्झ ताइबिअ कमेण । वृत्तजातिसमुच्चय-२ ।९ ।

(१२) छन्द शेखर

छन्द शेखर के रचयिता कवि राजशेखर है। इनके पिता का नाम ठक्कुरदुदक और माता का नाम नागदेवी था। यह लाहट के पौत्र और यश के प्रपौत्र थे। इनकी रचना छन्द शेखर भोजदेव को प्रिय थी।[१९८] यह भोजदेव धारानरेश थे, जिनका शासनकाल १००५ से १०५४ ई० था।[१९९] अत राजशेखर का भी उक्त काल ही माना जा सकता है। छन्द शेखर के प्रकाशित अश का आधारभूत हस्तलेख, जो रचयिता से भिन्न अन्य किसी व्यक्ति द्वारा चित्तौड (चित्रकूट) मे लिखा गया था, जिस पर सवत् ११७९ पडा है।[२००] उस उक्त प्रति से ग्रन्थ का रचयिता निश्चित ही १०० या १२५ वर्ष पूर्व विद्यमान था, श्री भोजदेव के उल्लेख से उसका समय निश्चित प्रतीत होता है। यह राजशेखर कविराज राजशेखर[२०१] और बाद के राजशेखर सूरि[२०२] से भिन्न है।

छन्द शेखर सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रश तीनो छन्द परम्पराओं का विवेचन प्रस्तुत करता है। इसके प्रथम चार अध्यायो मे सस्कृत तथा प्राकृत छन्दो का तथा अतिम पचम अध्याय मे अपभ्रश छन्दो का विवेचन है। इस पर स्वयम्भू के स्वयम्भूछन्दस् का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। छन्दो का वर्गीकरण तथा विवरण स्वयम्भू के अनुसार ही है और कही-कही तो राजशेखर के पद्य स्वयम्भू के प्राकृत छन्दो के सस्कृत रूपान्तर जान पडते हैं।[२०३] इनके द्वारा लक्षित सस्कृत वृत्तो मे इनका स्वतत्र रूप से लिखित कोई भी छन्द प्राप्त नही होता। इनके सभी लक्षित छन्द भरत-पिगल से लेकर विरहाक पर्यन्त लक्षणकारो की रचनाओ मे लक्षित हो चुके हैं।

(१३) क्षेमेन्द्रकृत सुवृत्ततिलक

सुवृत्ततिलक के रचयिता आचार्य क्षेमेन्द्र है। व्यासदास, सर्वमनीषिशिष्य और परममहेश्वर इनके उपनाम हैं। इनके पिता का नाम प्रकाशेन्द्र, पितामह का नाम निम्नाशय तथा प्रपितामह का नाम सिन्धु था। इनके पुत्र का नाम सोमेन्द्र था।[२०४] यह काश्मीरी ब्राह्मण थे और तत्कालीन काश्मीरी शासक अनन्त तथा कलश के राजपण्डित थे। महाराजा अनन्त का समय १०२८ ई० से १०६३ ई० तथा कलश का समय १०६३ ई० से १०८९ ई० था।[२०५] समयमातृका और दशावतारचरित दोनो क्षेमेन्द्र की रचनाए हैं। समयमातृका का रचनाकाल १०५० ई० तथा दशावतारचरित का रचना काल

---

१९८ यस्यासीत्प्रपितामहो यश इति श्रीलाहटस्त्वार्यक ।
तातष्ठक्कुरदुद्दक स जननी श्री नागदेवी स्वयम् ॥
स श्रीमानिह राजशेखर कवि श्रीभोजदेवप्रिय ।
छन्द शेखरमार्हतोऽप्यरचयत्प्रीत्यै स भूयात्सताम् ॥
ह० दा० वेलणकर, छन्द शेखर, ब्रा० ब्रा० रा० ए० सो० की पत्रिका, १९४६, पृ० १४

१९९ डा० भोलाशंकर व्यास, प्राकृतपैंगलम, भाग-२, पृ० ३६९, वाराणसी, १९६२।

२०० वही।

२०१ कर्पूरमजरी आदिग्रन्थों के रचयिता राजशेखर, द्रष्टव्य-आचार्य राजशेखर (डा० श्यामा वर्मा) पृ० १२-१७।

२०२ आचार्य राजशेखर, पृ० १२ पर प्रबध कोष के रचयिता राजशेखर सूरि।

२०३ द्रष्टव्य-छन्द शेखर के अध्याय १ से ४ और स्वयम्भूछन्द के अध्याय ४ से ८ तक।

२०४ ब्रजमोहन झा, सुवृत्ततिलक, भूमिका, पृ० २१।

२०५ बलदेव उपाध्याय, सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० २०४।

१०६६ ई० स्वय ग्रन्थकार ने दिया है।[२०६] डा० ए० बी० कीथ ने इनका समय हेम चन्द्र से पूर्व ११वी शती माना है[२०७] और मेक्डानल के अनुसार क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामजरी की रचना १०३४ ई० मे हुई थी।[२०८] अत इनका समय १०५० से १०७० ई० के मध्य माना जा सकता है।

सुवृत्ततिलक क्षेमेन्द्र का छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ है, जिसमे छन्दोविचार के क्रम से उनके गुणदोष विवेचनात्मक एक नवीन पद्धति का आश्रय लिया गया है। जिससे छद शास्त्र मे यह अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसमे तीन विन्यास है। प्रथम विन्यास मे कुछ प्रसिद्ध गिने चुने २७ छन्दो के लक्षण तथा उदाहरण दिये गये है। जिनमे तनुमध्या, कुमारललित, विद्युन्माला, प्रमाणी, श्लोक (अनुष्टुप्), शिशुभृता (भुजगाग्रा), रुक्मवती, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, दोधक, शालिनी, रथोद्धता, स्वागता, तोटक, वशस्थ, द्रुतविलम्बित, प्रहर्षिणी, वसन्ततिलका, मालिनी, नुर्कुट, पृथ्वी, हरिणी, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा छद को क्रमश सोदाहरण लक्षित किया गया है। द्वितीय विन्यास मे उक्त २७ छन्दो मे से तनुमध्या, कुमारललित, विद्युन्माला, प्रमणी, शिशुभृता, रुक्मवती, इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा को छोडकर शेष १९ छन्दो के गुण दोष प्रदर्शित किये गये है। तृतीय विन्यास मे अनुष्टुप्, उपजाति, रथोद्धता, वशस्थ, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, हरिणी, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा इन १२ वृत्तो के ही प्रयोगविषय बताये गये है। दोधक, त्रोटक और नर्कुट वृत्त का केवल मुक्तक रचना के लिए विनियोग बताया है।

तीनो विन्यासो मे १२४ कारिकाये और ९० उदाहरण पद्य प्रयुक्त हुए हैं। उदाहृत पद्यो मे क्षेमेन्द्र के ३९ और ५१ पद्य प्रसिद्ध तथा अप्रसिद्ध कवियो के है, जिनमे कालिदास के ११, भट्टेन्दुराज के ३, वाणभट्ट, राजशेखर, भवभूति, भर्तृहरि, वीरदेव, मुक्ताकण, भट्टश्यामल, रत्नाकर, यशोवर्मा, श्रीचक्र के दो-दो, उत्पलराज, तुञ्जीर, कलशक, श्रीहर्ष, परिमल, भट्टवल्लट, गन्दिनक, साहिल, भट्टनारायण, दीपक, लाट-डिण्डीर, रिस्सु, भर्तृमेण्ठ, अभिनन्द, भारवि, महर्षि वेदव्यास और वैद्य वाग्भट्ट का एक-एक पद्य है। इस प्रकार इस छोटे से ग्रन्थ मे छन्द शास्त्रोपयुक्त सामग्री के साथ विभिन्न **अप्रसिद्ध कवियो का साहित्यिक परिचय भी प्राप्त होता है**। ग्रन्थ मे लक्षित सभी छन्द भरत-पिगलादि पूर्वाचार्यो के ग्रन्थों मे लक्षित हो चुके है। अत क्षेमेन्द्र का कोई स्वतत्र लक्षित छन्द नही है।

(१४) वृत्तरत्नाकर

वृत्तरत्नाकर के रचयिता भट्टकेदार है, जो वैदिक शैव ब्राह्मण पव्वेक के पुत्र थे।[२०९] इसके अतिरिक्त उन्होने अपने जन्मस्थान तथा काल के विषय मे कोई उल्लेख नही किया। ए० वी० कीथ ने इनका समय १५वी शती माना है।[२१०] किन्तु ११वी शती की इसी ग्रन्थ की त्रिविक्रमकृत टीका प्राप्त होने से ह० दा० वेलणकर ने इनका समय ११वी शती स्वीकार किया है।[२११] इनकी रचना जनता मे बहुत प्रिय हुई, जिससे इस पर बहुत सी टीकाए लिखी गयी, जिनमे ४५ टीकाओ का उल्लेख मिलता है।[२१२] ये टीकाए विक्रम सवत् १२४६ से सन् १९१९ तक लिखी गयी है, जिनमे स० १२४६ की

---

२०६ बलदेव उपाध्याय, सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० २७४

२०७ ए० वी० कीथ, ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिट्रेचर, पृ० १३५।

२०८ ए मैक्डानल, हिस्ट्री आफ सस्कृत लिट्रेचर, पृ० ३७६।

२०९ ह० दा० वेलणकर, जयदामन् मे प्रकाशित वृत्त रत्नाकर-१।२ और ६।९।

२१० ए० वी० कीथ, ए० हिस्ट्री आफ सस्कृत लिट्रेचर, पृ० ४१७।

२११ जयदामन् परिचय, पृ० ४१-४२।

२१२ विनयसागर, वृत्तमौक्तिक, अष्टमपरिशिष्ट, पृ० ५३०-३१।

सुल्हणकृत सुकविहृदयानन्दिनी[२१३], सवत् १३२९ की सोमचन्द्रगणी की टीका[२१४], १६वी शती के सिंहलवासी बौद्धभिक्षु रामचन्द्र बिबुध की टीका[२१५], सवत् १६९४ की समयसुदरकृत सुगमावृति टीका[२१६] सवत् १७३२ की भास्करकृतसेतु[२१७], शक सवत् १६०२ (१६८० ई०) की भट्टनारायणकृत टीका[२१८], शक-१७११ (१७८९ ई०) की जनार्दनकृत भावार्थदीपिका[२१९], सन् १८८७ की विश्वनाथकृत प्रभा[२२०], सन् १९०२ की सदाशिवकृत टीका[२२१] और सन् १९१९ की श्रीकण्ठकृत टीका[२२२] उपलब्ध है। इनमे नारायणी टीका सर्वप्रसिद्ध है किन्तु सुल्हण की टीका उक्त टीकाओ मे सबसे प्राचीन है, जो विक्रम सवत् १२४६ (११८९ ई०) की लिखी हुई है। अत केदारभट्ट सुल्हण से पूर्ववर्ती है। वृत्तरत्नाकर की एक पाण्डुलिपि जेसलमेर भाण्डार मे सवत् ११९२ (११३५ ई०) की प्राप्त होती है।[२२३] जिससे स्पष्ट होता है कि भट्टकेदार ने वृत्तरत्नाकर की रचना सन् ११०० से पूर्व की होगी। अत उनका समय ११वी शती मानना उचित प्रतीत होता है।

वृत्तरत्नाकर की कई हस्तलिखित पाण्डुलिपिया प्राप्त होती है, जो यहा छदो के सकलन करते समय व, स, द, ई के सकेनो से यथास्थान छन्दो के साथ निर्दिष्ट की गई है। वृत्तरत्नाकर मे ६ अध्याय है, जिनमे ६३ कारिकाये, २८ अर्द्धकारिकाये और १२० लक्षणसूत्र है। ग्रन्थ में १८१ छन्दो का विवरण है। छन्दो के लक्षण तथा उदाहरण एकसाथ उसी कारिका अथवा सूत्र में दिये गये है, जिससे यह लक्ष्यलक्षणपरक ग्रन्थ कहा जाता है। इसमे जयदेव की लक्षणशैली अपनायी गयी है, जिसमे छन्दो के लक्ष्यलक्षण का एकीकरण किया है। प्रथमाध्याय परिभाषाध्याय है, जिसमे मगणादि तथा छन्दोभेद पर विचार किया गया है। द्वितीयाध्याय मे ३९ मात्रावृत्तो के सोदाहरण लक्षण है। तृतीयाध्याय में उक्तादि २६ छन्दोजानियो मे ११० छन्दो के लक्षण है। चतुर्थाध्याय मे ११ अर्धसमवृत्तो के सोदाहरण लक्षण है। पचमाध्याय मे १२ विषमवृत्तो के सोदाहरण लक्षण हैं और षष्ठ अध्याय मे प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, एकद्वयादिलगक्रिया, सख्या तथा अध्वयोग नामक षट् प्रत्ययो का छन्दो की उत्पत्ति के बोधनार्थ और अनुक्त छन्दो के स्वरूप ज्ञानार्थ निरूपण किया गया है। ग्रन्थ में लक्षित १८१ छन्दो मे केदार भट्ट के निम्नाकिन १९ स्वतत्रलक्षित छन्द हैं, शेष छन्द भरत-पिगलादि प्राचीन आचार्यो के लक्षणग्रन्थो मे

---

२१३ पाण्डुलिपि स० ४८४ (१८९५-१९०२ ई०) और स० ८६९ (१८८६-१८९२ ई०) भाण्डारकर शोध-सस्थान, पूना, और पाडुलिपि स० १२१-बी० बी० आर० ए० एस० का डेस्क्रिप्टिव कैटेलाग।

२१४ पाण्डुलिपि स० ७२४ (१८९१-९५) तथा स० ५५७ (१८८४-८७ ई०) भाण्डारकर शोध-सस्थान पूना।

२१५ निर्णयसागर प्रेस, बम्बई-१९३६ का प्रकाशित पचम सस्करण (वृत्तरत्नाकर)।

२१६ ह० दा० वेलणकर, जयदामन्, क्रिटिकल, पृ० ४३ और ५२।

२१७ पाण्डुलिपि स० १२२-द्रष्टव्य-बी० बी० आर० ए० एस० का डेस्क्रिप्टिव कैटेलाग।

२१८ काशी सस्कृतसीरीज, १९२७ का प्रकाशित वृत्तरत्नाकर सस्करण।

२१९ पाण्डुलिपि स० ४८४ (१८९९-१९१५) भाण्डारकर शोध-सस्थान, पूना।

२२० पाण्डुलिपि स० ६०८ (१८८७-९१) भाण्डारकर शोध-सस्थान, पूना।

२२१ पाण्डुलिपि स० १७६ (१९०२-१९०७) भाण्डारकर शोध-सस्थान, पूना।

२२२ पाण्डुलिपि स० १०४ (१९१९-१९२४) भाण्डारकर शोध-सस्थान, पूना।

२२३ वृत्तरत्नाकर की पाण्डुलिपि-सवत् ११९२-भाण्डार, जेमलमेर में है।
दलाल का डेस्क्रिप्टिव कैटेलाग, गायक-ओरियण्टल सीरीज, बडौदा, पृ० ३०।

लक्षित हो चुके है ।

भट्टकेदार के स्वतत्र लक्षित छन्द

गायत्री (षडक्षरपाद)		
१ वसुमती	(त स)	वृत्तरत्नाकर-३ ।९ ।
२ कुलक	(र स)	वृत्तरत्नाकर (ब)-३ ।९ ।८ ।[२२४]
अनुष्टुप् (अष्टाक्षरपाद)		
३ वितान	(ज त ग ग)	वृत्तरत्नाकर-३ ।१९ ।
पक्ति (दशाक्षरपाद)		
४ मनोरमा	(न र ज ग)	वृत्तरत्नाकर-३ ।२७ ।
५ दीपकमाला	(भ म त ग)	वृत्तरत्नाकर (ब) ३ ।२८ ।
त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)		
६ शिखण्डि	(जसरगग)	वृत्तरत्नाकर (स) ३ ।४३ ।२ ।[२२५]
अतिजगती (त्रयोदशाक्षरपाद)		
७ चन्द्रिका	(न न त र ग)	वृत्तरत्नाकर-३ ।७० ।
८ प्रभावती	(तभरजग)	वृत्तरत्नाकर (स)-३ ।७० ।३
९ गौरी	(न न स र ग)	वृत्तरत्नाकर (स) ३ ।७० ।८ ।
शक्वरी (चतुर्दशाक्षरपाद)		
१० अलोला	(म स म भ ग ग)	वृत्तरत्नाकर-३ ।७७ ।
११ कुटिल	(स भ न य ग ग)	वृत्तरत्नाकर (द)[२२६]-३ ।७७ ।१२ ।
अतिशक्वरी (पचदशाक्षरपाद)		
१२ चन्द्रलेखा	(न र म य य)	वृत्तरत्नाकर—३ ।८४ ।
१३ चन्द्रलेखा	(र र र र र)	वृत्तरत्नाकर (ब) ३ ।८४ ।७
धृति (अष्टादशाक्षरपाद)		
१४ बरकृत्तन	(रसजयभर)	वृत्तरत्नाकर (ई)-३ ।९४ ।१५ ।[२२७]
अतिधृति (ऊनविशत्यक्षरपाद)		
१५ रचना	(न ज भ य भ जग)	वृत्तरत्नाकर (द०)-३ ।९६ ।३ ।
आकृति (द्वाविशत्यक्षरपाद)		
१६ लालित्य	(म स ज य भ भ न ग)	वृत्तरत्नाकर (द) -३ ।१०० ।३ ।

---

२२४ वृत्तरत्नाकर की पाण्डुलिपि न० ७२१ (१८९१-९५ ई०), जो भाण्डारकर शोध-सस्थान, पूना के पाण्डुलिपि पुस्तकालय मे सुरक्षित है, जिसे यहां वृत्त रत्नाकर (ब) के रूप मे निर्दिष्ट किया गया है ।

२२५ वृत्तरत्नाकर की पाण्डुलिपि न० ६०, जो जयदामन में पृष्ठ ७७ से ८६ पर प्रकाशित है, जिसे यहा वृत्तरत्नाकर (स) के रूप मे निर्दिष्ट किया गया है ।

२२६ वृत्तरत्नाकर की पाण्डुलिपि स० १२०, जो रायल एशियाटिक सोसायटी, बम्बई के पुस्तकालय मे सुरक्षित है । जिसे यहा वृत्तरत्नाकर (द) के रूप मे निर्दिष्ट किया है ।

२२७ वृत्तरत्नाकर की पाण्डुलिपि न० ११९, जो रायल एशियाटिक सोसायटी, बम्बई के पुस्तकालय में सुरक्षित है, जिसे यहा वृत्तरत्नाकर (ई) के रूप मे निर्दिष्ट किया है ।

उत्कृति (षड्विशत्यक्षरपाद)

१७ भुजगेरित (मयनतननर य ल ग) वृत्तरत्नाकर (स०)-३ ।१०६ ।२ ।

मात्रावृत्त (द्विपदी)

१८ शिक्षा (२८ ल + ग, ३० ल + ग) वृत्तरत्नाकर-२ ।३९ ।

१९ खञ्जा (३० ल + ग, २८ ल + ग) वृत्तरत्नाकर-२ ।४० ।

(१५) रत्नमञ्जूषा

रत्नमञ्जूषा एक छन्द शास्त्रीय सूत्रग्रन्थ है। इसके रचयिता का नाम अद्यावधि अज्ञात है। इस रचना की जो पाण्डुलिपिया मिलती है[२२८], उनमे ग्रन्थकार का नाम नही मिलता और न उसके भाष्यकार का ही। भाष्यकार ने भी अपने भाष्य मे कही भी ग्रथकार के नाम का उल्लेख नही किया है, किन्तु भाष्य के अन्त मे ११ श्लोक ऐसे मिलते है जो लेखक द्वारा उद्धृत से प्रतीत होते है और अन्तिम ११वे श्लोक मे **पुन्नागचन्द्र** नामक रचयिता के नाम का उल्लेख भी किया गया।[२२९] जिससे प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार ने ही सम्भवत अपनी रचनापद्धति को समझाने के लिये भाष्य की भी रचना की हो और भाष्यान्त के अन्तिम श्लोक मे अपने नाम—"**पुन्नागचन्द्र**" को प्रकट किया हो। अधिकतर विद्वान् इस रचना को **अज्ञातकर्तृक** जैन कृति मानते है।[२३०] ग्रन्थ के सम्पादक श्री हरि दामोदर वेलणकर ने प्रस्तावना मे लिखा है कि इसके कुछ छन्द हेमचन्द्राचार्य को ही ज्ञात है। पिगल तथा केदार को नही।[२३१] जिसमे इसका समय हेमचन्द्र से पूर्व स्वीकार किया गया है।[२३२]

ग्रन्थ मे आठ अध्याय है। प्रथम अध्याय मे छन्दोलक्षणचिन्हो तथा पारिभाषिक शब्दो का निर्देश है। इसमे छदोलक्षण चिह्न तथा नाम पिगल के मगणादि चिह्नो से भिन्न है। द्वितीय अध्याय से चतुर्थ अध्याय तक क्रमश २१ अर्द्धसम, १७ मात्रिक तथा १५ विषमवृत्तो का प्रतिपादन है और पचमाध्याय से सप्तमाध्याय तक ८५ वर्णवृत्तो के लक्षण दिये गये है। अष्टमाध्याय मे छन्दो की पस्तारक्रिया प्रदर्शित की गई है। समस्त ग्रन्थ मे २३० सूत्र है, जिनमे १३८ छन्दो के लक्षण है और भाष्य मे उनके उदाहरण है।[२३३] भाष्य मे १४३ पद्य है। उदाहरणो मे अधिकतर उदाहरण मुद्रा द्वारा अपने-अपने छद का परिचय देते है। उदाहरणो मे एक श्लोक भास के प्रतिज्ञा यौगन्धरायण[२३४] से और एक कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल से [२३५] दिया गया है, शेष पद्य भाष्यकार के लिखित प्रतीत होते है। ग्रन्थ मे लक्षित १३८ छदो मे से रत्नमञ्जूषाकार का लौकिक सस्कृत छन्द शास्त्र मे निम्नाकित २१ छन्दो का योगदान है।

रत्नमञ्जूषाकार के स्वतन्त्र लक्षित छन्द

गायत्री (षडक्षरपाद)

---

२२८ पाण्डुलिपि न० ८७१ (ए०) तथा १०२५ (बी०), राजकीय प्राचीन पुस्तकालय, मैसूर।

२२९ एकच्छन्दसि खण्डमेरुरमल पुन्नागचन्द्रोदित । ११वे श्लोक की अतिम पक्ति।
रत्नमञ्जूषा, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९४४।

२३० रत्नमञ्जूषा, प्रस्तावना, पृ० ६ और वृत्तमौक्तिक, भूमिका, पृ० १५ ।

२३१ ह० दा० वेलणकर, रत्नमञ्जूषा, प्रस्तावना, पृ० ६ ।

२३२ विनयसागर, वृत्तमौक्तिक, भूमिका, पृ० १५ ।

२३३ रत्नमञ्जूषा, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९४४।

२३४ रत्नमञ्जूषा, ६ ।२७ पर प्रतिज्ञा यौगन्धरायण-२ ।३ पद्य-मम हयखुरभिन्नम्______ ।

२३५ रत्नमञ्जूषा, २ ।४ पर अभिज्ञान शाकुन्तल-१ ।३३-पद्य-गच्छति पुर शरीरम्______ ।

१ सूचीमुखी	(स म)	रत्नमञ्जूषा-५ ।७ ।
२ शिखण्डिनी	(य म)	रत्नमञ्जूषा-५ ।८ ।
जगती (द्वादशाक्षरपाद)		
३ समान	(र ज र ज)	रत्नमञ्जूषा-५ ।१ ।
४ प्रमाण	(ज र ज र)	रत्नमञ्जूषा-५ ।२ ।
शक्वरी (चतुर्दशाक्षरपाद)		
५ राजरमणीय	(ज स र न ग ग)	रत्नमञ्जूषा-६ ।२१ ।
अष्टि (षोडशाक्षरपाद)		
६ वेल्लिता	(स स न न म ग)	रत्नमञ्जूषा-६ ।३० ।
७ कोमललता	(म त स त त ग)	रत्नमञ्जूषा-६ ।३२ ।
धृति (अष्टादशाक्षरपाद)		
८ वाचालकाची	(मरभयर र)	रत्नमञ्जूषा-७ ।३ ।
अतिधृति (ऊनविशत्यक्षरपाद)		
९ वायुवेगा	(म स ज स न ज ग)	रत्नमञ्जूषा-७ ।६ ।
१० माधवीलता	(म र भ स स जग)	रत्नमञ्जूषा-७ ।७ ।
कृति (विशत्यक्षरपाद)		
११ दीपकशिखा	(भनयननरलग)	रत्नमञ्जूषा-७ ।८ ।
प्रकृति (एकविशत्यक्षरपाद)		
१२ कथागति	(तर भ न ज भ र)	रत्नमञ्जूषा-७ ।१३ ।
१३ ललितविक्रम	(भ र नर न र र)	रत्नमञ्जूषा-७ ।१४ ।
आकृति (द्वाविशत्यक्षरपाद)		
१४ दीपार्चि	(म स जस जस ज ग)	रत्नमञ्जूषा-७ ।१६ ।
विकृति (त्रयोविशत्यक्षरपाद)		
१५ वृन्दारक	(जसजसययययलग)	रत्नमञ्जूषा-७ ।१८,१९ ।
सकृति (चतुविशत्यक्षरपाद)		
१६ विभ्रमगति	(मसजसततभर)	रत्नमञ्जूषा-७ ।२४ ।
अभिकृति (पचविशत्यक्षरपाद)		
१७ हसपदा	(त य भ भ न न न न ग)	रत्नमञ्जूषा-७ ।२७ ।
उत्कृति (षड्विशत्यक्षरपाद)		
१८ आपीड	(भ न न स म न न न ल ग)	रत्नमञ्जूषा-७ ।३० ।
अर्धसमवृत्त		
१९ (१३,१३) यमवती	(र ज र ज ग, ज र ज र ग)	रत्नमञ्जूषा-२ ।२७ ।

मात्रावृत्त चतुष्पदी

२० नृत्यगति (प्रत्येक पाद में कोई भी पाच चतुर्मात्रगण हों, जिनमे तृतीय और अतिम गण गुरुगण हो, और तृतीयगण पर यति हों) रत्नमञ्जूषा-३ ।२१-२४

२१ नटचरण (प्रत्येक पाद मे कोई भी तीन चतुर्मात्रगण हो और जिसके अन्तिमगण के अन्त मे गुरु हो और द्वितीय गण पर यति हो) रत्नमञ्जूषा-३ ।२५-२६

(१६) हेमचन्द्रकृत छन्दोऽनुशासन

आचार्य हेमचन्द्र का जन्म गुजरात के प्रधान नगर अहमदाबाद से ६० मील दूर दक्षिण-पश्चिम कोण मे स्थित धुधुका नगर मे वि० स० ११४५ (१०८८ ई०) मे कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि को हुआ था। इनके बचपन का नाम चागदेव था, जो सूरिपद प्राप्त कर हेमचन्द्र कहलाये। यह पूर्णतलगच्छीय देवचन्द्रसूरि के शिष्य थे और अणहिलपुर पत्तन के नृपति सिद्धराज जयसिह की सभा के प्रमुखतम विद्वान् तथा महाराजकुमारपाल के धर्मगुरु थे।[२३६] इनके पिता का नाम चाचिग और माता का नाम पाहिणी था।[२३७] प्रबन्ध चितामणि के अनुसार देवन्द्राचार्य ने स्तम्भतीर्थ के पार्श्वनाथ चेत्यालय मे विक्रम सवत् ११५४ मे माघ शुक्ल चतुर्दशी शनिवार को चागदेव का दीक्षानाम सोमचन्द्र रखा।[२३८] किन्तु प्रभावकचरित मे दीक्षासवत् ११५० मिलता है।[२३९] इसके अतिरिक्त इनका जीवनवृत ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य कुमारपाल प्रबन्ध और प्रबन्धकोश मे भी कुछ रूपान्तरित मिलता है।[२४०] विक्रम सवत् ११६६ मे उन्हे सूरिपद प्रदान किया गया, और सोमचन्द्र का हेम के समान कान्ति और चन्द्र के समान आह्लादकता होने के कारण हेमचन्द्र सज्ञा रखी गयी।[२४१] हेमचन्द्रसूरि के नाम से परिचय विक्रम सवत् ११८१ मे सिद्धराज जयसिह की सभा में दिया गया और उन्होने उसी के शासनकाल मे स० ११९९ के पूर्व अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ शब्दानुशासन और नाममाला की रचना की। जयसिह की मृत्यु के बाद राजा कुमारपाल के शासन मे हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन, छन्दोऽनुशासन, द्व्याश्रयकाव्य, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित और योगशास्त्र की रचना की।[२४२] राजा कुमारपाल का देहान्त ३० वर्ष ८ मास २७ दिन राज्य करके सन् ११७४ में हुआ था। जिसके ६ मासपूर्व हेमचन्द्र ने स० १२२९ (लगभग सन् ११७३ ई०) मे अपनी ऐहिक लीला समाप्त की थी।[२४३] अत छन्दोऽनुशासन का रचनाकाल सन् ११५० ई० के आस-पास हो सकता है।

छन्दो की दृष्टि से छन्दोऽनुशासन एक महत्वपूर्ण रचना है। इसमे सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश साहित्य के छन्दो का निरूपण किया गया है। मूलग्रन्थ सस्कृत सूत्रों मे है और उन पर स्वय आचार्य हेमचन्द्र ने स्वोपज्ञवृति भी सस्कृत मे ही लिखी है।[२४४] ग्रन्थ मे ८ अध्याय हैं, जिनमे ७४६ सूत्र है। इनमे ९७९ छन्दों के लक्षण है, जिनमे द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत ६२५ सस्कृत छन्दो को लक्षित किया गया है, जो सम, अर्धसम, विषम छन्दो के साथ १० द्विपदी है और चतुर्थ तथा पचम अध्याय के अपभ्रश प्रकरण से सप्तम अध्याय तक ३५४ प्राकृत छन्दों के लक्षण हैं, जिनमें १०४ द्विपदी, ९९ चतुष्पदी, ११३ अर्धचतुष्पदी, ५ पचपदी, २ अष्टपदी, ३ द्विभगी, २ त्रिभगी, ४ अर्द्धषट्पदी, शेप विषम तथा अन्य छन्द हैं। सस्कृत छन्दो के उदाहरणों मे ६२६ पद्य और प्राकृत छदो के उदाहरणो मे ३८० पद्य प्रयुक्त किये गये हैं। प्रथमाध्याय में छन्दो के लाक्षणिक चिह्न तथा अष्टमाध्याय मे छन्दो

---

२३६ डा० नेमिचन्द्रशास्त्री, आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन-पृ० ९।

२३७ चन्द्रप्रभसूरिकृत प्रभावकचरित का हेमचन्द्रसूरिप्रबन्ध-११-१२ श्लोक।

२३८ दृष्टव्य-मेरुतगुकृत प्रबन्ध चिन्तामणि।

२३९ प्रभावकचरित, श्लोक-२७-४५।

२४० कुमरपाल प्रबन्ध तथा प्रबन्धकोश।

२४१ आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन-पृ० १३-१४।

२४२ ह० दा० वेलणकर, जयदामन्, परिचय, पृ० ४६।

२४३ आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन-पृ० २३। जयदामन्, परिचय, पृ० ४६।

२४४ ह० दा० वेलणकर द्वारा सम्पादित-टीकासहित छन्दोऽनुशासन, बम्बई, १९६१।

के प्रस्तारादि पर विचार किया गया है।

आचार्य हेमचन्द्र ने पद्य काव्यो के अन्तर्गत ही छन्द माने है। वे गद्य काव्यो मे छन्द नही मानते।[२४५] उन्होने वैदिक छन्दो को लौकिक काव्यो मे उपयोगी नही माना है।[२४६] इसलिये उनका निरूपण न कर तत्कालीन लोकव्यवहार मे आने वाले छदो का ही निरूपण किया गया है।[२४७] ग्रन्थ मे छन्दो के विषय मे सात पूर्वाचायो-सैतव, काश्यप, भरत, पिगल, अहीन्द्र, जयदेव, स्वयम्भू के मत दिये गये है।[२४८] ग्रन्थ मे सातवाहन, श्रीहर्ष, धनमाल आदि कुछ कवियो के नाम से छन्दो मे उदाहरणान्तर भी मिलते है।[२४९] पूर्वाचार्यो मे सर्वाधिक उल्लेख भरत का मिलता है, जिसमे उनके नाम के साथ वृति मे बहुत-से छन्दो के नामान्तर दिये गये है, जो वर्तमान मे प्राप्त भरत के नाट्य-शास्त्र मे प्राप्त नही होते।

छन्दोऽनुशासन के अध्याय द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ के अन्तर्गत जिन ६२५ सस्कृत वृत्तो के लक्षण दिये गये है, उनमे से बहुत-से वृत्त तो भरत-पिगलादि पूर्वाचार्यो की रचनाओ मे लक्षित हो चुके है। अत उनमे से आचार्य हेमचन्द्र का सस्कृत लौकिक छन्द शास्त्र मे निम्नाकित ९१ वृत्तो का योगदान है—

हेमचन्द्र द्वारा स्वतत्र लक्षित छन्द	लक्षण	ग्रन्थ सन्दर्भ
सुप्रतिष्ठा (पचाक्षरपाद)		
१ नन्दा	(तलग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२८।
२ सावित्री	(म ल ग)	छदोऽनुशासन-२ ।३०
गायत्री (षडक्षरपाद)		
३ तटी	(म र)	छदोऽनुशासन-२ ।३४।
४ गुरुमध्या	(स भ)	छदोऽनुशासन-२ ।३७
५ कच्छपी	(र न)	छन्दोऽनुशासन-२ ।४४।
उष्णिक् (सप्ताक्षरपाद)		
६ गान्धर्वी	(म म ग)	छदोऽनुशासन-२ ।५२।
७ हसमाला	(र र ग)	छदोऽनुशासन-२ ।५८।
अनुष्टुप् (अष्टाक्षरपाद)		
८ विभा	(त र ग ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।७२।
९ गुणलयनी	(न स ग ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।८४।
१० मही	(स स ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।८५।
बृहती (नवाक्षरपाद)		
११ वक्त्र	(भ म ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।८८।
१२ तार	(स स म)	छदोऽनुशासन-२ ।९८

२४५ गद्यकाव्ये न छन्दसामुपयोग। छन्दोऽनुशासन-१ ।१, वृत्ति भाग।

२४६ काव्योपयोगाभावाच्च न वैदिकानि छन्दासीह लक्षयिष्यन्ते। वही-१ ।१-वृत्ति भाग।

२४७ काव्योपयोगिना वक्ष्ये छन्दसामनुशासनम्-वही वृत्ति भाग-१ ।१।

२४८ छन्दोऽनुशासन-२ ।२३१ ।१, २ ।२३१ ।१, २ ।१२ ।१, (३३ वार) २ ।१२ से २ ।११०वे सूत्र तक वृतिभाग मे, २ ।२४३ ।१, २४४ ।१,३ ।४४ ।१,३ ।३२ ।१, ५२ ।१,२, ।२९७ ।१,३ ।५२। १,३ ।३२३ ।१।

२४९ छदोऽनुशासन-५ ।३२ ।१, ४ ।८५ ।१,३ ।७३ ।२ क्रमश

१३ सौम्या	(स स स)	छन्दोऽनुशासन-२ ।९९ ।
१४ सिहाक्राता	(म भ स)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१०५
पक्ति (दशाक्षरपाद)		
१५ पणव	(म न स ग)	छदोऽनुशासन-वृति-२ ।११० ।१ ।
१६ निलया	(न न न ग)	छदोऽनुशासन-२ ।११५ ।
१७ उषिता	(ज ज ज ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।११६ ।
१८ बन्धूक	(भ न म ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।११८ ।
१९ कलिका	(र म स ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१२१ ।
त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)		
२० प्रत्यवबोध	(भ त न ग ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१२३ ।
२१ रोचक	(भ भ र ग ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१२७
२२ विदुषी	(स स स ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१३१ ।
२३ वातोर्मि	(म भ भ ग ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१३७
२४ सारणी	(स ज य ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१५३
जगती (द्वादशाक्षरपाद)		
२५ कल्याण	(म म म म)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१७३ ।
२६ कमुदिनी	(र य न य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१८५
२७ मेघावली	(न र र र)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१८८ ।
२८ ह्री	(न न न स)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१९२
२९ कोल	(ज स स य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।१९३ ।
अतिजगती (त्रयोदशाक्षरपाद)		
३० क्षमा	(न त त र ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२०० ।
३१ श्रेयोमाला	(म म ज ज ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२०१
३२ क्ष्मा	(न न म र ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२०३ ।
३३ चन्द्रिका	(न न र य ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२०५
३४ मजुभाषिणी	(ज त स ज ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२०६ ।
३५ लय	(न स ज ज ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२०८ ।
३६ विद्युन्मालिका	(न स त त ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२०९ ।
३७ अभ्रक	(त भ ज ज ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।११५
३८ कोड्डुम्भ	(म त स र ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२१६ ।
शक्वरी (चतुर्दशाक्षरपाद)		
३९ सिह	(न भ र स ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२२८ ।
४० सुकेशर	(न र न र ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२३३
४१ इन्दुवदना	(भ ज स न ल ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२३८
४२ शरभललित	(न भ न त ग ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२३९
अतिशक्वरी (पचदशाक्षरपाद)		
४३ चन्द्रलेखा	(र र म य य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२५१ ।
४४ गौ	(न न भ भ र)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२५७

४५ भोगिनी	(न न र य य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२५८ ।
४६ शिशु	(त ज स स य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२५९
४७ केतन	(भ य स स य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२६० ।
४८ मृदग	(त भ ज ज र)	छन्दोऽनुशासन-२ ।६१
अष्टि (षोडशाक्षरपाद)		
४९ कामुकी	(म म म म म ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२६६ ।
५० कामुकी	(स स स स स ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२६७
५१ चलधृति	(न न न न न ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२६८ ।
५२ सुरतललिता	(मनसतरग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२८०
अत्यष्टि (सप्तदशाक्षरपाद)		
५३ वाणिनी	(नजभजजगग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।२९९ ।
धृति (अष्टादशाक्षरपाद)		
५४ चित्रलेखा	(म त न य य य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३०३ ।
५५ भगि	(भ भ भ भ न य)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३१९
५६ बुद्बुद	(स ज स ज तर)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३२० ।
अतिधृति (ऊनविशत्यक्षरपाद)		
५७ मुग्धक	(य म न न र र ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३२९ ।
५८ तरुणीवदनेन्दु	(सससससससग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३३३
कृति (विशत्यक्षरपाद)		
५९ सद्रत्नमाला	(मनसनमयलग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३४० ।
प्रकृति (एकविशत्यक्षरपाद)		
६० मतक्रीडा	(ममतननननस)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३४८ ।
विकृति (त्रयोविशत्यक्षरपाद)		
६१ चपलगति	(भमसभननननलग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३६३ ।
सकृति (चतुर्विशत्यक्षरपाद)		
६२ सुभद्र	(भ भ भ भ भ भ भ भ)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३६८
अभिकृति (पचविशत्यक्षरपाद)		
६३ चपल	(न ज ज य न न न न ग)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३७५ ।
सीमित (दण्डक)		
६४ मालाचित्र	(म त त त न न य य य २७ वर्ण)	छदोऽनुशासन-२ ।३८१ ।
६५ पन्नग[२५०]	(न ग + ८ रगण) (२८ वर्ण)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३९० ।
६६ प्रमोदमहोदय	(म य य त न न न र स ल ग) (२९ वर्ण)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३८२ ।
६७ दम्भोलि	(न + ९ तगण + ग = ३१ वर्ण)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३९० ।
६८ हैलावली	(न + १० तगण + ग) = ३४ वर्ण)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३९० ।
६९ मालती	(न + ११ तगण + ग) = ३७ वर्ण)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३९० ।
७० केलि	(न + १२ तगण + ग) = ४० वर्ण)	छन्दोऽनुशासन-२ ।३९० ।

२५० हेमतचन्द्र ने पन्नग का लक्षण (न ग + ८ रगण) दिया है, जो क्रमश (न + ८ तगण ग) होता है।

७१ ककेल्लि (न + १३ तगण + ग) = ४३ वर्ण) छन्दोऽनुशासन-२ ।३९० ।
७२ लीलाविलास (न + १४ तगण + ग = ४६ वर्ण) छन्दोऽनुशासन-२ ।३९० ।

असीमित (दण्डक)

७३ उत्कलिका (न न + कोई भी पचमात्र गण सख्या) छन्दोऽनुशासन[२५१]-२ ।४०१ ।

अर्द्धसमवृत्त

७४ (१२,१५) मकरावली (न भ भ र, नभ भ भ र) छन्दोऽनुशासन-३ ।१२ ।
७५ (१०,१२) करिणी (म स स ग, स भ भ स) छन्दोऽनुशासन-३ ।१३ ।
७६ (१७,१८) मानिनी (म र न ज न ल ग, न ज भ ज न स) छन्दोऽनुशासन-३ ।१९ ।
७७ (३,८) कामिनी (र, ज र ल ग) छन्दोऽनुशासन-३ ।२० ।
७८ (३,१२) शिखी (र, ज र ज र) छन्दोऽनुशासन-३ ।२१ ।
७९. (३,१६) नितम्बिनी (र, जर, जर जग) छन्दोऽनुशासन-३ ।२२ ।
८० (३,२०) वारुणी (र, जर, जर जर ल ग) छन्दोऽनुशासन-३ ।२३ ।
८१ (३,२४) वतसिनी (र, ज र जर जर जर) छन्दोऽनुशासन-३ ।२४ ।
८२ (८,३) वानरी (ज र ल ग, र) छन्दोऽनुशासन-३ ।२५ ।१
८३ (१२,३) शिखण्डी (जर जर, र) छन्दोऽनुशासन-३ ।२५ ।२
८४ (१६,३) सारसी (ज र जर ज ग, र) छन्दोऽनुशासन-३ ।२५ ।३
८५ (२०,३) अपरा (ज र ज र ज र ल ग, र) छन्दोऽनुशासन-३ ।२५ ।४
८६ (२४,३) हसी (जर जर जर जर, र) छन्दोऽनुशासन-३ ।२५ ।५ ।
८७ (५,११) इला (स ल ग, स स स ल ग) छन्दोऽनुशासन-३ ।२६ ।
८८ (५,२४) मृगाकमुखी (स ल ग, ८ स) छन्दोऽनुशासन-३ ।२७ ।

मात्रावृत्त (द्विपदी)

८९ अतिरुचिरा (२७ ल + ग, २७ ल + ग) छन्दोऽनुशासन-३ ।३१ ।
९०. अतिरुचिरा (२८ ल + ग, २८ ल + ग) छन्दोऽनुशासन-३ ।३२ ।

मात्रावृत्त (चतुष्पदी)

९१ पद्धति (प्रत्येक पाद मे ४ चतुर्मात्रगण कोई भी, किन्तु अतिम गण मे बाण या सर्वलघुगण) छन्दोनुशासन-३ ।७३ ।

(१७) सुल्हणकृत वृत्तरत्नाकर टीका सुकविहृदयानन्दिनी

सुल्हण भट्टकेदारकृत वृत्तरत्नाकर के टीकाकार हैं। इन्होने वृत्तरत्नाकर पर विक्रम सवत् १२४६ तदनुसार सन् ११८९ ई० मे अपनी टीका लिखी थी, जिसका नाम सुकविहृदयानन्दिनी है। इनके पिता का नाम भास्कर था, जो कृष्ण आत्रेय गोत्रीय वेलादित्य के पुत्र थे।[२५२] इन्होंने तृतीय अध्याय की टीका में कुछ छदो को स्वतत्र रूप से भी लक्षित किया है। इनकी टीका की पाण्डुलिपिया भाण्डारकर शोध-सस्थान पूना के पुस्तकालय मे पाण्डुलिपि सख्या ४८४ (१८९५-१९०२ ई०) तथा पाण्डुलिपि सख्या ८६९ (सन् १८८६-१८९२ ई०) और रायल एशियाटिक सोसायटी बम्बई के पुस्तकालय मे पाण्डुलिपि स० १२१ से सुरक्षित है। टीका मे लक्षित सस्कृत वृत्तो में से छन्द शास्त्र मे सुल्हण का निम्नाकित ८ वृत्तो का योगदान है।

---

२५१ पचमात्रगण है—यगण-, तगण, रगण और चतुर्मात्रगण है जगण, भगण, सगण
२५२ जयदामन, क्रिटिकल अपारॉटस्– , पृ० ५२, विल्सन कालेज, बम्बई, १९४९ ।

सुल्हण के स्वतंत्र लक्षित छन्द

त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)

१ सान्द्रपद	(भ त न ग ल)	सुकविहृदयानन्दिनी ३ ।४३ ।९ ।
अति जगती (त्रयोदशाक्षरपाद)		
२ उपस्थित	(ज स त स ग)	सुकविहृदयानन्दिनी-३ ।७० ।२ ।
धृति (अष्टादशाक्षरपाद)		
३ लता	(न न र भ र र)	सुकविहृदयानन्दिनी-३ ।९४ ।१ ।
४ सिहविस्फूर्जित	(म म भ म य य)	सुकविहृदयानन्दिनी-३ ।९४ ।१३ ।
अतिधृति (ऊनविशत्यक्षरपाद)		
५ रचना	(न ज भ य स ज ग)	सुकविहृदयानन्दिनी-(ब)-३ ।९६ ।२ ।
६ वल्लकी	(र भ ज त त त ग)	सुकविहृदयानन्दिनी-(ब)-३ ।९६ ।१० ।
आकृति (द्वाविशत्यक्षरपाद)		
७ लालित्य	(म स र स त ज न ग)	सुकविहृदयानन्दिनी-(ब)-३ ।१०० ।२
८ महास्रग्धरा	(स ज त न स र र ग)	सुकविहृदयानन्दिनी-(ब)-३ ।१०० ।४

(१८) कविदर्पण

कविदर्पण का रचयिता अज्ञात है। यह छन्दशास्त्रीय रचना प्राकृत भाषा मे निबद्ध है किन्तु सस्कृतवृति से अलकृत है।[२५३] सम्पादक ह० दा० वेलणकर ने इसे विक्रम स० १३३५ मे लिखित जिनप्रभसूरि के द्वारा **"अजितशान्तिस्तव"** की टीका मे उद्धृत छन्दोग्रथ कविदर्पण से अभिन्न माना है।[२५४] मूलग्रन्थ मे रचयिता ने जिनसिहसूरि, हेमसूरि, सूरप्रभसूरि, तिलकसूरि तथा हर्षदेव को उद्धृत किया है।[२५५] हेमसूरि के नाम से हेमचन्द्र के[२५६] उल्लेख के कारण कविदर्पणकार हेमचन्द्र से परवर्ती प्रतीत होते है। और विक्रम सवत् १३३५ मे लिखित नन्दिषेणकृत अजितशान्तिस्तव के टीकाकार जिनप्रभ से पूर्ववर्ती है। अत इनका रचनाकाल वेलणकर ने १३वी शती माना है।[२५७] ग्रन्थ की टीका मे एक अप्राप्त प्राकृत छन्दोग्रन्थ छन्दकदली से बहुत से पद्य उद्धृत किये है।[२५८] इसके अतिरिक्त उसमे सूर, पिगल, त्रिलोचनदास जैसे सस्कृत छन्द शास्त्रियो और स्वयम्भू, पादलिप्त तथा मनोरम जैसे प्राकृत कवियो एव छन्द शास्त्रियो का भी सकेत मिलता है।[२५९]

समस्त ग्रन्थ मे ६ उद्देश है, जिनमे प्रारम्भिक दो उद्देशो मे प्राकृत छन्दो का निरूपण है और शेष तीन उद्देशो मे तृतीयोद्देश से पचमोद्देश तक सस्कृत के वार्णिक छदो का विवेचन है तथा अन्तिम उद्देश मे छन्दो की प्रस्तारक्रिया मे प्रसिद्ध ६ प्रत्ययो का विवरण है। मूल ग्रन्थ मे ६५ लक्षण पद्य तथा १३०

---

२५३ ह० दा० वेलणकर, कविदर्पण, जोधपुर, १९६२ ।

२५४ कविदर्पण, परिचय, पृ० १ और पृ० १११ पर जिनप्रभटीका मे कविदर्पण के पद्य स० १ ।२, २ ।४-५,१८ तथा पृ० ११९ पर कविदर्पण का उल्लेख पद्य, ३५ ।

२५५ कविदर्पण-२ ।१७ ।२, २ ।३४ ।१, २ ।३५ ।१, २ ।३६ ।१ तथा २ ।३६ ।३ ।

२५६ कविदर्पण-२ ।३४ ।१ और हेमचन्द्रकृत छन्दोनुशासन-५ ।३३ ।

२५७ द्रष्टव्य-कविदर्पण, परिचय।

२५८ कविदर्पण-२ ।२८,३० की टीका मे उद्धृत।

२५९ कविदर्पण-१ ।१८ की टीका मे स्वयभू, २ ।८ ।७ की टीका मे पद्य-३६, ४३ मे पादलिप्त तथा मनोरम का उल्लेख है।

लक्षणसूत्र प्राकृत भाषा मे निबद्ध है, जिनमे १०५ प्राकृत छन्द तथा १६० सस्कृत वृत्तो का विवरण है। केवल प्राकृत छदो के उदाहरणो मे ६४ पद्य प्रयुक्त किये गये है किन्तु सस्कृत वृत्तों के केवल लक्षण ही प्राप्त होते है। मात्रिक छन्दो के लक्षण मे इन्होने क च ट त प नामक (२,३,४,५,६) मात्रिक गणो का प्रयोग किया है।[२६०] खेद का विषय यह है कि कविदर्पण के टीकाकार और **अजितशान्तिस्तव** के टीकाकार जिनप्रभ ने भी कविदर्पणकार के नाम का उल्लेख नही किया। १६० लक्षित सस्कृतवृत्तो मे से लौकिक सस्कृत छन्द शास्त्र मे कविदर्पणकार का निम्नाकित ४ वृत्तो का योगदान है—

कविदर्पणकार के स्वतत्र लक्षित छन्द

सुप्रतिष्ठा (पचाक्षरपाद)

१ जया	(य ल ग)	कविदर्पण-४।८।
बृहती (नवाक्षरपाद)		
२ मकरलता	(म न य)	कविदर्पण-४।२१।
जगती (द्वादशाक्षरपाद)		
३ मचचामर	(ज भ ज र)	कविदर्पण-४।४८।
विकृति (त्रयोविशत्यक्षरपाद)		
४ चित्रक	(र न र ज र न र ल ग)	कविदर्पण-४।९५।

(१९) जिनप्रभकृत अजितशान्तिस्तव टीका

जिनप्रभ नन्दिषेणकृत **अजितशान्तिस्तव** के टीकाकार है। इन्होने उक्त स्तव पर अपनी टीका विक्रम सवत् १३३५ (तदनुसार सन् १३०८ ई०) मे लिखी थी।[२६१] टीका मे कुछ सस्कृत छन्दो के स्वतन्त्र रूप से भी लक्षण किये गये है। ये लक्षण प्राकृत भाषा मे हैं, जो **"जिनप्रभीयम्"** नाम से कविदर्पण के एपेण्डिक्स-तृतीय मे प्रकाशित हैं। टीका मे लक्षित सस्कृत वृत्तों मे से छन्द शास्त्र में जिनप्रभ का निम्नाकित १ वृत्त का योगदान है।

जिनप्रभ का स्वतन्त्र लक्षित छन्द

उष्णिक् (सप्ताक्षरपाद)

१ नन्दितक	(स स ग)	अजितशान्तिस्तव-पद्य-२९।

(२०) प्राकृतपैगलम्

प्राकृतपैगल का रचयिता अज्ञात है। इसके रचयिता के विषय मे विद्वानों मे मतभेद हैं। इस पर छ टीकाए हो चुकी हैं।[२६२] जिनमे सर्वप्राचीन रविकर की टीका में रचयिता का नाम सुमति दिया गया है।[२६३] प्रो० याकोवी ने भी इसे सुमति की रचना माना है।[२६४] टीकाकार लक्ष्मीनाथ भट्ट ने पिगल नाग को इसका रचयिता माना है।[२६५] मार्कण्डेय ने पिगल को अपभ्रश का महान् लेखक माना है।[२६६] किन्तु

---

२६० कविदर्पण-१।२।

२६१ कविदर्पण-इन्ट्रोडक्शन, पृ० १।

२६२ डा० भोलाशकर व्यास, प्राकृतपैंगल, भाग २, पृ० २५-२९।

२६३ इत्याह सुमतिस्ता विद्यामधीत्य...। वही, भाग-२, पृ० २१।

२६४ याकोवी, भविसतकहा (जर्मन सस्करण) पृ० ४५, फुटनोट-१।

२६५ श्रीमत्पिगलनागनिर्मितवर ग्रन्थप्रदीप मुदा (१६०० ई०), वही, भाग-२, पृ० २७।

२६६ याकोवी, सनत्कुमारचरितम्-इन्ट्रोडक्शन, फुटनोट-३५, जे० ओ० आई० बडोदा, यूनिवर्सिटी, वोल्यूम-२-३, पृ० ९४।

विश्वनाथ पचाननकृत प्राकृत पिगल की टीका मे इसका रचयिता हरिहरबन्दी माना गया है।[२६७] और डा० भोलाशकर व्यास ने भी इसके सग्राहक के रूप मे हरिहर के प्रति ही सकेत किया है, उन्होने लिखा है कि प्राकृत पैगल लक्षण भाग किसी पूर्ववर्ती ग्रन्थ से लिया गया है, जिसमे सग्राहक ने पिगल, नागराज आदि छाप देकर अपने ग्रन्थ को प्राचीन बनाने की इच्छा से उसे बदल दिया है, और इसीलिये उसने अपना नाम नही दिया, सम्भवत इसमे हरिहर ब्रह्म का हाथ अवश्य रहा है।[२६८] किन्तु सग्राहक के विषय मे भी अभी तक पूरी जानकारी नही हो पाई है।

जिस प्रकार इसके रचयिता के विषय मे मतभेद है, वैसे ही इसके समय मे भी विद्वानो मे मतैक्य नही है। डा० याकोवी, म० म० शिवदत, चन्द्रमोहन घोष[२६९], शूब्रिग, विजयचन्द्र मजूमदार[२७०] डा० घोषाल[२७१] इसका सग्रह १४वी शती के उत्तरार्द्ध मे मानते है। और प्रो० गुणे तथा डा० चाटुर्ज्या का मत है—[२७२] कि इसकी रचना १५वी शती मे हुई, किन्तु म० म० हरप्रसाद शास्त्री तथा डी० सी० गागुली १४वी शती के प्रारम्भ मे इसकी रचना स्वीकार करते है।[२७३] डा० भोलाशकर व्यास अन्तसाक्ष्य तथा बहिसाक्ष्य के आधार पर प्राकृतपैगल की रचना १४वी शती के प्रथम चरण (१३०१-१३२५ ई०) से बाद की नही मानते।[२७४] अत इसका समय १४वी शती का प्रारम्भ माना जा सकता है।

प्राकृतपैगल मे दो प्रकरण हैं—मात्रावृत्त और वर्णवृत्त। मात्रावृत्त प्रकरण मे सग्राहक ने उन्ही छन्दो को लिया है जो अधिकाधिक रूप से बन्दी जनो या भट्टकवियो से व्यवहृत होते थे और वर्णवृत्त मे सस्कृत के वृत्तो का वर्णन है। इस रचना के समय कई मात्रावृत्त कोटि के छन्द, जो वस्तुत मूलरूप मे तालच्छन्द थे, वर्णिकवृत्त प्रकरण मे भी घुले मिले दिखाई पडते है, जिनमे सुन्दरी, दुर्मिला, किरीट तथा त्रिभगी नाम से वर्णित वर्णिक वृत्तो की कुछ ऐसी ही कहानी है। वर्णवृत्त प्रकरण मे लक्षित सस्कृत वृत्तो और मात्रावृत्त प्रकरण मे लक्षित कतिपय सस्कृत मात्रिक वृत्तो मे से लौकिक सस्कृत छन्द शास्त्र मे प्राकृतपैगलकार का निम्नाकित ६७ वृत्तो का योगदान है।

प्राकृतपैगलकार के स्वतत्र लक्षित छन्द	**लक्षण**	**ग्रन्थ सन्दर्भ**
सुप्रतिष्ठा (पचाक्षरपाद)		
१ यमक	(न ल ल)	प्राकृतपैगल-२।३९।
गायत्री (षडक्षरपाद)		
२ मन्थन-कामावतार	(त त)	प्राकृतपैगल-२।५०।
३ सुमालती	(ज ज)	प्राकृतपैगल-२।५४।

---

२६७ अथ च ग्रन्थकर्ता हरिहरबन्दी न चलति न प्रान्तो भवतीत्यर्थ।
प्राकृतपैगल मात्रावृत्त प्रकरण, ११५ वे पद्य की टीका।

२६८ प्राकृतपैगल, भाग-२, पृ० २०-२२।

२६९ वही-भाग २, पृ० ७।

२७० विजयचन्द्र मजमूदार, हिस्ट्री आफ दी बगाली लेन्गुएज, पृ० २१९।

२७१ डा० एस० एन० घोषाल, ट्रान्सलेटर्स नोट (सी) जे० ओ० आई० मेनुस्क्रिप्ट यूनिवर्सिटी बडौदा, वोल्यूम-२,३ पृ० २४२।

२७२ डा० गुणे, भविसतकहा, पृ० ६९। डा० चाटुर्ज्या-भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १०६।

२७३ प्राकृतपैंगल, भाग-२, पृ० ९।

२७४ वही, भाग-२, पृ० १० से, ३८८।

४ दमनक (न न) प्राकृतपैंगल-२ ।५६ ।

उष्णिक् (सप्ताक्षरपाद)

५ सुवास (न ज ल) प्राकृतपैंगल-२ ।६० ।

६ करहञ्च (न स ल) प्राकृतपैंगल-२ ।६२ ।

बृहती (नवाक्षरपाद)

७ महालक्ष्मी (र र र) प्राकृतपैंगल-२ ।७६ ।

८ सारंगिका (न य स) प्राकृतपैंगल-२ ।७८ ।

९ तोमर (स ज ज) प्राकृतपैंगल-२ ।८६ ।

पंक्ति (दशाक्षरपाद)

१० संयुता (स ज ज ग) प्राकृतपैंगल-२ ।९० ।

११ सुषमा (त य भ ग) प्राकृतपैंगल-२ ।९६ ।

त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)

१२ दमनक (न न न ग ग) प्राकृतपैंगल-२ ।१०८ ।

१३ मालती (म म म ग ग) प्राकृतपैंगल-२ ।११२

जगती (द्वादशाक्षरपाद)

१४ मोदक (भ भ भ भ) प्राकृतपैंगल-२ ।१३५ ।

१५ तरलनयना (न न न न) प्राकृतपैंगल-२ ।१३५

अतिजगती (त्रयोदशाक्षरपाद)

१६ तारक (स स स स ग) प्राकृतपैंगल-२ ।१४३ ।

१७ कन्द (य य य यल) प्राकृतपैंगल-२ ।१४५ ।

१८ पंकावली (भ न ज ज ल) प्राकृतपैंगल-२ ।१४८ ।

शक्वरी (चतुर्दशाक्षरपाद)

१९ चक्रपद (भ न न न ल ग) प्राकृतपैंगल-२ ।१५२ ।

अतिशक्वरी (पंचदशाक्षरपाद)

२० निशिपाल (भ ज स न र) प्राकृतपैंगल-२ ।१६० ।

२१ मनोहंस (स ज ज भ र) प्राकृतपैंगल-२ ।१६२ ।

अत्यष्टि (सप्तदशाक्षरपाद)

२२ मालाधर (न स ज स य ल ग) प्राकृतपैंगल-२ ।१७८ ।

धृति (अष्टादशाक्षरपाद)

२३ मञ्जीरा (म म म म स म) प्राकृतपैंगल-२ ।१८० ।

२४ क्रीडाचक्र (य य य य य य) प्राकृतपैंगल-२ ।१८२ ।

अतिधृति (ऊनविंशत्यक्षरपाद)

२५ चन्द्रमाला (न न न ज न न ल) प्राकृतपैंगल-२ ।१९० ।

२६ धवल (न न न न न न ग) प्राकृतपैंगल-२ ।१९२ ।

२७ शम्भु (स त य भ म म ग) प्राकृतपैंगल-२ ।१९४ ।

कृति (विंशत्यक्षरपाद)

२८ गीता (स ज ज भ र स ल ग) प्राकृतपैंगल-२ ।१९६ ।

प्रकृति (एकविंशत्यक्षरपाद)

२९ नरेन्द्र (भरननजजय) प्राकृतपैगल-२ ।२०२ ।

आकृति (द्वाविशत्यदारपाद)

३० हसी (मम त न त न स ग) प्राकृतपैगल-२ ।२०४ ।

विकृति (त्रयोविशत्यक्षरपाद)

३१ सुन्दरी[२७५] (स स भ स त ज ज ल ग) प्राकृतपैंगल-२ ।२०६ ।

सकृति (चतुर्विशत्यक्षरपाद)

३२ दुर्मिला (स स स स स स स स) प्राकृतपैगल-२ ।२०८ ।

सीमितदण्डक

३३ सालूर (त + ८ नगण + ल ग = २९ वर्ण) प्राकृतपैंगल-२ ।२१२।

३४ त्रिभगी (६ नगण ससभमसग = ३४ वर्ण) प्राकृतपैंगल-२ ।२१५ ।

मात्रावृत्त (द्विपदी)

३५ हसिका (१ गुरु ५५ लघु = ५६ वर्ण) प्राकृतपैंगल-१ ।६१ ।

३६ सिहिनी (३२,३० मात्राए) प्राकृतपैगल-१ ।७०,७२ ।

आर्यागीति (स्कन्धक) के २८ भेद[२७६]

छद	गुरु	लघु	वर्ण	ग्रन्थ सन्दर्भ
३७ नन्द	३०	४ =	३४	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
३८ भद्र	२९	६ =	३५	प्राकृतपैगल-१ ।७५-७६
३९ शेष	२८	८ =	३६	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
४० सारग	२७	१० =	३७	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
४१ शिव	२६	१२ =	३८	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
४२ ब्रह्मा	२५	१४ =	३९	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
४३ वारण	२४	१६ =	४०	प्राकृतपैगल-१ ।७५-७६
४४ वरुण	२३	१८ =	४१	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
४५ नील	२२	२० =	४२	प्राकृतपैगल-१ ।७५-७६
४६ मदन	२१	२२ =	४३	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
४७ तालाक	२२	२४ =	४४	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
४८ शेखर	१९	२६ =	४५	प्राकृतपैगल-१ ।७५-७६
४९ शर	१८	२८ =	४६	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
५० गगन	१७	३० =	४७	प्राकृतपैगल-१ ।७५-७६
५१ शरभ	१६	३२ =	४८	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
५२ विमति	१५	३४ =	४९	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
५३ क्षीर	१४	३६ =	५०	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
५४ नगर	१३	३८ =	५१	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
५५ नर	१२	४० =	५२	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६

---

२७५ चन्द्रशेखर भट्ट सुन्दरी में ७,६,१० पर यति से पद्मावतिका छन्द मानते है। (वृत्त मौक्तिक-२ ।५६२) इसकी ध्वनि तथा लय बहुत मनोहर होती है ।

२७६ स्कन्धक के भेदो का सस्कृतीकरण वृतमौक्तिक-१ ।१ ।११७-१२१ पर दृष्टव्य ।

५६ स्निग्ध	११	४२ =	५३	प्राकृतपैगल-१ ।७५-७६
५७ स्नेह	१०	४४ =	५४	प्राकृतपैगल-१ ।७५-७६
५८ मदकल	९	४६ =	५५	प्राकृतपैगल-१ ।७५-७६
५९ भूपाल	८	४८ =	५६	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
६० शुद्ध	७	५० =	५७	प्राकृतपैगल-१ ।७५-७६
६१ सिरित्	६	५२ =	५८	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
६२ कुम्भ	५	५४ =	५९	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
६३ कलश	४	५६ =	६०	प्राकृतपैंगल-१ ।७५-७६
६४ शशी	३	५८ =	६१	प्राकृतपैगल-१ ।७५-७६
६५ खञ्जक	(३६ ल + र,३६ ल + र)			प्राकृतपैंगल-१ ।१५८-१६० ।[२७७]
६६ शिखा	(२४ ल + ज,२८ ल + ज)			प्राकृतपैंगल-१ ।६१-१६३ ।
६७ माला	(३६ ल + र ग ग,३६ ल + र ग ग)			प्राकृतपैंगल-१ ।१६४-१६६ ।

(२१) छन्द कोश

छन्द कोश के रचयिता रत्नशेखर है। यह श्री वज्रसेन के शिष्य तथा हेमतिलकसूरि के पट्टाधिकारी और नागपुरीय तपागच्छ के जैन साधु थे। पट्टावली के अनुसार इनका जन्म विक्रमसवत् १३७२ (१३१५ ई०) है।[२७८] छन्दकोश ७४ पद्यो का एक छोटा सा ग्रन्थ है, जिसमें अधिकाश उन छन्दों का विवरण पाया जाता है जो तत्कालीन अपभ्रश के कवियो द्वारा प्रयुक्त होते थे। इसमे पिगल, गोसल, गुल्हु, अर्जुन और अल्हु नामक छन्द शास्त्रियो का उल्लेख मिलता है।[२७९] जिनमें पिगल तो छन्द शास्त्र के प्राचीन आचार्य के रूप में प्रसिद्ध ही है। किन्तु गोसल आदि सम्भवत. अपभ्रश के पुराने छन्द शास्त्री रहे होंगे, जिनके कोई ग्रन्थ नही मिलते।

छन्द कोश की भाषा शैली के पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि इसके पद्य १ से ४ और ५१ से ७४ तक परिनिष्ठित प्राकृत मे निबद्ध है जबकि शेष पद्य ५ से ५० तक परवर्ती अपभ्रशशैली के परिचायक है। इसके कुछ पद्य प्राकृत पेगल के पद्यो से[२८०] मिलते-जुलते है। जिससे डा० वेलणकर प्राकृतपैगल को छन्द कोश से प्रभावित मानते है।[२८१] किन्तु डा० व्यास को प्राकृत पैगल का छन्द कोश से परवर्ती मानना अभीष्ट नही है।[२८२] अत इसका समय १३५० ई० के आस-पास हो सकता है। इसमे लक्षित छन्दो मे से निम्नाकित दो छन्द रत्नशेखर के स्वतत्र लक्षित छन्द है, जो लौकिक सस्कृत छन्द शास्त्र मे अपना योग प्रदान करते है।

---

२७७ खञ्जक, शिखा, माला का सस्कृत प्रयोग वाणीभूषण-१ ।८७-९२ के मध्य देखा जा सकता है।

२७८ डा० भोलाशकर व्यास, प्राकृत पैगल, भाग २, पृ० ३८८।

२७९ वकिदर्पण, पृ० ९९ पर प्रकाशित-छन्दकोश ।-४५ ।१४६,१२,१०,१५,११।

२८० छन्दकोश, पद्य-१२ और प्राकृत पैगल-पद्य १ ।१०७, छन्दकोश, पद्य-२५ और प्रा० पैं० १ ।१७०, छन्दकोश पद्य-१६ और प्रा० पैं०-२ ।२०८, छन्दकोश ३१ और प्रा० पैं० १ ।१४६। छन्दकोश-४६ और प्रा० पैं० २ ।६९, छन्दकोश ५० और प्रा० पैं० १ ।१४४।

२८१ ह० दा० वेलणकर, अपभ्रश मीटर्स, एक (जे० यू० बी०-नवम्बर १९३३, पृ० ३४)

२८२ प्राकृतपैंगल-भाग २, पृ० ३८८।

रत्नशेखर के स्वतत्र लक्षित छन्द

बृहती (नवाक्षरपाद)

१ बहुल	(न न न)	छन्दकोश-पद्य-८ ।
कृति (विशत्यक्षरपाद)		
३ नाराच, पचचामर	(जर जर जर लग)	छन्दकोश-पद्य-१५ ।

(२२) वाणीभूषण

वाणीभूषण के रचयिता श्री दामोदर मिश्र है, जो दीर्घघोषकुलोत्पन्न मैथिल ब्राह्मण है।[२८३] डा० भोलाशकर व्यास ने प्राकृत पैगल के सग्राहक हरिहर को इनका पितामह और रविकर को पिता या पितृव्य स्वीकार किया है।[२८४] रविकर का उल्लेख वाणीभूषण मे भी मिलता है।[२८५] लक्ष्मीनाथ भट्ट की प्राकृत पैगल टीका पिगलार्थप्रदीप (स० १६४७ = १५९० ई०) मे वाणीभूषणकार का उल्लेख मिलता है।[२८६] विद्वानो के मतानुसार दामोदरमिश्र मिथिलापति कीर्तिसिह (१३९० से १४०० ई०) के दरबार मे थे।[२८७] यह विद्यापति के समसामयिक थे। अत इनका समय १३२५ से १४२५ ई० माना जा सकता है।

ग्रन्थ मे दो परिच्छेद है—मात्रावृत्त और वर्णवृत्त। लक्षणो का गठन पारिभाषिक शब्दावली मे दिया गया है और उदाहरणो मे प्राकृतपैगल के समान नागराज फणीन्द्र, फणिपति आदि विभिन्न विशेषणो से युक्त पिगल के पर्यायवाची पदो की छाप है। दामोदर के समय मे सस्कृत के विद्वान् प्राकृत छन्दोग्रन्थो का पर्यालोचन नही करते थे। इसलिए उन्होने विशेषत उन्ही के अध्ययनार्थ उसकी रचना की है।[२८८] वस्तुत यह ग्रन्थ प्राकृतपैगल का सस्कृत मे अनुकरणमात्र है। इसमे ३५० पद्य हैं जिनमे ४३ मात्रिक और १११ वर्णिक वृत्तो के लक्षण तथा उदाहरण है।

दामोदर मिश्र ने वाणीभूषण मे नन्दिताढ्य, स्वयम्भू, विरहाक, हेमचन्द्र और प्राकृतपैगलकार की रचनाओं मे लक्षित प्राकृत तथा अपभ्रश भाषा के छन्दो को मात्रावृत्त प्रकरण मे सस्कृत मे लक्षित कर उनका सस्कृतीकरण किया है और उनके उदाहरण सस्कृत पद्यो मे ही दिये है, जिन्हे प्रस्तुत छान्दसग्रन्थ के पचम अध्याय मे सस्कृतीकृत नवीन छन्दो के सकलन मे प्रदर्शित किया जायेगा।

ग्रन्थ मे लक्षित १५४ वृत्तो मे से लौकिक सस्कृत छन्द शास्त्र मे दामोदर मिश्र का निम्नाकित २ वृत्तो का योगदान है, ग्रन्थ के शेष लक्षित वृत्त भरत-पिगल आदि पूर्वाचार्यों की रचनाओं में लक्षित हो चुके है।

दामोदर मिश्र के स्वतन्त्र लक्षित छन्द	**लक्षण**	**ग्रन्थ सन्दर्भ**
गायत्री (षडक्षरपाद)		
१ मधुभार	(स ज)	वाणीभूषण-१ ।९९ ।
त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)		
२ दमनक	(न न न ल ग)	वाणीभूषण-२ ।१११

---

२८३ दीर्घघोषकुलोद्भूतो दामोदर इति श्रुत । छन्दसा लक्षण तेन सोदाहरणमुच्यते ।
वाणिभूषण-१ ।४, काव्यमाला (५३) निर्णयसागर प्रेस, बम्बई-१९२५ ।

२८४ डा० भोलाशकर व्यास-प्राकृतपैंगल, भाग २, पृ० १६-१८ ।

२८५ दीर्घघोषकुलदेवदीर्घिकापकज रविकरो व्यराजत । वाणीभूषण-२ ।१२६ ।

२८६ वाणीभूषण-पृष्ठ १ पर टिप्पणी-१ ।

२८७ प्राकृतपैंगल-भाग २, पृ० १७ ।

२८८ अलसधिय प्राकृतमधि सुधिय केचिद्भवन्तीह ।
कृतिरेषा मम तेषामातनुतादीषदपि तोषम् ॥ वाणीभूषण-१ ।३ ।

(२३) छन्दोमञ्जरी

छन्दोमञ्जरी के रचयिता श्री गगादास है। इनके पिता का नाम वैद्य गोपालदास और माता का नाम सन्तोषा था।[२८९] गुरु का नामपुरुषोत्तम भट्ट था। पुरुषोत्तम भट्ट एक छन्द शास्त्री थे, जिन्होने छन्दोविषयक ग्रन्थ छन्दोगोविन्द की रचना की थी, जिसका एक पद्य वाणीभूषण मे उद्धृत मिलता है। किन्तु उक्त ग्रन्थ आज उपलब्ध नही है।[२९०] गगादास के पिता श्री गोपालदास भी एक कवि थे जिनकी रचना पारिजातहरण नाटक का उल्लेख मिलता है।[२९१] इसके अतिरिक्त गगादास ने तीन काव्यो की और रचना की थी जिनके नाम-अच्युतचरित, कसारिशतक और दिनेशशतक है। इनमे से अच्युतचरित के पद्य छन्दोमञ्जरी मे उदाहरण-रूप मे प्राप्त होते है।[२९२] गगादास ने अपने समय का कोई उल्लेख नही किया है, अत इनका समय निश्चित रूप से ज्ञात नही होता। कृष्णमाचार्य ने इनका समय ईसा की अठारहवी शती स्वीकार किया है। किन्तु विनयसागर इन्हे १५वी या १६वी शताब्दी का मानते है और डा० राजकिशोर सिह ने इन्हे १५वी शताब्दी का माना है।[२९३] अत १५वी शती से इन्हे परवर्ती मानना उचित प्रतीत नही होता, क्योकि सन् १६१८-१९ की रचना चन्द्रशेखरकृत वृत्तमौक्तिक मे छन्दोमञ्जरी के दो पद्य उद्धृत मिलते है।[२९४] अत इनका समय १५वी शती ही माना जा सकता है।

छन्दोमज्जरी मे ६ स्तवक है, जिनमे ४५ कारिकाए, ७ अर्द्धकारिकाए और १३२ लक्षणसूत्र है। इसमे १५९ छन्दो का निरूपण किया गया है, जिनमे १३१ समवृत्त, ६ अर्द्धसमवृत्त, ५ विषमवृत्त, १४ मात्रावृत्त और ३ गद्यवृत्त है। इन छन्दो के उदाहरणो मे ग्रन्थकार ने स्वचरित १५६ पद्य और ३ गद्यखण्ड प्रस्तुत किये है, जो भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओ का वर्णन करते है। यत्र-तत्र किसी-किसी छन्द के उदाहरण मे स्वरचित पद्य के अतिरिक्त प्राचीन प्रसिद्ध कालिदास, भारवि, माध आदि कवियो के पद्य भी ग्रन्थकार ने प्रस्तुत किये है। छन्दोमञ्जरी, छन्द शास्त्र का लाक्षणिक ग्रन्थ होता हुआ भी भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओ का वर्णन करने से सस्कृत का एक गीतिकाव्य भी है। ग्रन्थ मे लक्षित १५९ छदो मे से लौकिक सस्कृत छन्द शास्त्र मे गगादास का निम्नाकित १४ छन्दो का योगदान है। शेष छन्द उनसे पूर्व छान्दस आचार्यो द्वारा लक्षण ग्रन्थो मे लक्षित हो चुके है।

गगादास के स्वतत्र लक्षित छन्द	लक्षण	ग्रन्थ सन्दर्भ
अनुष्टुप् (अष्टाक्षरपाद)		
१ गजगति	(न भ ल ग)	छदोमञ्जरी-२ ।८ ।६ ।
बृहती (नवाक्षरपाद)		
२ भुजग सगता	(स ज र)	छदोमञ्जरी-२ ।९ ।३ ।
शक्वरी (चतुर्दशाक्षरपाद)		

२८९ देव प्रणम्य गोपाल वैद्यगोपालदासज ।
सन्तोषातनयश्छन्दो गगादासस्तनोत्यद ॥ छदोमञ्जरी-१ ।१ ।

२९० छदोमञ्जरी-१ ।१४,१ ।१३ ।

२९१ पत्पितु पारिजातहरणनाटके– । छदोमञ्जरी-१ ।११ ।

२९२ वही-६ ।६,१ ।११ ।

२९३ कृष्णमाचार्य, सस्कृत साहित्य का सक्षिप्त इतिहास ।विनयसागर, वृतमौक्तिक, भूमिका, पृ० १८ ; डा० राजकिशोरसिंह, आचार्य मम्मट और काव्यप्रकाश-परिशिष्ट-२, पृ० २४७-२४९ ।

२९४ चन्द्रशेखरकृत-वृत्तमौक्तिक, भाग २, यति निरूपण, पृ० २०६ पर छदोमञ्जर्यां तु _यतिर्जिह्वेष्ट_निजेच्छया । और क्वचिच्छन्दस्यास्ते-वरुणया । छन्दोमञ्जरी १ ।१७,१८ ।

३ वासन्ती (म त न म ग ग) छन्दोमञ्जरी-२ ।१४ ।
अतिशक्वरी (पचदशाक्षरपाद)
४ विपिनतिलक (न स न र र) छदोमञ्जरी-२ ।१५ ।६
अष्टि (षोडशाक्षरपाद)
५ चकिता (भ स म त न ग) छदोमञ्जरी-२ ।१६ ।३ ।
धृति (अष्टादशाक्षरपाद)
६ नन्दन (न ज भ ज र र) छन्दोमञ्जरी-२ ।१८ ।
अतिधृति (ऊनविशत्यक्षरपाद)
७ सुरसा (म र भ न य न ग) छदोमञ्जरी-२ ।१९ ।४
सीमितदण्डक
८ कुसमस्तवक (९ स गण) = २७ वर्ण-छन्दोमञ्जरी-२ ।दण्डक-४ ।
९ मतमातगलीलाकर (९ रगण = २७ वर्ण) छन्दोमञ्जरी-२ ।दण्डक-५ ।
१० अनगशेखर (ज र ज र ज र ज र ज ग २८ वर्ण) छन्दोमञ्जरी-२ ।दण्डक-६ ।
११ अशोक कुसुम मञ्जरी (र ज र ज र ज र ज र ल २८ वर्ण) छन्दोमञ्जरी-२ ।दण्डक-७ ।

विषमवृत्त
१२ (१०,१०,१०,१३) उद्गता (स ज स ल, न स ज ग, भ न भ ग, सज स ज ग) छन्दोमञ्जरी-४ ।१ ।
१३ (८,८,८,८) वक्त्रानुष्टुप् (४ + य + १, मरग + १, ४ + य + १, मरग + १) छन्दोमञ्जरी-४ ।६ ।
१४ (८,८,८,८) पथ्यावक्त्र (४ + य + १,४ + ज + १,४ । य + १, ४ + ज + १) छन्दोमञ्जरी-४ ।६ ।

(२४) वृत्तरत्नावलि

वृत्तरत्नावलि के रचयिता श्री वेंकटेश हैं। इस पर एक सस्कृत व्याख्या भी प्राप्त होती है, जिसके लेखक का नाम अज्ञात है।[२९५] यह रचना पूर्व के दो सस्करणो मे कालिदास के नाम से प्रकाशित हो चुकी है।[२९६] किन्तु वेकटेशकृत वृत्तरत्नावलि के सपादक श्री एच० जी० नरहरि ने अड्यार और तञ्जोर मे प्राप्त पाण्डुलिपियों के पर्यवेक्षण से यह सिद्ध किया है कि वृतरत्नावलि कवि वेकटेश की रचना है।[२९७] कवि वेकटेश के पिता का नाम अवधान सरस्वती था, जो तमिलनाडु मे तुण्डीरमण्डल के तोण्डमण्डल और मक्षिकारण्य के त्रिवलोर के पास इवकादु (गाव) के निवासी थे।[२९८] अवधान

२९५ अड्यार पुस्तकालय के बुलेटिन, वोल्यूम-१५ से १७ के पम्फ्लेट सीरीज न० २७ मे, १९५२ में पुन प्रकाशित वृतरत्नावलि व्याख्यासहित, सपादक-एच० जी० नरहरि।

२९६ श्री गोविन्दाचार्य द्वारा सम्पादित ग्रन्थलिपि मे १८६१ मे प्रभाकर प्रेस मद्रास से प्रकाशित। श्री राजगोपाल राव द्वारा सम्पादित तेलगुलिपि मे श्री वापिल्ला रामास्वामी शास्त्री द्वारा १८६४ में मद्रास से प्रकाशित-सस्करण।

२९७ एच० जी० नरहरि, वृत्तरत्नावलि, परिचय, १९४२ ।

२९८ तुण्डीरमण्डलाक्रान्तमक्षिकारण्यजन्मन । प्रश्नोत्तरमाला-पद्य ४, दृष्टव्य-वृतरत्नावलि, परिचय-३, पृ० १४ ।

सरस्वती की एक रचना का विवरण मिलता है, जिसका नाम वेदान्तशतश्लोकी है।[२९९] सूर्यपण्डित ने उस पर एक व्याख्या लिखी है।[३००] और भास्करकृत बीजगणित पर भी सूर्यपण्डित ने भाष्य लिखा था, जिसमे उन्होने अपने समय-शक सवत् १४६० (१५३८ ई०) और भाष्य लिखते समय अपनी अवस्था (३१ वर्ष) का उल्लेख किया है।[३०१] जिससे स्पष्ट है कि सूर्यपण्डित का जन्म शक स० १४२९ (१५०७ ई०) मे हुआ था। तो अवधान सरस्वती का समय सूर्यपण्डित से कुछ पूर्व अवश्य है। यदि अवधान सरस्वती का समय सूर्यपण्डित के जन्म काल को ही मान ले तो उनके पुत्र वेकटेश का समय सूर्यपण्डित के समकालीन १६वी शती के प्रारम्भ से पूर्वार्द्ध १६५० ई० तक माना जा सकता है।

वृत्तरत्नावलि मे केवल ६६ पद्य है, जिनमे ६२ छन्दो का वर्णन है। प्रत्येक पद्य लक्षण तथा उदाहरण देने के साथ-साथ अपने मे एक भक्तिपूर्ण काव्य है, जो विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का प्रार्थनात्मक वर्णन प्रस्तुत करता है। इसमे केवल उन्ही छन्दो को लक्षित किया गया है, जो कवियो द्वारा काव्यो मे प्रयुक्त हो चुके है और पूर्वाचार्यो के छन्दोग्रन्थो मे लक्षित हो चुके हैं। अत कवि वेकटेश का कोई स्वतत्र लक्षित छन्द नही है।

(२५) रामचन्द्र विबुध कृत वृत्तरत्नाकर टीका

रामचन्द्रविबुध वृत्तरत्नाकर के टीकाकार है। यह बौद्धभिक्षु थे, जो १६वी शती मे श्री लका मे रहते थे।[३०२] इन्होने वृत्तरत्नाकर पर सिहली लिपि मे एक टीका लिखी थी, जो निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३६ मे पचम सस्करण के रूप मे प्रकाशित है, जिसके तृतीय अध्याय मे कुछ छन्दो को स्वतत्र रूप से लक्षित किया गया है।

रामचन्द्रविबुध के स्वतत्र लक्षित छन्द

उष्णिक् (सप्ताक्षरपाद)

१ मधुमती (न भ ग) वृत्तरत्नाकरटीका-३।१२।३।

अनुष्टुप् (अष्टाक्षरपाद)

२ नागरक (भर ल ग) वृत्तरत्नाकरटीका-३।१९।२।

प्रकृति (एकविशत्यक्षरपाद)

३ मत्तविलासिनी (भ भ भ भ भ भ र) वृत्तरत्नाकर टीका-३।९९।३।

विकृति (त्रयोविशत्यक्षरपाद)

४ मयूरगति (भ भ भ भ भ भ भ ग ग) वृत्तरत्नाकरटीका-३।१०२।१।

सीमितदण्डक

५ दण्डक (ननत + कोई भी ६ गण = २७ वर्ण) वृत्तरत्नाकरटीका-३।१०९।१।

६ दण्डक (न न त-। यथेच्छ कोई भी गण = ९९९ वर्ण) वृत्तरत्नाकरटीका-३।१०९।२।

---

२९९ आफरेट कैटेलाग्स कैटेलागोरम, १, ३३ ए०, ६०७ ए०।

३०० हाल, कन्ट्रीब्यूशन टूवार्डस एन इन्डेक्स टू दी बिबिलियोग्राफी आफ दी इडियन फिलोसोफीकल सिस्टम्स, पृ० १९९ एफ० एफ०।

३०१ षष्ठिशक्रगणिते शके कृत भाष्यमिन्दुगुणवत्सरे निजे।
पचविशतिशतान्यनुष्टुभा ग्रन्थसम्मितिरिहास्ति केवलम्॥ वृत्तरत्नावलि-परिचय-३, पृ० १२।

३०२ जयदामन क्रिटिकल स्पराटस-पृ० ५०।

(२६) वृत्तमौक्तिक

वृत्तमौक्तिक के रचयिता श्री चन्द्रशेखर भट्ट है, जो लक्ष्मीनाथ भट्ट के पुत्र है।[३०३] और इनकी माता का नाम लोपामुद्रा था। इन्होने पिगलोक्त छन्द शास्त्र का अध्ययन अपने पिता से किया था। ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थ की रचना पिगल, शम्भु, रविकर, पशुपति के ग्रन्थो के आधार पर की। और अपने ग्रन्थ वृत्तमौक्तिक को पिगलवार्तिक कहा।[३०४] रचना दो खण्डो मे विभक्त है, जिसमे प्रथम खण्ड की रचना चन्द्रशेखर ने विक्रम सवत् १६७५ (१६१८ ई०) मे वसन्त पचमी को पूर्ण की।[३०५] और द्वितीय खण्ड की समाप्ति से पूर्व ही उनका स्वर्गवास हो गया। इसके बाद उनके पिता श्री लक्ष्मीनाथ भट्ट ने अपने पुत्र की इच्छा को पूर्ण करने के लिये शेष भाग सवत् १६७६ मे कार्तिकी पूर्णिमा तक लिखकर ग्रन्थ को पूर्ण किया।[३०६] अत वृत्तमौक्तिक का समय १६१८-१९ ई० है।

इस ग्रन्थ मे महोपाध्याय विनयसागर के मतानुसार द्वितीय खण्ड के चतुर्थ अर्धसमप्रकरण तक रचना चन्द्रशेखर की है और द्वितीय खण्ड के विषम वृत्त प्रकरण से अन्त तक की रचना उनके पिता लक्ष्मीनाथ भट्ट की है।[३०७] किन्तु प्राकृत पैगल की टीका पिगल प्रदीप मे लक्ष्मीनाथ भट्ट द्वारा निर्दिष्ट प्रचितक दण्डक को चन्द्रशेखर भट्ट ने सर्वतोभद्र दण्डक माना है।[३०८] और उसके पूर्व अर्णादि दण्डक निरूपण मे चन्द्रशेखर ने पितृचरण के उल्लेख के साथ पिगल प्रदीप का मत प्रकट किया है।[३०९] जिससे स्पष्ट है कि द्वितीय खण्ड के दडक प्रकरण तक की रचना चन्द्रशेखर की है और उसके बाद लक्ष्मीनाथ भट्ट की।

प्रथम खण्ड मे प्राकृत तथा अपभ्रश के मात्रिक २८८ छदो का निरूपण है, जिसमे ७९ मूल छन्द है और २०९ छन्दोभेद। इस खण्ड मे गाथा, षट्पद, रड्डा, पद्मावती, सवैया, गलितक नामक ६ प्रकरण है, जिसकी रचना चन्द्रशेखर ने रविकर, पिगल, पशुपति, शम्भु के ग्रन्थो के आधार पर की। द्वितीय खण्ड मे १२ प्रकरण है, जिसमे छठे वैतालीय प्रकरण तक भरत-पिगलादि प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत छन्द शास्त्र के आधार पर ३०७ छन्दो का निरूपण है। इस खण्ड मे दण्डक प्रकरण तक चन्द्रशेखर की

---

३०३ श्री लक्ष्मीनाथभट्टस्य पितुर्नत्वा पदाम्बुजम्।
श्री चन्द्रशेखरकविस्तनुते वृत्तमौक्तिकम्॥ वृत्तमौक्तिक, गाथाप्रकरण, ३।

३०४ रविकर पशुपति-पिगल-शम्भुग्रन्थान्विलोक्य निर्बन्धान्।
सद्वृत्तमौक्तिकमिद चक्रे श्री चन्द्रशेखर सकवि ॥ वृत्तमौक्तिक-२।१२।१।
समाप्तमिद श्री वृत्तमौक्तिक नाम पिगलवार्तिकम्॥ वृत्तमौक्तिक, पृ० २९१।

३०५ बाणमुनितर्कचन्द्रै (१६७५) गणितेऽब्दे वृत्तमौक्तिके रुचिरम्।
माघे धवलपक्षे पचम्या चन्द्रशेखरश्चक्रे॥ वृत्तमौक्तिक-१।६।३९।

३०६ याते दिव सुतनये विनयोपपन्ने श्रीचन्द्रशेखरकवौ किल तत्प्रबन्ध।
विच्छेदमाप भुवि तद्वचसैव सार्द्ध पूर्णीकृतश्च स हि जीवन हेतवेऽस्य॥
श्री वृत्तमौक्तिकमिद लक्ष्मीनाथेन पूरित यत्नात्। वृत्तमौक्तिक, पृ० २९१

३०७ विनयसागर, वृत्तमौक्तिक, भूमिका, पृ० ३७।

३०८ वृत्तमौक्तिक-२।३।४, पृ० १८५।

३०९ पितृचरणैरिह कथिता प्रतिचरणविवृद्धिरेफा ये।
दण्डकभेदा पिगलदीपेऽप्यर्णादय स्फुटत॥ वृत्तमौक्तिक-२।३।५।पृ० १८५।
डा० भोलाशकरव्यास, प्राकृत पैगल, परिशिष्ट-२ मे लक्ष्मीनाथ भट्टकृत पिगलप्रदीप, पृ० ५०८-५०९।

रचना है, जिसमे वृत्तप्रकरण के २६५ छन्दो के प्रकीर्णक प्रकरण के ६ और दण्डक प्रकरण के ८ छन्दो के लक्षण तथा उदाहरण दिये गये है। इस प्रकार वृत्तमौक्तिक मे चन्द्रशेखर ने ५६७ छदो को लक्षित किया है। जिनमे से चन्द्रशेखर का लौकिक सस्कृत छन्द शास्त्र मे निम्नाकित ४४ छन्दों का योगदान है। शेष वृत्त पूर्वाचार्यो की रचनाओ मे लक्षित हो चुके है।

चन्द्रशेखर के स्वतत्र लक्षित छन्द	**लक्षण**	**ग्रन्थ सन्दर्भ**
उष्णिक् (सप्ताक्षरपाद)		
१ कुसुमतति	(न न ल)	वृत्तमौक्तिक-२ ।८२ ।
अनुष्टुप् (अष्टाक्षरपाद)		
२ जलद	(न न ल ल)	वृत्तमौक्तिक-२ ।१०० ।
पक्ति (दशाक्षरपाद)		
३ गोपाल	(म म म ग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।१२५ ।
४ ललितगति	(न न न ल)	वृत्तमौक्तिक-३ ।१४५ ।
त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)		
५ सेनिका	(ज र ज ग ल)	वृत्तमौक्तिक-२ ।१६३ ।
६ बकुल	(न न न ल ल)	वृत्तमौक्तिक-२ ।१८८ ।
अतिजगती (त्रयोदशाक्षरपाद)		
७ वाराह	(म म म म ग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।२५५ ।
८ चन्द्रिका	(ननततग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।२७७ ।
९ विमलगति	(नननल)	वृत्तमौक्तिक-२ ।२९३ ।
शक्वरी (चतुर्दशाक्षरपाद)		
१० सिहास्य	(म म म म ग ग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।२९५ ।
११ अहिधृति	(ननभजलग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।३२२ ।
१२ मल्लिका	(सजसजलग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।३२६ ।
१३ मणिगण	(मननलल)	वृत्तमौक्तिक-२ ।३२८ ।
अतिशक्वरी (पचदशाक्षरपाद)		
१४ उडुगण	(न न न न न)	वृत्तमौक्तिक-२ ।३७१ ।
अष्टि (षोडशाक्षरपाद)		
१५ सुकेशर	(नसजसजग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।३९९ ।
१६ ललना	(सननजभग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।४०१ ।
अत्यष्टि (सप्तदशाक्षरपाद)		
१७ लीलाधृष्ट	(मममममगग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।४०५ ।
१८ मतगवाहिनी	(रजरजरलग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।४३५ ।
१९ दशमुखहर	(ननननलल)	वृत्तमौक्तिक-२ ।४३९ ।
धृति (अष्टादशाक्षरपाद)		
२० लीलाचन्द्र	(मममममम)	वृत्तमौक्तिक-२ ।४४१ ।
२१ उपवनकुसुम	(नननननन)	वृत्तमौक्तिक-२ ।४७१ ।
अतिधृति (ऊनविशत्यक्षरपाद)		
२२ नागानन्द	(ममममममग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।४७३ ।

२३ मृदुलकुसुम	(नननननल)	वृत्तमौक्तिक-२ ।४९७
कृति (विशत्यक्षरपाद)		
२४. योगानन्द	(ममममममगग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।४९९ ।
२५. अनवधिगुणगण	(ननननननलल)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५१८
प्रकृति (एकविंशत्यक्षरपाद)		
२६ ब्रह्मानन्द	(७ मगण)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५२० ।
२७ निरुपमतिलक	(७ नगण)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५३७
आकृति (द्वाविशत्यक्षरपाद)		
२८ विद्यानन्द	(७ मगण + ग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५३९ ।
२९ अच्युत	(नननननसजजग)	वृत्तमौक्तिक-३ ।५५० ।
३० मदालस	(तभयजसरन ग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५५२ ।
३१ तरुवर	(७ नगण + ल)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५५६ ।
विकृति (त्रयोविशत्यक्षरपाद)		
३२ दिव्यानन्द	(७ म + गग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५५८ ।
३३ मल्लिका	(७ज+ लग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५७० ।
३४ कनकवलय	(७ न + लल)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५७४ ।
सकृति (चतुर्विशत्यक्षरपाद)		
३५ रामानन्द	(८ मगण)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५७६ ।
३६ माधवी	(७ ज + य)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५८६ ।
३७ तरलनयन	(८ नगण)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५८८ ।
अभिकृति (पचविशत्यक्षरपाद)		
३८ कामानन्द	(८ म + ग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५९० ।
३९ मल्ली	(८ सगण + ग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५९५ ।
४० मणिगण	(८ नगण + ल)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५९७ ।
उत्कृति (षड्विशत्यक्षरपाद)		
४१ गोविन्दानन्द	(८ मगण + ग ग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५९९ ।
४२ मागधी	(८ भगण + ग ग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।६०७ ।
४३ कमलदल	(८ नगण + ल ल)	वृत्तमौक्तिक-२ ।६०९ ।
सीमित दण्डक		
४४ अनगशेखर	(रजरजरजरजरल २८ वर्ण)	वृत्तमौक्तिक-२ ।३ ।१६

(२७) लक्ष्मीनाथ भट्टकृत-वृत्तमौक्तिक-भाग-२ ।

वृत्तमौक्तिक के द्वितीय खण्ड मे अर्धसमप्रकरण से अन्त तक श्री चन्द्रशेखर के पिता श्री लक्ष्मीनाथ भट्ट की रचना है, जिसमे अर्धसमवृत्त प्रकरण से वैतालीय प्रकरण तक २८ छदो का, गद्य निरूपण में ८ गद्य वृत्तो का, विरुदावली प्रकरण में ७४ विरुदो का और खण्डावली प्रकरण में २ खण्डावलियों का सोदाहरण निरूपण किया गया है। दोष प्रकरण में विरुदावली और खण्डावली के नौ दोषो के लक्षण तथा उदाहरण दिये गये हैं और अनुक्रमणीप्रकरण मे २२८ पद्य हैं, जिनमें प्रकरणानुसार ग्रन्थ के विषयों का विवरण है। समस्त ग्रन्थ मे १४३१ पद्य और १५ गद्य खण्ड हैं, जिनमे ६७९ छन्दो

का निरूपण है । यह ग्रन्थ लक्ष्मीनाथ भट्ट ने अपने पुत्र चन्द्रशेखर भट्ट के देहावसान के पश्चात् पुत्र की इच्छा को पूर्ण करने के लिये सवत् १६७६ मे कार्तिकी पूर्णिमा को लिखकर पूर्ण किया था । ग्रन्थ के प्रथम खण्ड मे बहुत से ऐसे छन्द है, जिनका प्राकृत तथा अपभ्रश से सस्कृतीकरण किया गया है, उन्हे चन्द्रशेखर भट्ट के नवीन छन्दो मे और लक्ष्मीनाथ भट्ट के विरुदो को सस्कृत के नवीन छन्दो मे गिना जा सकता है । इस ग्रन्थ मे लक्ष्मीनाथ भट्ट के स्वतत्र लक्षित ४ छद है—

विषमवृत्त

१ (६,६,६,११) भाव (म म, म म, म म, भ भ भ ग ग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।५ ।११-१२ ।

मात्रावृत्त चतुष्पदी

२ (१४,१४,१४,१४) नलिन (६ मात्रा यथेच्छ + भ ग ग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।६ ।८-९ ।
३ (१६,१६,१६,१६) अपरनलिन (८ मात्रा यथेच्छ + भ ग ग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।६ ।१०,११ ।
४ (१६,१६,१६,१६) उत्तरान्तिका (८ मात्रा यथेच्छ + र ल ग)	वृत्तमौक्तिक-२ ।६ ।१५,१६ ।

(२८) समयसुन्दरकृत वृत्तरत्नाकर टीका सुगमावृत्ति

समयसुन्दर वृत्तरत्नाकर के टीकाकार है । इन्होने वृत्तरत्नाकर पर अपनी टीका सुगमावृत्ति विक्रम सवत् १६९४ (तदनुसार सन् १६३७ ई०) मे लिखी थी।[३१०] जिसके तृतीय अध्याय मे 'इदमप्यधिकम्' के साथ कुछ छन्दो को स्वतत्र रूप से लक्षित किया गया है। टीका भाण्डारकर शोध-सस्थान, पूना के पाण्डुलिपि पुस्तकालय मे न० ७६ (१९३३ ई०) के रूप मे सुरक्षित है। टीका मे इनके लक्षित छन्दो मे स्वतत्र रूप से लक्षित ४ छन्द है ।

समयसुन्दर के स्वतत्र लक्षित छन्द	लक्षण	ग्रन्थ सन्दर्भ
उष्णिक् (सप्ताक्षरपाद)		
१ चूडामणि	(त भ ग)	वृत्तरत्नाकर सुगमावृत्ति-३ ।१२ ।१ ।
त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)		
२ असुविलास	(न त न ल ग)	वृत्तरत्नाकर सुगमावृत्ति (३ ।४३ ।५ ।
अतिजगती (त्रयोदशाक्षरपाद)		
३ कुटिलगति	(न ज त त ग)	वृत्तरत्नाकर सुगमावृत्ति-३ ।७० ।६ ।
उत्कृति (षड्विशत्यक्षरपाद)		
४ भुजगेरित	(भयनतननरसलग)	वृतरत्नाकर सुगमावृत्ति-३ ।१०६ ।१

(२९) भास्करकृत वृत्तरत्नाकर सेतु

भास्कर वृत्तरत्नाकर के टीकाकार है। यह आपा जी अग्निहोत्री के पुत्र थे, जो नासिक मण्डलान्तर्गत त्र्यम्बकेश्वर मे रहते थे। इन्होने विक्रम सवत् १७३२ (तदनुसार सन् १६७५ ई०) मे वृत्तरत्नाकर पर सेतु नामक टीका लिखी थी ।[३११] जिसके तृतीय अध्याय मे कुछ छदो को स्वतत्र रूप से लक्षित किया गया है। इस टीका की प्रति बम्बई ब्राच आफ रायल एशियाटिक सोसायटी के पुस्तकालय मे न० १२२ के रूप मे सुरक्षित है। इन्होने उक्त टीका के अध्याय २ के २६वें और ६ के दूसरे वृत्त के उदाहरण स्वरचित छन्दोग्रन्थ छन्दस्सिद्धात भास्कर से प्रस्तुत किये है, किन्तु अब छन्दस्सिद्धात भास्कर प्राप्त नही होता। टीका मे इनके स्वतत्र रूप से लक्षित ६ छन्द प्राप्त होते हैं—

---

३१० दृष्टव्य-जयदामन मे प्रकाशित वृत्तरत्नाकर का तृतीय अध्याय ।
जयदामन-क्रिटिकल स्पराटस-पृ० ५२ ।

३११ दृष्टव्य-जयदामन-क्रिटिकल स्पराटस-पृ० ४९ ।

भास्कर के स्वतत्र लक्षित छन्द	लक्षण	ग्रन्थ सन्दर्भ
पक्ति (दशाक्षरपाद)		
१ दीपकमाला	(भमजग)	वृत्तरत्नाकरसेतु-३ ।२८ ।२ ।
२ पणव	(मनजग)	वृत्तरत्नाकरसेतु-३ ।२८ ।५
जगती (द्वादशाक्षरपाद)		
३ द्रुतपद	(नभनय)	वृत्तरत्नाकरसेतु-३ ।६४ ।११ ।
४ ललना	(भमसस)	वृत्तरत्नाकरसेतु-३ ।६४ ।१२ ।
धृति (अष्टादशाक्षरपाद)		
५ अश्वगति	(भ भ भ भ भ स)	वृत्तरत्नाकरसेतु-३ ।९४ ।५ ।
६ हरिणप्लुत	(म स ज ज भर)	वृत्तरत्नाकरसेतु-३ ।९४ ।१० ।

(३०) नारायणकृत वृत्तरत्नाकर टीका नारायणी

नारायण वृत्तरत्नाकर के टीकाकार है। यह रामेश्वर भट्ट के पुत्र थे। इन्होने शक सवत् १६०२ (तदनुसार सन् १६८० ई०) मे वृत्तरत्नाकर पर अपनी टीका लिखी।[३१२] जो नारायणी टीका नाम से प्रसिद्ध है। यह टीका काशी सस्कृत सीरीज से १९२७ में प्रकाशित हो चुकी है। इसके तृतीय अध्याय मे कुछ छन्दो को स्वतत्र रूप से लक्षित किया गया है। जिनमे इनके स्वतत्र लक्षित २० छन्द है—

नारायणभट्ट के स्वतत्र लक्षित छन्द	लक्षण	ग्रन्थ सन्दर्भ
त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)		
१ कुपुरुषजनिता	(न न र ग ग)	वृतरत्नाकर नारायणी टीका-३ ।४३ ।६ ।
शक्वरी (चर्तुदशाक्षरपाद)		
२ नदी	(न न त ज ग ग)	वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-३ ।७७ ।२ ।
३ कुमारी	(न ज भ ज ग ग)	वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-३ ।७७ ।३ ।
४ लक्ष्मी	(म स त भ ग ग)	वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-३ ।७७ ।६ ।
अत्यष्टि (सप्तदशाक्षरपाद)		
५ हरि	(ननमरसलग)	वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-३ ।९३ ।२ ।
६ कान्ता	(यम न रसलग)	वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-३ ।९३ ।४ ।
धृति (अष्टादशाक्षरपाद)		
७ चित्रलेखा	(म न न त त भ)	वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-३ ।९४ ।७ ।
८ चल	(म भ न ज भ र)	वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-३ ।९४ ।८ ।
९ शार्दूल	(मस ज स र म)	वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-३ ।९४ ।११ ।
अतिधृति (ऊनविशत्यक्षरपाद)		
१० समुद्रतता	(ज स ज स त भ ग)	वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-३ ।९६ ।१ ।
११ पचचामर	(न न र ज र ज ग)	वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-३ ।९६ ।४ ।
१२ मणिमजरी	(य भ न य ज ज ग)	वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-३ ।९६ ।७ ।
१३ छाया	(य म न स भ त ग)	वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-३ ।९६ ।८ ।
अर्धसमवृत्त		
१४ (८,१०) ललिता	(रसलग, सजजग)	वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-४ ।१ ।१ ।

---

३१२ दृष्टव्य-जयदामन-क्रिटिकल स्पराटस-पृ० ५० ।

१५ (१२,१२) कोमुदी (न न भ भ, ननरर) वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-४ ।१० ।१ ।
१६ (१२,१३) मजुसौरभ (न ज जर, सजमजग) वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-४ ।१० ।२ ।
१७ (१२,१३) मृगी-यवानी (रजरज, तरजरग) वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-४ ।१० ।३ ।
१८ (१७,१२) षट्पदा (तभरजरगग, रजरय) वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-४ ।१२ ।१ ।

मात्रावृत्त (द्विपदी)

१९ कलश (२ गुरु ६० लघु = ६२ वर्ण) वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-२ ।११ ।
२० शशधर (१ गुरु ६१ लघु = ६३ वर्ण) वृत्तरत्नाकर नारायणी टीका-२ ।११ ।

(३१) वृत्त-मुक्तावली

वृत-मुक्तावली श्रीकृष्ण भट्ट की रचना है। इसका पूर्ण परिचय वैदिक छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो के सामान्य परिचय मे दिया जा चुका है। इसका रचना काल १७३२ से १७४३ ई० के मध्य माना जाता है।[३१३] इसमे ३ गुम्फ है। प्रथम गुम्फ मे २०५ वैदिक छन्दो का विवरण है और द्वितीय गुम्फ मे ५४ मात्रिक छन्दो का, जिसमे **ब्रजभाषा हिन्दी के कई छन्दो का सस्कृतीकरण किया गया है**। तृतीय गुम्फ मे १६० सस्कृतवृत्तो का सोदाहरण निरूपण किया गया है, जिनमे ३७ दण्डको के लक्षण है, जिनमे इनके स्वतत्र लक्षित छन्द २१ है।

गायत्री (षडक्षरपाद)	**लक्षण**	**ग्रन्थ सन्दर्भ**
१ मन्दर	(भ भ)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२९ ।
उत्कृति (षड्विशत्यक्षरपाद)		
२ चण्डकील	(न स य य य य य य य ल ग)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२८६ ।[३१४]
सीमितदण्डक		
३ सिहविक्रान्त	(न न + ७ तगण + ग ग = २९ वर्ण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२८९ ।[३१५]
४ चण्डवेग	(न न + ८ यगण = ३० वर्ण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।८८ ।
५ अनगशेखर	(जरजरजरजरजरलग) = ३२ वर्ण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२९० ।
६ अशोकमजरी	(रजरजरजरजरजगल = ३२ वर्ण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२९१ ।
७ मेघमाला	(ननम ८ यगण = ३३ वर्ण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२८७,८८ ।
८ मत्तमातगखेलित	(१२ रगण = ३६ वर्ण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२९४ ।
९ कुसुमस्तवक	(१२ सगण = ३६ वर्ण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२९५ ।
१० दाम	(१२ तगण = ३६ वर्ण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२९६ ।
११ वर्तुल	(१२ भगण = ३६ वर्ण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२९८ ।
१२ अचल	(१२ नगण = ३६ वर्ण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२९९ ।
१३ सिहविक्रीड	(१६ यगण = ४८ वर्ण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२९३ ।
१४ वाराह	(नन + १९ रगण = ६३ वर्ण)	वृत्तमुक्नावली-३ ।२७९-८० ।
१५ वात	(न न + २० रगण = ६६ वर्ण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२७९-८० ।

---

३१३ वृत्त-मुक्तावली-सचालकीय वक्तव्य-पृ० ३ ।

३१४ रचयिता ने चण्डकील की गणना दण्डको मे की है, जबकि २६ वर्ण होने से वह उत्कृति विभाग मे आता है।

३१५ श्रीकृष्ण भट्ट ने सिहविक्रान्त का लक्षण (५ ल + ८ यगण) दिया है, जो क्रमश (नन + ७ तगण + गग) होता है।

१६ उद्दालक	(२४ मगण) = ७२ वर्ण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२७९-८० ।
१७ वितान	(२४ जगण) = ७२ वर्ण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२९७ ।
असीमित दण्डक		
१८ मेघमाला	(न न म + यथेच्छ यगण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२७९-८० ।
१९ कामवाण	(यथेच्छ तसजयगग)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२७९-८० ।
२० महाचण्डवृष्टि	(न न + शतावधि रगण)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२८४-८५ ।
२१ मकरालय	(यथेच्छ न ग म की आवृत्ति)	वृत्तमुक्तावली-३ ।२९९ के बाद ।

(३२) जनार्दनकृत वृत्तरत्नाकर टीका-भावार्थदीपिका

जनार्दन वृत्तरत्नाकर के टीकाकार है। उनके गुरु का नाम अनन्त था। इन्होने वृत्तरत्नाकर पर भावार्थदीपिका नामक टीका लिखी है जो भाण्डारकर शोध सस्थान, पूना के पाण्डुलिपि पुम्तकालय मे न० ४८९ (सन् १८९९-१९१५) के रूप मे सुरक्षित है। इस पाण्डुलिपि पर शक सवत् १७११ तदनुसार सन् १७८९ ई० पडा है।[३१६] इस टीका के तृतीय अध्याय मे **'कुत्रचिदधिकम्'** के साथ कुछ छन्दों को स्वतत्र रूप से लक्षित किया गया है। इन्होने टीका के अध्याय-३ के २५वे और ४ के ७वे वृत्त भाग मे स्वरचित छन्दोग्रन्थ वृत्तप्रदीप का उल्लेख किया है,जो अब प्राप्त नही होता।

इनके लखित छन्दो मे स्वतत्र रूप से लक्षित दो छन्द प्राप्त होते है—

जनार्दन के स्वतत्र लक्षित छद	**लक्षण**	**ग्रन्थ सन्दर्भ**
शक्वरी (चतुर्दशाक्षरपाद)		
१ कुटिल	(ज भ न य ग ग)	वृत्तरत्नाकर भावार्थ दीपिका-३ ।७७ ।१ ।
२ चन्द्रौरस	(म भ न य ल ग)	वृत्तरत्नाकर भावार्थ दीपिका-३ ।७७ ।८ ।

(३३) छन्द कौस्तुभ

छन्दकौस्तुभ के रचयिता राधा दामोदर है। रचना का समय विक्रम सवत् १९०४ (१८४७ ई०) है। इसकी पाण्डुलिपि (न० ८९४ ।१८८६-९२) पूना के भाण्डारकर शोध सस्थान के पुस्तकालय मे सुरक्षित है। अभी इसका प्रकाशन नहीहुआ है। इसमे लक्षित छन्दो मे से लौकिक छन्द शास्त्र मे **राधादामोदर** का निम्नाकित ३ छदो का योगदान है। शेष लक्षित छन्द इनसे पूर्ववर्ती छान्दस आचार्यों द्वारा लक्षण ग्रन्थो मे लक्षित हो चुके हैं।

राधा दामोदर के स्वतत्र लक्षित छन्द	**लक्षण**	**ग्रन्थ सन्दर्भ**
अनुष्टुप् (अष्टाक्षरपाद)		
१ सुचन्द्रप्रभा	(ज र ग ल)	छन्दकौस्तुभ-२ ।२७ ।
२ सुविलासा	(स र ग ल)	छन्दकौस्तुभ-२ ।२८ ।
अतिशक्वरी (पन्चदशाक्षरपाद)		
३ चन्द्रकान्ता	(र र त म य)	छन्दकौस्तुभ-२ ।१२० ।

(३४) वाग्वल्लभ

वाग्वल्लभ के रचयिता दु खभजन है।[३१७] जो काशी निवासी कान्यकुब्जवशीय प्रतापशर्मा के

---

३१६ दृष्टव्य-जयदामनक्रिटिकल एपराटस-पृ० ५० ।

३१७ ग्रन्थ श्रीयुत दु खभञ्जनकविर्ग्रश्नाति वाग्वल्लभम् । वाग्वल्लभ-प्रारम्भिक पथ-२ ।

पौत्र और चूडामणि शर्मा के पुत्र है ।[318] रचयिता के पुत्र महामहोपाध्याय श्री देवीप्रसाद शर्मा ने विक्रम सवत् १९८५ (१९२८ ई०) मे मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष शनिवार हरितिथि को वाग्वल्लभ की टीका 'वरवर्णिनी' को पूर्ण किया था ।[319] ग्रन्थकार की मृत्यु के समय इसके पुत्र टीकाकार की अवस्था ८ वर्ष की थी ।[320] और जब टीकाकार ने टीका लिखी होगी, उस समय कम से कम उसकी अवस्था ४०-४५ की होगी । अत वाग्वल्लभ का रचना काल वि० स० १९४० (१८८३ ई०) के आस-पास माना जा सकता है ।

ग्रन्थकार ज्योतिर्विद् थे, अत उन्होंने जहा आज तक प्राप्त छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो मे प्रयुक्त छन्द प्रायश ग्रहण किये है, तो वहा प्रस्तार का आधार लेकर सैकडों नवीन छन्दों का निर्माण भी किया है । इस ग्रन्थ मे सर्वाधिक १५४० छन्दो का निरूपण है, जो वृत्तरत्नाकर की लक्ष्यलक्षण शैली मे है, जिसमे लक्ष्य और लक्षण एक साथ ही गतार्थ हो जाता है । प्रत्येक वर्णिक वृत्त प्रस्तार सख्या के क्रम से दिया गया है । इसमे ३०२ लक्षण पद्य और १३८७ लक्षणसूत्र तथा ४ गद्योदाहरण है, जिनमे १४९ मात्रिक और १३६० वर्णिक तथा २७ दण्डक एव ४ गद्यवृत्तो को लक्षित किया गया है । इसके अतिरिक्त ग्रन्थकार ने एक विलोम काव्य की भी रचना की थी, जिसका उल्लेख टीका में मिलता है ।[321] वाग्वल्लभ तो उनकी अमर कृति है । इसमे पिगल, पिगलनाग, उदलक, श्वेत, माण्डव्यादि पूर्ववर्ती प्राचीन छान्दस आचार्यो का उल्लेख मिलता है ।[322] रचना मात्रिक वृत्त निरूपण मे प्राकृत पैंगल[323] और वाणीभूषण से अधिक अनुप्राणित है । ग्रन्थ मे लक्षित १५४० छन्दो मे से १०३१ छन्द दु खभञ्जन के स्वतन्त्र लक्षित छन्द है, जो सम्कृत लौकिक छन्द शास्त्र में अपना योग प्रदान करते हैं । शेष ५०९ छन्द भरत-पिगल से लेकर राधादामोदरपर्यन्त छन्दोलक्षणकारो की रचनाओ मे लक्षित हो चुके हैं ।

दु खभञ्जन के स्वतत्र लक्षित छन्द

वाग्वल्लभ मे पचाक्षरवृत्ति—२ से ३१ के मध्य १८ छन्द ।[324]

नाली, कललि, शिला, कुम्भारि, भ्रू, ह्री, पालि, किञ्जल्कि, वार्द्धि, विड्, पाशु, मालीन, वरीय, कल्कि, जतु, छिद्र, क्षुप, क्षुत् ।

वाग्वल्लभ मे षडक्षरवृत्ति—१८ से ६३ के मध्य ३८ छन्द ।

कच्छपी, मृदुकीला, वलीमुखी, मशगा, कुही, सौरभि, सरि, साहूति, विन्दु, मन्त्रिका, ढुण्ढि, क्षमापालि, राढि, अभिभृत, मकुर, वृत्तहारि, आर्भव, मधुमारक, हाटकशालि, पाकलि, पुटमर्दि, केसरि, सोमश्रुति, सोपधि, इन्धा, सावटु, अयमित, प्रोथा, अर्ति, विससि, अतिकलि, सुदायि, अमति, वभ्रू, कञ्जा, गुणवति, पिकाली, अरजस्का ।

---

३१८ वाग्वल्लभ-दामोदर शास्त्रिकृत भूमिका, पृ० ९ ।

३१९ वाणाष्टनवभूवर्षे मार्गशीर्षेऽसिते दले ।
शनौ हरितिथावेषा विवृति पूर्णतामगात् । देवीप्रसादशर्मकृत वाग्वल्लभ टीका वरवर्णिनी, पृ० ३१५ ।

३२० वाग्वल्लभ-दामोदरशास्त्रिकृत भूमिका, पृ० १० ।

३२१ अस्मत्पितृचरणनिर्मिते विलोमकाव्य-----माया यथा-----नतोऽस्मि ।
वाग्वल्लभटीका-वरवर्णिनी, पृ० ३८, ४६ में पद्य-टीका ।

३२२ वाग्वल्लभ-वर्णप्रस्तार, ३२,४६ और मात्राप्रस्तार-३२ ।

३२३ प्राय पैंगलमाकलय्य सकल प्रस्तार आरभ्यते । वाग्वल्लभ मात्राप्रस्तार-६ ।

३२४ वाग्वल्लभ-हरिदास सस्कृत ग्रन्थमाला न० १००, बनारस ।१९३३ ।

वाग्वल्लभ मे सप्ताक्षरवृत्ति—२ से १२७ के मध्य १०२ छन्द।

प्रहाण, सैरवी, शम्बूक, निम्नाशया, सुमोहिता, अधीरा, होला, इभभ्राता, अभीक, अहिसा, रसधारि, वेधा, पद्मा, किणपा, किर्मीर, वयस्क, भीमार्जन, हाडपदा, दृति, हिन्दीर, ऊपिक, भृष्टपादा, मायाविनी, राजराजी, कुठारिका, कल्पमुखी, परभृत, महोन्मुखी, महोद्धता, पूर्णा, बहिर्बलि, पुरटि, केशवती, सौरकान्ता, अधिकारी, महोधिका, नवसरा, चिरकचि, बहुलया, यमनक, स्विदा, नीहारी, कसासारि, खर्विणी, गृहिणी, वर्द्धिष्णु, श्रोणी, व्याहारि, किशलय, देवल, नदिर्द, अनासादि, अलालापि, गुञ्जा, ऋचा, नन्दधु, अनु, अम्मेथी, मयूरी, सामिका, प्रोञ्छिता, वृन्दा, प्रतर्दि, मीनपदी, मणिमुखी, मौलिस्रक्, परभानु, मेथिका, गोधि, सरलाङ्घ्रि, विरोहि, वरजानि, सम्पाक्, पद्धरि, गूर्णिका, काही, कामोद्धता, खर्परि, शान्तनु, मुरजिका, कालम्बी, उपोहा, कार्पिका, मुहुरा, दोषा, उपोदरि, जासरि, भूरिमधु, भूरिवसु, हर्षिणी, लोलतनु, क्रोडान्तिक, स्तरधि, पोरसरि, वीरवटु, अमति, अहति, वरशशि, धनधरि, मुशकि, कुरदि, कोशि।

अष्टाक्षरवृत्ति—२ से ८९ के मध्य ६७ छन्द—

अनिर्भार, इन्द्रफला, गोपावेदी, भूमधारी, मौलिमालिका, युगधारि, विराजिकरा, वात्या, पाञ्जालाघ्रि, कुलाधारी, परिधारा, यशस्करी, कुररिका, मनोला, रमणीयशिखा, भार्ङ्गी, पारान्तचारी, कौचमार, वान्तभार, दिगीश, सारावनदा, कृष्णगतिका, प्रतिसीरा, अतिमोहा, चतुरीहा, वृत्तमुखी, सन्ध्या, विहावा, हेमरूप, सल्लकप्लुत, सरघा, माण्डवक, हठिनी, श्रद्धरा, अरालि, कुरूचरी, शिखिलिखिता, ईडा, नागारि, लक्ष्मी, नखपदा, हरित, किष्कु, नृतनर्म, अमरन्दि, कुलचारि, कुरञ्जि, वृन्त, शाखोटकि, पञ्जरि, प्रीता, मन्थरि, वातुलि, भाषा, पाकलि, अमना, आकतनु, आखेट, अतिजनि, सूतमधु, मरु, चयन, कुशक, निरुद, सिन्धुक्, क्षर, वेशि।

नवाक्षरवृत्ति—२ से ५९ तक के मध्य ३८ छन्द

मेघालोक, मायासारी, खेलाढ्य, वैसारु, निर्विन्ध्या, कर्मिष्ठा, धृतहाला, कलह, अयनपताका, सम्बुद्धि, शम्बरधारी, सुगन्धि, कामा, निभालिता, रवोन्मुखी, अवनिजा, प्रवह्लिका, मधुमल्ली, सहेलिका, करशया, शशिकरी, निषध, रञ्जक, अनवीरा, प्रियतिलका, आकेकर, धौनिक, वल्गा, कीटमाला, मसृणक, लीला, वारिधियान, कुहू, कठिनास्थि, वन्दारु, विकचवती, उदधि, स्फुटघटिता।

दशाक्षरवृत्ति—२ से ९३ के मध्य ७२ छन्द

शेफाली, धूम्राली, नीरोहा, वीरान्ता, निर्मेधा, मध्याधार, वशारोपी, कूल, बोधातुरा, सुराक्षी, कलापान्तरिता, भारवहा, विशदच्छाय, ऐन्द्री, हेमहास, सुलेखा, नमेरु, गणदेहा, नरगा, बलधारी, अचलपक्ति, असितधारा, उन्नाल, निरान्तिक, उपाधाय्या, तनिमा, विशालान्तिक, विशालप्रभ, चरपद, उपसकुला, वर्हातुरा, नीराञ्जलि, सराविका, अक्षरावली, सहजा, अहिला, कुप्य, अनुचायिता, वर्मिता, भिन्नपद, वडिशभेदिनी, चितिभृत, फलिनी, सुरयानवती, विरल, छलिखक, प्रवादपरा, वारवती, परिचारवती, काण्डमुखी, शरत्, गहना, फलधर, धमनिका, कृतमणिता, मह्मिावसायि, कामचारि, नेमधारि, हीरलम्बि, वनितावितोदि, विरेकि, कृकपादि, लुलित, रसभूम, चारुचरण, सरसमुखी, ऋत, कीलाल, खौरलि, कामनिभा, विस्रसि, नीरनिधि।

एकादशाक्षरवृत्ति—२ से १११ के मध्य ८२ छन्द

आराधिनी, अमालीन, मेषध्वनिपूर, उद्धतकरी, अपयोधा, अन्तर्वनिता, प्रफुल्लकदली, लक्षणलीला, कूलचारिणी, विलुलितमन्जरी, भूरिघटक, कलिकमलमाला, वल्लवीविलास, विकसितपद्मावली, अमोघमालिका, ललितागमन, ससृतशोभासार, ललितालबाल, वार्ताहारी, कडार, उदितदिनेश, जालपाद, जारुदेहा, सुधाधारा, कन्दविनोद, विलम्बितमध्या, विष्टम्भि, क्रोशितकुशला, उपहितचण्डी, त्रितकमला, विहारिणी, ईहामृगी, परिमलललित, विमला, सरोजवनिका, अमन्दपाद,

पञ्चशाखी, पदुपट्टिका, वर्णवलाका, श्रमितशिखण्डी, रोधक, मदनमाला, उदितविजोहा, मात्रा, सुवृत्ति, भुजगी, जवनशालिनी, प्रसृमरकरा, गल्लक, प्रपातावलरि, गह्वर, वारयात्रिक, प्रतारिता, सौरभवर्द्धिनी, भुजगहारिणी, मम्मदमालिका कनककामिनी, उपदारिका, दारिका, मालविका, नाभस, सौभगकला, वीवध, आशापाद, भुजलता, हरिकान्ता, कलस्वनहस, मदनया, खटका, शल्कशकल, कुशलकलावतिका, अर्थशिखा, निरवधिगति, दामघटिता, सामपदा, गम्भारि, कामुकलेखा, सश्रयश्री, पिचुल, कालवर्म, शेषापीड, केलिचर।

द्वादशाक्षरवृत्ति—२ से १२७ के मध्य ९४ छन्द

भासितभरण, विषमव्याली, शम्या, मिथुनमाली, किशुकास्तरण, दोर्लीला, विशालाम्भोजाली, वीणादण्ड, मत्ताली, वसनविशाला, लीलारत्न, विवरविलसित साक्षी, स्वरवर्षिणी, धवलकरी, लुम्बाक्षी, मलयजसुरभि, आधिदेवी, समयप्रहिता, मिहिरा, कलवल्लीविहग, असुधारा, कलोर्जिता, वधिरा, वलभी, लीढालर्क, वनिताविलोक, कुमुदिनीविकास, वसन्तहास, विद्रुमदोला, सुखशैल, करमाला, विजयपरिचया, कासारक्रान्ता, माया, परिलेख, वरत्रा, कुम्भोध्नी, शरमेया, नीरान्तिक, धृष्टपद, अर्दितपाद, परितोषा, छलितकपद, उपधान, पथिकान्ता, विरतिमहती, गलितनाला, सरोजावली, विप्लुतशिखा, विशिखलता, अर्पितमदना, सुतल, अन्तर्विकासवासक, परिपुखिता, प्रसृमरमरालिका, विधारिता, पिकालिका, विरला, अविरलरतिका, राधिका, विपुलपालिका, उपलेखा, भसलविनोदिता, विरतप्रभा, मुकुलितकलिकावली, अतिवासिता, भुजगजुषी, अर्जितफलिका, कुरगावतार, विकत्थन, नीलारिका, वनिताभरण, सुभद्रावतरणि, विरलोद्धता, सुविहता, उदर्करचिता, सुवनमालिका, नगमहिता, सम्मदवदना, कुमारगति, उदयनमुखी, रसिकपरिचिता, व्यायोगवती, वियोगवती, सगमवती, ज्वलिता, रूपावलि, अनीचक, भासितसरणि, विकलवकुलवल्ली, निमग्नकीला, वासरमणिका, अरिला।

त्रयोदशाक्षरवृत्ति—२ से ९५ के मध्य ७४ छन्द

उल्काभास, लीलालोक, कलाधाम, वासविलासवती, विपन्नकदन, विभा, रसधारा, दर्पमाला, भाजनशीला, श्रद्धरान्ता, आनता, प्रमोद, सुकर्णपूर, जगत्समानिका, अतिरह, माणविकासविकास, कीरलेखा, आननमूल, लोध्रशिखा, शलभलोला, पकजधारकणी, कुबेरकटिका, मयूखसरणि, रुचिवर्णा, विधुरवितान, पारावत, प्रवाहिका, स्विन्नशरीर, वामवदना, भसलपद, कठिनी, वृद्धवामा, मर्मस्फुर, पृषद्वती, अखण्डमण्डन, कलापतिप्रभा, अशोकपुष्पक, करपल्लवोद्गता, सार्द्धपदा, मञ्जुमालती, विरोधिनी, चन्द्रहासकर, द्रुतलम्बिनी, कनककेतकी, गरुदवारिता, अमितनगानिका, आपणिका, गुणसारिका, सारसनावलि, उपचितरतिका, उदात्तहास, कलनायिका, अभ्रभ्रमशीला, विदला, प्रयातलिका, कर्मठ, लवलीलता, अनिलोद्धतमुखी, प्रबोधफलिता, कोमलकल्पकलिका, परगति, अभिरामा, उपसरसी, मदनजवनिका, परिवशिता, अर्धकुसुमिता, विनताक्षी, नरावलि, अभीरुका, कनकिता, सुखकारिका, अट्टासिनी, पकावलि, अशनि।

चतुर्दशाक्षरवृत्ति—२ से ७६ के मध्य ५७ छन्द

वशोत्तसा, कालध्वान, पारावार, प्रपन्नपानीय, अनिन्दगुर्विन्दु, धीरध्वान, ललितपताका, सम्बोधा, विन्ध्यारुढ, दृप्तदेहा, बभ्रुलक्ष्मी, सरमासरणि, निर्यत्पागवार, कल्पकान्ता, परीवाह, वाटिकाविकास, अर्कशेषा, मदावदाता, चेलाञ्चल, कुसुम्बिनी, विलम्बनीया, अनन्तदामा, कृतमाल, शारदचन्द्र, परिणाही, रतिरेखा, मन्मथ, प्रतिभादर्शन, प्रपात, जलदरसिता, कल्पमीलिता, सुधाधरा, कलाधर, कुडगिका, वितानिता, अलकालिका, गगनोद्गता, विनन्दिनी, भूरिशिखा, क्रीडावसथ, नासाभरण, कर्णिशर, विपाकवती, काकिणिका, कारविणी, कूर्चललित, कलहेतिका, अञ्चलवती, गगनगतिका, निर्मुक्तमाला, कामशाला, उन्नर्म, उपकारिका, हेममिहिका, हेति, मधुपालि, वेशम्भरि।

पचदशाक्षरवृत्ति—२ से ४१ के मध्य २७ छन्द

वज्राली, स्फोटक्रीड, कीडितकटका, चार्वटक, आनद्ध, बहुलाभ्र, वाणिभूषा, सिहपुच्छ, कुमारलीला, दीपक, परिमल, शरकल्पा, मदनमालिका, प्लवगम, मयूरवदना, सारिणी, चमरीचर, जननिधिवेला, लीलाचन्द्र, धोरित, शान्तसुरभि, कर्णलता, विशकलिता, शीर्षविरहिता, शकावली, ऊहिनी, मितसक्थि ।

षोडशाक्षरवृत्ति—२ से ३४ के मध्य २२ छन्द

माल्योपस्थ, कल्पाहारी, प्रतीपवल्ली, वक्रावलोक, आरभटी, अभिधात्री, अनिलोहा, भोगावलि, वलिवदन, सूतशिखा, परिखायतन, मालावलय, भीमावर्त, शिशुभरण, तरवारिका, कमलकर, कलहकर, मरशिखी, सारवरोहा, दन्तालिका, कल्पधारि, कुल्यावर्त ।

सप्तदशाक्षरवृत्ति—२ से ३० के मध्य २० छन्द

वीरविश्राम, वल्वज, क्रूरासन, कामरूप, शायिनी, सलेखा, तितिक्षा, हारिणी, बालविक्रीडित, कालसरोद्धत, विरुदरुत, कासार, वशल, विधुरविरहिता, शिशुवनिता, वाहान्तरित, कर्णस्फोट, प्रतीहार, कान्तार, फल्गु ।

अष्टादशाक्षरवृत्ति—२ से २५ के मध्य १६ छन्द

परामोद, विलुलितवनमाला, नीलशार्दूल, सत्केतु, सिन्धुसौवीर, पर्विणी, क्रोडक्रीड, पसुपरमञ्जरी, हरिणप्लुत, षट्पदेरित, पार्थिव, परिपोषक, अर्धान्तरालापि, पतगपाद, हीरकहारधर, दण्डी ।

ऊनविशत्यक्षवृत्ति—२ से १८ के मध्य ११ छन्द

झिल्लीलीला, विधतिधुवन, माराभिसरण, लोललोलम्बलील, किरणकीर्ति, शिलीमुखोज्जृम्भित, फलापदीपक, कल्पलतापताकिनी, निर्गलितमेखला, ग्रावास्तरण, टकण ।

विंशत्यक्षरवृत्ति—१ से १४ के मध्य ९ छन्द

वाणीवाण, भेकालोक, विष्वग्वितान, भूरिशोभा, सलक्ष्यलीला, हारावतार, वीरविमान, अबन्ध्योपचार, सौरभशोभासार ।

एकविशत्यक्षरवृत्ति—१ से १४ के मध्य ११ छन्द

अशोकलोकालोक, मन्दाक्षमन्दर, तल्पकतल्लज, विद्युदाली, दूरावलोक, शरकाड-प्रकाण्ड, कलमताल्लिका, प्रतिमा, कमलशिखा, ललितललाम, तडिदम्बर ।

द्वाविशत्यक्षरवृत्ति—१ से १९ के मध्य १६ छन्द

वासकलीला, द्रुतमुख, भीमाभोग, वीरनीराजना, ककणकाणवाणी, ककणकाण, अर्भकमाला, भस्त्रानिस्तरण, अयमान, भोगावली, स्वर्णाभरण, निष्कलकण्ठी, भुजगोद्धत, भद्रक, अचलविरति, वनवासिनी ।

त्रयोविशत्यक्षरवृत्ति—१ से १८ के मध्य १३ छन्द

परिधानीय विलासवास, मन्थरायन, पुलकाञ्चित, इन्द्रविमान, विपुलायित, पारावारान्तस्थ, रामाबद्ध, विलम्बललित, गोत्रगरी, अमरचमरी, चकोर, ससृतशरधि ।

चतुर्विशत्यक्षरवृत्ति—१ से १८ के मध्य १५ छन्द

वशलोन्नता, धोरेय, भुजग, भासमानबिम्ब, समाहित, विगाहितगेह, अधीरकरीर, अर्दित, पार्वतसरण, गगोदक, उत्कटपट्टिका, शम्बर, वेल्लितवेल, अतुलपुलक, अनामय ।

पचविंशत्यक्षरवृत्ति—१ से १८ के मध्य १६ छन्द

शरभूरिणी, ह्रीणहैयगवीन, नीपवनीयक, कुमुदमाला, रसिकरसाला, विरहविरहस्य, भास्कर, चित्तचिन्तामणि, व्याकोशकौशल, शिविका, भामिनीविलसित, विशेषकवलित, अभ्रभ्रमण, अलका, मल्लपल्लीप्रकाश, सौदामनदाम ।

षड्विंशत्यक्षरवृत्ति—२ से २५ के मध्य २१ छन्द

तनुकिलकिंचित्, विनयविलास, विश्वविश्वास, अशोकानोरुह, आभासमान, वीरविक्रान्त, विकुण्ठकण्ठ, चारुगति, भसलशलाका, उज्झितकदन, कुहककुहर, सूरसूचक, विषाणाश्रित, विनिद्रसिन्धुर, शकुन्तकुन्तल, काकलीकलकोकिल, शृखलवलयित, विरामवाटिका, कर्णाटक, कुम्भक, वशवद ।

दण्डक—३ से ३० के मध्य १५ दण्डक

अशोकपुष्पमञ्जरी, अनगशेखर, शकायतन, लावण्यलीलाप्लुत, आलानिक, स्मारमालाकुल, बाललीलातुर, आर्दस्तवक, मनोहरण, विदग्धसुभगी, विशेषस्तवक, उदारपाद, कुसुमितकाय, विमर्ष, शेष शालीन । (ये दण्डक २७ वर्णपाद से ९९ वर्णपाद पर्यन्त हैं) ।

अर्धसमवृत्त प्रकरण मे १२१ छन्द (२ से १३४ के मध्य)

प्रमालिका, अवहित्रा, वर्गवती, परवक्त्र, अञ्चिताग्रा, सुन्दरी, सारिका, कर्णिनी, ईहा, द्रुतमध्या, कोरकिता, पाटलिका, अरुन्तुद, अनूपक, प्रभासिता, प्रभासिता, उपाढ्य, उपाढ्य, हरिप्लुता, लुप्ता, युद्धविराट्, रुचिमुखी, विमुखी, विमानिनी, विमानिनी, शुकावली, किशुकावली, सुराढ्या, असुराढ्या, प्रमाथिनी, अप्रमाथिनी, सुधा, असुधा, किलिकिता, किलिकिता, पद्मावती, पद्मावती, नटक, किन्नटक, चमूरुभीरु, चमूरु, केतु, आलेपन, अनालेपन, जारिणी, आलिपद, शिशुमुखी, अनिरया, भुजगभृता, अनगपद, शालभजिका, करभोद्धता, विलासवापी, अकोषकृष्टा, अहीनवाली, हीनताली, परप्रीणिता, अपरप्रीणिता, सपातशीला, पातशीला, कामाक्षी, वद्धास्य, साचीकृतवदना, अवाचीकृतवदना, कमलाकरा, कुसुमचर, नवनीलता, करीरिता, शरावती, बृहच्छरावती, वैयाली, करधा, प्रमोदपरिणीता, प्रमोदपद, वैसारी, वासववन्दिता, प्रतिविनीता, अतिप्रतिविनीता, मार्दंगी, मार्दंगी, अवरोधवनिता, अवरोधवनिता, मृदुमालती, समुद्रकान्ता, कान्ता, वासववासिनी, वासिनी, आसववासिता, अनासववासिता, सुरहिता, अतिसुरहिता, समयवती, अयवती, वियद्वाणी, वियद्वाणी, मन्दाक्रान्ता, समदाक्रान्ता, लास्यलीलालय, लास्यलीला, मधुवारि, निर्मधुवारि, धीरावर्त, धीरावर्त, उपोद्गता, उपोद्गता, औपगव, औपगवीत, अतैल, विश्वप्रभा, उपसरसीक, सरसीक, अर्धरुत, अल्परुत, अर्भकपक्ति, उलपोहा, आलोलघटिका, घटिका, कलना, कलनावती, अमरावती, अमरावती ।

विषमवृत्त प्रकरण में—२ से ५० के मध्य ४७ छन्द[३२५]

अपरोद्गता, (२) अपरोद्गता (३), अपरोद्गता (४), अपरोद्गता (५) वैतालिक, वर्तिकाविलसित, चिरकरका, भौजग, दरदपूर, कलम्बडम्बर, शरक्षामा, उपवैतालिक, परार्थनी, उदया, महातुरा, मन्देहा, नेदिष्ठा, विशकण्ठी, मञ्जिष्ठा, सकलि, कुथिनी, मानमुखी, उदक्, तरुणाशया, प्रवालान्तिक, अतुल, सुरद्रु, मखुमतिका, युतक, पिशगि, उपनयन, मृदव, अगाधिका, अनुसूय, अत्सरु, भुवनविरति, नतभृगु, कामकलशिका, नगोनिता, मणित्थक, आहानिगा, शर्म, नालीका, नयनपाली, छेकवती, नगोपमा, सौरागी ।

अनुष्टुप् प्रकरण मे—६ से १९ के मध्य ५ छन्द

वक्त्रानुष्टुप्, म-विपुला, य-विपुला, स-विपुला, ज-विपुला ।

मात्रावृत्त प्रकरण मे—१-८ के मध्य ४ छन्द

मुखविपुला, जघनविपुला, मुखचपला, जघनचपला ।

---

३२५ अर्धसमप्रकरण और विषमवृत्त प्रकरण में दु:खभजन ने जिन छन्दों का एक नाम से ही दो-दो वार उल्लेख किया है, उन छन्दों के लक्षण पृथक्-पृथक् हैं। दृष्टव्य-वाग्वल्लभ अर्धसमप्रकरण-२-१३४ तथा विषमवृत्त प्रकरण-२-५ ।

(३५) देवीप्रसादकृत वाग्वल्लभटीका वरवर्णिनी

वरवर्णिनी के रचयिता देवीप्रसाद है, जो वाग्वल्लभ के रचयिता दुखभजन के पुत्र है।[३२६] इन्होने अपने पिता के छन्दोग्रन्थ वाग्वल्लभ पर अपनी वरवर्णिनी नामक टीका को विक्रम सवत् १९८५ (१९२८ ई०) मे मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष शनिवार हरितिथि को पूर्ण किया था।[३२७] विद्वत्ता के कारण इन्होने सम्राट् से महामहोपाध्याय और राज्यसभा मे कविचक्रवर्ती की उपाधि प्राप्त की। ये काशी विश्वविद्यालय मे प्राध्यापक थे। दुर्दैववश वि० स० १९८८ में अतिसार से पीडित होकर इनका देहान्त हो गया।[३२८] वरवर्णिनी का रचनाकाल १९२८ ई० है, जिसमे १३ दण्डक स्वतत्र रूप से लक्षित किये गये है।

देवीप्रसाद के स्वतत्र लक्षित १३ दण्डक	**लक्षण**	**वर्ण**
सीमितदण्डक (वरवर्णिनी (दण्डक)-६३-९३ के मध्य ११ दण्डक)		
१ सिहविक्रान्त	(नन + गग + ८ यगण)	३२ वर्ण।[३२९]
२ सोत्कण्ठ	(नन + १९ रगण)	६३ वर्ण।
३ सार	(न न + २० रगण)	६६ वर्ण।
४ कासार	(नन + २१ रगण)	६९ वर्ण।
५ विस्तार	(नन + २२ रगण)	७२ वर्ण।
६ सहार	(नन + २३ रगण)	७५ वर्ण।
७ नीहार	(नन + २४ रगण)	७८ वर्ण।
८ मन्दार	(नन + २५ रगण)	८१ वर्ण।
९ केदार	(नन + २६ रगण)	८४ वर्ण।
१० साधार	(नन + २७ रगण)	८६ वर्ण।
११ सत्कार	(नन + २८ रगण)	९० वर्ण।
१२ सस्कार	(नन + २९ रगण)	९३ वर्ण।
असीमितदण्डक (वरवर्णिनी (दण्डक पृ० ३०७)		
१३ सिहविक्रीड	(९ से १४ तक अथवा उससे भी अधिक यथेच्छ यगण)	

(३६) छन्द सन्दोह

छन्द सन्दोह के सकलयिता दीनेशचन्द्र दत्त है।[३३०] इसका समय १९६८ ई० है।[३३१] इसमे ३५१ मस्कृत लौकिक छन्दो का सकलन हैं, जो छन्द सूत्र, श्रुतबोध, वृत्तरत्नाकर, छदोमञ्जरी, वाग्वल्लभ और घोष चन्द्रमोहनप्रणीत छन्द सार सग्रह से सगृहीत हैं। इसमें छन्द अकारादि क्रम से चिह्न तथा लक्षण सहित दिये गये हैं। इस ग्रथ का प्रकाशन अन्तराष्ट्रीय ग्रन्थागार, जयपुर से १९६८ में हुआ है। इसमें इनका स्वतत्रलक्षित छन्द एक है। शेष छन्द भरत पिंगल से लेकर वाग्वल्लभपर्यन्त लक्षणकारों

---

३२६ वाग्वल्लभवरवर्णिनी प्रारम्भिक पद्य-३-४ और टीका का अन्तिम पद्य-२, पृ० २, ३१५।

३२७ वाणासृनवभूवर्षे मार्गशीर्षेऽसितेदले।
शनौ हरितिथावेषा विवृति पूर्णतामगात्। वाग्वल्लभ वरवर्णिनी, अन्तिमपद्य-३, पृ० ३१५।

३२८ वाग्वल्लभ, दामोदरशास्त्रिकृतभमिका, पृ० ११।

३२९ वाग्वल्लभ, टीकावरवर्णिनी, पृ० ३०६-३०७।

३३० दत्त दीनेशचन्द्र, छन्द सन्दोह, अन्ताराष्ट्रीय ग्रन्थागार, जयपुर, १९६८।

३३१ छन्द सन्दोह, उपोद्घात, पृ० ७।

की रचनाओ मे लक्षित हो चुके है ।

दीनेशचन्द्र दत्त का स्वतत्र लक्षित छन्द

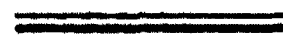
अतिजगती (त्रयोदशाक्षरपाद)

१ सौदामिनी (स त य भ ग) छन्दसन्दोह-३३० ।

इस अध्याय मे ९ वैदिक छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो और ३६ लौकिक छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो का परिचय, उनके रचयिताओ के कालक्रम के अनुसार सामान्य परिचय के साथ, उनके द्वारा स्वतत्र रूप से लक्षित छन्दो के साथ दिया गया है। इन वैदिक तथा लौकिक छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो मे पिगल का छन्द सूत्र सर्वाधिक प्रसिद्ध है और यह अपने विषय का प्रवर्तक ग्रन्थ माना जाता है। बहुत-से परवर्ती छन्दोग्रन्थकर्ता तो पिगल को छन्द प्रवर्तक ही मानते है और बहुत से ऐसे छन्दो को भी उनके द्वारा ही लिखित प्रदर्शित करते है, जो उनके छन्द सूत्र मे प्राप्त नही होते, अपितु उनके परवर्ती छन्दोलक्षणकारो की रचनाओ मे प्राप्त होते है ।

प्राकृतपिगल की रचना के बाद अधिकतर व्यक्तियों ने उसमे निरूपित छन्दो को पिगल की रचना माना है, जिसके अनुसार वाणीभूषण, वृत्तमौक्तिक वाग्वल्लभ आदि के रचयिता ऐसे छन्दो को भी पिगललक्षित मानते है, जिनके लक्षण प्राकृतपिगल से पूर्व पिगल के छन्द सूत्र या छन्द शास्त्र मे भी नही मिलते,[३३२] किन्तु उनसे भिन्न अन्य छन्द शास्त्रियों की रचनाओ में मिलते हैं। वाग्वल्लभ के टीकाकार देवीप्रसाद ने सारग छद को पिगल कथित माना है ।[३३३] जबकि छन्द सूत्रादि में उस नाम के छन्द का लक्षण नही मिलता, किन्तु वह छन्द प्राकृतपिगल-२ ।१३१ मे प्राप्त होता है, जिसे श्री देवीप्रसाद ने पिगल कथित कहा है। प्राकृत पिगल आचार्य पिगल की रचना न होकर किसी अज्ञात सकलनकर्ता की रचना है, जो १३२५ ई० की है, जबकि पिगलकृत छन्दसूत्र ४५० ईसापूर्व की रचना है, फिर प्राकृतपैगलकार द्वारा लक्षित छन्द पिगल का कैसे हो सकता है ? इसी छन्द का लक्षण कामावतार नाम से जयकीर्ति के छन्दोऽनुशासन-२ ।११९ में मिलता है, अत वह कालक्रम से पिगल और प्राकृतपिगलकार का न होकर जयकीर्ति का लक्षित छन्द है। इसी प्रकार वाणीभूषण के तारकादि वृत्त पिगल के नही, प्राकृतपिगल द्वारा लक्षित हैं और वृत्तमौक्तिक का आपीडवृत्त (२ ।१९०) पिगल का नही, हेमचन्द्र (२ ।१७३) द्वारा लखित है किन्तु वाणीभूषण और वृत्तमौक्तिक तथा वाग्वल्लभ के रचयिता अधिकतर छन्दों को पिगल द्वारा लक्षित मानते हैं, जबकि वे कालक्रमानुसार विभिन्न छान्दस आचार्यों से परिलक्षित किये गये है ।

अत इस अध्याय में कालक्रमानुसार छन्दोग्रन्थो के परिचय के साथ उनके रचयिताओ द्वारा स्वतत्र रूप से लक्षित २४४ वैदिक छन्दो और २०४६ लौकिक छन्दो का सकलन भी किया गया है।



३३२ दृष्टव्य-वृत्तमौक्तिक-२ ।४०५, वाग्वल्लभ-१६ ।६, २२ ।३,५,६ आदि ।

३३३ वाग्वल्लभ-द्वादशाक्षरवृत्ति-१२२, पृ० १८९ पर 'सारगमाचष्ट वेदैस्तकारैश्च' तद्वृत्त सारगनामकम् आचष्ट उक्तवान् पिगल इतिशेष ।

तृतीय अध्याय

छन्दो का स्रोत, काल एव उनका विकास

(१) छन्दो का स्रोत वेद

ऋग्वेद के छन्द

यजुर्वेद के छन्द

अथर्ववेद के छन्द

वैदिक छन्द और उनके भेद

लौकिक छन्दों का मूल ऋग्वेद

(२) छन्दों का काल

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानो के मत

(३) छन्दों का विकास

गायत्रादिपादो से विकसित ऋग्वेदीय छन्द

विभिन्न पाद मिश्रित छन्द

छन्दों का सामूहिक विकास (प्रगाथ छन्द)

यजुर्वेदीय गद्य छन्द

चतुरक्षरवृद्धि से प्रकल्पित छन्द

सृष्टि क्रम से दैवासुर छन्दों का विकास

प्राजापत्य-याजुषादि छन्द

लौकिक छन्दो का विकास

तृतीय अध्याय
छन्दो का स्रोत, काल एव उनका विकास

(१) छन्दो का स्रोत वेद

वेद ससार के प्राचीनतम ग्रन्थ माने जाते है। यद्यपि पारसियो का ग्रन्थ अवेस्ता और चीनियो के ग्रन्थ 'शुकिग' तथा 'शीकिग' की गणना भी इसी कोटि के ग्रन्थो मे की जाती है, तथापि विद्वत्समुदाय प्राचीनतम ग्रन्थ होने का महत्त्व वेदो को ही देता है।[1] वेद शब्द विद् धातु घञ् प्रत्यय द्वारा बना है। अत इसकी व्युत्पत्ति 'विदन्ति येन स वेद' होती है, अर्थात् जिससे वास्तविक बात जानी जाय, उसे वेद कहते है।[2] वेद चार सहिताओ मे विभक्त है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनमे अथर्ववेद वेदो मे अर्वाचीन, शेष पूर्वत्रय प्राचीन है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त मे क्रमश ऋक्, साम और यजुष् का उल्लेख मिलता है,[3] जिससे स्पष्ट है कि ऋग्वेद का स्थान प्रथम, सामवेद का द्वितीय और यजुर्वेद का तृतीय निर्धारित होता है। इसे ही वेदत्रयी कहते है, जिसका क्रम मनु द्वारा ऋग्यजु साम के रूप मे क्रमश अग्नि, वायु और आदित्य ऋषि का माना गया है,[4] तथा अगिरा ऋषि का अथर्ववेद माना जाता है। ये चारो ऋषि सृष्टि के आदि मे हुए थे।[5]

वेदो की सहिताओ के विषय मे कहा जाता है कि पहले वेद के चार विभाग नही थे। सर्वप्रथम ये चार भाग कृष्णद्वैपायन ने किये[6], जिससे वे वेदव्यास नाम से प्रसिद्ध हुए।[7] वेद के इन चार भागो मे उन अनेक ऋषियो की महत्त्वपूर्ण ऋचाओ का सग्रह है, जो इसके सकलन काल तक लब्धप्रतिष्ठ हो चुके थे। कृष्णद्वैपायन व्यास ने वैदिक साहित्य को सुरक्षित रखने के लिए, जो कुछ उस समय प्राप्त हो सका, उसका सग्रह किया और उसको चार सहिताओं मे विभक्त कर भिन्न-भिन्न शिष्यो को एक एक

---

१ म० म० प० विश्वेश्वरनाथ रेउ, 'ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि', पृ० १।

२ वही, पृ० १।

३ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच सामानि जज्ञिरे। छन्दासि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत। ऋग्वेद १० ।९० ।९, इसमे 'छन्दासि' का अर्थ कही कही अथर्ववेद किया गया है, जब कि सायण ने छन्दासि का अर्थ गायत्र्यादि छन्द किया है। दृष्टव्य-डा० हरिदत्त शास्त्री, ऋक्सूक्त सग्रह, पृ० २३५।

४ अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयम्ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजु सामलक्षणम् ॥ मनुस्मृति-१ ।२३।

५ अरे अस्य महतो भूतस्य विश्वसितमेतत्। ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽर्थवोऽङ्गिरस ॥ बृहदारण्यकउपनिषद्।

६ सृष्टि के आदि में जिनको वेदों का प्रकाश हुआ था, वे चार ऋषि ये हैं—अग्नि, आयु, आदित्य, अगिरा। ऋषिदयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृ० १६।
ऋगथर्वयुज साम्ना राशीनुद्धृत्य वर्गश। चतस्र सहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगण इव। श्रीमद्भागवत-१२ ।६ ।५०, महाभारत-१ ।२।

७ विव्यास वेदानस्मात्तस्माद् व्यास इति स्मृत। महाभारत-१ ।५७ ।७३।

सहिता का अध्ययन कराया।[८] जिस समय महर्षि व्यास ने वैदिक मन्थों का सग्रह किया, उस समय सम्भवत, बहुत से प्राचीन ऋषि के मन्त्र विनष्ट हो चुके होगे, ऐसा अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है, क्योकि प्रयोग भार्गव के सूक्त मे जिन दो आर्वनृगु और अप्नवान् ऋषियो का उल्लेख हुआ है, उनके द्वारा दृष्ट मन्त्र इस वर्तमान उपलब्ध ऋग्वेद मे प्राप्त नही होते।

वैदिक सहिताओं मे छन्दो का सर्वप्रथम परिचायक और प्रामाणिक ग्रन्थ ऋग्वेद है। इसमें गायत्री से धृति पर्यन्त १३ छन्दो में वैदिक ऋषियो की रचनाओ का सकलन है। इससे पूर्व कोई भी पद्यात्मक अथवा गद्यात्मक ग्रन्थ प्राप्त नही होता, जो छन्दो का परिचय दे सके। मनुस्मृतिकार का मत है कि ससार मे जितना ज्ञान प्रवृत्त हुआ है, उस सबका आदि मूल वेद है।[९] ऋग्वेद का प्रत्येक मन्त्र छन्दोबद्ध है और वेद से पूर्व किसी भी प्रकार की छन्दोबद्ध रचना प्राप्त न होने से छन्दोमूल भी वेद ही है।[१०]

वेद में छन्दों की उत्पत्ति

वैदिक मन्त्र छन्दों में प्राप्त होते हैं। उनमें से अनेक मन्त्रों मे छन्दों का उल्लेख भी मिलता है।[११] सर्वप्रथम छन्द एक था,[१२] जो बाद में अपने विभिन्न रूपो को क्रमश ग्रहण करता गया और उत्तरोत्तर चतुरक्षरवृद्धि से पहले सात प्रकार का हो गया।[१३] इन प्रधान सात छन्दो के नाम—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पक्ति (विराट्), त्रिष्टुप्, और जगती वेद के अनेक मन्त्रों में मिलते हैं।[१४] वेदविद्या के पारगत विद्वान् भर्तृहरि अपने व्याकरण शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ वाक्यपदीय के स्वोपज्ञविवरण मे लिखते हैं कि सर्वप्रथम छन्द इन्द्र से प्रस्त्रवित हुआ,[१५] और वह क्रमश शनै शनै विभिन्न रूपो से प्रकाशित होने लगा, जिसमें छन्द का गायत्री रूप अग्नि से उत्पन्न हुआ, उष्णिक् के साथ सविता और अनुष्टुप् के साथ सोम की प्रवृत्ति हुई, बृहस्पति से बृहती ने वाणी ग्रहण की **मित्रावरुण** की अभिश्री विराट् (पक्ति छद) और इन्द्र की अभिश्री त्रिष्टुप् छन्द से हुई तथा जगती विश्वदेव मे प्रविष्ट हो प्रकट हुई, जिनसे ऋषि

---

८ वेदानध्यापयामास महाभारतमर्चमान्।
सुमन्तु जैमिन पैल शुक चैवहि स्वात्मजम्। महाभारत-१ ।५७ ।७४
पैलाय सहितामाद्या बह्वचाख्यामुवाच ह।
वैशम्पायनसज्ञाय निगदाख्य यजुर्गणम् ।५ ।२।
साम्ना जैमिनये प्राह तथा छन्दोगसहिताम्।
अथर्वाङ्गिरसी नाम स्वशिष्याय सुमन्वते ।५३। श्रीमद्‌भागवत-१२ ।६ ।५२-५३।
ऋग्वेद ८ ।१२० ।४

९ सर्वज्ञानमयो हि स। मनुस्मृति-२ ।७।

१० वेदान् षडगान्युद्धृत्य ... महाभारत, शान्तिपर्व (शिवसडस्रनाम)-२ ।४ ।९२।

११ ऋग्वेद-म० १० सूक्त-१३० ऋचा-४,५। यजुर्वेद-अध्याय १४, मत्र १८।

१२ एक छन्दो बहुधा चाकसीति। भर्तृहरि, वाक्यप्रदीप-१ ।१२१।

१३ सप्त छन्दासि चतुरुत्तराण्यन्योऽन्यस्मिन्नध्यर्पितानि। अथर्ववेद ८ ।९ ।१९।

१४ ऋग्वेद-१० ।१३० ।४,५। 'अग्ने र्गायित्र्यभवत् ...विश्वान्देवाञ्जगत्या विवेश...। माच्छन्द प्रमाच्छन्द प्रतिमा छन्दो अस्त्रीवयश्छन्द पक्तिश्छन्द उष्णिक् छन्दोबृहतीछन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्द। युजर्वेद-१४ ।१८।

१५ इन्द्राच्छन्द प्रथम प्रास्यन्दत् ...। वाक्यपदीय-१ ।१२१।

और मनुष्य चमके।[१६] उपर्युक्त छन्दों के साथ जिन नामों का सकेत है, वे उनके देवता बताये गये हैं।[१७] देवता का अर्थ दाता = देनेवाला होता है, अत देवता उन छन्दों के दाता हैं अर्थात् वे छन्द उनसे प्रकट हुए है। इससे यह अनुमान निकालना भी अप्रासगिक नही होगा कि ये देवता इन छन्दो के **रचयिता** है।

ऋग्वेद के (१० ।१३० सूक्त) के चतुर्थ और पचम मन्त्र मे जिन छन्दों का वर्णन है, वे प्रधानत आधिदैविक तत्व हैं। आधिदैविक जगत् मे गायत्र्यादि सप्त छन्द सूर्य की सप्तविध रश्मिया हैं और अग्नि, सविता आदि देव सूर्य के विभिन्न अवस्थाओं के नाम हैं, जिनसे वे रश्मिया प्रकट होती हैं। वाचिक छन्द इन्ही आधिदैविक छदों के अनुकरण हैं। आधिदैविक जगत् में छन्द से छन्द की उत्पत्ति होती है। अध्यात्म मे भी वाचिक छन्दो की उत्पत्ति का मूल इन्द्र = जीवात्मा ही है।[१८] वह जीवात्मा बुद्धि के द्वारा सम्पूर्ण अर्थो को एकत्रित कर कहने की इच्छा से मन को नियुक्त करता है,[१९] और मनोनिस्सृत वाणी को छन्द कहते है। ऋषियों ने गायत्री छन्द की उत्पत्ति अग्नि से उष्णिक् की सूर्य से, अनुष्टुप् की सोम से, बृहती की बृहस्पति से, विराट (पक्ति) की मित्रावरुण से, त्रिष्टुप की इन्द्र से और जगती की विश्वेदेव से मानी है। ये सातो छन्द वेद की चारों सहिताओं में मिलते हैं, जिनका दिग्दर्शन सर्वप्रथम ऋग्वेद में हुआ है। अत छन्दों का मूल ऋग्वेद मे सन्निहित है।

चारों वेदो में ऋग्वेद सर्वप्राचीन वेद है। इसमे १० मण्डल और १०२८ सूक्त हैं, जो ३८० विभिन्न सूक्तकार ऋषि हैं, जिनमे प्राचीनतम ऋषि प्रजापति, कश्यप, भृगु आदि से लेकर अर्वाचीनतम ऋषि पराशर तक के मन्त्र मिलते है। द्वितीय मण्डल से सप्तम मण्डल तक क्रमश गृत्समद, भार्गव, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज तथा वसिष्ठ ऋषि ओर उनके वशज तथा गोत्रजों के, अष्टम और नवमण्डल में कण्व, ३ गिरा और उनके वशज तथा गोत्रजो के, प्रथम तथा दशम मण्डल में उपर्युक्त ऋषियो और उनके वशज तथा गोत्रजो के अतिरिक्त, कश्यप, भृगु, अगस्त्य, जमदग्नि आदि विभिन्न ऋषिकुलो मे उत्पन्न सूक्तकारों के मन्त्र है, जिनमें वरुण, इन्द्र, त्वष्टा, विवस्वान्, अग्नि, नारायण, हिरण्यगर्भ, सोम आदि देवर्षियों और कवष ऐलूष, अरुण, वैतहव्य, सुदास पैजवन, मान्धाता यौवनाश्व, प्रदर्तन दैवोदासि, शिवि औशीनर आदि राजर्षियो के मन्त्र हैं।

इसके अतिरिक्त अन्य वेदों में भी अधिकतर ऋग्वेद के मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के भी मन्त्र मिलते हैं किन्तु ऋग्वेद के ऋषियो के अतिरिक्त यजुर्वेद मे ५९ ऋषियों के मन्त्र मिलते हैं, जिनमे भरत, याज्ञवल्वक्य, शाकल्य, सविता, स्वयभु ब्रह्म, आदित्यदेव, दक्ष आदि प्रमुख हैं और सामवेद में २२ ऋषियो के मन्त्र हैं, जिनमे तृणपाणि, नकुल, बालखिल्य ऋषि आदि मुख्य हैं तथा अथर्ववेद में ८ ऋषियो के मन्त्र मिलते हैं, जिनमें अथर्वा, ब्रह्मा, शौनक आदि प्रमुख हैं।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के मन्त्रद्रष्टा ऋषियो मे बृहस्पति की पुत्री रोमशा, अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा, आत्रेयी विश्ववारा, शक्तिगोत्रीया गौरिवीति, अगिरा की पुत्री तथा आसग भार्या शाश्वती, अत्रिपुत्री अलापा, कक्षीवान् की पुत्री घोषा, बृहस्पतिपत्नी ब्रह्मवादिनी जुहू, अम्भृणपुत्री वाक्, इन्द्रमाता

---

१६ अग्ने गायित्र्यभवत्सयुग्वोष्णिहया सविता सम्बभूव।
अनुष्टुभा सोम उक्थै र्महस्वान् बृहस्पते र्बृहती वाचमावत्।
विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्न।
विश्वान्देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्या॥ ऋग्वेद-१० ।१३० ।४,५।

१७ प० युधिष्ठिर मीमासक, वैदिक छन्दो मीमासा, पृ० ४४।

१८ वही।

१९ आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युक्ते विवक्षया। पाणिनीय शिक्षा।

देवजामि, इन्द्राणी, अदिति दाक्षायणी, श्रद्धा कामायनी, यमी वैवस्वती, सूर्दपुत्री सूर्या, शची पौलोमी, सर्पराज्ञी, प्रजापतिपुत्री दक्षिणा, रात्रि भारद्वाजी, पुरूरवापत्नी उर्वशी, दीर्घतमा की माता ममता, वसुक्रपत्नी इन्द्रस्नुषा सरस्वती आदि कवयित्री स्त्री-ऋषियो का भी साहित्यिक योगदान है। यजुर्वेद में कद्रू, विधृति, आभूति, वैदर्भी, लोगाक्षी, रम्याक्षी, प्रादुराक्षी, सुनीति और सामवेद मे भार्गवहुति तथा अथर्ववेद मे भार्गव वैदर्भी आदि स्त्री-ऋषियो के मन्त्र मिलते है। इन चारो वेदो के मन्त्रो मे गायत्री से उत्कृति पर्यन्त २१ छन्द अपने २६१ भेद-प्रभेदो के साथ प्रयुक्त हुए है।

ऋग्वेद के छन्द

आचार्य शौनक तथा कात्यायन के मतानुसार ऋग्वेद मे गायत्री से अतिधृति पर्यन्त १४ छन्दो का प्रयोग मिलता है,[२०] और यही मत ऋग्वेद के भाष्यकार वेकट माधव का है[२१], जो उक्त १४ छन्दो का प्रयोग तो ऋग्वेद में और उनसे इतर छन्दो का प्रयोग अन्य वेदो मे मानते है, किन्तु ऋग्वेद मे छन्दों के अन्वेषण से ज्ञात होता है कि उसमे गायत्री से धृति पर्यन्त १३ छन्द ही प्रयुक्त हुए है। अतिधृति छन्द की अक्षर गणना तो ऋग्वेद के किसी भी मन्त्र मे प्राप्त नही होती। समस्त ऋग्वेद मे केवल एक मन्त्र मे ही अतिधृति छन्द माना जाता है और वह है ऋग्वेद-१।१२७।६। इसी मन्त्र मे शौनक, कात्यायन, तथा वेकटमाधव ने भी अतिधृति छन्द माना है किन्तु इसमें अतिधृति छन्द की वर्ण सख्या ७६ नही है, अपितु ६८ वर्ण हैं, जो व्यूह द्वारा भी ७६ वर्ण रूप मे सगत नही होते। एक अथवा दो अक्षरो से न्यून छन्द की वर्ण पूर्ति तो व्यूह द्वारा सगत मानी जाती है, किन्तु षड् वर्णों की कमी को व्यूह द्वारा पूरा करना सर्वथा असगत ही है। अत ऋग्वेद मे निम्नाकित १३ छद प्राप्त होते है—

१ गायत्री	(२४ वर्ण)	ऋग्वेद-१।१।१।
२ उष्णिक्	(२८ वर्ण)	ऋग्वेद-१।९२।१६
३ अनुष्टुप्	(३२ वर्ण)	ऋग्वेद-१।१०।७।
४ बृहती	(३६ वर्ण)	ऋग्वेद-१।३६।७।
५ पक्ति	(४० वर्ण)	ऋग्वेद-९।११३।४।
६ त्रिष्टुप्	(४४ वर्ण)	ऋग्वेद-१।२४।१।
७ जगती	(४८ वर्ण)	ऋग्वेद-९।८४।४।
८ अतिजगती	(५२ वर्ण)	ऋग्वेद-४।१।२
९ शक्वरी	(५६ वर्ण)	ऋग्वेद-८।३६।१।
१० अतिशक्वरी	(६० वर्ण)	ऋग्वेद-१।१३७।१।
११ अष्टि	(६४ वर्ण)	ऋग्वेद-१।१२७।१।
१२ अत्यष्टि	(६८ वर्ण)	ऋग्वेद-१।१२७।६।
३ धृति	(७२ वर्ण)	ऋग्वेद-१।१३३।६।

किन्तु धृति में ७० वर्ण हैं, व्यूह द्वारा २ वर्णों की पूर्ति की जाती है।

आचार्य शौनक के मत में ऋग्वेद मे १०५८०-१/४ मत्र है।[२१अ] कात्यायन के मत मे ऋग्वेद मे १०४३२[२१ब], शाकलशाखा मे १०४०२, स्वामी दयानन्द के मत मे १०५८९, श्रीसामश्रयी के मत में

२० सर्वा दाशतयीष्वेता, उत्तरास्तु सुभेषजे। शौनक, ऋग्वेदप्रातिशाख्य-१६।८७,८८।

२१ चतुर्दशेत्थ कविभि पुराणै छन्दासि दृष्टानि समीरितानि।
इयन्ति दृष्टानि तु सहितायामन्यानि वेदेष्वपरेषु सन्ति॥ ऋग्भाष्यकार वेकट माधव।

२१अ ऋचां दश सहस्राणि ऋचा पच शतानि च।
ऋचामशीति पादश्च पारण समप्रकीर्तितम्॥ शौनक, अनुवाकानुक्रमणी-४३।

२१ब दृष्टव्य-ऋक्सर्वानुक्रमणी।

१०५२२,महीदास के मत में १०५५२,और पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर के मत मे १०६२२ मन्त्र माने गये हैं।[२२] मन्त्र सख्या की भिन्नता के कारण अनुमान किया जाता है कि उस समय बहुत-सी अन्य कथाए भी प्रचलित हो गयी थी,जिससे परवर्ती सूक्त रचयिता ऋषियो ने उन्हे साहित्य की सार्वजनिक सामग्री मानकर अपनी रचनाओ मे भी उनका उपयोग कर लिया था।[२३] ऋग्वेद मे मन्त्रो के अन्वेषणात्मक दृष्टिपात से ज्ञात होता है कि उसमे सर्वाधिक प्रचलित तथा लोकप्रिय छन्द त्रिष्टुप् है, जिसके छन्दस्कार प्रजापति हैं। इसमे ऋचाओ का दो पचमाश निबद्ध है। यह ऋग्वेद का सर्वप्रथम छन्द है और छन्दो के उद्धारको मे सर्वप्रथम उद्धारक प्रजापति है। इसके बाद गायत्री का स्थान है,जिसमे ऋचाओ का एक चतुर्थांश लिखित है,जिसके छन्दस्कार ब्रह्मा है। तदनन्तर जगती का स्थान है,जिसके छन्दस्कार प्रजापति हैं। इस प्रकार त्रिष्टुप्, गायत्री, जगती-ये तीन छन्द वैदिक सहिताओ के महत्त्वपूर्ण और जनप्रिय छन्द रहे हैं। इन तीन मे से भी सर्वाधिक जनप्रिय छन्द त्रिष्टुप् है।

यजुर्वेद के छन्द

यजुर्वेद मे गद्य और पद्य दोनों पाये जाते है।[२४] किन्तु इसमे गद्य की प्रधानता है। गद्य छन्दो में अक्षरों का अवसान नियत (निश्चित) नही होता।[२५] इसलिए कुछ विद्वान् यजुर्वेद मे छन्द नही मानते, किन्तु छन्द के विना किसी शब्द का प्रयोग भी नही होता,[२६] अत वैदिक छन्द गद्य पद्यमय है। शुक्ल यजुर्वेद की काण्व शाखा मे २०८६ मन्त्र हैं और कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी शाखा मे २१४४ मन्त्र है तथा कठशाखा मे ३०९१ मन्त्र है। यजुर्वेद मे अधिकाश मन्त्र ऋग्वेद से लिये गये है,इसमे १७०१ ऋग्वेदीय ऋचाए हैं[२७] और एकाक्षरपाद से लेकर १०४ अक्षरयुक्त छन्द है। याजुषसहिताओ मे अनेक छन्दोनामो के साथ,'माछन्द ,प्रमाछन्द ,प्रतिमाछन्द ' इत्यादि पाठ उपलब्ध होते है।[२८] गायत्र्यादि सप्त छन्दो के पूर्व 'दैवी, यजु , प्राजापत्या, आसुरी, साम, ऋक्, आर्षी, ब्राह्मी आदि पदो को सलग्न कर छन्दोभेद प्राप्त होते हैं। इन छन्दों में वे सभी नियम लागू होते है,जो ऋग्वेद के छन्दों मे प्रचलित है, जिससे न्यूनाधिकाक्षर होने से उनके निचृत्, भुरिक्, विराट्, स्वराट् आदि अवान्तर भेद बनते है। इनमें भी त्रिपात्, अल्पीयमध्या, पिपीलकमध्या, यवमध्यादि भेद होते है।[२९] कुछ आचार्यो के मत मे यजुर्मन्त्रों में छन्द नही होते[३०] क्योकि इनमे अक्षरो का नियम नहो है और छन्द नियताक्षर होते है,

---

२२ ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि,पृ० १४।

२३ द्रष्टव्य-हिन्दू सिविलाइजेशन,पृ० ८४।

२४ गद्य पद्यात्मको यजु । प्रभाकुमारी अग्रवाल,वैदिक साहित्य का इतिहास,पृ० ११९।

२५ अनियताक्षरावसानो यजु । वही,पृ० ११९।

२६ छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न छन्द शब्दवर्जितम्। भतरमुनिकृतनाट्यशास्त्र-१४।४५।
(आ) नाच्छन्दसि वागुच्चरति। आचार्य दुर्गकृत निरुक्त-७।२ की वृत्ति।
छन्दोभूतमिद सर्वं वाङ्मय स्याद् विजानत। (इ) नाच्छन्दसि न चापृष्टे शब्दश्चरति कश्चन। कात्यायनमुनिकृत ऋग्यजुष परिशिष्ट-५, (श्रीधर शास्त्री वारे द्वारा सपादित 'कातीयपरिशिष्टदशकम्', पृ० ९२। (ई) छन्दोभाग्वाङ्मय सर्व न किञ्चिच्छन्दसा विना। जयकीर्तिकृत छन्दोऽनुशासन-१।२।

२७ प्रभाकुमारी अग्रवाल,वैदिक साहित्य का इतिहास,पृ० १२१-१२२।

२८ माध्यन्दिनी शाखा-१४।१८।

२९ प्रभाकुमारी अग्रवाल,वैदिकसाहित्य का इतिहास,पृ० १४०।

३० यजुषामनियताक्षरत्वादेकेषा छन्दो न विधते। कात्यायन,यजु सर्वानुक्रमसूत्र-१।१,पृ० ३।

इसलिये उनमे गायत्र्यादि नियताक्षर सख्यास्वरूप छन्दो का अभाव है[३१] और जो आचार्य यजुर्मन्त्रो मे छन्दोविधान मानते हैं, उनका मत है कि जो गायत्र्यादि सप्त आर्ष छन्द है, उन ऋषिच्छन्दों का चतुर्थ भाग यजुर्मन्त्रो का छन्दोरूप है।[३२] उक्त छन्दो का एक पाद याजुष छन्द माना जाता है और सामवेद के छन्दो में दो पादो की गणना की जाती है तथा ऋचाओ में तीन पाद लिये जाते हैं। अत मुख्यतया यजुर्मन्त्रो मे एक पादवाले छन्द, सामो में दो पाद वाले छन्द और ऋचाओ मे तीन पादवाले छन्द होते है,[३३] अत यजुर्वर्ग को एकोत्तर[३४] सामवर्ग को द्व्युत्तर और ऋग्वर्ग को त्र्युत्तर तथा ब्राह्मवर्ग को षडुत्तर कहा गया है। जो यजु अनियताक्षर हैं, उनमे छन्द नही है, और जो नियताक्षर है, उनमें छन्दोविधान है।[३५] इसलिए 'इषेत्व' इत्यादि जो यजु नियताक्षर है, वे छन्दोयुक्त है क्योकि उनमें छन्दोलक्षण घटित होते हैं। इस कारण एकाक्षर से १०४ अक्षरपर्यन्त सख्या वाले यजु नियताक्षर होने से छन्द है और उससे अधिक सख्या वाले यजु, जिनमे अक्षरों का कोई नियम नही है, छन्द नही हैं।[३६]

यजुर्वेद में छन्द न मानने वाले जिन आचार्यों का मत दिया गया है,[३७] वे छद शास्त्रीय ग्रन्थ 'छन्दसूत्र' के रचयिता आचार्य पिगल से पूर्ववर्ती आचार्य हैं, जो याजुष मन्त्रों को छन्दोरूप में नही मानते थे। उनके बाद आचार्य पिगल ने जब अपनी रचना की तो उन्होंने कुछ याजुष तथा आथर्वण मन्त्रो को अपनी दृष्टि मे रखकर एकाक्षरादि छन्दों के लक्षण किये,[३८] जो प्रेरणा उन्हें आचार्य शौनक तथा पतञ्जलि से प्राप्त हुई।[३९] इस प्रकार जो यजु अक्षरो के नियमो में बध गये, उनमें दैवी गायत्री आदि छन्दो-विधान लागू हो गया और कुछ ऐसे भी यजु बच गये, जो शौनकादि पिगलोक्त नियमो मे नही आ सके, वे छन्दोनियमबन्धन से स्वच्छन्द होकर यजुर्वेद के गद्यच्छन्दोभाग को सुशोभित कर रहे हैं।

ऋग्वेद मे प्राप्त छन्दो के अतिरिक्त यजुर्वेद मे प्राप्त छन्द—

१ अतिधृति	(७६) वर्ण	यजुर्वेद-२२।५
२ कृति	(८० वर्ण)	यजुर्वेद-९।३२।
३ प्रकृति	(८४ वर्ण)	यजुर्वेद-१५।१६
४ आकृति	(८८ वर्ण)	यजुर्वेद-१५।६४।
५ विकृति	(९२ वर्ण)	यजुर्वेद-१५।१५

---

३१ अनन्तदेव याज्ञिक, यजु सर्वानुक्रमसूत्र-१।१ का भाष्य, पृ० ३।

३२ तत्पादस्तेषामृषिच्छन्दसा चतुर्थभागो यजुषा छन्दो वेदितव्यम्। यजु सर्वानुक्रमसूत्र, पृ० ४।

३३ तत्पादो यजुषा छन्द साम्ना तु द्वावृचा त्रय। वही, पृ० ४।

३४ एकोत्तरो यजुर्वर्ग साम्ना वर्गस्तु द्व्युतर।
ऋचा तु त्र्युत्तरो वर्गो ब्रह्मवर्ग षडुत्तर॥ यजु सर्वानुक्रमसूत्र, पृ० ४।

३५ यानि यजूषि...छन्दोऽस्त्येव। यजु सर्वानुक्रमसूत्र-भाष्य, पृ० ७।

३६ यानि च ...नास्त्येव। वही, पृ० ७, यथा-यजु० १०।४ में ३२२ अक्षर हैं।

३७ यजुषामनियताक्षरत्वादेकेषा छन्दो न वियते। यजु सर्वानुक्रमसूत्र-१।१।

३८ दैव्येकम्। पिगल, छन्दसूत्र-२।१७।

३९ मा प्रमा प्रतिमोपमा समा च चतुरक्षरात्।
चतुरुत्तरमायान्ति पञ्चच्छन्दासि तानि ह॥ शौनक-ऋक्प्रातिशाख्य-१७।११, डा० मगल देवशास्त्री द्वारा सपादित, १९५९, पृष्ठ ७८

६ सकृति	(९६ वर्ण)	यजुर्वेद-२४ ।१-२ ।[४०]
७ अभिकृति	(१०० वर्ण)	यजुर्वेद-२६ ।१
८ उत्कृति	(१०४ वर्ण)	यजुर्वेद-११ ।५८ ।

उपर्युक्त सभी गद्यप्रधान छन्द है,जो छन्दोविस्तार की दृष्टि से छन्दोनियमबद्ध है ।

सामवेद तथा अथर्ववेद के छन्द

सामवेद मे १८७५ मन्त्र है,जिनमे १५०४ मन्त्र ऋग्वेद से लिये गये हैं और ३६७ मन्त्र पुनरुक्त है । ९९ मन्त्र नवीन है, उनमे ५ मन्त्र पुनरुक्त है । केवल ७५ मन्त्रो को छोडकर शेष सभी मन्त्र ऋग्वेद के है ।[४१] इसमे सामगायको का प्रिय छन्द शक्वरी माना जाता है । अथर्ववेद की प्रचलित सहिता शौनक शाखा मे ५९८७ मन्त्र है,इसमे १२०० मन्त्र ऋग्वेद से उद्धृत है ।[४२] छन्द सभी ऋग्वेद के हैं । अत समस्त वैदिक सहिताओ तथा साहित्य मे उन्ही छन्दो का प्रयोग मिलता है,जो ऋग्वेद तथा यजुर्वेद मे प्रयुक्त २१ छन्द हैं,जिनका उल्लेख विभिन्न छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो मे मिलता है ।[४३]

ऋक्प्रातिशाख्य, नाट्यशास्त्र, छन्द सूत्र, ऋक्सर्वानुक्रमणी, उपनिदानसूत्र तथा जयदेवीय छन्द शास्त्रादि मे गायत्री से उत्कृति पर्यन्त २१ छन्दो के नाम एक जैसे मिलते हैं किन्तु निदानसूत्र मे गायत्री से जगती पर्यन्त प्रथम सप्तक के नामो को छोडकर अतिजगती से उत्कृति पर्यन्त द्वितीय तथा तृतीय सप्तक के नामो मे भिन्नता है । निदानसूत्र मे द्वितीय सप्तक के नाम क्रमश—विधृति (५२ वर्ण) शक्वरी (५६ वर्ण), अष्टि (६० वर्ण) अत्यष्टि (६४ वर्ण), अह (६८ वर्ण), सरित् (७२ वर्ण) सम्पा (७६ वर्ण), और तृतीय सप्तक के नाम क्रमश—सिन्धु (८० वर्ण), सलिल (८४ वर्ण), अम्भ (८८ वर्ण), गगन (९२ वर्ण), अर्णव (९६ वर्ण), आप (१०० वर्ण), समुद्र (१०४ वर्ण) प्राप्त होते हैं । इससे स्पष्ट है कि निदानसूत्र के गायत्री से जगती पर्यन्त प्रथम सप्तक के नामो के अतिरिक्त द्वितीय और तृतीय सप्तक के विधृति से समुद्र पर्यन्त उक्त नामो को परवर्ती छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो में मान्यता नही मिली और आचार्य शौनक के प्रसिद्ध ऋक्प्रातिशाख्य मे द्वितीय तथा तृतीय सप्तक के निर्दिष्ट नामों को मान्यता मिली है, जो आज तक उसी स्थिति मे प्रचलित है ।

ऋग्वेद और यजुर्वेद मे प्राप्त छन्दो के अतिरिक्त अथर्ववेद मे प्राप्त छन्द—

१ उक्ता	(४ वर्ण)	अथर्ववेद-२ ।१२९ ।८ ।
२ अत्युक्ता	(८ वर्ण)	अथर्ववेद-२० ।१२९ ।१ ।
३ मध्या	(१२ वर्ण)	अथर्ववेद-२० ।१२९ ।१३ ।
४ प्रतिष्ठा	(१६ वर्ण)	अथर्ववेद-२० ।१३१ ।५
५ सुप्रतिष्ठा	(२० वर्ण)	अथर्ववेद-२० ।१३४ ।२ ।

उपर्युक्त प्राग्गायत्री पचक के इन ५ छन्दो के नाम पातञ्जल निदानसूत्र मे[४४] क्रमश-कृति,

---

४० कृतिश्चतुरक्षरा । प्रकृतिरष्टाक्षरा । सकृति द्वादशाक्षरा ।अभिकृति षोडशाक्षरा । आकृतिर्विशत्यक्षरा । पतञ्जलि निदानसूत्र-१ ।२ ।५, पृ० ८ । कैलाशनाथ भटनागर द्वारा सपादित ।

४१ प्रभाकुमारी अग्रवाल,वैदिक साहित्य का इतिहास,लखनऊ १९७३,पृ० १३५ ।

४२ वही,पृ० १४० ।

४३ पातञ्जल निदानसूत्र-१ ।१,२,शौनक-ऋक्प्रातिशाख्य-१६ ।१,५३-५७,पिगल छन्द सूत्र ।

४४ निदानसूत्र-१ ।२ ।५ पृ० ८ ।

प्रकृति, सकृति, अभिकृति, आकति तथा शौनक के ऋक्प्रातिशाख्य मे[४५] क्रमश-मा, प्रमा, प्रतिमा, उपमा, समा मिलते है, जिसका मूल यजुर्वेद मे[४६] माच्छद प्रमाच्छन्द प्रतिमाच्छन्द -'रूप मे प्राप्त होता है, किन्तु भरत के नाट्यशास्त्र और पिगल के छन्द सूत्र मे[४७] उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा नाम मिलते है, जो परवर्ती छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो मे आजकल प्रचलित है किन्तु इन्ही नाम से वेदो मे इनके उदाहरण नही मिलते, क्योकि इनका अन्तर्भाव गायत्र्यादि प्रथमसप्तक के दैवासुर छन्दो मे प्राप्त होता है।[४८] अत सब कुल २६ छन्द होते है, जिनका क्रम छन्द सूत्र से वाग्वल्लभपर्यन्त छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो मे उक्ता से उत्कृति तक प्राप्त होता है। इन २६ वैदिक छन्दो मे से उक्ता से सुप्रतिष्ठा तक प्राग्गायत्रीपचक के ५ छन्दो के गायत्र्यादि प्रथम सप्तक के दैवासुर छन्दो मे अन्तर्भाव होने से गायत्री से उत्कृति पर्यन्त २१ वैदिक छन्दो के उदाहरण चारो वेदो मे प्राप्त होते है, जिनके विभिन्न २६१ प्रभेद मिलते है।

२१ वैदिक छन्द और उनके भेद

(१) गायत्री और उसके ३१ भेद[४९] —

ऋग्वेद मे गायत्री-ऋक् १ ।१ ।१-९ । निचृद्गा० १ ।२ ।६ । पिपीलकमध्या निचृद् गा० १ ।२ ।१,२ । विराड् गा० १ ।४ ।३ पादनिचृद् गा० १ ।५ ।८ । प्रतिष्ठा गा० १ ।८ ।२ । वर्धमाना गा० १ ।८ ।१० । यवमध्या विराड्गा० १ ।१७ ।२ । भुरिगार्ची गा० १ ।१७ ।५ । पिपीलकमध्या विराड्गा० १ ।९० ।३ । आर्षी गा० १ ।१३३ ।५ । त्रिपाद् गा० २ ।७ ।४ । यवमध्या गा०-३ ।४१ ।१ । पिपीलकमध्या गा० ४ ।३२ ।११ । स्वराडार्ची गा० ४ ।३२ ।२४ । स्वराड्ब्राह्मी गा० ५ ।७९ ।१ । ब्राह्मी गा० ६ ।४६ ।६ । त्रिपदाविराड् गा० ७ ।१ ।१-१८ । आर्ची गा० ७ ।३४ ।३,४,१७ । निचृत्त्रिपाद गा० ६ ।३४ ।६-११ । आर्षीनिचृद्गा० ७ ।९४ ।१,३,८,१० । आर्चीविराड् गा० ८ ।२ ।७,८,१० । आर्ची स्वराड् गा० ८ ।५ ।२६ । भुरिग्गा०-८ ।३२ ।१८,३० । ककुम्मती गा० ८ ।४३ ।१४ । स्वराड् गा० ८ ।४६ ।३१ । आर्ची स्वराड्गा० ९ ।१०९ ।२-६,९,११-१२,१९,२२ ।

यजुर्वेद मे-द्विपदा विराड् गा० ९ ।२० ।१ ।

अथर्ववेद मे[५०]-याजुषी गा० ८ ।१० ।२ ।३ । आसुरी गा० ९ ।६ ।१ ।५ । प्राजापत्या गा० ९ ।६ ।६ ।४ । साम्नी गा० १५ ।३ ।७ । (३१ भेद)

२ उष्णिक् और उसके २५ भेद

ऋग्वेद मे—आर्च्युष्णिक्-ऋ० १ ।५ ।२ । पुर उष्णिक्-१ ।२३ ।१९ । भुरिगुष्णिक्-ऋ० १ ।४५ ।१ । निचृदार्ष्युष्णिक्-ऋक्० १ ।७९ ।५६ । परोष्णिक् ऋ० १ ।९१ ।१७ ।

---

४५ ऋक्प्रातिशाख्य-१७ ।११ ।

४६ यजुर्वेद-१४ ।१८ ।

४७ नाट्यशास्त्र, अध्याय-१५, छन्द सूत्र-४ ।९ ।

४८ उक्ता, अत्यक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा का अन्तर्भाव क्रमश दैवीबृहती, प्राजापत्या गायत्री, साम्नीगायत्री, प्राजापत्यानुष्टुप्, साम्नी पक्ति मे -क्रमश अथर्ववेद- २ ।१२९ ।८,२० ।१२९ । १,२० ।१२९ ।१३,२० ।१३१ ।५ का पूर्वार्द्ध और २० ।१३४ ।२ । में हो गया है।

४९ ऋग्वेदसहिता, ऋष्यादिसवलित, बहुसहितानुसारण सशोधित, अजमेरीय वैदिक यन्त्रालय में मुद्रित-वि० स० १९५७ ।

५० अथर्ववेदसहिता, दयानन्द शोध सस्थान, देहली, स० २०३० ।

निचृत्परोष्णिक्-ऋक् १ ।९२ ।१३ । विराट्परोष्णिक्-१ ।९२ ।१४-१५ । उष्णिक्-१ ।९२ ।१६-१८ । स्वराट् ककुबुष्णिक्-१ ।१२० ।३ । विराडार्ष्युष्णिक्-१ ।१२० ।६ ब्राह्म्युष्णिक्-१ ।१६९ ।४ । स्वराडुष्णिक्-१ ।१९१ ।३,७ । विराडुष्णिक्-१ ।१९१ ।१३ । निचृदुष्णिक्-३ ।१० ।४,६,७,८ । निचृदार्च्युष्णिक्-७ ।५६ ।११ । आर्चीस्वराडुष्णिक्-८ ।१२ ।३३ । पादनिचृदुष्णिक्-८ ।१५ ।९,१० । भुरिगार्ची विराडुष्णिक्-८ ।१९ ।५,१९,३० ककुम्मत्युष्णिक्-८ ।९८ ।२,६ । पिपीलकमध्योष्णिक्-१० ।१०५ ।१ । आर्ष्युष्णिक्-१ ।७९ ।४ । ककुबुष्णिक्-८ ।९ ।५ ।

यजुर्वेद मे[५१]—याजुष्युष्णिक्-यजु० ६ ।२१ तथा ८ ।२३ ।

अथर्ववेद मे—साम्न्युष्णिक्-८ ।१० ।४ ।७,११ । आसुर्युष्णिक् ९ ।६ ।६ ।१४ । प्राजापत्योष्णिक्-१२ ।५ ।५४-५५ ।

३ अनुष्टुप् और उसके २२ भेद

ऋग्वेद मे-विराडनुष्टुप्-ऋ० १ ।१० ।१,३,५,६ । निचृदनुष्टुप् १ ।१० ।८ । अनुष्टुप्-१ ।१० ।७-९ । भुरिगनुष्टुप्-१ ।३६ ।१,१२ । आर्ष्यनुष्टुप्-१ ।१२० ।४ । स्वराडार्ष्यनुष्टुप्-१ ।१२० ।७ । स्वराड्नुष्टुप्-१ ।१३३ ।४ । निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप्-१ ।१९१ ।१०,११ । विराड्ब्राह्म्यनुष्टुप्- १ ।१९१ ।१२ । महापदपक्त्यनुष्टुप्-४ ।१० ।५ । पादनिचृदनुष्टुप्-७ ।१०४ ।२५ । आर्षीनिचृदनुष्टुप्- ८ ।५ ।३९ । आर्षीविराडनुष्टुप्-८ ।८ ।४,७,८,१० । आर्च्यनुष्टुप्-८ ।९ ।१६ । आर्चीभुरिगनुष्टुप्- ८ ।१० ।३ । आर्चीस्वराडनुष्टुप्-९ ।९८ ।८ । ककुम्मत्यनुष्टुप्-१० ।२६ ।३ ।

यजुर्वेद मे-ब्राह्म्यनुष्टुप्-३ ।४८ । भुष्कप्राजापत्यानुष्टुप्-६ ।१२ ।

अथर्ववेद मे-साम्न्यनुष्टुप्-८ ।१० ।३,९ । प्राजापत्यानुष्टुप्-९ ।६ ।४ ।१,३ । आसुर्यनुष्टुप्-११ ।३ ।१ ।१७ । याजुष्यनुष्टुप्-१२ ।५ ।४० ।

४. बृहती और उसके भेद (३५ भेद)

ऋग्वेद मे-निचृत्पथ्याबृहती-१ ।३६ ।३ ।११ । निचृद्बृ० १ ।३६ ।५,१६ । भुरिग्बृ० १ ।३६ ।६ । बृहती-१ ।३६ ।७ । स्वराड्बृ० १ ।३६ ।८ । निचृदुपरिष्टाद्बृ०-१ ।३६ ।९ । उपरिष्टाद्बृ०-१ ।३६ ।१३ । विराड्पथ्याबृ० १ ।३६ ।१५ । विराडुपरिष्टाद् बृ०-१ ।३६ ।१७ । पथ्याबृ०-१ ।३६ ।१९ । महाबृ०-१ ।१०५ ।१३ । साम्नीभुरिग्बृ०-५ ।२४ ।१,२ । सतोबृहती-५ ।६१ ।९ । प्रजापत्या बृ०-६ ।१० ।७ । ब्राह्मीबृ०-६ ।१५ ।१५ । आर्चीस्वराडबृ०-७ ।६६ ।१२ । आर्षीभुरिग्बृ० ७ ।९६ ।१ । आर्षीविराडबृ०-७ ।६६ ।१४ । आर्षीबृ०-७ ।९६ ।२ । आर्चीभुरिग्बृ०-७ ।९६ ।१ । अर्षीस्वराड्बृ०-८ ।१ ।४ । शकुमतीबृ०-८ ।१ ।१३ । निचृदासुरी स्वराड् बृ०-८ ।१ ।२८ । ककुम्मतीबृ०-८ ।३ ।१ । आसुरीबृ०-८ ।१७ ।१४ । पादनिचृदबृ०-८ ।६० ।३,५ । विराड्बृ०- ८ ।६० ।९,१३,१७ । उरोबृ०-१० ।८५ ।३४ । न्यकुसारिणीबृ०-१० ।९३ ।११ । महासतो बृ०-१ ।१३२ ।७ । उपरिष्टाज्ज्योतिर्बृ०-१० ।१५० ।४,५ ।

यजुर्वेद में-पिपीलकमथ्या बृ०-१७ ।६७ । स्वराड्ब्राह्मीबृ०-७ ।२६ ।

अथर्ववेद में-पुरस्ताद्बृ०-८ ।२ ।१२ । देवीबृ०-२० ।१२९ ।८,९, याजुषीबृ०-२० ।१३० ।७ ।

(५) पक्ति और उसके ४० भेद

ऋवेद मे-पक्ति-१ ।२९ ।१-७ । भुरिक्प०-१ ।३३ ।१४ । निचृत्सतप०-१ ।३६ ।२ । निचृद्विष्टारप०-१ ।३६ ।१०,१४ । विष्टारप०-१ ।३६ ।१८ । सत प०-१ ।३६ ।२० । विराट्सत

---

५१ यजुर्वेद सहिता, दयानन्द शोध सस्थान, देहली, स० २०३० ।

प०-१ ।३९ ।२८,१० । विराड्विस्तार प०-१ ।४४ ।१० । आर्षीभुरिक्प०-१ ।६२ ।३ ।७८ । विराट्प० १ ।६३ ।३ । निचृत्प०-१ ।६५ ।१-३ । याजुषी प०-१ ।७० ।६ । निचृदास्तारप०-१ ।८० ।१,११ । विराडास्तारप०-१ ।८२ ।२,३,५ । आस्तारप०-१ ।८४ ।११ । स्वराट् प० १ ।९१ ।१,३,४ । आर्षी प० २ ।४ ।२,३,५ । आसुरी प० ६ ।४४ ।६ । साम्नी प० ६ ।१७ ।५ आर्षी निचृत्प० ८ ।९ ।१० । आर्चीभुरिक्प० ८ ।१० ।४ । आर्ची स्वराट् प० ८ ।१९ ।२३,२४ । पादनिचृत्प० ८ ।६४ ।१० ।१६ । सस्तार प० ९ ।९ ।५ ।२ । आर्ची प० १० ।२१ ।६ । शुकुमतीप०-१० ।२४ ।३ । आर्षीविराट्प०-१० ।२४ ।७,९ । अक्षरपंक्ति-१० ।९३ ।९ । महापक्ति- १० ।१३३ ।४-६ ।

यजुर्वेद मे-स्वराड्ब्राह्मी प०-१० ।२ । स्वराडार्षी प०-१२ ।१११ । विराड्ब्राह्मीपक्ति-५ ।६ ।

अथर्ववेद मे-प्रस्तारप०-८ ।१ ।४ । प्राजापत्याप०-८ ।१० ।३ ।५,७ । निचृत्प्रस्तारप०-८ ।३ ।१७ । साम्नीनिचृत्प०-९ ।६ ।१ ।१३ । भुरिक्प्रस्तारप०-१० ।१ ।१७ । दैवीप०-११ ।३ ।४१ ।

विराट्प्रस्तारप०-१४ ।१ ।१४ । पदपक्ति-१५ ।२ ।७,२७ । विराट्साम्नीप०-२० ।१३४ ।४ ।

६ त्रिष्टुप् और उसके ३३ भेद

ऋग्वेद मे-त्रिष्टुप्-२ ।२४ ।१,२,६ । निचृतत्रिष्टुप्-१ ।३३ ।१ ।२,४ । विराट् त्रि०-१ ।३३ ।५,७,९,१ । भुरिक् त्रि०-१ ।३४ ।९ । आर्ची त्रि०-१ ।४० ।३,७ । आर्चीविराट् त्रि०-१, ।६२ ।१,४,६ । आर्षीनिचृत् त्रि०-१ ।६२ ।२,५,९ । स्वराटत्रि०-१ ।९४ ।६ । ज्योतिष्मतीत्रि०-३ ।१ ।२२ । साम्नीत्रि० ६ ।१६ ।१२,१६ । आर्षी त्रि० ७ ।३४ ।२३ । साम्नीनिचृत् त्रि०-७ ।६८ ।२,३ । साम्नीभुरिगासुरीविराट् त्रि०-७ ।६८ ।४,७ । आर्चीस्वराट् त्रि०-७ ।६९ ।३ । याजुषीविराट् त्रि०- ७ ।१०२ ।१ । आर्चीभुरक् त्रि० ८ ।११ ।१० । पादनिचृत् त्रि०-८ ।५७ ।४ । आसुरी त्रि०- १० ।२० ।१ । आसुरी स्वराडार्चीनिचृत् त्रि०-१० ।९९ ।४ । द्विपदात्रि०-१० ।१५७ ।१-५ ।

यजुर्वेद में-विराड्ब्राह्मी त्रि०-११ ।६६ । ब्राही त्रि०-१५ ।७ । भुरिग्ब्राह्मी त्रि०-१५ ।११ आर्षी विराट् त्रि०-१० ।७ । आर्षी स्वराट्त्रि०-८ ।१७ । ब्राह्मी स्वराट्त्रि० १ ।१६ । निचृद्ब्राह्मीत्रि०-१० ।३२ ।

अथर्ववेद में-प्राजापत्यात्रि०-८ ।१० ।३ ।४ । याजुषी त्रि०-९ ।६ ।१ ।८ । पुरस्ताज्ज्योति० त्रि०-११ ।५ ।१५ । दैवीत्रि०-१९ ।१२ ।१२-१३ । एकपात् त्रि० ५ ।१६ ।१-९ । मध्येज्योति त्रिष्टुप्-७ ।७५ ।२ ।

७ जगती और उसके २४ भेद—

ऋग्वेद में-जगती-१ ।१३ ।१-७ । विराड्जगती-१ ।३४ ।१,६ । निचृज्जगती-१ ।३४ ।२,३ । भुरिग्जगती-१ ।५३ ।२ । आर्षीभुरिग्जगती-१ ।६३ ।५ । स्वराड् ब्राह्मी जगती-१ ।१३३ ।६ । स्वराड् जगती-४ ।५३ ।४ । आर्ची जगती-६ ।४७ ।२ । आर्चीभुरिग्जगती ७ ।८२ ।३ । आर्षी विराड्ज०-७ ।८२ ।४-५ । आर्षी जगती-७ ।८३ ।७,८ । पादनिचृज्ज० ७ ।८९ ।५ । पुरस्ताज्ज्योतिर्जगती-८ ।३५ ।२३ । ककुम्मती जगती-८ ।९७ ।१५ । आर्चीस्वराड्जगती ९ ।।८५ ।८ । आसुरी स्वराडार्ची निचृज्जगती- १० ।७६ ।५ । उपरिष्टाज्ज्योतिजगती-१० ।१५० ।४ । उपरिष्टाज्ज्योतिर्निचृज्जगती १० ।१५० ।५ ।

यजुर्वेद मे-निचृद्ब्राह्मी जगती १५ ।१२ ।

अथर्ववेद में-याजुषी जगती-८ ।१० ।२,४ । साम्नी जगतो-८ ।१० ।४ ।१,४ । आसुरी जगती-९ ।७ ।१८,२२ । देवी जगती-११ ।३ ।४७ । प्राजापत्याजगती-१५ ।४ ।३,१२ । एकपदाजगती- १५ ।१६ ।१० । मध्येज्योतिर्जगती-११ ।४ ।२१ ।

८ अतिजगती और उसके ६ भेद

ऋग्वेद मे-अतिजगती-४ ।१ ।२ । निचृदतिजगती-५ ।२ ।१२ । भुरिगतिजगती-६ ।२ ।११ । विराडतिजगती-८ ।३७ ।१ ।

यजुर्वेद मे-आर्षीनिचृदतिजगती-१३ ।१३ । निचृद्भुरिगतिजगती-१८ ।७ । स्वराडतिजगती-२८ ।१० ।

९ शक्वरी और उसके ५ भेद

ऋग्वेद में-शक्वरी-८ ।३६ ।१,५,६ । निचृच्छक्वरी-१ ।१३७ ।१ । स्वराट्शक्वरी-१ ।१२९ ।८,९ । विराट्शक्वरी-१ ।१३७ ।२ । पादनिचृच्छक्वरी-१० ।११५ ।९ ।

यजुर्वेद मे-भुरिक्शक्वरी-३४ ।५१ ।

१० अतिशक्वरी और उसके ३ भेद

ऋग्वेद मे-निचृदतिशक्वरी-१ ।१३७ ।१ भुरिगतिशक्वरी-१ ।१२७ ।१० । स्वराडतिशक्वरी-१ ।१२९ ।७ ।

यजुर्वेद मे-अतिशक्वरी-२८ ।३४ ।

११ अष्टि और उसके ४ भेद

ऋग्वेद मे-अष्टि-१ ।१२७ ।१,२,३ । भुरिगष्टि-१ ।१२७ ।४,७,११ । निचृदष्टि-१ ।१२८ ।१,५,७ । स्वराडष्टि-१ ।१३० ।२-३,६,९ । विराडष्टि-१ ।१३३ ।७ ।

१२ अत्यष्टि और उसके ४ भेद

ऋग्वेद मे-अत्यष्टि १ ।१२७ ।५,६ । निचृदत्यष्टि-१ ।१२८ ।१ । विराडत्यष्टि-१ ।१२८ ।३,४,६,८ स्वराडत्यष्टि-१ ।१३६ ।१,३,५,६ । भुरिगत्यष्टि-१ ।१३९ ।४,९ ।

१३ धृति और उसके ४ भेद

यजुर्वेद मे-धृति ९ ।९ । निचृद्धृति-९ ।१९ । भुरिग्धृति-१० ।५ । स्वराड्धृति-२५ ।४ । विराड्धृति-३० ।१७ । ऋग्वेद-१ ।१३३ ।६

१४ अतिधृति और उसके ४ भेद

यजुर्वेद मे-अतिधृति-२२ ।५ । स्वराडतिधृति-९ ।१२ ।निचृदभुरिगतिधृति-१३ ।५५ । भुरिगतिधृति-१५ ।१८ । निचृदतिधृति-१६ ।१७ ।

१५. कृति और उसके ४ भेद

यजुर्वेद में-कृति ९ ।३२ । भुरिक्कृति-९ ।४ ।स्वराट्कृति-१० ।८ । विराट्कृति-१५ ।१७ । निचृत्कृति-१५ ।१९ ।

१६. प्रकृति और उसके ४ भेद—

यजुर्वेद मे-प्रकृति-१५ ।१६ । भुरिक्प्रकृति-११ ।२८ ।स्वराट्प्रकृति-१६ ।४६ । विराटप्रकृति-२९ ।६० । निचृत्प्रकृति-३० ।१८ ।

१७. आकृति और उसके ३ भेद

यजुर्वेद में-आकृति-१५ ।६४ ।भुरिगाकृति-१० ।४ । विराडाकृति-१३ ।५८ । निचृदाकृति-१४ ।७ ।

१८. विकृति और उसके ३ भेद

यजुर्वेद मे-विकृति-९ ।३६ । स्वराड्विकृति-१० ।४ । भुरिग्विकृति-१४ ।२४ । निचृद्विकृति-१४ ।२८ ।

१९ सकृति और उसके ३ भेद

यजुर्वेद मे-स्वराट्सकृति-१० ।४। भुरिक्सकृति-२४ ।१। निचृत्सकृति-२४ ।२।

२० अभिकृति और उसके ३ भेद

यजुर्वेद मे-अभिकृति-१० ।३। भुरिगभिकृति-१५ ।५। विराडभिकृति-१५ ।६। निचृदभिकृति-२५ ।८।

२१ उत्कृति और उसके ४ भेद

यजुर्वेद मे- उत्कृति-११ ।५८। विराडुत्कृति-९ ।१०। निचृदुत्कृति ९ ।३५। स्वराडुत्कृति-१४ ।१५। भुरिगुत्कृति-१४ ।१६।

उपर्यकित २१ वैदिक छन्दो और उनके विभिन्न २६१ भेद-प्रभेदों के पर्यवेक्षण से सुस्पष्ट है कि वेद ही छन्दो के मूलाधार है। उक्त २१ वैदिक छन्द ही लौकिक छन्दों के भी मूल हैं, जो प्राग्गायत्री पचक को मिलाकर उक्ता से उत्कृति पर्यन्त २६ माने जाते है। इन २६ लौकिक छन्दों के छन्दोविषयक ग्रन्थो मे २०४६ छन्दोभेदो के लक्षण मिलते है, जिनमें कतिपय छन्दों का मूल ऋग्वेद मे देखा जा सकता है—

गायत्री (षडक्षरपाद)

१ मालिनी (भ र) यथा-ब्रहम च नो वसो। ऋग्वेद-१ ।१० ।४ का तृतीय चरण।

२. **उष्णिक्** (सप्ताक्षरपाद)

२ कुमारललिता (ज स ग) यथा-सचेषु सवनेष्वा। ऋग्वेद-१ ।९ ।३ का तृतीय चरण।

अनुष्टुप् (अष्टाक्षरपाद)

३ मतचेष्टित (ज र ल ग) यथा-हृदि स्पृगस्तु शन्तम। ऋग्वेद-१ ।१६ ।७।

पक्ति (दशाक्षरपाद)

४ गोपाल (म म म ग) यथा-अग्नि होतार मन्ये दास्वन्तम्। ऋग्वेद-१ ।१२७ ।१। का प्रथम चरण।

त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)

५ इन्द्रवज्रा (त त ज ग ग) यथा-पूषण्वते ते चकृमा करम्भम्। ऋग्वेद-३ ।५२ ।७।
६ उपेन्द्रवज्रा (ज त ज ग ग) यथा-स्तुहि श्रुत गर्त सद युवानम्। ऋग्वेद- ।२ ।३३ ।११।
७ वातोर्मी (मभ त ग ग) यथा-आ देवानामभव केतुरग्ने। ऋग्वेद-३ ।१ ।१७।
८ शालिनी (म त त ग ग) यथा-इन्द्रासोमा बुष्कृते मा सुग भूत्। ऋग्वेद-७ ।१०४ ।७।
९ उद्यत (नीला (त न र ल ग) यथा-अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्। ऋग्वेद-१ ।२३ ।१९।
१० लयग्राहि (त त त ग ग) यथा-मा ज्यायस शसमा वृक्षिदेवा। ऋग्वेद-१ ।२७ ।१३।
११ सेनिका (ज र ज ग ल) यथा-अवाधम वि मध्यम श्रयाय। ऋग्वेद-१ ।२४ ।१५।
१२ ईहामृगी (त भ त ग ग) यथा-अग्नेर्वय प्रथमस्यामृतानाम्। ऋग्वेद-१ ।२४ ।२।
१३ सौभगकला (भ ज स लग) यथा-भेषजमपामुत प्रशस्तये। ऋग्वेद-१ ।२३ ।१९।

जगती (द्वादशाक्षरपाद)

१४ वशस्थ (ज त ज र) यथा-रथ न दुर्गाद् वसव सुदानव। ऋग्वेद-१ ।१०६ ।१।
१५ इन्द्रवशा (त त ज र) यथा-यूना ह सन्ता प्रथम वि जज्ञतु। ऋग्वेद-९ ।६८ ।५।
१६ ललिता (त भ ज र) यथा-यस्तातृषाण उभयाय जन्मने। ऋग्वेद-१ ।३१ ।७।
१७ विधारिता (ज ज ज र) यथा-पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तर। ऋग्वेद-१ ।३१ ।४।

अष्टि (षोडशाक्षरपाद)

१८ पचचामर (ज र ज र ज ग) यथा-अथा न इन्द्र सोम पा गिरामुपश्रुति चर। ऋग्वेद-१ ।१० ।३ ।

उपर्यकित लौकिक छन्दो मे मालिनी, मत्तचेष्टित, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, शालिनी उद्यत, वशस्थ और ललिता छन्द को भरत ने[५२] कुमारललिता, वातोर्मि और इन्द्रवशा छद को पिगल ने[५३], पचचामर को स्वयम्भू ने[५४], लयग्राहि को जयकीर्ति ने[५५], गोपाल और सेनिका छन्द को चन्द्रशेखर ने[५६], ईहामृगी, सौभगकला और विधारिता छन्द को दु खभञ्जन ने[५७] लक्षित किया है, जिनकी ऋग्वेद मे प्राप्त मूलभागीय पक्तियो पर दृष्टिपात करने से यह निस्सन्देह सिद्ध होता है कि वेदो में ऋग्वेद और यजुर्वेद ही वैदिक तथा लौकिक छन्दो के मूल स्रोत है ।

(२) छन्दो का काल

यद्यपि ऋग्वेदीय ऋषि सूची मे ऋषियो की वशज तथा गोत्रज परम्परा प्राप्त होती है, जिससे उनके कालक्रम पर प्रकाश पडता है, तथापि कुछ मन्त्रद्रष्टा ऋषि ऐसे भी हैं, जिनका ऋग्वेदादि मे न तो वाशिक क्रम ही प्राप्त होता है और न गोत्रजक्रम ही, उनके कालज्ञान के लिए छन्दो के कालज्ञान पर विचार करना आवश्यक है । छन्दो का काल अत्यन्त प्राचीन है । वेद छन्दोबद्ध है । इसलिए छन्दों का काल वैदिक मन्त्रो के काल के समकक्ष ही समझा जाना चाहिये । अत छन्द-काल को निर्धारित करने के लिये हमे ऋग्वेद के रचनाकाल को निर्धारित करना चाहिये ।

भारतीय विद्वानो की परम्परा रही है कि वेदों को अनादिकाल से प्रवृत्त हुआ मानते है । पण्डित भगवद्दत्त जी ने ऋषियों के कालक्रमानुसार वेदों के मन्त्रों का समय निश्चित करते हुए वेदों को, 'ब्रहमा जी के समय से चले आ हे है' कहकर अनादि बता दिया है ।[५८] रसिकबिहारी मञ्जुल वेदों का प्रणयन सृष्टि के आस-पास का मानते है, उनके मतानुसार आज से वैवस्वत मनु का समय बारह करोड पाच लाख तैंतीस हजार तीस (१२०५,३३०३०) वर्ष बैठता है ।[५९] वैवस्वत मनु ऋग्वेद के मन्त्रद्रष्टा सूत्रतकार ऋषि है ।[६०] जो ऋग्वेदीय ऋषि सूची के अनुसार विवस्वान् आदित्य के पुत्र और अदिति तथा

---

५२ नाट्यशास्त्र-३२ ।७८,१६ ।१४,२८,३०,३६,३२ ।२०८,१६ ।४६,३२ ।१४८-४९ ।

५३ छन्द-सूत्र-६ ।३,२६,३५, छन्द शास्त्र-६ ।३,२६,२९ ।

५४ स्वयम्भूछन्द-१ ।२० ।

५५ छन्दोनुशासन-२ ।१०८ ।

५६ वृत्तमौक्तिक-२ ।१२५,१६३ ।

५७ वाग्वल्लभ-११ ।३८,८३,१२ ।७६ ।

५८ प० भगवद्दत, बी० ए०, भारतवर्ष का इतिहास, पृ० ८१-८२ ।

५९ रसिकबिहारी मञ्जुल, लेख-'वेदों मे राष्ट्रगान' वीरअर्जुन, दिनाक २५-१-१९७६ । लेख मे मञ्जुल जी ने बताया है कि यह समय सन् १९३१ में आका गया था। इस गणना का लेखा-जोखा इस प्रकार है-२७ चतुर्युगियो के-११६६४०००० वर्ष, कृत युग के १७२८००० वर्ष, त्रेता के-१२९६००० वर्ष, द्वापर के-८६४००० वर्ष, आज तक कलियुग के ५०३० वर्ष । वैवस्वतमनु से आज तक का योग १२०५,३३०३० वर्ष ।

६० मनु-ऋग्वेद म० ८सू० २७-३१ ।

कश्यप के पौत्र थे।[६१] कश्यप के पिता मरीचि और पितामह ब्रह्मा थे।[६२] अत छन्द काल ब्रह्मा से भी पौर्वकालिक होगा।

वेदो के कालनिर्धारण मे पूर्वीय तथा पाश्चात्य विद्वानो ने अपने ग्रन्थो मे जो विचार किया है, उनके मतानुसार यहा छन्द काल निर्णय के लिए विचार करना अपेक्षित है। दीनानाथ शास्त्री चुटेल ने अपने वेदकालनिर्णय मे वेदो को तीन लाख वर्ष पुराना बताया है।[६३] अत. वेवर ने वेदो को अतिप्राचीन माना है।[६४] डा० सपूर्णानन्द के मत से ऋग्वेद काल मे निरन्तर भूकम्प आया करते थे, जिनके सकेत ऋचाओ मे मिलते है। इस अवस्था को आर्यो ने स्वय देखा था। यह अवस्था ५०००० से २५००० ई० पू० तक रही। अत वे ऋग्वेद का रचनाकाल २५००० वर्ष पूर्व मानते है।[६५] ऋग्वेद मे भूगर्भसम्बधी अनेक ऐसी घटनाओ का वर्णन है, जिसके आधार पर उसके समय का निर्धारण किया जा सकता है। ऋग्वेद मे सरस्वती नदी का उल्लेख मिलता है,[६६] जिसके अनुशीलन से प्रतीत होता है कि आजकल जहा राजपूताना की मरुभूमि है, वहा प्राचीनकाल मे एक विशाल समुद्र और इसी समुद्र मे सरस्वती तथा शतुद्रि नदिया गिरती थी।[६७] आज न तो सरस्वती नदी है और न उसका समुद्र, दोनो लुप्त हो चुके है। श्री वी० वी० केतकर ने राजस्थान का ईसा से ७५०० वर्ष पूर्व समुद्रगर्भ से निष्क्रमण प्रमाणित किया है[६८] और श्री एच० जी० वेल्स, राजस्थान के समुद्र का आज से पूर्व ५०००० से २५००० वर्षो के बीच विद्यमान होना मानते है।[६९] ताण्ड्यब्राह्मण मे सरस्वती नदी के लुप्त होने का सकेत मिलता है।[७०] ये घटनाए हजार दो हजार वर्षो की नही अपितु एक लम्बी अवधि की सूचना देती है। किसी समय आर्यो के निवास स्थान सप्तसिन्धु के चारो ओर चार समुद्र थे, इसका उल्लेख भी ऋग्वेद मे प्राप्त होता है[७१], किन्तु आज वह चारों समुद्रो की स्थिति भी बदल चुकी है। वैदिक युग मे पजाब मे शीत का प्राबल्य था, इसका उल्लेख अवेस्ता मे भी मिलता है कि हप्तहेन्दु का मौसम पहले आनन्ददायक और शीतल था।[७२] इसलिए ऋग्वेद मे वर्ष का नाम हिम मिलता है[७३], अत भूतत्वज्ञो ने सिद्ध किया है कि भूमि और जल के ये विभिन्न भाग तथा पजाब मे शीतकाल का प्राबल्य प्लीस्टोसिन (तृतीय चट्टान के नवीनतम भाग वाले) काल अथवा पूर्व प्लीस्टोसिन काल (तृतीय चट्टान के अति

६१ भागवत पुराण-६ ।७ ।४० । अभिज्ञान शाकुन्तल-७ ।२७ ।
६२ ऋग्वेद-१ ।९९ की ऋषि सूची, वायुपुराण-६५ ।२२ ।
६३ चुटेल, 'वेदकालनिर्णय' नामक ज्योतिस्तत्वमीमासक ग्रन्थ ।
६४ वेबर, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, पृ० २-६ ।
६५ सम्पूर्णानन्द, होम आफ आर्यन्स ।
६६ एकचितेत्सरस्वती नदीना शुचि र्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् । ऋग्वेद-७ ।९५ ।२ ।
६७ ऋग्वेद ७ ।९५ ।१ और ३ ।३३ ।१-२ ।
६८ फर्स्ट ओरियण्टल कान्फ्रेस, पूना, १९१९ ई० ।
६९ आउट लाइन आफ हिस्ट्री, पृ० ३९,४५ ।
७० तण्ड्यब्राह्मण-२५ ।१० ।६ ।
७१ राय समुद्राश्चतुरोऽस्मभ्य सोम विश्वत । आ पवस्व सहस्रिण । ऋग्वेद ९ ।३३ ।६ ।
स्वायुध स्ववश सुनय चतु समुद्र वरुण रयीणाम् । ऋग्वेद-१० ।४७ ।२ ।
७२ ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि, पृ० ७० ।
७३ त्वमिडा शतहिमासि दक्षसे त्व वृत्रहा वसुपते मरस्वती । ऋग्वेद-२ ।१ ।११ । शत हिमा-ऋग्वेद १ ।६४ ।१४ । विद्वेषा सीनुहि वर्धयेडा मदम शतहिमा सुवीरा ऋग्वेद-६ ।१० ।७ ।

नवीनतम भागवाला समय) की घटना है। यह काल ईसा से पूर्व ५०००० वर्ष से लेकर २५००० वर्ष तक के मध्य काल मे निर्धारित किया गया है।[७४] अत डा० अविनाशचन्द्र दास ने ऋग्वेद मे निर्दिष्ट भौगोलिक तथा भूगर्भसम्बधी घटनाओ[७५] और आर्यावर्त के चारो ओर चतु समुद्रो की स्थिति के आधार पर ऋग्वेद की रचना तथा तत्कालीन सभ्यता के आविर्भाव का समय कम से कम ईसा से २५००० वर्ष पूर्व माना है।[७६]

ऋग्वेद के १०वे मण्डल के ८६वे सूक्त मे इन्द्र-इन्द्राणी और वृषाकपि का सवाद मिलता है, उसमे वृषाकपि से शरत्सपात मे आये सूर्य का सकेत मानकर कुछ विद्वान् इस वृषाकपि सूक्त का ईसा से करीब १६००० वर्ष पुराना होना अनुमान करते है और इसी प्रकार एक अन्य मन्त्र[७७] की रचना के समय मघा मे सूर्य की दक्षिणायन यात्रा समाप्त होकर फाल्गुनी मे उत्तरायण यात्रा प्रारम्भ होती थी। गणित द्वारा ऐसा समय ईसा से लगभग १५००० वर्ष पूर्व रहा बतलाया जाता है। ऋग्वेद मे प्राचीन सूक्तो, देवताओ के प्राचीन पराक्रमो और प्राचीन पूर्वजो का उल्लेख मिलता है। एक स्थल पर लिखा है[७८] कि पूर्व प्राचीन समय मे वेदमन्त्रो का गान करते थे, वे वेदमन्त्र उसी समय से अब तक चले आ रहे है। इससे कुछ मन्त्रो का और भी अधिक प्राचीन होना सिद्ध होता है, जिससे आर्यसभ्यता का आज से प्राय १०००० वर्ष पूर्व का होना कहा जा सकता है। इसी प्रकार प्रो० ब्लूमफील्ड भी आर्यसभ्यता का प्रारभ वैदिक साहित्य से कई हजार वर्ष पूर्व मानते है।[७९] युधिष्ठिर मीमासक ने भारतीय इतिहास के अनुसार वेदागो का प्रादुर्भाव न्यूनातिन्यून ११००० वर्ष पूर्व कृत युग के अन्त मे माना है,[८०] तो ऋग्वेद का रचनाकाल उक्त समय से पश्चात् नही हो सकता।

लोकमान्य बाल गगाधर तिलक ने वेदो की सहिताओं तथा ब्राह्मणो मे निर्दिष्ट ज्योतिष सम्बधी सूचनाओ का अनुशीलन कर वेदो का काल ६०००-४००० वर्ष विक्रमपूर्व निश्चित किया है। उनके मतानुसार प्राचीनकाल मे वसन्त से वर्ष का प्रारम्भ माना जाता था। इसलिए वसन्त को भगवान् की विभूति माना जाता है।[८१] आजकल वसन्तसम्पात मीन की सक्रान्ति से प्रारम्भ होता है और यह सक्रान्ति पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र के चतुर्थ चरण से प्रारम्भ होती है किन्तु यह स्थिति धीरे-धीरे नक्षत्रों के एक के बाद एक के हटने से हुई है। किसी समय वसन्तसम्मात उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा आदि नक्षत्रों मे होता था, जहा से यह क्रमश पीछे हटता हुआ आज वर्तमान स्थिति पर पहुच पाया है। नक्षत्रो के पीछे हटने से ऋतुपरिवर्तन तब लक्ष्य मे भली भाति आने लगता है, जब वह एक मास पीछे हट जाता हैं। सूर्य के सक्रमणवृत्त को २७ नक्षत्रो में बाटा गया है। पूरा

---

७४ बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और सस्कृति, पृ० ९९-१००।

७५ ऋग्वेद-२।१२।२, इसी प्रकार का भाव ऋग्वेद-२।१७।५ मे भी मिलता है। ये हिमालय आदि पर्वतो के पृथ्वी से बाहर निकलने के समय की दशा के सस्मरण है।

७६ डा० अविनाशचन्द्र दास, ऋग्वेदिक इण्डिया, प्रथम भाग, पृ० ५७८-५७९।

७७ सूर्याया वहतु प्रागात्सविता यमवासृजत्। अघासु हन्यन्ते गावो र्जुन्यो पर्युह्यते। ऋग्वेद १०।८५।१३।

७८ दिविश्चिदा पूर्व्या जायमाना विजागृविर्विदथे शस्यमाना।
भद्रावस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजापित्र्याधी ॥ ऋग्वेद-३।३९।२।

७९ हापकिन-विश्वविद्यालय के १८वें वार्षिकोत्सव पर प्रो० ब्लूमफील्ड का भाषण।

८० युधिष्ठिर मीमासक, वैदिकछन्दोमीमासा, पृ० ४५।

८१ ऋतूना कुसुमाकर। भगवद्गीता-१०।३५।

सक्रमणवृत्त ३६० अशो का होता है। अत प्रत्येक नक्षत्र (३६० − २७) = $१३\frac{१}{२}$ अशो का चाप बनाता है। सक्रमणबिन्दु को एक अश पीछे हटने मे ७२ वर्ष लगते है, अत पूरे एक नक्षत्र को पीछे हटने मे ९७२ वर्षो का समय लगता है। आज कल वसन्तसम्पात पूर्वाभाद्रपद के चतुर्थचरण मे पडता है और जब वह कृत्तिका नक्षत्र मे पडता था, तब मे लेकर आज तक वह लगभग साढे चार नक्षत्र पीछे हट आया है अत ज्योतिष गणना के आधार पर कृत्तिका नक्षत्र मे वसन्तसम्पात आज से ९७२ × $४\frac{१}{२}$ =४३७४) लगभग माढे चार हजार वर्ष पहले था, जो विक्रम से २५०० वर्ष पूर्व पडता था।[८२]

तिलक जी ने ऋग्वेद का गाढ अनुशीलन कर मृगशिरा नक्षत्र मे वसन्तसपात होने के अनेक निर्देशो को एकत्र किया है। तैतिरीय सहिता का कथन है कि-'फाल्गुनी पूर्णिमा वर्ष का मुख है' और तैत्तिरीय ब्राह्मण मे वसन्त को ऋतुओ का मुख कहा गया है।[८३] शतपथब्राह्मण भी इसी बात की पुष्टि करता है।[८४] तिलक जी ने उक्त कथन के अनुसार यदि पूर्ण चन्द्रमा फाल्गुनी नक्षत्र मे था तो सूर्य अवश्यमेव मृगशिरानक्षत्र मे रहेगा और तब वसन्तसम्पात भी होगा। ऋग्वेद की अनेक आख्यायिकाए इस ग्रह-स्थिति की सूचना देती है। मृगशिरा नक्षत्र की आकाशस्थिति का निर्देश अनेक मत्रो तथा आख्यानो मे पूर्णतया अभिव्यक्त किया गया है।[८५] जिसकी एक झलक अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रारम्भ मे मिलती है, जो मृगशिरा नक्षत्र मे वसन्त सम्पात में दुष्यन्त के मृगानुसरण की सूचना देती है।[८६] मृगशिरा मे वसन्त का समय कृत्तिकावाले समय से २००० वर्ष पूर्व बैठता है, क्योकि मृगशिरा से कृत्तिका तक पीछे हटने मे उसे दो नक्षत्रो को पार करना होगा, जिसका समय (९७२ × २ = १९४४ वर्ष) बैठता है, अत जिन मन्त्रो मे मृगशिरा के वसन्त सम्पात का उल्लेख मिलता है, उनका मोटे तौर पर (२५०० + १९४४) लगभग ४४४४ वर्ष विक्रम पूर्व समय निश्चित होता है। मृगशिरा का दूसरा नाम मार्गशीर्ष है, अत मृगशिरा नक्षत्र मे वर्षारम्भ होने से गीता मे मार्गशीर्ष को श्रेष्ठ बताया गया है।[८७] इसी से इसका दूसरा नाम आग्रहायण (वर्षारम्भ का नक्षत्र) भी है। ग्रीक लोग इस आग्रहायण को 'ऑरायन' कहते हैं।[८८]

तिलक जी के अनुसार मृगशीर्ष से भी आगे पुनर्वसु नक्षत्र मे भी वसन्तसम्पात के होने के यथेष्ट सकेत ऋग्वेद मे मिलते है।[८९] पुनर्वसु नक्षत्र का समय दो नक्षत्र आगे होने से मृगशिरा वाले समय से २००० वर्ष पूर्व होगा। अत ऋग्वेद का काल ६००० वर्ष विक्रमपूर्व और आज से ८००० वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। तिलक जी के मतानुसार इस काल को अदिति युग कहते है, जो भारतीय सस्कृति का प्राचीनतम युग है।[९०]

तिलक जी ने वैदिक काल को चार कालो मे विभक्त किया है—

१ **अदितिकाल** (६०००-४००० वर्ष विक्रम पूर्व), जिसमे उपास्य देवताओ के नाम, गुण, तथा

---

८२ बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और सस्कृति, पृ० ९५।
८३ तैत्तिरीय ब्राह्मण, १।१।२।६।
८४ एपा ह सवत्सरस्य प्रथमा रात्रिर्या फाल्गुनी पूर्णमासी। शतपथब्राह्मण-६।२।२।१८
८५ ऋग्वेद-१।३३।१२,१।१६१।१३,१।२५।८।
८६ मृगानुसारिणं साक्षात्पश्यामीव पिनाकिनम्। अभिज्ञान शाकुन्तल-१।६।
८७ मासाना मार्गशीर्षोऽहम्। व्यास, गीता-१०।३५।
८८ ऋग्वेद पर ऐतिहासिक एक दृष्टि, पृ० ६२।
८९ तिलक, ओरायन (Orion), पृ० २०६-२०७।
९० तिलक, आर्किटिक् होम इन दी वेदाज् पृ० ४२०।

चरित के वर्णन करने वाले योग विधिवाक्यो की रचना कुछ गद्य मे और कुछ पद्य मे की गयी, जिन्हे निविद कहते है।

२ **मृगशिरा काल** (४०००-२५०० वर्ष विक्रम पूर्व) जिसमे अधिकाश मन्त्रो की रचनाए हुई।

३ **कृत्तिकाकाल** (२५००-१४०० वर्ष विक्रम पूर्व), जिसमे तैतिरीय सहिता एव शतपथादि प्राचीन ब्राह्मणो की रचनाए हुई। वेदाग-ज्योतिष की रचना इस युग के अन्तिम भाग मे हुई, क्योकि इसमे सूर्य और चन्द्रमा के श्रविष्ठा के आदि मे उत्तर की ओर घूम जाने का वर्णन मिलता है।[९१] यह घटना १४०० विक्रमपूर्व के आस-पास गणित के आधार पर अगीकृत की गयी है।

४ **अन्तिम काल** (१४००-५०० वि० पू०), जिसमे श्रौत्रसूत्र गृह्यसूत्रादि की रचनाए हुई।

उपर्युक्त काल विभाग पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि तिलक जी अदिति काल से मृगशिरा काल तक ३००० वर्षों मे वैदिक मन्त्रो का रचनाकाल मानते है, जो ठीक लगता है, क्योकि अदिति ऋग्वेद की मन्त्रद्रष्टा सूक्तकार ऋषिका है,[९२] जो कश्यप की पत्नी है[९३] और कश्यप मारीच ऋग्वेद के प्राचीनतम सूक्तकार ऋषि है,[९४] तथा ऋग्वेद के अर्वाचीनतम सूक्तकार ऋषि पराशर है,[९५] जो चतुर्वेदो के सकलनकर्ता श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास के पिता थे।[९६] व्यास महाभारत के रचयिता थे, जिनका समय आज से ५०३५ वर्ष पूर्व था, जो विक्रम से ३००० वर्ष पूर्व बैठता है और मृगशिरा का काल भी विक्रम से २५०० वर्ष पूर्व रहता है, अर्थात् विक्रम से ३००० वर्ष पूर्व वैदिक सस्कृत मे रचनाए होती थी, जिनका सकलन हमे ऋग्वेद मे मिलता है।

डा० याकोबी ने गृह्यसूत्रो मे उल्लिखित ध्रुवदर्शन के आधार पर वेदो का समय विक्रम पूर्व चतुर्थ सहस्राब्दी माना है। अत उनके मतानुसर ऋग्वेद का काल आज से ६००० वर्ष पुराना सिद्ध होता है।[९७]

वैदिक सहिताओ तथा ब्राह्मण ग्रन्थो मे अनेक स्थलो पर ऋतुसूचक तथा नक्षत्र निर्देशक वर्णनो का प्राचुर्य पाया जाता है। महाराष्ट्र के विख्यात ज्योर्तिविद् प० शकर बालकृष्ण दीक्षित ने शतपथ ब्राह्मण से एक महत्वपूर्ण अश खोज निकाला है, जिससे उस ग्रन्थ के रचनाकाल पर प्रकाश पडता है। इस अश मे कृत्तिकाओ के ठीक पूर्वीय बिन्दु पर उदय लेने का वर्णन है।[९८] जहा से वे तनिक भी च्युत नही होती, किन्तु आजकल वे पूर्वीय बिन्दु से कुछ उत्तर की ओर हटकर उदित होती है। अत दीक्षित जी की गणना के अनुसार कृत्तिकाओ का पूर्वीय बिन्दु पर उदय ३००० वर्ष विक्रम पूर्व मे होता था, जो शतपथ का निर्माणकाल माना जा सकता है। तैतिरीय सहिता, जिसमे कृत्तिका तथा अन्य नक्षत्रो का वर्णन है, निश्चयपूर्वक शतपथ से प्राचीन है और ऋग्वेद तैतिरीय सहिता से भी पुराना है। अब यदि

---

९१ प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचान्द्रमसाबुदक्। ...। ऋग्वेद-ज्योतिष-६।

९२ अदिति-ऋग्वेद १० ।७२। अभिज्ञान शाकुन्तल-७ ।२७।

९३ अभिज्ञान शाकुन्तल-७ ।२७।

९४ कश्यप (ऋ० १ ।९९,८ ।२९,९ ।६४,९१-९२,११३-११४,६७ ।४-६,१० ।१३७ ।२ ।)

९५ पराशर-ऋग्वेद-१ ।६५-७३।

९६ व्यास वसिष्ठनप्तार शक्ते पौत्रमकल्पषम्।
सपादकीय लेख, वीर अर्जुन-१३-१-१९७६। पराशरात्मज वन्दे शुकतात तपोनिधिम्॥

९७ याकोबी, Jacobi, Festgrnssam Rath, PP७१F

९८ एक द्वे त्रीणि चत्वारि वा अन्यानि नक्षत्राणि, अथैता एकभूयिष्ठा यत्कृत्तिकास्तद् भूमानमेव एतदुपैति तस्मात् कृत्तिकास्वादधीत। एता हवै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते ...। शतपथ० २ ।१ ।२

प्रत्येक के लिए २५० वर्ष का अन्तर मान ले तो ऋग्वेद का समय ३५०० वर्ष विक्रम पूर्व के इधर का कभी नही हो सकता। अत दीक्षित जी के मत से ऋग्वेद आज से लगभग ५५०० वर्ष पुराना सिद्ध होता है।[९९]

एक उल्लेख के अनुसार ४५०० ईसा पूर्व वैदिक ऋषियो के मध्य पूर्व एशिया से निकलने के बाद भारत मे आने से पूर्व ही उनके वाड्मय का बहुत-सा भाग नष्ट हो गया था, इसी से अब कुछ प्राचीन ऋषियों के ऋग्वेद मे मन्त्र नही मिलते, इसकी पुष्टि ऋग्वेद के अष्टम मण्डल मे प्रयोग भार्गव के १०२वे सूक्त से होती है, जिसमे ऋषि ने और्वभृगु और अप्नवान के समान स्तुति की है[१००] किन्तु उन दोनो ऋषियो के मन्त्र अब ऋग्वेद मे नही मिलते, अत वे नष्ट हो गये। इससे ऋग्वेद की रचना का काल ५००० ईसापूर्व सिद्ध होता है।[१०१]

ईप्सन के मत से ऋग्वेद मे प्रयुक्त ताम्र, गौ, नक्षत्र शब्द आर्यों ने सुमेरियनो से उधार लिये। अत ऋग्वेद का रचनाकाल भारोपीय युग ३०००-२१०० ईसा पूर्व से ओर अधिक पूर्व नही माना जा सकता।[१०२] रेप्सन के मत मे ऋग्वेद और अवेस्ता की भाषा मे अधिक साम्य है। कुछ ध्वनिभेदो को छोडकर बहुत-से शब्द दोनो मे बिल्कुल एक से है, जैसे सप्त (हफ्त), यज्ञ (यस्ज्ञ), हिम (जिम) आदि। इससे वे ऋग्वेद का रचनाकाल २००० ईसापूर्व मानते है।[१०३] पादरी प्रैट भी इसी मत के समर्थक हैं,[१०४] किन्तु विण्टरनिट्ज सहिताओ का रचनाकाल २५०० वर्ष ईसापूर्व मानते है।[१०५] और डा० हाग ने वेदागज्योतिष के एक सकेत के आधार पर उसका समय ११८६ ईसापूर्व, जिसे सूत्रकाल मानने के बाद ब्राह्मणो का समय २०००-१२०० ईसापूर्व तथा सहिताओ का रचनाकाल २५००-२००० ईसापूर्व तक माना है।[१०६]

आर० ई० एस० व्हीलर ने सिन्धुघाटी की सभ्यता, जो ऋग्वेद की सभ्यता से मिलती-जुलती है, का काल २५००-१५०० ईसापूर्व बताया है।[१०७] श्रोडर ने ऋग्वेद का रचनाकाल २०००-१५०० ईसापूर्व स्वीकार किया है।[१०८] ब्यूलर वेदो का रचनाकाल २०००-३००० ईसापूर्व मानते है।[१०९]

पाश्चात्य वैदिक विद्वान् डा० मेक्समूलर ने वैदिक काल के विषय मे अपना मत प्रकट किया है। उनके मतानुसार ऋग्वेद की रचना १२०० विक्रम सवत् पूर्व मे हुई।[११०] उन्होने वैदिक युग को

---

९९ शकरबालकृष्ण दीक्षित, ज्योतिष शास्त्र का इतिहास (हिन्दी सस्करण, १९५८) शङ्करबालकृष्ण दीक्षित भारतीय ज्योति शास्त्र (१८९६) पृ० १३६-१४०।

१०० और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदाहुवे। अग्नि समुद्रवाससम्। ऋग्वेद-८।१०२।४।

१०१ डा० निर्मला भार्गव, वैदिक साहित्य और सस्कृति पृ० ७७।

१०२ डा० राममूर्ति शर्मा, वैदिक साहित्य का इतिहास, पृ० १४।

१०३ वही, पृ० १४।

१०४ वही, पृ० १४।

१०५ वही, पृ० १५।

१०६ डा० राममूर्ति शर्मा, वैदिक साहित्य का इतिहास, पृ० ११।

१०७ व्हीलर, सर मोरटिनर, 'दी केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया, सप्लीमेन्ट्री, वोल्यूम, दी इन्डस एज, पृ० ९३।

१०८ श्रोडर, एल० वान, इण्डियन्स लिट्रेचर एण्ड कल्चर, पृ० २९१।

१०९ ब्यूलर, जी० आई० ए० २३, १९९४, पृ० २४७-२४८।

११० मैक्समूलर-हिस्ट्री आफ एनसिएट सस्कृत लिटरेचर।

चार कालो मे विभक्त किया-छन्द काल, मन्त्रकाल, ब्राह्मणकाल और सूत्रकाल। प्रत्येक कालविभाग मे २०० वर्षो का अन्तर रखा और कल्पना तथा रचना की दृष्टि से सर्वाधिक श्लाघनीय काल छन्द काल माना, जिसमे ऋषियो ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के बल पर अर्थगौरवपूर्ण मन्त्रो की रचना की। इस मत के अनुसार ऋग्वेद की रचना आज से ३२०० वर्ष पूर्व हुई।[१११]

मैक्डानल के मत मे ऋग्वेद और अवेस्ता ग्रन्थ की भाषा और धार्मिक विचारो मे जो साम्य है, उसके आधार पर ऋग्वेद का काल ईसापूर्व १००० से १३०० तक जाता है। उनके मत से भारतीय और ईरान के आर्यो को १३०० ईसापूर्व से पहले पृथक् नही किया जा सकता।[११२] वाल्टर व्युष्ट के मतानुसार ऋग्वेद की भाषा का जो रूप इस समय है, वह लगभग १००० वर्ष ईसापूर्व का ही है।[११३] जे० हर्टेल के अनुसार ऋग्वेद का रचनाकाल ईरान के जरथुष्ट (६००-५०० ई० पू०) से पूर्व का नही है।[११४] डा० हरियप्पा का कथन है कि वेद के इतने बृहत्साहित्य और जरथुष्ट के काल को ध्यान मे रखते हुए यह असम्भ्व प्रतीत होता है कि ऋग्वेदादि की रचना, ब्राह्मणो का अभ्युदय, सूत्र और उपनिषद्, यास्क, पाणिनि, महावीर, बुद्ध और महाकाव्य ये सब सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व (३२० ईसापूर्व) हो सके हो।[११५] सर ले ओनार्ड बूली उत्खनन के आधार पर ऋग्वेद की सभ्यता का ५०० ईसापूर्व मे होना मानते है।[११६]

उपर्युक्त मत मतान्तरो के पर्यवेक्षण से यह सिद्ध होता है कि पाश्चात्य सस्कृत विद्वद्वर्ग वैदिककाल विषयक छन्द काल के आस-पास के समय का ही अधिकतर समर्थक है, जो केवल अनुमान पर आधारित है, किन्तु भारतीय वैदिक विद्वत्समुदाय न्यूनातिन्यून अदितिकाल के आस-पास के समय के समर्थन के साथ ऋग्वेद में प्राप्त ज्योतिष तत्वो तथा भूगर्भीय घटनाओ के परिवर्तनो के आधार पर उससे पूर्वकाल का भी समर्थन करता है। तिलक जी का वैदिक कालविभाग विशेषत मान्य है, जिसकी पुष्टि कुछ नवीन अन्वेषणों के आधार पर भी हो रही है। उत्तरी मिश्र के तेल-एल अमनंनिमक स्थान मे प्राप्त एक उत्कीर्ण लेख मे अर्त शब्द के इण्डो ईरानियन समय के ऋत शब्द से साध्य रखने के आधार पर पाश्चात्य विद्वान् ब्लूमफील्ड, कीथ, विण्टरनिट्ज, वैदिककाल १४००-१६०० ईसापूर्व मानते है।[११७] सन् १९०७ मे डा० हूगो विकलर का एशिया माइनर (वर्तमान टर्की) के बोधाजकोइ नामक स्थान पर खुदाई द्वारा एक प्राचीन शिलालेख मिला है, जो १४०७ विक्रम पूर्व का है, जिसमे कितानि जाति के देवो मे मित्र, वरुण, इन्द्र तथा नासत्यौ (अश्विनौ) नामक चार वैदिक देवताओ के नामो का उल्लेख मिलता है। एडवर्ड मायर का कथन है[११८] कि ये देवता वैदिक काल के है। ऋग्वेद मे उक्त चारो देवताओ के स्तुतिपरक सूक्त १५०० ईसापूर्व से पहले निर्मित थे। अत ऋग्वेद की रचना

---

१११ बलदेव उपाध्याय, सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३७-३८।

११२ मेक्डानल, ई० आर० ई, ७, १९१४, पृ० ५०।

११३ वाल्टर वुस्ट, WZKM XXXIV, PP१७३, १९० cited by B K Ghosh I Gid P २०४

११४ According to Fradition the date of Zaroaster is ६००-५५० B C According to J Hertel ५०० B C as cited by winternitz -Bid P-३०७

११५ हरियप्पा, एच० एल०, ऋग्वेदिक, लीजेंड थ्रो दी एजेज, डी० सी० डी० सीरीज न० ९, पृ० १३७।

११६ बूली सर लेयोनार्ड, सिटेड बाई मजूमदार, आर० सी०, रिग्वेदिक सिविलाईजेशन इन दी लाइट आफ आर्कियोलोजी, वोल्यूम-४०, पार्ट-१, पृ० ६।

११७ ब्लूम फील्ड, रिलीजन आफ दी वेदा, पृ० ११-१२।

११८ मेयर, एडीशन कोटेड बाई विटरनिट्ज, पृ० ३०५।

१५०० ईसापूर्व के बाद की नही। इससे आजकल पाश्चात्य विद्वान् भी वेदो का प्राचीनतमकाल विक्रमपूर्व २०००-२५०० तक मानने लगे है और वेदो मे उल्लिखित ज्योतिष सम्बधी बातो की युक्तियुक्तता तथा उनके आधार पर निर्णीत कालगणना मे भी विश्वास करने लगे है। अत तिलक जी के पूर्ण निर्दिष्ट सिद्धान्त को ही हम इस विषय मे मान्य तथा प्रामाणिक मान सकते है।[११९]

वैदिक काल विभाग मे मेक्समूलर ने छन्द-काल को और लोकमान्य तिलक ने अदिति काल को सर्वप्रथम काल माना है, जो कि ऋग्वेद की रचना का प्रारम्भिक काल है। छन्दो के आविर्भाव का समय भी ऋग्वेद की रचना के समय के साथ-साथ ही निश्चित हुआ समझना चाहिये। ऋग्वेद मे प्रयुक्त छन्दो का परिनिष्ठित रूप दृष्टिगोचर होता है, वह तो एक परिष्कृत रूप है, जिसके आधार पर छन्दो के नाम रखे गये, जो वर्णों मे नियमित है। छन्द का प्रथम रूप सहज, सुबोध, वर्ण तथा मात्राओ के बधन से रहित पूर्णत स्वतत्र था, इसीलिए उसे छन्द कहा गया। छन्द का अर्थ स्वातन्त्र्य होता है। जिसमें नियमादि परतन्त्रता की तनिक भी झलक न हो। छन्द अपनी पूर्वावस्था मे उतने ही स्वतत्र थे, जितने कि आज वे परतन्त्र है। नियम आदि परतत्रता का बधन विकसित रूप है और अनियमादि उसका प्रारम्भिक स्वच्छद रूप, जिसमे छन्द आविर्भूत हुआ। इसलिए वेद को छन्द भी कहते है।[१२०]

वेद रचना काल तक आते आते सभ्यता काफी विकसित हो चुकी थी। अन्वेषी मानव मस्तिष्क ने गीतो मे प्रयुक्तवाणीक्रम का अध्ययन किया, जिससे वार्ता और गीतो के पार्थक्य का ज्ञान प्राप्त हुआ, फिर गीतो के सम्यक् सस्कार से पद्योपयुक्त छन्द प्रकाश मे आया, जिससे ऋग्वेद की रचना का मार्ग प्रशस्त हुआ। वार्ता के सस्कृत होने से गद्य शैली विकसित हुई, जिसमे यजुर्वेद की रचना हुई। इस तरह गद्य और पद्य सभ्य जगत् के शब्द शिल्प के मुख्य आधार बने।[१२१]

वेदो मे छन्दो के पाच रूप देखने को मिलते है—**१ निविद, २ गाथा, ३ ऋग्वेदीय पद्यात्मक छन्द, ४ यजुर्वेदीय गद्यात्मक छन्द, ५ सामवेदीय गीतात्मक छन्द**। प्रथम और द्वितीय रूप का तो स्वतत्र सग्रह प्राप्त नही होता, फिर भी वेदो मे निविद और गाथाओ के नाम से जो उद्धरण मिलते हैं, उनकी सहज सुबोध भाषा और अकृत्रिम रचना-शैली हठात् विकासशील साहित्य की याद दिला देती है। भाषाशास्त्रियो ने उनके विश्लेषणो से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वे प्राग्वैदिक काल की रचनाए है, जिनमे छन्दों का प्रारम्भिक रूप दृष्टिगत होता है।[१२२] छन्दो का तृतीय रूप ऋग्वेद में प्रयुक्त छन्दों का है, जो वर्णों के नियन्त्रण से पूर्णत अभिभूत और वर्णनियमादि कृत्रिमता के चमत्कार से चमत्कृत है, जिसमे छन्दो का विकसित-रूप दृष्टिगत होता है। छन्दो का चौथा रूप है यजुर्वेदीय गद्य का, जिसका प्रारम्भिक रूप तो हमे गद्यमय निविदो मे प्राप्त होता है और यजुर्वेद मे उसका सस्कृत होकर विकसित रूप मिलता है। इस गद्य रूप की भी छन्द शास्त्रियो ने छन्दोरूप मे गणना की है।[१२३] छन्दो का पचम रूप है सामवेद मे प्रयुक्त गीतात्मक छन्दों का, जो गति, यति, लय, ताल, ध्वनि और तुक आदि को साथ लिए एकमात्र मात्राओ के बधन को स्वीकार करता है, जिसमें छन्दो का विकसित रूप

---

१११ बलदेव उपाध्याय, सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३७ से ४३।

१२० बहुल छन्दसि। पाणिनि, अष्टाध्यायी-७।१।८।

१२१ प० ब्रजमोहन झा, सुवृततिलक, भूमिका, पृ० ११।

१२२ प० ब्रजमोहन झा, सुवृततिलक, भूमिका, पृ० ११।

१२३ यजुषामनियताक्षरत्वादेकेषा छन्दो न विद्यते। यजु सर्वानुक्रमसूत्र-१।१। इसका तात्पर्य है कि कुछ आचार्यों को छोडकर शेष के मत मे यजुर्वेद मे भी गद्य छन्द माने जाते हैं, जो एकाक्षर से प्रकल्पित, 'दैव्येकम्' छन्द-सूत्र-२।१७ से पिगलोक्त हैं।

दृष्टिगत होता है। इससे यह स्पष्ट है कि छन्दो के तत्त्व निविदो मे प्राप्त होते है,जिनमे छन्द के पद्य और गद्य दोनो मैलिक रूप मिलते है। इसके बाद उसका विकासशील रूप हमे गाथाओ मे देखने को मिलता है,गाथाये छन्दो के क्षेत्र से पृथक् है। यही कारण है कि छन्दो को शास्त्रीय परिधान पहनानेवाले आचार्य पिगल ने भी गाथाओ को छदो के बधन में नही बाधा और छन्दो के पूर्ण विवेचन के बाद गाथा का लक्षण करते हुए उसे अनुक्त कहा।[१२४] अनुक्त से तात्पर्य अर्थात् वह छन्द, जिसके बारे मे छन्दोरूप मे विवेचन नही किया गया,उसे गाथा कहते हैं। समस्त वैदिक और लौकिक छदो मे गाथा को कही भी छन्दोलक्षण से उन्होने नही बाधा, अन्त मे छन्द सूत्र के अष्टम अध्याय मे गाथा को अनुक्त कहते हुए उसके लक्षण बताने का प्रयास किया है। इन्ही गाथाओ मे छन्दो का प्रारम्भिक रूप प्रच्छन्न है, जिसके तत्त्व निविदो मे प्राप्त होते है।

आचार्य पिगल ने गाथा को तो अनुक्त कहा किन्तु निविदो के विषय मे वे सर्वथा मौन रहे और न अब तक किसी छन्द शास्त्री ने उस पर प्रकाश डाला। इससे स्पष्ट है कि निविद गाथाओ से प्राचीन है, जिनका समय तिलक जी ने आज से ८००० वर्ष पूर्व माना है। ऋग्वेद की रचना का यही प्रारम्भिक काल है, जिसे छन्दकाल कह सकते है। मनीषी पुरुष मानते है कि वेद किसी एक समय की रचनाए नही है,उनमे समय-समय पर प्रणीत मन्त्रों का सकलन है, यह स्वय ऋग्वेद मे प्राप्त विभिन्न सूक्तो की ऋषि-सूची मे प्रजापति से पराशर तक परम्परागत ऋषिक्रम से प्रमाणित है। आज से ५००० वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास ने वेद को चार भागो मे विभक्त किया। व्यास जी लौकिक सस्कृत के महाकवि थे, जिनकी अमरकृति महाभारत है। इससे पूर्व आदिकवि वाल्मीकि अपनी रचना प्रस्तुत कर चुके थे, जहा से लौकिक सस्कृत काव्य का उदय माना जाता है,जिसके पूर्व वैदिक सस्कृत से लौकिक सस्कृत को अपना साहित्यिक रूप लेने तक हजारों वर्ष लगे होगे और उससे पूर्व वैदिक छन्दो के विकास की भी कोई अवधि कम न होगी। अत आज से ८००० वर्षो से पूर्व ही छन्दकाल सिद्ध होता है।

(३) छन्दों का विकास

(क) पादक्रम से वैदिक छन्दो का विकास

ऋग्वेद मे सर्वप्रथम तीन छन्दो का उल्लेख मिलता है, जिनके नाम है गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती।[१२५] वेकटमाधव ने भी इन तीन छन्दो को ही प्रमुख माना है किन्तु एक चौथे छन्द के प्रति भी सकेत किया है, जिसे विराट् नाम देकर उपेक्षित ही रखा।[१२६] इसमे गायत्री को अष्टाक्षर, त्रिष्टुप् को एकादशाक्षर, जगती को द्वादशाक्षर और विराट् को दशाक्षरपाद बताया गया है, जिससे चार छन्दो का सकेत मिलता है। वेंकटमाधव ने उष्णिक् को गायत्री का और बृहती को अनुष्टुप् का विकसित रूप माना है।[१२७] इससे उन्होंने अनुष्टुप् की भी पृथक् सत्ता स्वीकार की है। इस प्रकार उनके मत में मौलिक छन्द-५ और २ विकसित होकर छन्दो की सख्या-७ हो जाती है।[१२८] पाश्चात्य विद्वानो के मत

---

१२४ अत्रानुक्त गाथा। छन्दसूत्र-८ ।१ ।

१२५ यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहित त्रैष्टुभाद्रा त्रैष्टुभ निरतक्षत।
यद्वा जगज्जगत्याहित पद य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशु ॥ ऋग्वेद १ ।१६४ ।३३ ।

१२६ भवन्ति छन्दसामत्र पदानित्रीणि यद्यथा। एकमष्टाक्षर दृष्टमेकमेकादशाक्षरम् ॥
द्वादशाक्षरमप्येक तेन त्रीणीति भाषते। पद दशाक्षर चाल्प वैराज तदुपेक्षितम् ॥
वेंङ्कटमाधव,छन्दोऽनुक्रमणी-६ ।१ ।५,६ ।

१२७ गायत्र्येवोष्णिगभवत् पक्तिमल्पामुपेक्षते। ...। छन्दोऽनुक्रमणी-६ ।१ ।७ ।

१२८ सप्तैव छन्दासि। मैत्रायणीसहिता। वेंकटमाधव,छन्दोऽनुक्रमणी-६ ।१ ।७ ।

मे केवल गायत्री और त्रिष्टुप् छन्द ही मौलिक हैं और शेष ५ छन्द उन्ही के विकसित रूप है।[१२९]

पादक्रम से तो तीन छन्द ही मुख्य है—गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती, क्योकि वैदिक छन्दो के पाद प्रायेण आठ, ग्यारह और बारह अक्षरो के होते है, इसलिए इन तीन छन्दो को ही अधिकतर वैदिक छन्दो का आधार माना जा सकता है। अधिकतर छदो के पाद अष्टाक्षर, एकादशाक्षर और द्वादशाक्षर होते है। जिन छदो के पाद अष्टाक्षर हैं, उनका मूल गायत्री छन्द है, क्योकि गायत्री का एक पाद आठ अक्षरो का होता है। जिन छन्दो के पाद एकादशाक्षर है, उनका मूल छन्द त्रिष्टुप् है, क्योकि त्रिष्टुप् का एक पाद ग्यारह अक्षरो का होता है और द्वादशाक्षरपाद वाले छन्दो का मूल जगती है, जिसके प्रत्येक पाद मे बारह अक्षर होते है। अधिकतर वैदिक छन्द उक्त तीन प्रकार के पादो के मिश्रण से ही बनते है।[१३०] इन तीनो छन्दो के पादो को क्रमश गायत्र, त्रैष्टुभ, जागत कहते है।[१३१] प्राचीन आचार्य पतञ्जलि भी इन तीनो पादो को ही समस्त वैदिक छन्दो का मुख्य आधार मानते है, और उन्होने दशाक्षरपाद को उनका मिश्रित पाद ही माना है।[१३२] आचार्य शौनक उक्त चारो छन्द पादो से समस्त वैदिक छन्दो का विकास मानते है।[१३३] आचार्य शौनक उक्त चारो छन्द पादो से समस्त वैदिक छन्दो का विकास मानते है। जिसका समर्थन आचार्य कात्यायन ने भी किया है।[१३४] पाश्चात्य विद्वानो के मत मे गायत्र और त्रैष्टुभ पाद तो मौलिक हैं किन्तु वैराज और जागत पाद मौलिक नही, अपितु वे क्रमश एकाक्षर की न्यूनता तथा अधिकता के कारण त्रैष्टुभ पाद के ही दो भेद है।[१३५] किन्तु ऋग्वेद का अधिकतम भाग प्रमुख तीन छन्दो में ही निबद्ध है, जिसमें सर्वप्रथम स्थान त्रिष्टुप् छद का है, जिसकी ४२५३ ऋचाए है और दूसरा स्थान गायत्री का है, जिसमे २४६७ ऋचाये है तथा तीसरे स्थान पर जगती छन्द आता है, जिसमे १३५८ ऋचाए निबद्ध हैं। ये तीनो ही मौलिक छन्द है, जिनके आधार पर समस्त वैदिक छन्दों का विकास हुआ है, जिसमे सर्वाधिक योग गायत्र पाद का है, जो छन्दोभेद प्रक्रिया मे प्रमुख रहा है।

बहुत से विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद में गायत्र्यादि सात छन्द ही प्रधान हैं[१३६] जिनकी प्रधानता के कारण ब्राह्मग्रन्थों तथा वेदागों मे वैदिक मन्त्रो के लिए छन्दस् शब्द का प्रयोग मिलता है।[१३७] अधिकतर ऋग्वेद के छन्द सामान्य छन्दो मे निबद्ध है, जिनके सभी पाद समान होते है। इस प्रकार के छन्दो में तीन, चार, पाच और छ, सात समान पाद होते है, जिनमे तीन और चार समान पाद वाले छन्दो (गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती) की अधिकता है। ऋग्वेद की जिन ऋचाओ मे सभी पाद समान होते है, उनमें अक्षरो की सख्या प्रायेण २४ से ४८ तक होती है किन्तु जिन छन्दो मे अनेक प्रकार के पादो का मिश्रण

---

१२९ ए० बी० कीथ, वैदिक मीटर-पृ० ७,१०-१४, वैदिक ग्रामर स्टडी, पृ० ४४१-४४२।

१३० डा० रामगोपाल, वैदिक व्याकरण, भाग-२, छन्द प्रकरण, पृ० ८९३।

१३१ निदानसूत्र-१।१।

१३२ त्रयश्छन्द पादा भवन्ति। अष्टाक्षर एकदशाक्षरो द्वादशाक्षर इति। तन्मिश्र दशाक्षर। पतञ्जलि-निदानसूत्र-१।१।

१३३ पादौ गायत्र वैराजावष्टाक्षरदशाक्षरौ। एकादशिद्वादशिनौ विद्यात् त्रैष्टुभजागतौ॥
एतैश्छन्दासि वर्तन्ते सर्वाण्यन्यैरतोऽल्पश। एतद्विकारा एवान्ये सर्वे तु प्राकृता समा॥
शौनककृत ऋक्प्रातिशाख्य-१७।२१,२३।

१३४ कात्यायनकृत ऋक्सर्वानुक्रमणी-३।१०-११।

१३५ कीथ-वैदिक मीटर-पृ० ७,१०,१४।

१३६ अथर्ववेद-८।९।१९। शतपथब्राह्मण-९।५।२।८। कौषीतकीब्राह्मण १४।५।१७।२।

१३७ शतपथब्राह्मण-११।५।७।३, आश्वलायन गृह्यसूत्र पाठ।

मिलता है, उनमे अक्षरो की सख्या ७२ तक मिलती है और जिन छन्दो के अक्षरो की सख्या ५२ से ७२ तक है, उनका प्रयोग विरल है।[१३८]

ऋग्वेद मे छन्दो के विभिन्न रूपो से ज्ञात होता है कि वैदिक ऋषि छन्द के किसी भी चरण को परिवर्तित कर या उसके किसी भी पाद मे न्यूनाधिक अक्षरो का प्रयोग कर मन्त्र की एक सी चली आ रही लय मे परिवर्तन करना उचित समझते थे। इस प्रकार के परिवर्तनो के कारण छन्दों की विकास परम्परा का प्रारम्भ हुआ, जिससे छन्दो के अन्दर एक नया रूप आ जाता था और इसी से छन्दों के अवान्तर भेद विकसित हुए। अत छन्दो मे परिवर्तन कर नये रूप देने की उनकी उत्कट इच्छा का आभास हमे उनके अनेक सूक्तो के अन्तिम मन्त्रो के छन्द के परिवर्तन मे देखने को मिलता है,[१३९] जिसका विकसित रूप लौकिक सस्कृत-काव्यो के सर्गान्त मे दृष्टिगत होता है।[१४०]

गायत्रादि पादो मे विकसित ऋग्वेदीय छन्द

गायत्रपाद का छन्द-गायत्री

गायत्री त्रिपाद छन्द है, इसमे तीन गायत्र पाद होते हैं। इसके प्रथम तथा द्वितीय पाद का पहला अर्धर्च और तृतीय पाद का दूसरा अर्धर्च माना जाता है। इसमे ऋग्वेद का लगभग चतुर्थांश निबद्ध है परन्तु लौकिक सस्कृत मे इसका पूर्णतया लोप हो गया। इसके ३२ भेद-प्रभेद है, जो न्यूनाधिक अक्षरो के प्रयोग से विकसित है। इसके अवान्तर भेदो में एक पाद से पाच पाद तक मिलते है, जिनमे चतुरक्षरपाद से एकादशाक्षर पाद तक प्रयुक्त है। इस छन्द मे आठ अक्षर से ३३ अक्षर तक मिलते हैं।

गायत्र + जागत पाद का छन्द-उष्णिक्

उष्णिक् त्रिपाद छन्द है। यह गायत्र और जागत पाद का मिश्रित रूप है। इसमें अधिकतर गायत्रपाद मिलते है। इसके २६ भेद-प्रभेद है, जिनमे २७ से २९ तक वर्ण है, जो ३ से ४ पादो मे पचाक्षरपाद से द्वादशाक्षर पाद तक प्रयुक्त है। गायत्रपाद से एकाक्षरन्यून सप्ताक्षरपाद को औष्णिहपाद कहते है।

गायत्र + जागत पाद का छन्द-अनुष्टुप्

अनुष्टुप् त्रिपाद छन्द है। यह गायत्र और जागत पादो के मिश्रण से विकसित है। इसमे गायत्र पादो की अधिकता है। इसके २३ भेद-प्रभेद है, जिनमे २७ से ३३ तक वर्ण मिलते है, जो ३ से ४ पादो मे पचाक्षरपाद से त्रयोदशाक्षरपाद तक प्रयुक्त है। इसका चतुष्पाद रूप लौकिक सस्कृत में सर्वाधिक प्रसिद्ध है, जिसमे ४ गायत्रपाद होते है। इसमे प्रथम तथा द्वितीय पाद का प्रथम अर्धर्च और तृतीय तथा चतुर्थ पाद का द्वितीय अर्धर्च बनता है।[१४१] ऋग्वेद मे अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग गायत्री छन्द की तुलना में लगभग एक तिहाई है। इसके पाद को आनुष्टुभ पाद कहते हैं।

गायत्र + जागत पाद का छन्द-बृहती

बृहती चतुष्पाद छन्द है। यह गायत्र और जागत पादो के योग से निर्मित है। इसमे भी जागत पाद की अपेक्षा गायत्र पाद का आधिक्य है। इसके ३६ भेद-प्रभेद हैं। गायत्र पाद से एकाक्षराधिक इसके नवाक्षरपाद को बार्हतपाद कहते है। इसके भेद महाबृहती मे ३ जागत पाद होते है और शेष भेद

---

१३८ डा० रामगोपाल, वैदिक व्याकरण, भाग-२, पृ० ८०८, ८९२।

१३९ ऋग्वेद १।६४।१५,१।१६६।१५,३।९।९,६।१७।१५,८।१।३४,९।७१।९

१४० कालिदास-रघुवश-१।९५,३।७०,१२।१०४, बुद्धचरित-२।५६,४।१०४,१३।७३
किरातार्जुनीय-१।४६,३।६०,१०।६३,१२।५४। शिशुपालवध-१।७५,३।८२,५।६९।
नैषधीयचरित-१।१४५,६।११३,९।१६०,११।१३०,१३।५६।

१४१ ऋग्वेद १।१०।१-१२ और ५।७।१-९।

चतुष्पाद होते है, जिनमे अष्टाक्षरपाद से द्वादशाक्षरपाद तक का प्रयोग है।

गायत्र + जागत पाद का छन्द-पक्ति

पक्ति चतुष्पाद छन्द है। यह गायत्र और जागत पादो के योग से विकसित है। इस छन्द मे दोनो पादो का योग सम रहता है। इसके ४१ भेद-प्रभेद है, जिनमे १० से ४८ तक वर्ण है, जो २ से ६ पादो मे चतुरक्षरपाद से द्वादशाक्षरपाद तक प्रयुक्त है। ४० वर्णा का पक्ति छन्द तो अनुष्टुप् छन्द का ही विकमित रूप है, जिसके मूल मे गायत्री छन्द है। इसमे पाच गायत्र पाद होते है, जो कि अनुष्टुप् छन्द के चतुष्पादो से एक पाद अधिक है। इसमे प्रथम तथा द्वितीय पाद का प्रथम अर्धर्च और तृतीय तथा चतुर्थ और पचम पाद का द्वितीय अधर्च बनता है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ८० तथा ८२वे सूक्त की सभी ऋचाओ मे जो पक्ति छन्द मिलता है उसमे पचम पाद की शब्दावली सभी ऋचाओ मे समान है। अत पक्ति छन्द अनुष्टुप् का विस्तारमात्र है, जिसमे पचमपाद जोड दिया गया है।[१४२]

इसी प्रकार महापक्ति पक्ति का विस्तृत स्वरूप है, जिसमे षड् गायत्र पाद होते है, जो पक्ति छन्द के पच पादो से भी एक पाद अधिक है। इसमे तीन-तीन पादो का अर्धर्च बनता है। यह छन्द ऋग्वेद की लगभग पचास ऋचाओ मे मिलता है और इसके अन्तिम दो पादो की आवृत्ति सूक्ति की अन्य ऋचाओ मे भी मिलती है, जिससे इसके अनुष्टुप् छन्द से विकसित रूप पर प्रकाश पडता है, जो गायत्रीमूलक है।[१४३] पिगलाचार्य इसे जगतीपक्ति और जयदेव विस्तारपक्ति नाम देते है किन्तु मेरे मत मे इसका नाम विस्तार गायत्री होना चाहिए, क्योकि इसमे गायत्रपादो का विस्तारमात्र है।

वैराज पाद का छन्द-पक्ति

दशाक्षरपाद को वैराज पाद कहते है। जिस छन्द के सभी पाद दश-दश अक्षरो के हो तो उस छन्द को विराट् छन्द कहते है, बाद मे जिसने पक्ति का नाम ग्रहण कर लिया। इसके उदाहरण कम मिलते है। ऋक्प्रातिशाख्य और ऋक्सर्वानुक्रमणी मे यह विराट् पक्ति के नाम से व्यवहृत किया गया है, जो दशाक्षरपादवाला चतुष्पाद छन्द है किन्तु उपनिदानकार दशाक्षरपाद वाले त्रिपाद छन्द को भी विराट्पक्ति कहते है। प्राचीन भारतीय छान्दस परम्परा के अनुसार एक दो अक्षरो की न्यूनता या अधिकता से पाद के लक्षण मे कोई अन्तर नही आता। अत पाश्चात्य विद्वानो के मतानुसार त्रैष्टुभ पाद मे एक दो अक्षर की न्यूनता व्यूह करने पर भी रह जाती है।[१४४] इससे प्रतीत होता है कि वैराजपाद त्रैष्टुभ पाद का ही एक भेद है, जो एकाक्षर की न्यूनता से बना है और पूर्णतया स्वतत्र नही है।[१४५] अब वैराज पाद को पक्ति छन्द मे व्यवहृत होने से पाक्तपाद भी कहा जाता है।

त्रैष्टुभ पाद का छन्द-त्रिष्टुप्

त्रिष्टुप् चतुष्पाद छन्द है। इसमे चार त्रैष्टुभ पाद होते है, जिसके प्रत्येक पाद मे ११-११ अक्षर होते है। इसके दो दो पादो का अर्धर्च बनता है।[१४६] इसके ३३ भेद प्रभेद है। जिनमे ११ से ४६ तक वर्ण है, जो १ से ५ पादो मे अष्टाक्षरपाद से द्वादशाक्षर पाद तक प्रयुक्त है। इसमे त्रिपाद छन्द नही मिलता। ऋग्वेद का सर्वाधिक भाग २।५ इसी मे निबद्ध है।

जागत पाद का छन्द-जगती

जगती चतुष्पाद छन्द है। इसमे चार जागत पाद होते है, जिसके प्रत्येक पाद मे १२,१२ अक्षर होते है। इसके दो-दो पादो का अर्धर्च बनता है।[१४६(क)] इसके २६ भेद-प्रभेद है, जिनमे १२ से ४८ तक

---

१४२ ऋग्वेद १।८०।१-१६।१।८२।१-५।

१४३ ऋग्वेद-१०।१३३।४,१०।१३४।१-६।

१४४ कीथ, वैदिक मीटर, पृ० १३,१४,५०,१७८,२०९,२१५,२२७,२५७।

१४५ डा० रामगोपाल, वैदिक व्याकरण, पृ० ९०५।

१४६ ऋग्वेद-२।१२।१-४। १४६ (क) ऋग्वेद-२।४२।१-३।

वर्ण है, जो एक पाद से आठ पादो मे षडक्षरपाद से द्वादशाक्षर पाद तक प्रयुक्त है। इस छन्द मे त्रिपाद और सप्तपाद भेद का अभाव है। ऋग्वेद मे प्रयोग की दृष्टि से इसका तीसरा स्थान है। इसमे ऋग्वेद के लगभग १७५ सूक्त निबद्ध है, जिनमे लगभग १४० सूक्त जगती छन्द मे और ३५ सूक्तो मे जागत तथा त्रैष्टुभ पादो का मिश्रण है। इनमे ४० सूक्त ऐसे है, जिनके अन्तिम मन्त्र त्रिष्टुप् छन्द मे प्राप्त होते है। पाश्चात्य विद्वानो के मतानुसार जागतपाद त्रैष्टुभ पाद का ही एक भेद मात्र है, जिसमे एकाक्षर अधिक होता है।[१४७]

जागत + गायत्र पाद का छन्द-अतिजगती

अतिजगती पचपाद छन्द है। यह जागत और गायत्र पादो के मिश्रण से विकसित है। इसमे जागत पादो का आधिक्य रहता है। इसके ७ भेद-प्रभेद है, जिनमे अष्टाक्षर पाद से त्रयोदशाक्षरपाद तक प्रयुक्त है। इसमे ५२ अक्षर होते है।

गायत्र पाद का छन्द-शक्वरी

शक्वरी सप्तपाद छन्द है। इसमे सात गायत्र पाद होते है, अत यह गायत्री का विकसित और महापक्ति का विस्तृत रूप है। इसमे प्रथम दो पादों का प्रथम अर्धर्च और अन्तिम पाच पादो का द्वितीय अर्धर्च बनता है।[१४८] आर्नोल्ड तथा मैक्डानल प्रभृति पाश्चात्य विद्वानो के मतानुसार शक्वरी छन्द त्रिष्टुप् छन्द का विकसित रूप है, उनके मत से इसमे पाच त्रैष्टुभ पाद होते है।[१४९] अक्षर गणना के अनुसार एक अक्षर से छन्द के लक्षण मे कोई अन्तर नही आता। इस कारण सात गायत्रपादों से मन्त्र में अक्षर होते है ५६, और पाच त्रैष्टुभ पादो से ५५ किन्तु मन्त्र मे लघु गुरु वर्णों का जो क्रम मिलता है उसके अनुसार त्रैष्टुभपाद माने जा सकते है, जिससे छन्द के प्रथम दो पादो का प्रथम अर्धर्च और अन्तिम तीन पादो का द्वितीय अर्धर्च बनेगा, परन्तु ऋग्वेद के मन्त्र अक्षरगणना के आधार पर बने हैं, वर्णो के गुरु लघु क्रम पर नही। अत शक्वरी छन्द मे मूलत गायत्र पाद ही है।[१५०] वेदों में इसके ६ भेद मिलते है।

गायत्र + जागत पाद का छन्द-अतिशक्वरी

अतिशक्वरी सप्तपाद छन्द है। इसमें एक जागतपाद और छ गायत्र पाद होते है किन्तु आचार्य शौनक और वेकट माधव ने इसके पाद विधान मे पाच पाद माने हैं, जिनमे दो षोडशाक्षरपाद, एक जागत और दो गायत्र पादों का विधान है। इस पादविधान मे षोडशाक्षरपाद गायत्र पाद के ही द्विगुणित रूप है, अत छन्द में सात पाद होते हैं। यह ६० अक्षरो का छन्द है। इसके चार भेद मिलते हैं। कही-कही इसमे त्रैष्टुभ पाद भी प्राप्त होता है।

गायत्र पाद का छन्द-अष्टि

अष्टि अष्टपाद छन्द है। इसमे अष्ट गायत्र पाद होते है किन्तु शौनक ने पाद-विधान के अनुसार इसे पचपाद माना है, जिसमे इसके तीन पाद षोडशाक्षर और दो पाद अष्टाक्षर प्रदर्शित किये हैं।[१५१] षोडशाक्षरपाद तो अष्टाक्षर गायत्र पाद के ही द्विगुणित रूप हैं, अत छन्द में अष्ट गायत्रपाद होते हैं। यह ६४ अक्षरो का छन्द है। इसके पाच भेद मिलते है। कही-कही इसमे त्रैष्टुभपाद भी प्राप्त होता है।

---

१४७ वैदिक व्याकरण, पृ० ९०६।

१४८ ऋग्वेद-१०।१३३।१-३।

१४९ वैदिक मीटर, पृ० २४७।

१५० वैदिक व्याकरण, पृ० ९०४।

१५१ वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० १७५

गायत्र + जागत पाद का छन्द-अत्यष्टि

अत्यष्टि सप्तपाद छन्द है। यह गायत्र और जागत पादो से मिश्रित छन्द है। कही-कही इसमे वैराज और त्रैष्टुभ पाद भी प्राप्त होता है। ऋग्वेद मे इसके पाच भेद मिलते है। इसमे ६८ वर्ण होते है।

गायत्र + जागत पाद का छन्द-धृति

धृति सप्तपाद छन्द है। यह गायत्र और जागत पादो के योग से बनता है। इसमे ७२ वर्ण होते है। इसके यजुर्वेद मे ५ भेद मिलते है।

गायत्र + जागत पाद का छन्द-अतिधृति

अतिधृति अष्टपाद छन्द है। इसमे गायत्र और जागत पादो का योग है। इसमे ७६ वर्ण होते है। यजुर्वेद मे इसके पाच भेद मिलते है।

गायत्र, वैराज, त्रैष्टुभ तथा जागत पाद से विरचित और उनके परस्पर योग से विकसित ऋग्वेदीय छन्द एक पाद से अष्टपाद तक मिलते है। पतञ्जलि-शौनक-पिगलादि ने जिनके लक्षण किये, उनका विवरण निम्नाकित है, इसमे प्रथम छन्दोनाम कोष्ठक मे पाद-विभाग और उसके बाद उसी ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है, जिसमे उस छन्द का लक्षण प्राप्त होता है—

गायत्रपादीय छन्द

१ गायत्री (एक पाद ८) वर्ण-८ उपनिदान सूत्र।

२ गायत्री (द्विपदा ८ + ८) वर्ण-१६ निदानसूत्र, उपनिदानसूत्र।

३ गायत्री (त्रिपाद ८ + ८ + ८) वर्ण-२४, निदान सूत्र, ऋक्प्रातिशाख्य, छन्द सूत्र, ऋक्सर्वानुक्रमणी, उपनिदान सूत्र।

४ अनुष्टुप् (चतुष्पाद ८ + ८ + ८ + ८) वर्ण-३२, निदान सूत्र, ऋक्प्रातिशाख्य, छन्द सूत्र, ऋक्सर्वानुक्रमणी, उपनिदान सूत्र।

५ पथ्यापक्ति (पचपाद ८ + ८ + ८ + ८ + ८) वर्ण-४०, निदान सूत्र, ऋक्प्रातिशाख्य, छन्द सूत्र, ऋक्सर्वानुक्रमणी, उपनिदान सूत्र।

६ जगतीपक्ति (षट्पाद ८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८) वर्ण-४८, पिगल सूत्र, विस्तारपक्ति, जयदेवच्छन्द।

महापक्तिजगती (ऋक्प्राति०, ऋवसर्वा०, वेकट मा० छन्दो) षट्पदाजगती (पि० सू०)।

७ शक्वरी (सप्तपाद ८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८) वर्ण-५६, पादविधान, वे० मा० छन्दोऽनुक्रमणी।

८ अष्टि (अष्टपाद ८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८) वर्ण-६४,[१५२]।

वैराजपादीय छन्द

१ विराड् गायत्री (द्विपाद-१० + १०) वर्ण-२०, उपनिदानसूत्र।

२ विराडनुष्टुप् (त्रिपाद-१० + १० + १०) वर्ण-३०, ऋक्प्रातिशाख्य, ऋक्सर्वानुक्रमणी, वेकट माधव छन्दोऽनुक्रमणी।

३ विराट्पक्ति (चतुष्पाद-१० + १० + १० + १०) वर्ण-४०, ऋक्प्रातिशाख्य, ऋक्सर्वानुक्रमणी, उन निदान सूत्र।

---

१५२ शौनककृत पादविधान और वेकटमाधवकृत छन्दोनुक्रमणी में उसके ५ पाद (१६ + १६ + १६ + ८ + ८) बताये गये है। जिसमे षोडशाक्षरपाद गायत्र पाद के ही द्विगुणित रूप हैं। अत इसमे अष्ट गायत्र पाद ही होते है, जिससे इसका नाम अष्टि है। वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० १७५

त्रैष्टुभपादीय छन्द

१ एकपदात्रिष्टुप् (एकपाद-११) वर्ण-११, उपनिदानसूत्र, वेकट माधव छन्दोऽनुक्रमणी।

२ द्विपदात्रिष्टुप् (द्विपाद-११ + ११) वर्ण-२२, उ० नि० सू०, वे० माधव छन्दोऽनुक्रमणी।

३ त्रिपाद्विराड्गायत्री (त्रिपाद-११ + ११ + ११) वर्ण-३३, पि० सू०। विराडनुष्टुप् (ऋक्प्रा०)

४ त्रिष्टुप् (चतुष्पाद ११ + ११ + ११ + ११) वर्ण-४४, ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा०, नि० सू०।

जागतपादीय छन्द

१ एकपदा जगती (एकपाद-१२) वर्ण-१२, निदान सूत्र, उप निदान सूत्र।

२ द्विपदा जगती (द्विपाद-१२ + १२) वर्ण-२४, नि० सू०, उ० नि० सू०। द्विपदागायत्री (ऋक्प्रातिशाख्य)

३ महाबृहती, सतोबृहती (त्रिपाद-१२ + १२ + १२) ३६ वर्ण, पि० सू०, उ० नि० सू०। ऊर्ध्वबृहती (ऋक्सर्वानुक्रमणी) विराडूर्ध्वबृहती (ऋक्प्राति०, वे० मा० छदोऽनुक्रमणी)।

४ जगती (चतुष्पाद-१२ + १२ + १२ + १२) वर्ण-४८, ऋक्प्रातिशाख्य ऋक्सर्वानुक्रमणी, विधान सूत्र, वेकट माधव छदोऽनुक्रमणी।

गायत्र वैराजपाद मिश्रित छन्द

१ विस्तारबृहती (८ + १० + १० + ८) वर्ण-३६, ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा०, वे० मा० छन्दो०।

२ बृहती (१० + १० + ८ + ८) वर्ण-३६, पिंगलकृत छन्द सूत्र, जयदेवकृत छन्द।

३ पक्त्युत्तरा त्रिष्टुप्, विराट्पूर्वात्रिष्टुप् (१० + १० + ८ + ८ + ८) वर्ण-४४, ऋक्प्रातिशाख्य, ऋक्सर्वानुक्रमणी, जयदेवछन्द।

४ ज्योतिष्मतीजगती (१० + १० + १० + १० + ८) वर्ण-४८, निदान सूत्र।[१५३]

गायत्र-त्रैष्टभ पादमिश्रित छन्द

१ उपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्	(८ + ८ + ८ + ८ + ११)	वर्ण-४३, पिंगल सूत्र।
२ मध्यज्योतिस्त्रिष्टुप्	(८ + ८ + ११ + ८ + ८)	वर्ण-४३, पिंगल सूत्र।
३ पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्	(११ + ८ + ८ + ८ + ८)	वर्ण-४३, पिंगल सूत्र।
४ पुरस्ताज्ज्योतितिस्त्रिष्टुप्	(८ + ११ + ११ + ११)	वर्ण-४१, जयदेवच्छन्द।
५ उपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्	(११ + ११ + ११ + ८)	वर्ण-४१, जयदेवच्छन्द।
विराड्रूपात्रिष्टुप्		(ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा, वे० मा० छन्दो०)
६ मध्येज्योतिस्त्रिष्टुप्	(११ + ८ + ११ + ११)	वर्ण-४१, जयदेवच्छन्द।
७ मध्येज्योतिस्त्रिष्टुप्	(११ + ११ + ८ + ११)	वर्ण-४१, जयदेवच्छन्द।

गायत्र-जागतपादमिश्रित छन्द

१ परोष्णिक् (८ + ८ + १२) वर्ण-२८, पि० सू०, उ० नि० सू०, जयदेवच्छन्द।
उष्णिक् (ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा, नि० सू०, वे० मा०-छन्दो०)।

२ ककुबुष्णिक् (८ + १२ + ८) वर्ण-२८, नि० सू०, ऋक्प्राति०, पि० सू०, ऋक्सर्वा, उ० नि० सू०।

३ पुर उष्णिक् (१२ + ८ + ८) वर्ण-२८, नि० सू०, ऋक्प्राति०, पि० सू०, ऋक्सर्वा, उ० नि० सू०।

---

१५३ इस छन्द में गायत्र जागत पाद भी हो सकते हैं।

४ द्विपाद् विराड्गायत्री (१२ + ८) वर्ण-२०, पि० सू०, जयदेव-सू० । द्विपदा विष्टारपक्ति ताण्डी के मत मे, और विराट्पक्ति (उ० नि० सू०) द्विपदापक्ति (नि० सू०)

५ पुरस्ताज्ज्योतिरनुष्टुप् (८ + १२ + १२) वर्ण-३२, नि० सू०, उ० नि० सू० । त्रिपादनुष्टुप् (ऋक्प्रातिशाख्य)

६ पिपीलकमध्यानुष्टुप् (१२ + ८ + १२) वर्ण-३२, नि० सू०, ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा०, वें० मा० छदो० त्रिपादनुष्टुप् (पि० सू०, जयदेव०) मध्येज्योतिरनुष्टुप् (नि० सू०, नि० सू०)।

७ उपरिष्टाज्ज्योतिरनुष्टुप् (१२ + १२ + ८) वर्ण-३२, नि० सू०, उ० नि० सू० । त्रिपादनुष्टुप् (पि० सू०, जयदेव०) कृतिरनुष्टुप् (ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा०, वें० मा० छ०)।

८ उपरिष्टाद्बृहती (८ + ८ + ८ + १२) वर्ण-३६ ऋक्० प्राति०, ऋक्सर्वा०, वें० मा० छदो

९ पुरस्ताद्बृहती (१२ + ८ + ८ + ८) वर्ण-३६ ऋक्० प्राति०, ऋक्सर्वा०, वें० मा० छदो

१० उरोबृहती, न्यकुसारिणी बृहती, स्कन्धोग्रीवी बृहती (८ + १२ + ८ + ८) वर्ण-३६, नि० सू० मे स्कन्धोग्रीवी नाम छोडकर शेष नाम सब में ।

११ पथ्याबृहती (८ + ८ + १२ + ८) वर्ण-३६, पि० सू०, जयदेव०, वे० मा० छन्दो । पथ्या स्कन्धोग्रीवी (नि० सू०) बृहती (ऋक्सर्वा०) । पथ्या, सिद्धा (उ० नि० सू०)।

१२ विपरीतापक्ति (८ + १२ + ८ + १२) वर्ण-४० नि० सू० ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा० । सत पक्ति (पि० सू० सत पक्ति, सिद्धापक्ति, शिष्टारपक्ति (उ० नि० सू०)

१३ सतोबृहती पक्ति (१२ + ८ + १२ + ८) वर्ण-४०, ऋक्प्राति० ऋक्सर्वा० । सतोबृहती (वे० मा० छन्दो०) सिद्धाविष्टारपक्ति (नि० सू०)। सत पक्ति (पि० सू०, उ० नि० सू०)

१४ आस्तारपक्ति (८ + ८ + १२ + १२) वर्ण-४०, नि० सू०, ऋक्प्राति०, ऋकसर्वा, पि० सू०

१५ प्रस्तारपक्ति (१२ + १२ + ८ + ८) वर्ण-४०, नि० सू०, ऋक्प्राति०, ऋकसर्वा, पिं० सू०

१६ सस्तारपक्ति (१२ + ८ + ८ + १२) वर्ण-४०, नि० सू०, ऋक्प्राति०, ऋकसर्वा, पिं० सू०

१७ विस्टारपक्ति (८ + १२ + १२ + ८) वर्ण-४०, नि० सू०, ऋक्प्राति०, ऋकसर्वा, पि० सू०

१८ पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् (८ + १२ + १२ + १२) वर्ण-४४, ऋक्प्राति०, ऋक्सव्रा०, वे० मा० छदा० । पुरस्ताज्ज्योति जगती (जयदेव सू०)।

१९ उपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् (१२ + १२ + १२ + ८) वर्ण-४४, ऋक्प्राति०, ऋक्सव्रा०, वे० मा० छदो० । पुरस्ताज्ज्योति जगती (जयदेव सू०)।

२० मध्येज्योतिस्त्रिष्टुप् (१२ + ८ + १२ + १२) वर्ण-४४, मध्येज्योतिर्जगती (जयदेव०)

२१ मध्येज्योतिस्त्रिष्टुप् (१२ + १२ + ८ + १२) वर्ण-४४, मध्येज्योतिर्जगती (जयदेव०)

२२ यवमध्यात्रिष्टुप् (८ + ८ + १२ + ८ + ८) वर्ण-४४, मध्येज्योतिजगती (पि० सू०, उ० नि०)

२३ महाबृहती त्रिष्टुप् (१२ + ८ + ८ + ८ + ८) वर्ण-४४ ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा, वें० मा० छन्दो । पचपदातित्रष्टुप् (नि० सू०) पुरुताज्जयोतिर्जगती (पि० सू०, उ० नि० सू)।

२४ उपरिष्टाज्ज्योतिर्जगती (८+८+८+८+१२) वर्ण ४४, पि० सू०, उ० नि० सू० ।

२५ महासतोबृहती (जगती) (८+८+८+१२+१२) वर्ण-४८ ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा, वे० मा० छदो०[१५४] पचपदाजगती (नि० सू०)

---

१५४ इस छद की पादाक्षर सख्या में क्रम अभिप्रेत नहीं (वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० १६७ ।)

२६ ज्योतिष्मतीजगती (८+८+१२+१२+८) वर्ण-४८, निदानसूत्र[१५५] ।

२७ अतिजगती (१२+१२+१२+८+८) वर्ण-५२, पादविधान, वें० मा० छन्दोनुक्रमणी ।

२८ अतिशक्वरी (८+८+८+८+१२+८+८) वर्ण-६०[१५६] ।

२९ अत्यष्टि (१२+१२+८+८+८+१२+८) वर्ण-६८, पादविधान, वें० मा० छन्दो ।

३० धृति (१२+१२+८+८+८+८+८+८) वर्ण-७२[१५७] ।

३१ अतिधृति (१२+१२+८+८+८+१२+८+८) वर्ण ७६, पादविधान ।

जागतवैराजपाद मिश्रित छन्द

१ आर्षपक्ति (१२+१२+१०+१०) वर्ण-४४, जयदेव छन्द ।

२ अभिसारिणी त्रिष्टुप् (१०+१०+१२+१२) वर्ण-४४, ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा, वे० मा० ।

जागत त्रैष्टुभपाद मिश्रित छन्द

१ जागती त्रिष्टुप् (१२ + १२ + ११ + ११) वर्ण-४६, ऋक्प्रातिशाख्य, ऋक्सर्वानुक्रमणी, वेकट माधव छन्दोऽनुक्रमणी ।

उपजगती त्रिष्टुप् (१२ + १२ + ११ + ११) वर्ण-४६, ऋक्प्रातिशाख्य, ऋक्सर्वानुक्रमणी, वें० मा० छन्दो० ।

औष्णिहपादीय छन्द[१५८]

१ पादनिचृद्गायत्री (७ + ७ + ७) वर्ण-२१, ऋक्प्रातिशाख्य, पिगल सूत्र, ऋक्सर्वानुक्रमणी, उप निदान सूत्र, वेकटमाधव छदोऽनुक्रमणी ।

२ चतुष्पाद उष्णिक् (७ + ७ + ७ + ७) वर्ण-२८, निदान सूत्र, पि० सू०, ऋक्सर्वा०, उ० नि० सू०, जयदेवच्छन्द,

पादैरनुष्टुप् (७ + ७ + ७ + ७ = वर्ण २८) ऋक्प्रातिशाख्य ।

---

१५५ छन्दोमीमासा, पृ० १६८ में इस छन्द को पादाक्षर सख्या मे (अन्त्यपाद ८) और पूर्ण सख्या मे (४० + ८) अकित किया है, जिसके अनुसार इसमे गायत्रजागतपाद मिश्रण के अतिरिक्त वैराज गायत्रपाद (१० + १० + १० + १० + ८) भी हो सकते है ।

१५६ पादविधान और वे० मा० छन्दोनुक्रमणी में इस छद के पाच पाद माने गये है (१६ + १६ + १२ + ८ + ८), जिनमे षोडशाक्षरपाद गायत्रपाद के ही द्विगुणित रूप है (वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० १७३) । अत इसमे सात पाद होते है ।

१५७ पादविधान और वेकट माधव छन्दोनुक्रमणी मे इस छन्द के सातपाद माने गये हे (१२ + १२ + ८ + ८ + ८ + १६ + ८) जिनमे षोडशाक्षरपाद गायत्रपाद का ही द्विगुणित रूप है (वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० १७७) अत इसमें आठ पाद होते हैं ।

१५८ अष्टाक्षर गायत्रपाद से एकाक्षर न्यून सप्ताक्षर ओष्णिहपाद गायत्रपाद से निकला है (गायत्र्येवोष्णिगभवत्) वेकट माधव छन्दोऽनुक्रमणी-६ ।१ ।७ ।

बार्हतपादीय छन्द[१५९]

१ स्वराड्गायत्री (९ + ९) वर्ण-१८, उप निदान सूत्र ।

२ बृहती (९ + ९ + ९ + ९) वर्ण-३६, निदान सूत्र, ऋक्प्रातिशाख्य, पिगल सूत्र, ऋक्सर्वानुक्रमणी, उप निदान सूत्र, जयदेव छन्द ।

ओष्णिह वैराजपाद मिश्रित छन्द

१ यवमध्या गायत्री (७ + १० + ७) वर्ण-२४, ऋक्प्राति०, पि० सू०, ऋक्सर्वा, वे० मा० ।

बार्हत वैराज त्रैष्टुभपाद मिश्रित छन्द

१ विराट्स्थाना त्रिष्टुप् (९ + ९ + १० + ११) वर्ण-३९, ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा०, वे० मा० ।

२ विराट्स्थानात्रिष्टुप् (१० + १० + ९ + ११) वर्ण-४०, ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा०, वे० मा० ।

३ विराट्स्थानात्रिष्टुप् (९ + १० + ११ + ११) वर्ण-४१, ऋक्प्रातिशाख्य ।

बार्हत गायत्र त्रैष्टुभ पाद मिश्रित छन्द

१ विषमपदाबृहती (९ + ८ + ११ + ८) वर्ण-३६, ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा०, वे० मा० छदो ।

बार्हत जागत पाद मिश्रित छन्द

१ काविराडनुष्टुप् (९ + १२ + ९) चर्ण-३०, ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा०, वे० मा० छन्दो ।

इतरपाद—इसके अतिरिक्त छन्दो मे ३,४,५,६ और १३ अक्षरो के पाद भी प्राप्त होते है जिन्हें त्र्यक्षरपाद, चतुरक्षरपाद, पचाक्षरपाद, षडक्षरपाद और त्रयोदशाक्षरपाद कहते है। त्र्यक्षरपाद से नवाक्षरपाद तक के समस्त पाद गायत्रपाद से अक्षरो की न्यूनता तथा अधिकता के क्रम से विकसित है। त्रयोदशाक्षरपाद एकाक्षर के आधिक्य से जागतपाद का ही विकसित रूप है।

गायत्रपाद की एक विशेषता है कि इसमें चार-चार अक्षरो के दो समान भाग होते है—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध[१५९अ] (वैदिक व्याकरण, पृ० ८९९)। अत चतुरक्षरपाद उसका एक भाग है और त्र्यक्षरपाद, उसमे एक अक्षर की न्यूनता से तथा पचाक्षर एव षडक्षर क्रमश उसमे एक और दो अक्षरों की वृद्धि से बने हैं। सप्ताक्षरपाद जिसे औष्णिक पाद कहा जाता है, वह गायत्रपाद के अष्टाक्षरो मे से एकाक्षर न्यूनता से निर्मित है तथा नवाक्षरबार्हतपाद एकाक्षरवृद्धि से। इस प्रकार तो गायत्र पाद मे दो अक्षरों की वृद्धि से वैराजपाद और गायत्रपाद के १-१ ।२ भाग अर्थात् ४,४,४ अक्षरो के तीन समान भागो के मेल से जागतपाद तथा उसमे भी एकाक्षरन्यूनता से त्रैष्टुभ पाद विकसित माने जा सकते है। अत इतरपाद निर्माण में सर्वाधिक गायत्रपाद का ही योग है। ताण्ड्य महाब्राह्मण के अनुसार गायत्री ही प्रमुख छन्द है, जो विविधरूपों मे एक से अनेक हो जाता है।[१५९ब]

पञ्चाक्षरपादीय छन्द

१ द्विपदाक्षरपक्ति (५ + ५) वर्ण-१०, निदान सूत्र। अल्पश पक्ति (पिगल सूत्र) अक्षरपक्ति (उप निदान सूत्र)।

२ चतुष्पदा अक्षरपक्ति (५ + ५ + ५ + ५) वर्ण-२०, निदान सूत्र। अक्षरपक्ति (पिगल सूत्र) उप

---

१५९ गायत्रपाद से एकाक्षराधिक नवाक्षर बार्हत पाद गायत्रपाद का ही विकसित रूप है (अनुष्टबेव बृहती, वें० मा० छन्दो० ६ ।१ ।७) अनुष्टुप् छन्द मे ४ गायत्र पाद होते हैं। अत अनुष्टुप् गायत्र पादीय छन्द है।

१५९अ डा० रामगोपाल, वैदिक व्याकरण, भाग-२, पृ० ८९९ ।

१५९ब गायत्री प्रमुख छन्द। ताण्ड्यमहाब्राह्मण-१४ ।११ ।१४, डा० फतेहसिंह, वैदिकदर्शन-पृ० १८४ ।

निदान सूत्र ।

३ पदपक्ति (५ + ५ + ५ + ५ + ५) वर्ण-२५, निदान सूत्र, पिगल सूत्र, जयदेवच्छन्द । पदपक्ति गायत्री (ऋक्प्रातिशाख्य) ।

षडक्षरपादीय छन्द

१ चतुष्पाद् गायत्री (६ + ६ + ६ + ६) वर्ण-२४, नि० सू०, ऋक्प्राति०, पि० सू०, ऋक्सर्वा० ।

२ विष्टारपक्ति जगती, प्रवृद्धपदाजगती (६ + ६ + ६ + ६ + ६ + ६ + ६ + ६) वर्ण-४८, निदान सूत्र ।

चतुरक्षरपाद से त्रयोदशाक्षरपादपर्यन्त मिश्रित छन्द

१ पदपक्ति गायत्री (४ + ५ + ५ + ६ + ५) वर्ण-२५, ऋक्प्रातिशाख्य, ऋक्सर्वानुक्रमणी, वेंकट माधव छन्दोऽनुक्रमणी[१६०] ।

२ भुरिक्पदपक्तिगायत्री (५ + ५ + ५ + ५ + ६) वर्ण-२६, ऋक्प्राति०, वे० मा० छन्दो० ।

३ ह्रसीयसीगायत्री (६ + ६ + ७) वर्ण-१९, ऋक्सर्वानुक्रमणी ।

४ अतिनिचृद्गायत्री (७ + ६ + ७) वर्ण-२०, ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा०, वें० मा० छन्दो० ।

५ अतिपादनिचृद् गायत्री (६ + ८ + ७) वर्ण-२१, पिगल सूत्र ।

६ वर्धमानागायत्री (६ + ७ + ८) वर्ण-२१, ऋक्प्राति०, पि० सू०, ऋक्सर्वा, उ० नि० सू० ।

७ प्रतिष्ठागायत्री (८ + ७ + ६) वर्ण-२१, पि० सू०, ऋक्सर्वा, उनि० नि० सू०, वे० मा० छन्दो० ।

८ वर्धमानागायत्री (८ + ६ + ८) वर्ण-२२, ऋक्प्रातिशाख्य (एकेषा मते) ।

९ वाराही गायत्री (६ + ९ + ९) वर्ण-२४, पिगल सूत्र ।

१० नागी गायत्री (९ + ९ + ६) वर्ण, २४, पिगल सूत्र ।

११ पिपीलकमध्यागायत्री (९ + ६ + ९) वर्ण-२४, पिगल सूत्र ।[१६१]

१२ अणिष्ठमध्या पिपीलकमध्या गायत्री (८ + ३ + ८) वर्ण-१९, पिंगल सूत्र ।

१३ उष्णिग्गर्भागायत्री (६ + ७ + ११) वर्ण-२४, ऋक्प्राति०, ऋक्सर्वा, वे० माधव छदो ।

१४ विपरीता यवमध्यागायत्री (३ + ८ + ३) वर्ण-१४, पिगल सूत्र ।

१५ भुरिग्गायत्री (८ + १० + ७ +) वर्ण-२५, ऋक्प्रातिशाख्य, वें० मा० छदोऽनुक्रमणी ।

१६ ककुम्मतीगायत्री (६ + ५ + ५ + ५ + ५) वर्ण-२५, पिगल सूत्र ।

१७ तनुशिराउष्णिक् (११ + ११ + ६) वर्ण-२८, ऋक्प्राति०, तनुशीर्षोष्णिक्-वे० मा० छन्दो० ।

१८ पिपीलकमध्याउष्णिक् (११ + ६ + ११) वर्ण-२८, ऋक्प्रातिशाख्य, ऋक्सर्वानुक्रमणी, वेंकट माधव छदोनुक्रमणी ।

१९ शकुमती उष्णिक्-(५ + ८ + ८ + ८) वर्ण-२९, पि० सू०, उ० नि० सू० । अनुष्टब्गर्भाउष्णिक् (ऋकप्राति०, ऋकसर्वा० वें० मा० छदो०) ।

२० नष्टरूपानुष्टुप् (९ + १० + १३) वर्ण-३२, ऋक्प्राति०, वें० मा० छदो । नष्टरूपा उष्णक् (ऋकसर्वानुक्रमणी) ।

---

१६० इस छन्द में चतुरक्षरपाद कही भी हो सकता है, जैसे-५ + ४ + ५ + ५ + ६ अथवा ५ + ५ + ४ + ५ + ६ अथवा ५ + ५ + ५ + ४ + ६ (वैदिक छदोमीमासा, पृ० १३०) ।

१६१ पिगल के मत मे पिपीलकमध्या, यवमध्या, ककुम्मती और शकुमती छदों के सामान्य विशेषण हैं, जो अनेक प्रकार के हैं (वैदिक छदोमीमासा, पृ० १२९) ।

२१ महापदपक्ति अनुष्टुप् (५+५+५+५+५+६) वर्ण-३१, ऋक्प्रातिशाख्य, ऋक्सर्वानुक्रमणी, वेकट माधव छदोनुक्रमणी।

२२ पदपक्ति (४+६+५+५+५) वर्ण-२५, पि० सू० नि० सू०, जयदेवछन्द। गायत्रीभेद (ऋक्प्रातिशाख्य)।

२३ महापक्तिजगती (८+८+७+६+१०+९) वर्ण-४८, ऋक्प्रातिशाख्य, ऋक्सर्वानुक्रमणी, वेकट माधव छन्दोनुक्रमणी।

ऋग्वेदीयछन्दो का सामूहिक विकास

प्रगाथ—ऐसी ऋचाओ का समूह, जिनके छन्द मिश्रित पादो के बने होते है, प्रगाथ कहलाता है। प्रगाथ शब्द के विभिन्न व्याख्यान मिलते है। छन्द से छन्द के मेल को प्रगाथ कहते हैं।[१६२] प्रकर्षयुक्त गान को भी प्रगाथ कहा जाता है।[१६३] जहा दो ऋचाये प्रगथन से तीन बनायी जाती हैं, उसे प्रगथन अथवा प्रकर्षगान के कारण प्रगाथ कहते हैं।[१६४] इसमे सन्देह नही कि प्रगाथ शब्द का आधार प्र-उपसर्गपूर्वक गै धातु से प्रकर्षगान है। किन्तु प्रगथन से इसका अर्थ निकालना केवल खीचातानी है, तथापि कुछ विद्वानो ने प्र-उपसर्गपूर्वक ग्रन्थ धातु से इसकी व्युत्पति दिखाई है[१६५] किन्तु वास्तविक निष्पत्ति प्र + गै से है, जिसका अर्थ प्रकर्ष गान होता है। ऋग्वेद मे २५० के लगभग प्रगाथ है। ऋग्वेद का अष्टम मण्डल प्रगाथो के लिए प्रसिद्ध है। शाखायन गृह्य सूत्र तथा आश्वलायन गृह्य सूत्र मे प्रगाथो का विवरण मिलता है। निदान सूत्र मे केवल तीन प्रगाथो का ही उल्लेख किया गया है, (१) बार्हत प्रगाथ, (२) काकुभ प्रगाथ और (३) आनुष्टुभ प्रगाथ। ऋक्प्रातिशाख्य (१८।१-३१) मे २० प्रगाथो का वर्णन प्राप्त होता है, जिनके उदाहरण ऋग्वेद मे मिलते है। उनका विवरण इस प्रकार है—

(१) बार्हत (२) काकुभ (३) आनुष्टुभ (४) महाबार्हत (५) विपरीतान्त (६) औष्णिह (७) गायत्रबार्हत (८) गायत्रकाकुभ (९) पाक्तकाकुभ (१०) अनुष्टुप्पूर्वजगत्यन्त (११) द्विपदापूर्वबृहत्युत्तर (१२) काकुभबार्हत (१३) आनुष्टुभौष्णिह (१४) बार्हतानुष्टुभ (१५) आनुष्टुभपाक्त (१६) काकुभत्रैष्टुभ (१७) आनुष्टुभत्रैष्टुभ (१८) बार्हतत्रैष्टुभ (१९) त्रैष्टुभजागत-जगत्युत्तरत्रैष्टुभ (२०) त्रिष्टुबुत्तर जागत-जागतत्रिष्टुबुत्तर। बार्हतप्रगाथ के भेदो में बार्हतजागत, अतिजगत्युत्तरबार्हत और यवमध्योत्तरबार्हत का भी उल्लेख मिलता है।[१६६]

कात्यायन ने ऋक्सर्वानुक्रमणी मे पाच प्रगाथो का उल्लेख किया है—(१) बार्हत (२) काकुभ (३) महाबार्हत (४) विपरीतोत्तर और (५) आनुष्टुभ। वेकटमाधव ने भी छन्दोनुक्रमणी मे जिन पाच प्रगाथों का सोदाहरण निर्देश किया है, उनके नाम है—(१) बार्हत (२) काकुभ (३) महाबृहतीमुख (४)

---

१६२ प्रगाथ्यते सम्मेल्यते छन्दसा छन्द इति प्रगाथ। षड्‌गुरु शिष्यकृत ऋक्सर्वानुक्रमणी व्याख्या।

१६३ प्रकर्षेण यत्र गान स प्रगाथ। शबर स्वामी, पूर्वमीमासा-९।२।२७ की व्याख्या।

१६४ यत्र द्वे ऋचौ प्रगथनेन तिस्र क्रियन्ते स प्रगथनात् प्रकर्षगानाद् वा प्रगाथ इत्युच्यते। जयादित्यकृत काशिकावृति। (४।२।५५)।

१६५ प्रग्रथ्यते इति प्रगाथ। ग्रन्थ सन्दर्भे 'इत्यस्मात्कर्मणि घञ्'। पृषूदरादित्वाद्रेफनकारयोर्लोप। अन्ये तु प्रगीयते इति प्रगाथ, गै शब्दे इत्यत उषिकपिगातिभ्य स्थन इत्याहु। यत्र द्वे ऋचावावृत्या तिस्र क्रियन्ते, स प्रगाथ। अष्टाध्यायी-४।२।५५ पर तत्त्वबोधिनी टीका। ऋग्द्वयमाम्नात पादावृत्त्या ऋक्त्रय सम्पद्यत, स सप्रगाध इति छन्दोगसूत्रे बह्वृचसूत्रे प्रसिद्धम्। अष्टाध्यायी-बालमनोरमा-४।२।५५।

१६६ ऋक्प्रातिशाख्य-१८।११-१३।

यवमध्यान्त और (५) आनुष्टुभ। किंतु पिंगलीय छन्द सूत्र मे प्रगाथो का विवरण नही मिलता, क्योकि प्रगाथ विभिन्न छदो के समूह को कहते है, अत छन्दों के विवेचन के बाद पिंगल ने छन्द समूह (प्रगाथ) पर विचार करना उचित न समझा। वैदिक प्रगाथो का स्वरूप हमे लौकिक काव्यान्तर्गत दो, तीन, चार, पाच तथा पाच से अधिक श्लोको के योग के नामो-युग्म, विशेषक, कालापक तथा कुलक आदि के रूप मे देखने को मिलता है।[१६७]

यजुर्वेदीय गद्य-छन्द

शौनकीय मतानुसार तृतीय सप्तक के छन्द ऋग्वेद की शाकल सहिता में प्राप्त नही होते[१६८], और न ऋग्वेदीय अन्य सस्करणो मे ही मिलते है। गायत्री से लेकर अतिधृति पर्यन्त ऋग्वेदीय छन्द आर्च छन्द कहलाते है और कृति से लेकर उत्कृतिपर्यन्त यजुर्वेदीय छन्द याजुष छन्द कहे जाते है। याजुष छन्द आर्च छन्दो से सर्वथा भिन्न है। आर्च छन्द पद्य छन्द कहे जाते हैं और याजुष छन्द गद्यच्छन्द, क्योकि यजुर्वेद गद्य-पद्य मिश्रित है। किन्तु उसमे गद्य का प्राधान्य है। आर्च छन्द नियताक्षर होते है और याजुष छन्द अनियताक्षर, क्योकि यजुर्वेद मे ऐसे भी मन्त्र मिलते हैं, जिनमें अक्षर सख्या १०४ से अधिक २१४ तक मिलती है[१६९] और किसी किसी मन्त्र भाग मे तो अक्षर सख्या ३२२ तक मिलती है,[१७०] जबकि छन्दोलक्षणकारो ने छन्दो को ४ पूर्ण सख्या से १०४ पूर्ण सख्या तक माना है। जिन याजुष मन्त्र भागो मे छन्दो की नियताक्षर सख्या से अधिक सख्या मिलती है, उनमे विभिन्न छन्दो की कल्पना कर ली गयी है,[१७१] और जिन मन्त्र भागो मे अक्षर सख्या न्यून प्रतीत होती है, उनमे व्यूह द्वारा सख्या पूर्ति कर ली जाती है।[१७२] इस प्रकार स्वतत्र याजुष मन्त्र भागों को भी छन्दो की परिधि मे बाध दिया गया है।

आर्च छन्द गायत्रादि पादव्यवस्था से विकसित है किन्तु याजुष छन्दों मे पाद व्यवस्था नही होती-यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है। आर्च छन्दो मे एक पाद से आठ पाद तक प्राप्त होते हैं, जो चतुरक्षरपाद से त्रयोदशाक्षरपाद पर्यन्त ७६ अक्षरो तक नियमित है, किन्तु याजुष छन्द केवल एकपाद ही होते है, जो छन्दोलक्षणकारो द्वारा १०४ अक्षरो तक नियन्त्रित किये गये है, परन्तु बहुत से याजुष मन्त्रों मे[१७३] यह नियमन प्राप्त नही होता और वे मन्त्र उक्त नियमन की सीमा से परे प्राप्त होते हैं,[१७४] जिससे ज्ञात होता

---

१६७ भट्टिकाव्य-४।१०-११, (युग्म), १६-१९ (कालापक), ५।६१-६४ (कालापक), शिशुपालवध-२।१४-२१, (कुलक), ११।३१-३५ (कुलक), १२।६७-७० (कापालक),

१६८ वैदिक छन्दोमीमासा-पृ० १७९।

१६९ यजु० १४।७।

१७० यजु० १०।४।

१७१ यजु-१०।४ के मन्त्रभाग मे ३२२ अक्षर हैं, जिनमे से सूर्यत्वचस से स्वाहा पर्यन्त जगतीछन्द, सूर्यवर्चस से दत्त पर्यन्त स्वराट्पक्तिछन्द, ब्रजक्षित और शविष्ठा भाग वाली पक्तियो का स्वराट् विकृति छन्द, ब्रजक्षितस्थ का स्वराट सकृति छन्द, शक्वरीस्थ से दत्त पर्यन्त भाग का भुरिगाकृति छन्द और मधुमती से दधती पर्यन्त भाग का भुरिक्त्रिष्टुप् छन्द माना गया है। (देखिए-यजुर्वेद-स्वामिदयानन्द, पृ० ३०९-३१०। इस प्रकार इस एक ही मन्त्र भाग मे ६ छन्द प्रकर्षित किये गये हैं।)

१७२ यजु-११।५८ के मन्त्र भाग मे १९८ अक्षर हैं किन्तु यहा पर व्यूह द्वारा १०४ अक्षरों की पूर्ण सख्या वाले दो उत्कृति छन्द माने गये है। यजुर्वेद-पृ० ३६४।

१७३ यजु-११।५८ मे १९८ अक्षर है और १४।७ में २१४ अक्षर है।

१७४ यजु १०।४ में ३२२ अक्षर है।

है कि आर्च मन्त्रो से याजुष मन्त्रो की स्वतत्र सत्ता है ।

वैदिक छन्द अक्षर छन्द है, अत आर्च छन्दो के नाम भी पादव्यवस्था को छोडकर ७६ अक्षरों तक के याजुष मन्त्रो मे भी स्वीकार कर लिये गये है । इसके अतिरिक्त चतुरक्षरवृद्धि से ८० से १०४ अक्षरो तक छान्दसो ने जिन छन्दो को नियमित किया है, वे छन्द याजुष मन्त्रो मे प्राप्त होते हैं, जिनके नाम निदान सूत्र में सिन्धु, सलिल, अम्भ, गगन, अर्णव, आप, समुद्र दिये गये है, किन्तु ऋक्प्रातिशाख्य और छन्दःसूत्र मे क्रमश इनके नाम कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, सकृति, अभिकृति और उत्कृति मिलते है, जो आज तक प्रचलित हैं । पतञ्जल्यादि प्राचीन आचार्यों ने ऋग्वेद मे गायत्री से लेकर अतिधृति तक १४ छन्द माने है, जिनकी पूर्णाक्षर सख्या २४ से चतुरक्षरवृद्धि द्वारा ७६ तक नियमित की गयी है किन्तु इनमे अतिशक्वरी[१७५] और धृतिछन्द[१७६] की अक्षर सख्या ऋग्वेद के मन्त्रों मे तो पूर्ण नही मिलती, जो व्यूह द्वारा पूर्ण की जाती है, क्योकि वैदिक मन्त्रो मे एक या दो अक्षरों की न्यूनता या अधिकता से छन्दो मे अन्तर नही माना जाता ।[१७७] किसी भी छन्द मे एक या दो अक्षरो की न्यूनता अथवा अधिकता को उसी छन्द की परिधि मे माना जाता है, जिससे निचृत्, विराट्, भुरिक्, स्वराट् विशेषण से उसे युक्त कर स्वीकार कर लिया जाता है । उनमे से अतिधृति एक ऐसा छन्द है, जिसकी पूर्ति ऋग्वेद के मन्त्रों मे न तो व्यूह द्वारा हो पाती है और न किसी विशेषणादि से, क्योंकि वह अक्षरो की न्यूनाधिक परिधि में नही आ पाता । ऋक्सर्वानुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद मे अतिधृति छन्द की मन्त्र सख्या मिलती है, उसके अनुसार ऋग्वेद के (१ ।१२७ ।६) मे कात्यायन ने अतिधृति छन्द माना है किन्तु अक्षरगणना से इसमे ६८ अक्षर बैठते है, जबकि पादविधानानुसार और चतुरक्षर वृद्धि से अतिधृति छन्द मे ७६ अक्षर होते हैं । आचार्य शौनक, उव्वट, वेकटमाधव तथा केदारनाथ ने भी अतिधृति छन्द के उदाहरण मे ऋग्वेद की उक्त ऋचा[१७८] ही प्रदर्शित की है, जिसमे क्रमश १२ + १६ + ७ + ८ + ७ + ११ + ७ पादाक्षर सख्या ६८ से अत्यष्टि छन्द होता है । यदि इस ऋचा के तृतीय, पचम, षष्ठ और सप्तम पाद मे भी व्यूह करे, तब भी इसमे ७२ अक्षर ही होगे,[१७९] जो धृति छन्द की वर्णपरिधि है। सम्भवत आचार्य शौनक ने पादविधान के अनुसार अतिधृति छन्द के (१२ + १२ + ८ + ८ + ८ + १२ + ८ + ८) जो अष्टपाद माने है, उनमे से प्रथम तथा चतुर्थ पाद को छोडकर प्रत्येक पाद मे व्यूह द्वारा अक्षरपूर्ति की होगी, जो कि एक खीचातानी सी लगती है, और उन्ही के मत के समर्थन मे कात्यायन-उव्वटादि ने भी उसमें अतिधृति छन्द मान लिया है, वस्तुत सही अक्षरगणना से उसमे अत्यष्टि छन्द है। अत ऋग्वेद मे अतिधृति छन्द नही मिलता, किन्तु इसके उदाहरण यजुर्वेद मे मिलते है ।[१८०] इस कारण इसकी गणना यजुर्वेदीय छन्दो मे होनी चाहिए ।

सर्वप्रथम भरतमुनि ने[१८१] अपने ग्रन्थ भरतनाट्य मे एकाक्षरपाद से पचाक्षरपाद तक पूर्णाक्षर सख्या-४ से २० तक के उक्ता, अत्युक्ता, मध्यमा, प्रतिष्ठा और सुप्रतिष्ठा नामक पाच छन्दों[१८२] की

---

१७५ ऋग्वेद-२ ।२२३ ।३ मे ५८ अक्षर है एव ऋग्वेद-१ ।१३७ ।१ मे ५९ अक्षर हैं, अत विराडति शक्वरी और निचृदति शक्वरी छन्द होगा ।

१७६ ऋग्वेद-१ ।१३३ ।६ मे ७० अक्षर हैं, अत विराड्धृति छन्द होगा ।

१७७ न वा एकाक्षरेण छन्दासि वियन्ति न द्वाभ्याम् । ऐतरेयब्राह्मण-१ ।६ तथा २ ।३७ । नाक्षराच्छन्दो व्येत्येकस्मान्न द्वाभ्याम् । शतपथ ब्राह्मण १३ ।२ ।३ ।३ न ह्येकाक्षरेणान्यच्छन्दोभवति न द्वाभ्याम् । कोषीतकि ब्राह्मण २७ ।१ ।

१७८ ऋग्वेद-१ ।१२७ ।६ ।

१७९ वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० १७८ ।

१८० अतिधृति-यजु-२२ ।५ । निचृदतिधृति-यजु० १६ ।१७ । भुरिगतिधृति-यजु-१५ ।१८ । निचृद्भुरिगतिधृति-यजु-१३ ।५५ । स्वराडतिधृति-यजु-९ ।१२ ।

१८१ युधिष्ठिर मीमासक ने पतञ्जलि और शौनक से भरत को पूर्व माना है (वै० छ० मी० , पृ० ५९)।

उद्भावना की थी, जिन्हे पतञ्जलि ने क्रमश कृति, प्रकृति, सस्कृति, अभिकृति और आकृति नाम देकर माना[१८३] और शौनक ने मा, प्रमा, प्रतिमा, उपमा तथा समा नामो से स्वीकार किया।[१८४] इस प्रकार उक्ता से उत्कृति पर्यन्त २६ छद हुए, जो आज तक माने जाते हैं। पतञ्जलि ने इन छब्बीस छन्दों के अक्षर न्यूनता से कृतादि सज्ञाओ द्वारा १०४ भेद प्रदर्शित किये,[१८५] जिनमे चार अक्षरवाले छन्द कृति से १०४ अक्षर वाले समुद्र अथवा उत्कृति पर्यन्त २६ छन्दो को कृत छन्द, उनमे से एकाक्षर की न्यूनता होने पर तीन अक्षर से १०३ अक्षर तक उन्ही २६ छन्दो को त्रेता छद और दो अक्षरों की न्यूनता से २ अक्षर वाले हर्षीका नामक छन्द से लेकर १०२ अक्षर वाले उदक सज्ञक छन्द तक २६ छन्दों को द्वापर छन्द तथा उनमे एकाक्षर की न्यूनता से एक अक्षर से १०१ अक्षर तक उन्ही २६ छन्दों को कलिछन्द माना है। आचार्य शौनक ने उक्त २६ छन्दो के दो-दो अक्षरो की न्यूनता से दो अक्षर वाले हर्षीका से १०२ अक्षर वाले उदक छन्द पर्यन्त ५२ भेद प्रदर्शित किये है, जो विराट् छन्द कहलाते हैं।[१८६] किन्तु आचार्य पिगल ने उक्त दोनो पूर्वाचार्यो द्वारा प्रदर्शित भेदो को एक या दो अक्षरो की न्यूनता अथवा अधिकता से प्राप्त होने वाले छन्दो को निचृदादि विशेषणो से युक्त कर २६ छन्दों मे से गायत्र्यादि उत्कृति पर्यन्त २१ वैदिक छन्द ही माने है,[१८७] जिनमें से गायत्री से धृति पर्यन्त १३ छन्द तो ऋग्वेदीय आर्च छन्द है और अतिधृति से उत्कृतिपर्यन्त ८ यजुर्वेदीय याजुष छन्द है। बहुत से प्राचीन आचार्य उक्त २६ छन्दो को भी वैदिक ही मानते हैं।[१८८] और उक्तादि पाच छन्दों का प्रयोग यजुर्वेद में दिखाया गया है, अत उन्हे भी वैदिक छन्द माना है।[१८९] क्योकि विना छन्द के एक भी शब्द का प्रयोग नही होता, अत वैदिक छन्द प्रवक्ताओ मे पतञ्जलि, शौनक और गार्ग्य ने प्राग्गायत्री पचक का निर्देश किया है, इससे उन छदो का भी वैदिकत्व व्यक्त होता है, किन्तु पिगल और जयदेव ने वैदिक छन्दो के प्रसग मे इनका उल्लेख नही किया है, अत ये ग्रन्थकार इन्हे वेद मे पृथक् से प्रयुक्त नही मानते और इन्हे दैवी गायत्र्यादि प्रथम सप्तक मे ही अन्तर्भूत मानते है। अत वास्तविक प्रयुक्त वैदिक छन्द २१ ही है, जो गायत्री से लेकर उत्कृति पर्यन्त माने जाते हैं।

याजुष मन्त्रो मे पतञ्जलि से लेकर पिगल तक किसी भी आचार्य ने पाद व्यवस्था नही दर्शाई और न कही वैदिक साहित्य मे ही इसका उल्लेख मिला, किन्तु निर्णयसागर बम्बई से सन् १९५७ में मुद्रित पिगल सूत्र के सम्पादक केदारनाथ ने इस तृतीय सप्तक (विच्छन्द) के याजुष अर्थात् गद्य मन्त्रों मे भी पाद व्यवस्था प्रदर्शित की है, जबकि याजुष मन्त्रो मे पादव्यवस्था प्रदर्शित करने का विधान नही है, यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है। केदारनाथ ने याजुष मन्त्रो मे पाद व्यवस्था प्रदर्शित करने का जो प्रयास किया है, वह तृतीय सप्तक के समस्त छन्दों मे प्राप्त नही होता। उनमे से कृति और प्रकृति छन्द को छोडकर आकृति से लेकर उत्कृति तक पाच छन्दो मे पाद व्यवस्था मिलती है, जिसके उदाहरण उन्होने हलायुध की टीका मे सन्निविष्ट कर दिये हैं। जिन छन्दों मे उन्होने पादव्यवस्था प्रदर्शित की है, वे है—[१९०]

---

१८२ भरत नाट्य-१४।४६-४७।

१८३ निदानसूत्र-१।५।

१८४ ऋक्प्रातिशाख्य-१७।१७।

१८५ निदानसूत्र-१।५, पृ० ८-९।

१८६ ऋक्प्रातिशाख्य-१७।५-२०।

१८७ छन्द सूत्र-४।१-४।

१८८ षड्विंशति स्मृतान्येभि पादैश्छन्दासि सज्ञया। भरतनाट्य-१४।४३।

१८९ कात्यायनकृत शुक्लयजु सर्वानुक्रमसूत्र-१।१ और उसका भाष्य।

१९० वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० १८०-१८३।

१ आकृति (८+८+८+८+८+८+८+८+१२+१२) वर्ण-८८, (भगोअनुप्रयुक्ता –मन्त्र)।

२ विकृति (८+८+८+८+८+८+८+८+८+८+१२) वर्ण-९२, यजु-२१ ।४२ इमे सोमा-मन्त्र ।)

३ सकृति (७+८+८+८+८+११+११+११+८+१७) वर्ण-९७, (तैत्तरीय ,ब्राह्मण-३ ।६ ।१३-देवो अग्नि -- - - बीहि यज)। मन्त्र।

४ अभिकृति (७+८+८+८+७+७+८+८+९+१२+८+१२) वर्ण-१०२, यजु २१ ।५८, देवोऽअग्नि वसु वने, मन्त्र)।

५ उत्कृति (१०+९+६+५+८+९+७+११+१२+१०+११+१०+९) वर्ण-११७, यजु २१ ।४२, होता – जुषेताम्-मन्त्र)।

उपर्युक्त पादविभाग सर्वथा कल्पित है, क्योकि विकृति छन्द के उदाहरण मे केदारनाथ ने जो यजुर्वेद का (अ० २१ ।४२) मन्त्र प्रदर्शित किया है, उस मन्त्र भाग मे होता से सोमा पर्यन्त त्रिपाद् गायत्री और सुरायाण से होतर्यज तक अतिधृति छन्द माना गया है।[१९१] पूरा मन्त्र भाग होता से होतर्यज पर्यन्त है, जिसमे से केदारनाथ ने पूर्व छन्दोभाग को विच्छेद कर इस सोमा से होतर्यज पर्यन्त विकृति छन्द का उदाहरण प्रस्तुत किया है, जिसमे ९१ अक्षर हैं, अत निचृद विकृति छन्द होता है। इस प्रकार तो कोई भी व्यक्ति याजुष मन्त्रो मे कही से भी मन्त्र भाग की अक्षर गणना कर पूर्व निश्चित छन्दो मे विभिन्न छन्दो की कल्पना कर सकता है। एव अभिकृति छद के उदाहृत मन्त्र (यजु-२१ ।५८) भाग मे भी देवोऽअग्नि से देवाऽआज्यपा तक अत्यष्टि छन्द और स्विष्टोऽअग्नि– से व्यन्तु यज पर्यन्त निचत् त्रिष्टुप् छन्द माना गया है।[१९२] किन्तु केदारनाथ ने इसके द्वितीय छन्दोभाग को विच्छेद कर प्रारभ से स्वधा वसुवने पर्यन्त अभिकृति छन्द का उदाहरण दिया है, जिसमे १०२ अक्षर है। अत दो अक्षर अधिक होने से स्वराड्विशेषण लगाना पडेगा, जिससे मन्त्र भाग मे 'वसुधयस्य व्यन्तु यज' भाग अवशिष्ट रहता है, जिसमे याजुषी बृहती छन्द मानना होगा। इस प्रकार याजुष मन्त्र भागों मे विभिन्न छन्दो की कल्पनाए होगी और उन मे पूर्व निश्चित किये गये छन्दो मे किसी का भी एक मत स्थापित नही होगा। यही विकार केदारनाथ द्वारा प्रदर्शित अन्य छन्दो के उदाहरणो मे भी देखने को मिलता है।[१९३]

याजुष मन्त्रो मे केदारनाथ द्वारा प्रदशित पाद व्यवस्था ही कोरी कल्पना नही, अपितु पतञ्जल्यादि पूर्वाचार्यों द्वारा नियमित किये गये तृतीय सप्तक के छन्द भी कल्पनामात्र हैं, जिससे

---

१९१ सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली से प्रकाशित, स्वामी दयानद कृत भाष्य सहित, यजुर्वेद, अध्याय-२१, मत्र ४२, पृ० ८०० ।

१९२ यजुर्वेद-२१ ।४८ । दयानन्द भाष्य सहित, पृ० ८१४ ।

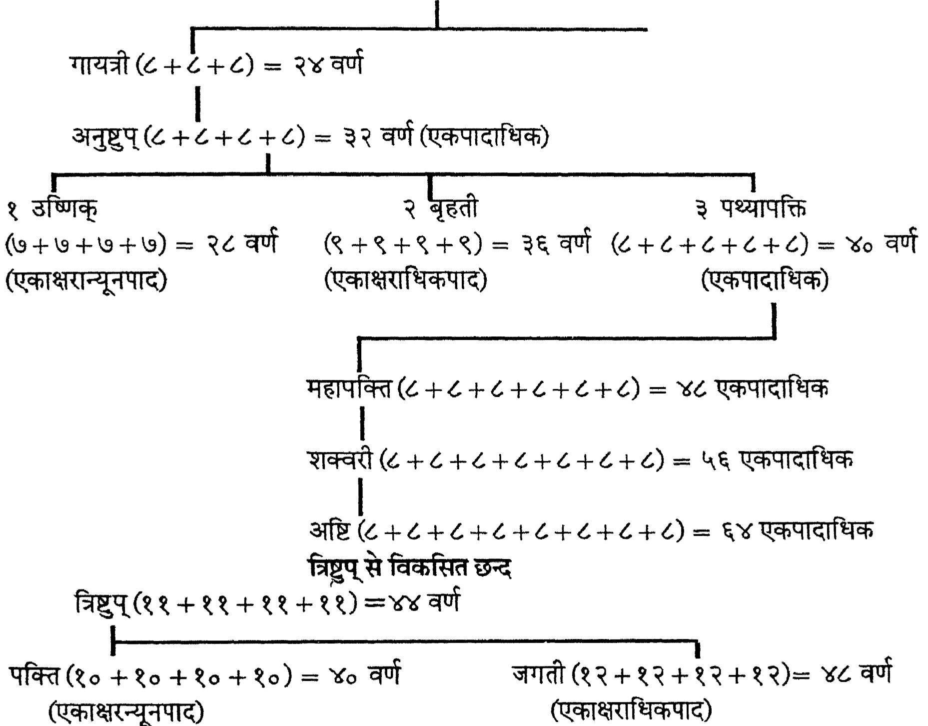
१९३ यजुर्वेद-२१ ।४३ के मन्त्र भाग मे होता से छागस्य तक याजुषी पक्ति और हविषा आता से होतर्यजतक उत्कृति छन्द माना गया है (द्रष्टव्य-दयानन्द भाष्य सहित यजुर्वेद, पृ० ८०१) जबकि केदारनाथ ने इसमें होता से हविरेवाश्विना जुषेताम् तक मन्त्र भाग प्रदर्शित कर उत्कृति छन्द माना है, जिसमे ११७ वर्ण हैं, जबकि उत्कृति छन्द में १०४ वर्ण नियमित किये गये हैं। अत विषय चिन्त्य है।

याजुष मन्त्रो का स्वातन्त्र्य समाप्त हो जाता है, क्योकि एक-एक याजुष मन्त्र मे कई कई छन्दो की कल्पना करनी पडती है,[१९४] जबकि प्रत्येक याजुष मन्त्र अपने मे पूर्ण और स्वतत्र है। ऋग्वेद के प्रत्येक मन्त्र मे जैसे एक छन्द होता है, वैसे ही यदि यजुर्वेद का प्रत्येक मन्त्र भी एक ही छन्द से युक्त होता, तो तृतीय सप्तक के छन्द भी कल्पना से परे होते। अत वास्तविक छन्द केवल १३ ही है, जो गायत्री से धृति पर्यन्त ऋग्वेद मे मिलते है, जिनमे मन्त्र रूप के साथ-साथ छन्दोरूप तथा पाद व्यवस्था भी अपने मे ही पूर्ण है, जो मूल रूप मे गायत्रादि पादो से विकसित है।

छन्दोविकासचित्र

मूलछन्द—(१) गायत्री (२) त्रिष्टुप् (३) जगती।
गायत्रपाद से विकसित छन्द—उष्णिक् (२) अनुष्टुप् (३) बृहती (४) शक्वरी (५) अष्टि।
त्रैष्टुभपाद से विकसित छन्द—पक्ति।
गायत्र-जागत पाद से विकसित छन्द—अतिशक्वरी।
जागत गायत्र पाद से विकसित छन्द—अतिजगती (२) अत्यष्टि (३) धृति।
चतुरक्षर वृद्धि से कल्पित छन्द—अतिधृति से उत्कृति पर्यन्त।

गायत्री से विकसित छन्द



---

१९४ यजुर्वेद-१० ।४, दयानन्द भाष्यसहित, पृ० ३०९, ३१० पर एक ही मन्त्र में छ छद प्रदर्शित है।

(गायत्र जागत पाद से विकसित छन्द—

अतिशक्वरी (८+८+८+८+१२+८+८) = ६० वर्ण।

जागत गायत्र पाद से विकसित छद—

अति जगती (१२+१२+१२+८+८) = ५२ वर्ण।

अत्यष्टि (१२+१२+८+८+८+१२+८) = ६८ वर्ण।

धृति (१२+१२+८+८+८+८+८+८) = ७२ वर्ण

चतुरक्षरवृद्धि से प्रकल्पित छन्द

(क)		(ख)	
अतिधृति	-७६ वर्ण	उक्ता	-४ वर्ण
कृति	-८० वर्ण	अत्युक्ता	-८ वर्ण
प्रकृति	-८४ वर्ण	मध्यमा	-१२ वर्ण
आकृति	-८८ वर्ण	प्रतिष्ठा	-१६ वर्ण
विकृति	-९२ वर्ण	सुप्रतिष्ठा	-२० वर्ण
सकृति	-९६ वर्ण		
अभिकृति	-१०० वर्ण		
उत्कृति	-१०४ वर्ण		

वैदिक छन्दो मे सृष्टि क्रम से दैवासुर छन्दो का विकास

गायत्री से जगती तक प्रथम सप्तक के छन्दो[१९५] का दैविक भेदो द्वारा विकास का प्रारम्भ वेदों के बाद ब्राह्मण ग्रन्थो मे मिलता है। दैवादि दो चतुष्कों के ९[१९६] छन्दो में से केवल दैव और आसुर छन्दो का वर्णन ताण्ड्य ब्राह्मण मे प्राप्त होता है।[१९७] जिसके अनुसार दैव छन्द का छोटा रूप एक अक्षर का तथा बडा रूप सात अक्षरो का और आसुर छन्द का छोटा रूप नौ अक्षरों का तथा बडा रूप पन्द्रह अक्षरो का माना गया है। इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मण प्रवक्ता दैव और आसुर छन्दों के भेद केवल गायत्र्यादि प्रथम सप्तक मे ही मानते थे, किन्तु यह स्पष्ट प्रतीत नही होता कि दैव छन्द उत्तरोत्तर वर्धमानाक्षर थे और आसुर छन्द ह्रासात्मक, तथापि दोनो छन्दोविभागो के सबसे छोटे और सबसे बडे छन्दोभेदो के उल्लेख के सूत्र रूप मे यह आभास मिलता है कि उनके मत मे दैव छन्द सूर्योदय के बाद प्रकाश के समान उत्तरोत्तर एक अक्षर से वर्धमान और आसुर छन्द मध्याह्न के बाद उत्तरोत्तर एक अक्षर से ह्रासात्मक होगा, जिसे अगले पृष्ठ १३९ पर चित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

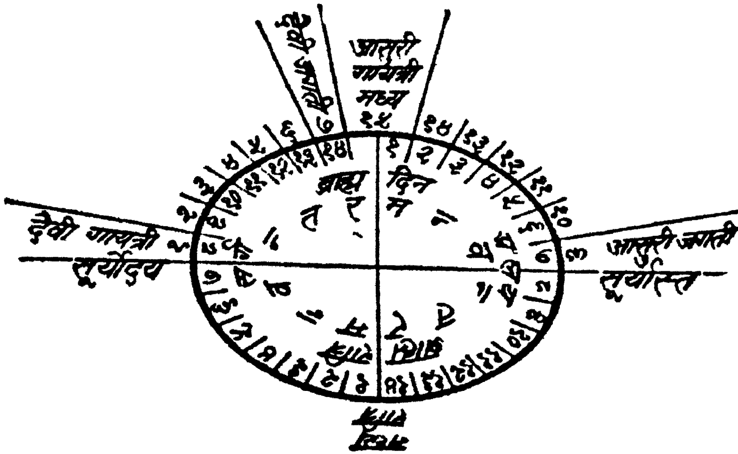
इसका अभिप्राय है कि दिन और रात्रि १४,१४ मन्वन्तर विभागो मे विभक्त हैं, जिनमें मध्यरात्रि के पश्चात् प्रथम मन्वन्तर से प्रकाश की मात्रा के बढने और अन्धकार की मात्रा घटने का जो उपक्रम चलता है, उसमे चतुर्थ तामस मन्वन्तर तक तो तम की प्रधानता रहती है, जिसमे उत्पन्न पदार्थ अन्धकार मे लीन होने के कारण इन्द्रियो से अगोचर रहते है। तदनन्तर पाचवे मन्वन्तर से छठे चाक्षुष मन्वन्तर तक वे क्रमश प्रकाश के वृद्धिगत होने से झलकते दृष्टिगत होने लगते हैं और सातवे वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ होते ही सूर्योदय से क्रमश वृद्ध्यात्मक दैवी छन्द शक्तियों का उदय होता है, जिसमें सूर्य की प्रखरता के साथ १४वे मन्वन्तर तक उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है। तत सर्गात्मक १४वे मन्यन्तर के

---

१९५ प्रथम सप्तक के छन्द-गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पक्ति, त्रिष्टुप्, जगती।

१९६ दो चतुष्को के छन्द-(१) दैव, आसुर, प्राजापत्य और आर्ष। (२) याजुष, साम्न, आर्च और ब्राह्म।

१९७ एकाक्षर वै देवानामवम छन्द आसीत् सप्ताक्षर परम्। नवाक्षरमसुराणामवम छन्द आसीत् पञ्चदशाक्षर परम् (ताण्ड्यब्राह्मण-१२।१३।२७।)।



अन्त और प्रलयात्मक प्रथम मन्वन्तर के प्रारम्भ (दिन के मध्य) मे ह्रासात्मक आसुरी छन्द शक्तियों का उदय होता है, जिससे क्रमश अन्धकार की मात्रा के बढने और प्रकाश की मात्रा के घटने का जो पुन विपरीत उपक्रम चलता है उसमे वे वृद्धिगत सृष्टि के पदार्थों के समान समस्त छन्दस्तत्त्व क्रमश क्षीण होते हुए पुन सातवे मन्वन्तर तक प्रकाश के समान क्षीणतम हो जाते है और सूर्यास्त के बाद क्रमश वृद्धिगत अन्धकार मे सृष्टि अदृश्य होती हुई विलीन होने लगती है तथा प्रलयकाल के १४वें मन्वन्तर तक समस्त जगत् पूर्ण प्रलयान्धकार मे विलीन हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि ताण्ड्य प्रवक्ता सूर्योदय से दैवी छन्द सृष्टि की वृद्धि और सूर्यास्त तक आसुरी छन्द सृष्टि का ह्रास मानते हैं, जिसका समर्थन शौनक पिगलादि[१९८] आचार्यों ने भी किया है किन्तु निदानसूत्रकार पतञ्जलि ने सर्गात्मक प्रथम मन्वन्तर से दैवी छन्दसृष्टि की प्रारम्भिक वृद्धि और प्रलयात्मक चौदहवें मन्वन्तर तक आसुरी छन्द सृष्टि का अन्तिम ह्रास माना है।[१९९]

ताण्ड्यब्राह्मण के उक्त अभिप्राय को जानकर छन्दोमर्मज्ञ पतञ्जलि ने सृष्टि के सर्गप्रलयभूत चतुर्दश मन्वन्तरो के आधार पर क्रमश वर्धमान और ध्वसमान प्रथम तथा द्वितीय सप्तक के दैव[२००] तथा आसुर छन्दो के चौदह-चौदह छन्दोभेदों की उद्भावना कर २८ छन्दों को प्रकट किया, जो क्रमश बढते और घटते अक्षरो के कारण दैवादि विशेषणो से युक्त हो वेदो मे प्राप्त होते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति का प्रारम्भ जैसे प्रथम मन्वन्तर से प्रवृत्त होता है और उसमे १४वें मन्वन्तर तक क्रमश उत्तरोत्तर विकास होता रहता हैं, ठीक वैसे ही दैव छन्द का एक अक्षर से प्रारम्भ करके उसमें निरन्तर एकाक्षरवृद्धि से चतुर्दशाक्षर पर्यन्त विकास दिखाया गया है, तथा इसी क्रम से विकसित सृष्टि का ह्रास १४वे मन्वन्तर के बाद प्रवृत्त होकर पुन प्रथम मन्वन्तर की स्थिति तक उसमे क्रमश घटाव चलता रहता है, ठीक वैसे

---

१९८ ऋग्वेद प्रातिशाख्य-१६ ।२-३। छन्द सूत्र-२ ।१७-१८, २६-२७।

१९९ निदानसूत्र-१ ।२, पृ० १९।

२०० द्वितीय सप्तक के छन्द-अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति और अतिधृति।

ही अक्षर सख्या से विकसित आसुर छद के १५ अक्षरो मे एकाक्षर ह्रास से दो अक्षरो की स्थिति तक उसमे क्रमश ह्रास प्रदर्शित किया गया है। ये दैवासुर छन्दोभेद गायत्री से अतिधृति पर्यन्त माने जाते है।[२०१]

सृष्टि के क्रमिक विकास और ह्रास को स्पष्ट करने के लिये निदानसूत्रकार पतञ्जलि द्वारा निर्दिष्ट दैव तथा आसुर छन्दो की अक्षर सख्याओ के सम्मिश्रण से एक ऐसा वृत्त बनता है, जिसके पूर्वार्द्ध भाग मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती है और उत्तरार्द्ध मे क्रमश ह्रास होता है। पूर्वाकित चित्र के अनुसार वृत्त मे २८ विभाग बनते है, जिससे स्पष्ट होता है कि सृष्टि का सर्गकाल (उत्पत्ति और विकास) तथा प्रलयकाल (ध्वसारम्भ और पूर्ण विध्वस) १४,१४ मन्वन्तरो मे विभक्त है, जिसमे ब्रह्मा का एक दिन और एक रात्रि, सर्ग और प्रलय के २८ मन्वन्तरो मे पूर्ण होता है। इस प्रक्रिया के अनुसार सत्वरजस्तम की साम्यावस्था की प्रारम्भिक सीमा है, और सर्ग तथा प्रलय का मध्य केन्द्र-(१५) सृष्टि की पूर्ण वृद्धि का अन्तिम रूप तथा ध्वसावस्था की प्रारम्भिक सीमा है। जैसे सर्गकाल मे दैवी शक्तियो सत्वरजस्तम की साम्यावस्था से सृष्टि तत्त्वो के योजन से विकाम करते-करते सृष्टि की पूर्ण वृद्धि के अन्तिम रूप तक पहुॅचती है और वही से आसुरी शक्तियॉ उन सृष्टि तत्त्वो का ध्वस करते-करते उन्हे पुन सत्वरजस्तम की साम्यावस्था तक पहुॅचा देती है, उसी प्रकार दैव और आसुर छन्द भी सृष्टि की उत्पादक दैवी शक्तियो और विध्वसक आसुरी शक्तियो का प्रतिनिधित्व करते हैं।

जिस प्रकार कतिपय प्राचीन भारतीय आचार्य[२०२] तथा वर्तमान पाश्चात्य विद्वान् रात्रि की मध्यसीमा (१२ बजे) के बाद ही प्रथम क्षण को अगले दिन का प्रारम्भ मानते हैं, ठीक वैसे ही वृत्त के बाहर अक १ तक रात्रि की मध्य सीमा है, जो घोर अन्धकार से परिपूर्ण होती है, उसके बाद प्रथम क्षण से ही दिन के प्रारम्भ होने से अवस्था मे विपरीत परिवर्तन होने लगता है और प्रत्येक क्षण प्रकाश की मात्रा बढने लगती है तथा अन्धकार घटने लगता है। सूर्योदय के बाद प्रकाश की मात्रा मे उत्तरोत्तर वृद्धि और अन्धकार की मात्रा मे क्रमश ह्रास होता जाता है तथा मध्यदिन की सीमा (१२ बजे) = वृत्तीय अक १५ तक पहुचते-पहुचते अन्धकार की मात्रा अतिशय क्षीण हो जाती है और प्रकाश अपनी पूर्णता पर पहुच जाता है। इसके उत्तरक्षण से ही अवस्था मे पुन विपरीत परिवर्तन होने लगता है और प्रतिक्षण प्रकाश की मात्रा क्रमश क्षीण और अन्धकार की मात्रा मे वृद्धि हो जाती है। तदनन्तर रात्रि की मध्य सीमा तक पहुचते ही प्रकाश अतिशय क्षीण हो जाता है और अन्धकार अपनी सीमा पर पहुच जाता है। उसके बाद ही प्रथम क्षण से अन्धकार की मात्रा पुन घटने और प्रकाश की मात्रा बढने लगती है।[२०३]

सृष्टि के क्रम से जिस प्रकार प्रकाश मे क्रमश वृद्धि और अन्धकार मे ह्रास होता है, उसी प्रकार दैव छन्द मे क्रमश वृद्धि और आसुर छन्द मे ह्रास होता है। दैव छन्द के एकाक्षरवृद्धि से उत्तरोत्तर वृद्धिगत १ से १४ अक्षर सृष्टि के सर्गकाल के उत्तरोत्तर वर्धमान १४ मन्वन्तरो मे विभक्त छन्द सर्ग की वे दैवी शक्तियॉ हैं जो छद सृष्टि-तत्वो का योजन कर विकसित होते-होते छन्द सृष्टि की अपनी पूर्ण वृद्धि के अन्तिम रूप तक पहुचती है, तथा आसुर छन्द के १५वे अक्षर से द्वितीय अक्षर तक एकाक्षर

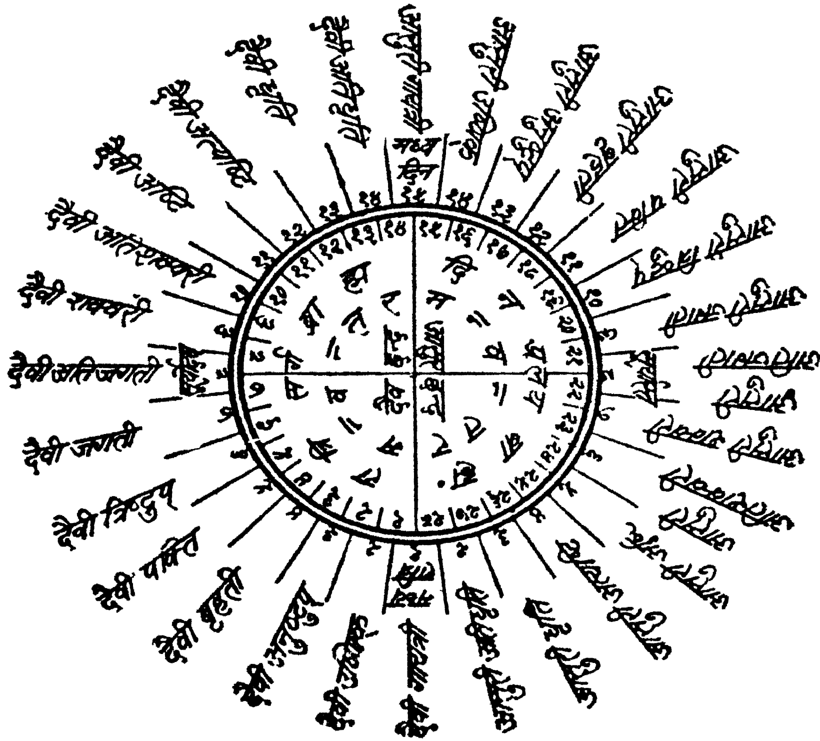
---

२०१ अथ दैवासुरच्छन्दासि। एकाक्षरप्रभृतीन्येकोत्तराण्यारोहीणि दैवच्छन्दासि। सप्ताक्षरा जगती, अष्टाक्षरातिच्छन्दा। पञ्चदशाक्षर प्रभृतीन्येकावाञ्चि प्रत्यवरोहीण्यनुच्छन्दासि। नवाक्षरा जगती अष्टाक्षरातिच्छन्दा। निदानसूत्र-१।२।

२०२ अहरुभयतोऽर्धरात्रमेषोऽद्यतन काल। काशिका-१।२।५७ मे उद्धृत पूर्वाचार्य वचन।

२०३ वैदिक छन्दो मीमासा-पृ० ११७।

ह्रास से १५वे मन्वन्तर से २८वे मन्वन्तर तक क्रमश ह्रासवती सृष्टि के प्रलय काल के १४ मन्वन्तरो मे विभक्त छन्दोध्वस की वे आसुरी शक्तिया है, जो छन्द सृष्टि तत्वो का ध्वस करते-करते ह्रास की सीमा ह्रासात्मक अक २ के बाद वृद्ध्यात्मक अक १ के पूर्व की स्थिति अर्थात् पूर्ण प्रलय को प्राप्त कर फिर उन्हे छन्द साम्यावस्था तक पहुचा देती है। निम्नाकित चित्र द्वारा सृष्टि क्रम से दैवासुर छन्दो मे क्रमश वृद्धि तथा ह्रास पूर्णतया व्यक्त होता है—



उक्त विधि से सृष्टि क्रम मे सर्गात्मक दैवी और प्रलयात्मक आसुरी प्रवृत्तियो की पूर्ण व्याख्या करने के लिये निदानसूत्रकार ने ब्राह्म दिन और रात्रि के चौदह चौदह मन्वन्तरों के अनुरूप दैव और आसुर छन्दो के प्रथम तथा द्वितीय-दोनो सप्तको मे ७ + ७ = १४ भेद स्वीकार किये है।

दैवासुर छन्दो के अतिरिक्त प्राजापत्य-याजुषादि छन्द

दैवादि छन्द दो चतुष्को मे विभक्त है, प्रथम चतुष्क मे दैव, आसुर, प्राजापत्य और आर्ष छन्दों की गणना होती है तथा द्वितीय चतुष्क मे याजुष, साम्न, आर्च और ब्राह्म छन्दो की। प्रथम तथा द्वितीय सप्तक के गायत्र्यादि छन्दों की चतुरक्षर वृद्धि से जो मूल अक्षर सख्या-२४ से ७६ तक होती है, उसी से दैव, आसुर, प्राजापत्य नामक विशेषण लगाकर छन्दोभेद विकसित किये गये है और उक्त तीनो भेदो की सख्या को मिलाकर छन्दो की जो मूल सख्या होती है, उसे पृथक से आर्ष विशेषण दिया जाता है। दैव छन्द का प्रारम्भ एक अक्षर से होता है और उसमें एकाक्षरवृद्धि द्वारा १४ अक्षरो तक विकास होता

है। आसुर छन्द का १५ अक्षर से प्रारम्भ होकर एकाक्षर ह्रास से दो अक्षर तक क्रमश ह्रास होता है। प्राजापत्य छन्द का ८ अक्षर से प्रारम्भ होकर उसमे ६० अक्षरो तक चतुरक्षर वृद्धि से विकास होता है और आर्ष छन्द का २४ अक्षरो से प्रारम्भ होकर चतुरक्षर वृद्धि से ७६ अक्षरो तक विकास होता है। यह दैवादि प्रथम चतुष्क कहलाता है। इसके अतिरिक्त द्वितीय चतुष्क मे याजुष, साम्न, आर्च और ब्राह्म विशेषण लगाकर प्रथम सप्तक के जो छन्दोभेद बताये गये है, उनमे छन्दो की मूल अक्षर सख्या को चार पादो मे विभक्त कर याजुष छन्दो मे एक पाद, साम्न छन्दो मे दो पादो और आर्च छन्दो मे तीन पादो की अक्षर सख्या रखी जाती है।[२०४] उक्त तीनो छन्दोभेदो की जो अक्षर सख्या होती है, उसे मिलाकर ब्राह्म छन्दो मे रखा जाता है अर्थात् ब्राह्म छन्दो मे याजुष छन्द जैसे छ पादो की अक्षर सख्या होती है, इसीलिए ब्राह्म वर्ग को षडुत्तर कहते है।[२०५] जिसे निम्न रूप से प्रदर्शित चित्र द्वारा दर्शाया गया है—

	प्रथम सप्तक							द्वितीय सप्तक						
छद	गा०	उ०	अ०	बृ०	प०	त्रि०	ज०	अति ज०	शक वरी	अति शक्वरी	अष्टि	अत्य ष्टि	धृति	अति धृति
दैव०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
आसुर	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	८	७	६	५	४	३	२
प्राजापत्य	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८	५२	५६	६०
आर्ष	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८	५२	५६	६०	६४	६८	७२	७६
याजुष	६	७	८	९	१०	११	१२							
साम्न	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४							
आर्च	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६							
ब्राह्म	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२							

उपर्युकित चित्र मे प्रदर्शित प्रथम सप्तक के आर्ष से बाह्म पर्यन्त छन्दोभेद पतजलि शौनक, पिगल, गार्ग्य और जयदेव के छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो में मिलते हैं किन्तु द्वितीय सप्तक के छन्दोभेद केवल निदानसूत्र मे ही प्राप्त होते है। वे भी दैवादि प्रथम चतुष्क के किंतु द्वितीय चतुष्क के याजुषादि छन्दो का निर्देश निदान सूत्र मे भी नही मिलता। अत किसी भी छन्दोनिर्देशक ने इन भेदों का निर्देश छन्द प्रसग मे नही किया। पतञ्जलि के अतिरिक्त शौनक, पिगल आदि आचार्य तो द्वितीय सप्तक के दैवादि प्रथम चतुष्क के छन्दोभेद भी नही मानते, इसलिए अधिकतर प्रथम सप्तक के ही दैवादि छन्दोभेद माने जाते हैं। इस प्रकार ग्रन्थो के पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि वैदिक छन्दो के विकास में न्यूनाधिक अक्षर गणना को अकित करने की प्रक्रिया प्रधान रही है।

लौकिक छन्दो का विकास

दार्शनिको का सिद्धान्त है कि कोई भी पदार्थ एक क्षण से अधिक अपने रूप मे स्थिर नही रहता, उसमें वृद्धि अथवा क्षय अवश्य होता रहता है।[२०६] ये ही छन्दों में निरन्तर परिवर्तन की प्रक्रिया है। ऋग्वेद के बाद यजुर्वेद के छन्दो मे परिवर्तन मिलता है, जो उससे सर्वथा भिन्न है। इन दोनों वेदो के छन्दो का प्रयोग वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में अधिकतर यजुर्वेदीय छन्दो का

२०४ तत्पादो यजुषा छन्द साम्ना तु द्वावृचा त्रय। यजु सर्वानुक्रमसूत्र भाष्य, पृ० ४।

२०५ ब्राह्मवर्ग षडुत्तर। यजु सर्वानुक्रमसूत्र भाष्य, पृ० ४।

२०६ प्रवृति खल्वपि नित्या। नहीह कश्चिदपि स्वस्मिन्नात्मनि मुहूर्तमप्यवतिष्ठते, वर्धते वा यावदनेन वर्धितव्यम्, अपायेन वा युज्यते। तच्चोभयं सर्वत्र। पातञ्जल महाभाष्य-४।१।३।

प्रयोग मिलता है, जिन में प्रगाथो का बहुधा प्रयोग है, जो दो तीन छन्दों के समुदाय से बनते हैं। उपनिषत् काल तक ऋग्वेदीय छन्दो का प्रयोग होता रहा है। ये छन्द इतने प्रसिद्ध हुए कि इनकी भाषा को भी छन्दस् कहा जाने लगा। वैदिक छन्द स्वच्छन्द गति से चलने थे-इसी कारण उन छन्दो में निबद्ध भाषा को महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में छन्दस् कहा।[२०७] जिससे स्पष्ट है कि वैदिक भाषा अपने छन्दो के समान ही अनियमित, व्याकरण आदि से अनिश्चित गतिविधि से स्वतत्र भाषा थी, उस पर किसी प्रकार के नियमो का नियत्रण नही था-इसीलिए उसे छन्दस् नाम दिया गया, जिसे आज वैदिक सस्कृत के नाम से पुकारते हैं।

वैदिक सस्कृत पाणिनि के पूर्ण सुशिक्षित पुरुषो की भाषा थी और सामान्य व्यवहार की भाषा थी-'लौकिक सस्कृत'-यह अष्टाध्यायी मे सस्कृत भाषा के उक्त दोनो रूपो के प्रति स्पष्ट सकेत मिलता है।[२०८] यास्क और पाणिनि ने बोल-बाल की भाषा (सस्कृत) के लिए 'भाषा' शब्द का और वैदिक भाषा के लिए 'छन्द्स' शब्द का प्रयोग किया है।[२०९] महाभाष्य मे भी पतञ्जलि ने सस्कृत के उक्त दोनो रूपो के प्रति दोनो प्रकार के शब्दो का सकेत किया है।[२१०] यास्क, पाणिनि और वैयाकरण पतञ्जलि के ग्रन्थों मे लोक-व्यवहार मे आनेवाली बोली (सस्कृत) का नाम केवल 'भाषा' है, किन्तु भाषा के लिए सस्कृत शब्द का प्रयोग नही मिलता। सस्कृत शब्द से तो केवल वैदिक भाषा का ही ग्रहण होता था और भाषा से केवल लौकिक वाणी (सस्कृत) का। जब भाषा (लौकिक सस्कृत) का सर्वसाधारण मे प्रचार कम होने लगा तथा प्राकृत ने क्रमश बोल-चाल की भाषा का स्थान ले लिया और पाणिनि-कालीनलोकव्यवहार की भाषा (लौकिकसस्कृत) साहित्यिक, सुशिक्षित जनो की भाषा बन गई, तब से विद्वानो ने लोक व्यवहार मे आने वाली प्राकृत भाषा से साहित्यिक और सुशिक्षित जनो की भाषा का भेद प्रदर्शित करने के लिए उसे सस्कृत नाम दे दिया।[२११] जिसकी पुष्टि महाकवि दण्डी के समर्थन से होती है। दण्डी ने काव्यादर्श मे प्राकृत से भेद दिखाने के लिए भाषा के लिए सस्कृत शब्द का प्रयोग किया है।[२१२] यह वाल्मीकीय रामायण से चली आने वाली परम्परा का अनुसरण है, क्योकि लोकव्यवहार में प्रचलित भाषा के रूप मे प्राकृत का उदय वाल्मीकि-युग की घटना है। उस समय 'भाषा' (लौकिक सस्कृत) ने साहित्यिक रूप ग्रहण कर लिया था। 'भाषा' के अर्थ मे सस्कृत का प्रयोग वाल्मीकीय रामायण में सर्वप्रथम मिलता है।[२१३] सस्कृत शब्द सम् पूर्वक कृ धातु से बना है, जिसका मौलिक अर्थ है-सस्कार की गयी भाषा, जो बोली की अपेक्षा व्याकरण से परिष्कृत होती है। वह भाषा प्राचीन तथा अर्वाचीन रूप से दो भागो में विभक्त हो गई। प्राचीन सरकृत भाषा को वैदिक सस्कृत के नाम से पुकारने लगे, और अर्वाचीन सस्कृत को लौकिक सस्कृत के नाम से व्यवहार मे लाने लगे।

वैदिक सस्कृत के अतिरिक्त जो छन्द लौकिक भाषा के व्यवहार मे आये, उन्हें लौकिक छन्द कहा गया। वैदिक छन्दों की स्वच्छन्द गति थी और लौकिक छन्दों की नियमित गति है। अत वैदिक छन्दों की अपेक्षा लौकिकछन्द विशेष नियमों में निबद्ध है। वाल्मीकीय रामायण से पूर्व वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि ग्रन्थों में वैदिक छन्दो का प्रयोग होता था किन्तु वैदिक ग्रन्थो के बाद

---

२०७ बहुल छन्दसि। अष्टाध्यायी-७।१।८।

२०८ भाषाया सदवसस्रुव। अष्टाध्यायी-३।२।१०८।

२०९ भाषायामन्वध्यायञ्च। निरुक्त-१।४।

२१० पातञ्जल महाभाष्य, ३।२।१०८ तथा ७।१।८।

२११ बलदेव उपाध्याय, सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० १८ से २२।

२१२ सस्कृत नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभि। काव्यादर्श-१।३३।

२१३ यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव सस्कृताम्।
रावण मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥ वाल्मीकीय रामायण, सुदरकाण्ड, ५।१४।

वाल्मीकीय रामायण से महाभारत, जाम्बवतीजयादि ग्रन्थो मे लौकिक छदों का प्रयोग मिलता है, जिनका आविष्कार ऋग्वेदीय छन्दो से हुआ है, जो विभिन्न अक्षरो मे विकसित हो भास और कालिदास की रचनाओ से लेकर आज तक के काव्यो मे प्रयुक्त हो रहे है ।

महर्षि वाल्मीकि लौकिक सस्कृत भाषा के आदि कवि माने जाते हैं । जब वैदिक छन्दो की गति अवरुद्ध होने लगी, तब वैदिक सस्कृत भाषा के प्रमुख छन्द गायत्री का विकसित रूप अनुष्टुप् लोक भाषा (सस्कृत) मे अपनी गति पकडने लगा, जो ऋग्वेद के दशम मण्डल में प्रयुक्त अनुष्टुप् से[२१४] उत्तरोत्तर अथर्ववेद मे विकसित[२१५] हो वाल्मीकीय रामायण मे दृष्टिगत होता है ।[२१६] जिसका प्रयोग लौकिक सस्कृत के अन्य ग्रन्थो मे प्रचुर रूप से मिलता है । अत ऋग्वेद के बाद लौकिक सस्कृत में सर्वप्रथम छन्दस्कार के रूप मे रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि का स्मरण किया जाता है और लौकिक सस्कृत छन्दो में अनुष्टुप् को सर्वप्रथम छन्द माना जाता है । वैदिक सस्कृत मे जो स्थान त्रिष्टुप् को प्राप्त है, लौकिक सस्कृत मे वही स्थान अनुष्टुप् छन्द को उपलब्ध है, जो वैदिक गायत्री का विकसित रूप है ।

आचार्य पिगल ने छन्दःसूत्र मे सर्वाधिक लौकिक सस्कृत छन्दों पर ही विचार किया है। लौकिक सस्कृत छन्दो की अपेक्षया वैदिक सस्कृत छन्दो पर उनका विवेचन न्यून-सा है । क्योंकि वैदिक छन्दोविषयक विवेचन पतञ्जलि और शौनक के छन्दोविवेचन से अनुप्राणित है और लौकिक सस्कृत छन्दो पर विवेचन मौलिक है । इसका मुख्य कारण यह है कि लौकिक सस्कृत छन्दो पर विचार करनेवाले छन्द सूत्र से पूर्व नाट्यशास्त्र में भरतमुनि द्वारा प्रस्तुत छन्दोविवरण को छोडकर कोई स्वतत्र ग्रन्थ प्राप्त नही होता, अत वह स्थान पिगल को ही मिलता है, जबकि पिगल से पूर्व कई लौकिक छन्द प्रवक्ता आचार्यो का उल्लेख मिलता है । स्वय पिगल ने छन्दःसूत्र में चार लौकिक छन्द प्रवक्ता आचार्यो (सैतव, कश्यप, रात, माण्डव्य) का उल्लेख किया है ।[२१७] इससे स्पष्ट है कि लौकिक सस्कृत छन्दो का पूर्ण विकास पिगल से बहुत समय पूर्व हो चुका था, जिसके कारण पिगल ने छन्दःसूत्र में उनका सकलन किया ।

जिस प्रकार महर्षि वाल्मीकिकृत लौकिक सस्कृत का आदिकाव्य रामायण और महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यासकृत महाभारत सस्कृत काव्यो तथा नाटको के उपजीव्य है, उसी प्रकार लौकिक सस्कृत छन्द शास्त्र विषयक रचनाओ के लिए भी ये अपने में से विभिन्न छन्दो-धाराओ के प्रवाहित करने के कारण उपजीव्य है । रामायण और महाभारत मे बहुत से ऐसे स्थल मिलते हैं, जिनमें प्रयुक्त यत्र-तत्र अनेक पद्य छन्दो के नियमो से अनियत्रित है, जो अभी तक भरत-पिगल से दु खभजन पर्यन्त छन्दोलक्षणकारो के लक्षणग्रथो मे भी लक्षित नही हो सके है[२१८] जिन्हे लक्षित करने के लिए प्रस्तुत

---

२१४ यो अग्नि क्रव्यवाहन पितृन्यक्षदृतावृध ।
प्रेदु हव्यानि वोचति, देवेभ्यश्च पितृभ्य आ । ऋग्वेद-१० ।१६ ।११ ।

२१५ ये त्रिष्टता परियन्ति विश्वरूपाणि विभ्रत ।
वाचस्पति र्वला तेषा तन्नोअथ दधातु मे । अथर्ववेद-१ ।१ ।१ ।

२१६ समुद्र लघयित्वा तु घोर नदनदीपतिम् ।
गति हनुमतो लोके को विद्यात्तर्कयेत वा ॥ वाल्मीकीय-रामायण-युद्धकाण्ड-९ ।११ ।

२१७ छन्द सूत्र-५ ।१८,७ ।९,७ ।३३,७ ।३४ ।

रचना के पचम अध्याय मे कुछ सकेत किया गया है। इसके अतिरिक्त छन्द सूत्रादि छन्दोग्रन्थो मे जिन छन्दो के लक्षण मिलते है, उनमे से रामायण और महाभारत मे प्रयुक्त कुछ निम्नाकित छन्द वे है, जो भास, कालिदास आदि महाकवियो की रचनाओ और छन्द सूत्र आदि छन्दोग्रन्थो से पूर्व प्रयुक्त हो चुके है।

लौकिक काव्यो मे सर्वप्रथम वाल्मीकीय रामायण मे निम्नाकित छन्दो का प्रयोग मिलता है—अनुष्टुप्, उपेन्द्रवज्रा, छन्दवज्रा, वशस्थ, मृगेन्द्रमुख, इन्द्रवशा, रुचिरा, प्रहर्षिणी, वैश्वदेवी, मालिनी, भुजगप्रयात, वसन्ततिलका, उपजाति, पुष्पिताग्रा और अपरववत्र।[२१९] महाभारत मे भी उक्त छन्दो के अतिरिक्त निम्नाकित छन्दो का और प्रयोग मिलता है—प्रभावती, शालिनी, द्रुतविलम्बित, शार्दूलविक्रीडित, रथोद्धता, प्रहरणकलिता, आर्या और उपगीति।[२२०] इसके अतिरिक्त रामायण मे कतिपय ऐसे वृत्तो की एक या दो पक्तिया ही पद्यो मे प्राप्त होती है, जो छन्दोग्रन्थो में निम्नाकित नामो मे लक्षित है—परिमितविजया, मालती, समुद्रिका, असम्बाधा, विधारिता, कुसुम्भिनी, वातोर्मी, अशोकपुष्पक, विमला, विश्वराट्, सहजा, वधिरा, सीधु, विराट् और वियोगिनी।[२२१]

वाल्मीकीय रामायण और महाभारत के अतिरिक्त अतिप्राचीन अन्य काव्य ग्रन्थ के प्राप्त न होने से भरत-पिगलादि छन्दप्रवक्ताओ के लक्षणग्रन्थो मे रामायण और महाभारत में प्रयुक्त छन्दो के अतिरिक्त जिन-जिन छन्दो के लक्षण मिलते है, उनमे से बहुत से छन्द तो भास, कालिदास आदि कवियो के काव्यो तथा नाटको मे प्रयुक्त हो चुके है। ऐसे प्रयुक्त छन्द सख्या में लगभग ७० ही होगे, किन्तु छन्दोलक्षणग्रन्थो मे स्वतत्र रूप से लक्षित लौकिक सस्कृत छन्दों की सख्या २०४६ मिलती है। प्रत्येक छन्दोलक्षण ग्रन्थ में वृत्तो के निर्माण के लिए छन्द प्रस्तार प्रक्रिया का वर्णन किया गया है, जिससे एकाक्षरा उक्ता नामक छन्दोवृत्ति से षड्विशत्यक्षरा उत्कृति नामक छन्दोवृत्ति पर्यन्त एक-एक अक्षर की वृद्धि कर पूर्णपद्यदशा मे चतुरक्षरवृद्धि से तथा दण्डको मे एक-एक अक्षर की वृद्धि से और प्रत्येक छन्दोवृत्ति में मगण आदि अष्ट गणों और गुरु-लघु वर्णों को पक्ति मे परिवर्तित कर प्रयुक्त करने से लौकिक छन्दो को विकसित माना गया है, जिसे पृष्ठ १४६ पर चित्र द्वारा प्रकट किया जा रहा है—

---

२१८ वाल्मीकीय रामायण-बालकाण्ड-१९ ।२२,२१ ।२२, अयोध्याकाण्ड-४६ ।३४,११६ ।२५,२६, अरण्यकाण्ड-३३ ।२३,४० ।२७,४७ ।५०, किष्किन्धाकाण्ड-६ ।२६,२७,५६ ।१७ सुदरकाण्ड-१२ ।३, युद्धकाण्ड-११ ।३०,८५ ।३६,१०९ ।६८,२९ ।३८,९५ ।१७,५७ ।२१। महाभारत-द्रोणपर्व-२ ।२५,१८२ ।१०, कर्णपर्व-७ ।७,७० ।२०, शान्तिपर्व १०९ ।५०,२४० ।३५, अनुशासनपर्व-२६ ।८२-१००,७१ ।५५,७३ ।११-४५।

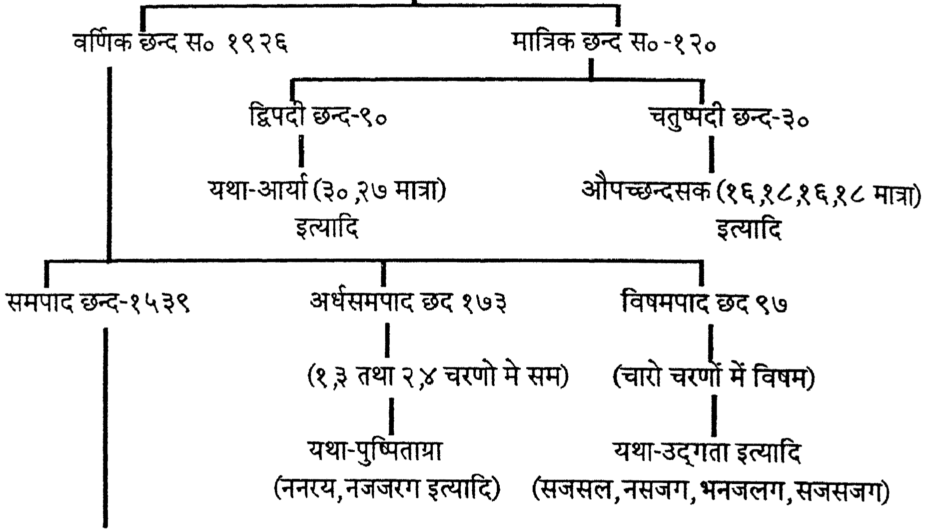
२१९ वाल्मीकिकृत रामायण-बाल० १ ।१, अयोध्या० २१ ।५८, ५ ।२६, युद्ध १०२ ।५५, सुदर० ५४ ।४३ ।७ ।१७, अयोध्या० ७९ ।१७, सुदर० ६५ ।२८, युद्ध ४० ।२९-३०, ७७ ।२४, उत्तर० ८ ।२८,९६,९८, अरण्य० ६२ ।२०,२ ।२६।

२२० महाभारत, आदि० १९ ।२२,३१,५८ ।२१, द्रोण० १८४ ।४७-४८, कर्ण-९० ।४२, शान्ति० १९४ ।६०,३४६ ।१८, अनुशासन-१४ ।१८२-१८४,१८७,१९१।

२२१ वा० रा० बाल० २ ।४३ ।१,२१ ।२२ ।२, अयोध्या० २० ।५५ ।१,३,११६ ।२५,३-४, अरण्य-३३ ।२३ ।१, सुदर-७ ।१५ ।१, युद्ध० ११ ।३० ।४,१०९ ।६८ ।१, उत्तर०-५५ ।२१ ।१,२,३,४,५७ ।२१ ।१,२,४, ।६१ ।२४ ।२,४,९५ ।१७ ।२,६१ ।२४ ।३-४

लौकिक छन्दो (२०४६) का विकास चित्र

वैदिक छन्द (उक्ता से उत्कृति पर्यन्त २६)



(चारो चरणो मे वर्ण तथा मगणादि गणो से सम)

उक्ता-मे २ छद	यथा-ह्री	(ग) इत्यादि ।
अत्युक्ता-मे ४ छन्द	यथा-सुख	(लग) इत्यादि ।
मध्यमा-में ८ छन्द	यथा-स्त्री	(म) इत्यादि ।
प्रतिष्ठा-मे १६ छन्द	यथा-कुसुमिता	(नग) इत्यादि ।
सुप्रतिष्ठा-मे ३२ छन्द	यथा-नन्दा	(तलग) इत्यादि ।
गायत्री-में ६४ छन्द	यथा-तनुमध्या	(तय) इत्यादि ।
उष्णिक्-मे १२८ छन्द	यथा-सुभद्रा	(जर ग) इत्यादि ।
अनुष्टुप्-मे १०० छन्द	यथा-समानी	(रजगल) इत्यादि ।
बृहती-मे ७० छन्द	यथा-हलमुखी	(र न स) इत्यादि ।
पक्ति-में १०९ छन्द	यथा-मत्ता	(म भ स ग) इत्यादि ।
त्रिष्टुप्-में १२८ छन्द	यथा-इन्द्रवज्रा	(ततजगग) इत्यादि ।
जगती-में १७९ छन्द	यथा-वशस्थ	(जतजर) इत्यादि ।
अतिजगती-में ११८ छन्द	यथा-प्रहर्षिणी	(मनजरग) इत्यादि ।
शक्वरी-में ११४ छन्द	यथा-वसन्ततिलका	(तभजजगग) इत्यादि ।
अतिशक्वरी-में ८४ छन्द	यथा-मालिनी	(न न म यय) इत्यादि ।
अष्टि-में ५२ छन्द	यथा-ऋषभगजविलसित	(भरनननग) इत्यादि ।
अत्यष्टि-मे ४१ छन्द	यथा-मन्दाक्रान्ता	(मभनततगग) इत्यादि ।
धृति-में ५२ छन्द	यथा-चित्रलेखा	(कुसुमितलतावेल्लिता) (मतनययय) इत्यादि ।

अतिधृति-मे ४० छन्द यथा-शार्दूलविक्रीडित (मसजसततग) इत्यादि।
कृति-मे ?५ छन्द यथा-सुवदना (मरभनयमलग) इत्यादि।
प्रकृति-मे २५ छन्द यथा-स्रग्धरा (मरभनयय) इत्यादि।
आकृति-मे ३१ छन्द यथा-मद्रक (भरनरनरनग) इत्यादि।
विकृति-मे २८ छन्द यथा-अश्वललित (नजभजभजभलग) इत्यादि।
सकृति-मे २९ छन्द यथा-तन्वी (भतनसभभनय) इत्यादि।
अभिकृति-में २४ छन्द यथा-क्रौञ्चपदा (भमसभननननग) इत्यादि।
उत्कृति-मे ३५ छन्द यथा-भुजगविजृम्भित (ममतननरसलग) इत्यादि।

दण्डकछन्द-११७

सीमितदण्डक मे ९५ दण्डक
(२७ वर्ण से ९९९ वर्ण पादपर्यन्त मगणादि गणों तथा गुरु लघु वर्णो से सीमित)
यथा-चण्डवृष्टि प्रपात
प्रपात (२ नगण, ७ रगण) इत्यादि।

असीमित दण्डक मे २२ दण्डक
(मगणादि गणों तथा गुरु लघु वर्णों की गणना से रहित तथा सम पाद)
यथा-प्रचित (नन + यथेच्छ रगण सख्या) इत्यादि।

मगणादि अष्टगणो और गुरु लघु वर्णों को पक्ति में यथेच्छ परिवर्तित कर सम दशा में पद्य को चारों चरणो में प्रयुक्त करने से समवृत्तो का, पद्य के प्रथम और तृतीय, द्वितीय और चतुर्थ चरणों में मगणादि गणो को समता के साथ नियत्रित करने से अर्द्धसमवृत्तों का और पद्य के प्रत्येक चरण में यथेच्छ गणो के प्रयोग से विषमवृत्तो का निर्माण होता है। इस छन्दोनिर्माण क्रिया को छन्दप्रस्तार प्रक्रिया कहते है। इस छन्दप्रस्तार प्रक्रिया का प्रयोग पिगल से लेकर वाग्वल्लभ के रचयिता दुःखभञ्जन पर्यन्त प्रत्येक छन्द प्रवक्ता की रचना मे प्राप्त होता है, जिसमें पिगल से स्वयम्भू के बाद जयकीर्ति ने छन्दोऽनुशासन मे अपने पूर्ववर्ती छन्दप्रवक्ताओं की अपेक्षा अधिक वृत्तों का निर्माण किया है, और उसके बाद वाग्वल्लभ में तो दुःखभञ्जन ने छन्दप्रस्तार प्रक्रिया द्वारा सर्वाधिक वृत्त-निर्माण कर लौकिक सस्कृत छन्द शास्त्र मे एक अपना अपूर्व योगदान किया है, जिसमें उनके द्वारा लक्षित १५४० छन्दों मे से १०३१ छन्द उनके उक्त प्रक्रिया द्वारा विकसित छन्द हैं। उक्त प्रक्रिया के पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि लौकिक छदों के विकासक्रम में वर्णवृद्धि के साथ पक्ति में मगणादि गणों को परिवर्तित कर अकित करने की प्रक्रिया प्रधान रही है।

इस प्रकार इस अध्याय में छन्दो का स्रोत वेद और उनका काल तथा वैदिक एवं लौकिक छन्दों के विकासक्रम पर विचार किया गया है।

चतुर्थ अध्याय

छन्दों का वर्गीकरण

(क) छन्दो का शास्त्रीय विवेचन

गण स्वरूप
लघु गुरु वर्ण
पाद
व्यूह द्वारा पाद पूर्ति
यति गुण दोष
सख्या सूचक शब्द

(ख) वैदिक छदोनिरूपण

प्रथम सप्तक के छद	द्वितीय सप्तक के छद	तृतीय सप्तक के छद
गायत्री	अतिजगती	कृति
उष्णिक्	शक्वरी	प्रकृति
अनुष्टुप्	अतिशक्वरी	आकृति
बृहती	अष्टि	विकृति
पक्ति	अत्यष्टि	सकृति
त्रिष्टुप्	धृति	अभिकृति
जगती	अतिधृति	उत्कृति

प्राग्गायत्रीपञ्चक-उक्ता, अत्युक्ता, मध्यमा, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा

(ग) लौकिक छन्दो निरूपण

(१) समवर्णवृत्त—

श्री	मत्तचेष्टित	वसन्ततिलका	गीता
धी	हलमुखी	मालिनी	स्रग्धरा
तटि	हसी	पञ्चचामर	मदालस
पुष्प	उपेन्द्रवज्रा	शिखरिणी	वृन्दारक
शिखा	द्रुतविलम्बित	नाराचक	दुर्मिला
तनुमध्या	मत्तमयूर	शार्दूल विक्रीडित	कौञ्चपदा
कुमार ललिता			भुजग विजृम्भित

(२) समवर्णवृत्त दण्डक
चण्डवृष्टि प्रपात
ललित

(३) असमवर्णवृत्त दण्डक
उत्कलिका

(४) अर्घसमवृत्त
सुबोधिता
उपजाति

(५) विषमवर्णवृत्त
गाथा
अनुष्टुप्
(श्लोक तथा पथ्य)
उपजाति
(इन्द्रमाला)

(६) मात्रावृत्त-गणवृत्त
आर्या
गीत्यार्या
गीति
उपगीति
आर्यागीति

चतुर्थ अध्याय

छन्दो का वर्गीकरण

(क) छन्दो का शास्त्रीय विवेचन

छन्दो का शास्त्रीय विवेचन से पूर्व छन्दोज्ञान के लिये गणो पर विचार कर लेना अप्रासगिक न होगा। गण दो प्रकार के होते है— (१) वर्णिक और (२) मात्रिक। मुख्यतया तीन अक्षरो के समूह को वर्णिक गण कहते है। इन गणो का विवेचन आचार्य पिगल ने (अपने छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ छन्द सूत्र के प्रथम अध्याय मे प्रथम सूत्र से अष्टम सूत्र तक) किया है। ये सख्या मे ८ है, जिनके नाम है—मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण और नगण। वक्र (= ऽ) और ऋजु (= ।) रेखाओ द्वारा गणो का स्वरूप प्रदर्शित किया जाता है। प्रत्येक वक्र रेखा को गुरु ओर ऋजु रेखा को लघु माना जाता है। वक्र रेखा की दो मात्राऍ और ऋजु रेखा की एक मात्रा होती है। गणो के स्वरूप को निम्न प्रकार से प्रकट किया जाता है—

(१) मगण = म ऽऽऽ, मगण के स्वरूप मे तीन वक्र रेखाऍ होती हैं, जो तीन गुरु शब्दो के समूह (धी श्री स्त्री) को प्रकट करती है ओर जिनकी ६ मात्राए गिनी जाती हैं। इस गण का देवता भूमि माना जाता है ओर पद्यारम्भ मे इसके प्रयोग करने से कवि को श्री की प्राप्ति होती है। इस गण को मित्र गण माना गया है।

(२) यगण = य ।ऽऽ, यगण के स्वरूप मे एक ऋजु और दो वक्र रेखाए होती हैं, जो एक लघु और दो गुरु शब्दो के समूह (वरा सा) को प्रकट करती है, जिनकी पाच मात्राए होती है। इस गण का देवता जल है। पद्यारभ में इसके प्रयोग करने से प्रयोक्ता की वशवृद्धि होती है। यह भृत्य गण है।

(३) रगण = र ऽ।ऽ, रगण के स्वरूप के मध्य मे एक ऋजु और उसके दोनों ओर एक एक वक्राकार रेखा होती है, जो मध्य मे एक लघु और उसके दोनो ओर एक एक गुरु शब्दो के समूह (का गुहा) को प्रकट करती है, जिसकी ५ मात्राऍ होती हैं। इस गण का देवता अग्नि है। पद्यारम्भ मे इसके प्रयोग करने से प्रयोक्ता को मृत्यु प्राप्त होती है। यह उदासीन माना जाता है।

(४) सगण = स ।।ऽ, सगण के स्वरूप में प्रारम्भ मे दो ऋजु और अन्त में एक वक्र रेखा होती है, जो प्रारम्भ मे दो लघु और अन्त में एक गुरु शब्द के समूह (वसुधा) को प्रकट करती है, जिसकी ४ मात्राए होती है। इस गण का देवता वायु है। पद्यारम्भ मे इसके प्रयोग करने से प्रयोक्ता का दूर गमन होता है। इस गण को नीच (शत्रु) गण माना जाता हैं।

(५) तगण = त ऽऽ।, तगण का स्वरूप प्रारम्भ में दो वक्र और अन्त में एक ऋजु रेखा से प्रकट होता है, जिसकी मात्राए पाच होती है, जो प्रारम्भ मे दो गुरु और अन्त मे एक लघु शब्द के समूह (सा ते क्व) को प्रकट करता है। इस गण का देवता व्योम है। पद्यारम्भ में इसके प्रयोग करने से प्रयोक्ता को शून्यत्व प्राप्त होता है। इस गण को नीच माना जाता है।

(६) जगण = ज ।ऽ।, जगण के स्वरूप मे मध्य मे एक वक्र और प्रारम्भ तथा अत में एक एक ऋजु रेखा होती है, जिसकी ४ मात्राए होती है, जो मध्य मे एक दीर्ध और प्रारम्भ तथा अन्त में एक लघु शब्द के समूह (कदा स)को प्रकट करती हैं। उस गण का देवता सूर्य है। पद्यारम्भ में उसके प्रयोग करने से प्रयोक्ता को रोग की प्राप्ति होती है। यह उदासीन गण है।

(७) भगण = भ ऽ।।, भगण का स्वरूप प्रारम्भ में एक वक्र और बाद में दो ऋजु रेखाओं से प्रकट होता है, जिसकी मात्राए—४ होती हैं, जो प्रारम्भ में एक गुरु और बाद में दो लघु शब्दो के समूह (कि वद) को प्रकट करती हैं। इस गण का देवता चन्द्र है। पद्यारम्भ मे इसका प्रयोग करने से प्रयोक्ता

को यश प्राप्त होता है। इसे भृत्य (दास) गण माना जाता है।

(८) नगण = न ।।।, नगण के स्वरूप मे तीन ऋजु रेखाए होती है, जो तीन लघु शब्दो के समूह (न हस) को प्रकट करती है, जिनकी ३ मात्राए होती है। इस गण का देवता नाक (स्वर्ग) है। पद्यारम्भ मे इसके प्रयोग करने से प्रयोक्ता को सुख प्राप्त होता है। इसे मित्र गण माना जाता है। निम्नाकित कोष्ठ से वर्णिक गणो के स्वरूप, देवता और फल को एक साथ प्रदर्शित किया जा रहा है—

गणनाम		स्वरूप	उदाहरण	मात्रा	देवता	शुभाशुभ फल	गणयोग
१ मगण	= म	ऽऽऽ	वागीश	६	भूमि	इष्ट श्री।	म न मित्र
२ यगण	= य	।ऽऽ	महेश	५	जल	इष्ट वृद्धि।	भ य दास
३ रगण	= र	ऽ।ऽ	पार्वती	५	अग्नि	अनिष्टमृत्यु।	ज र उदासीन
४ सगण	= स	।।ऽ	करुणा	४	वायु	अनिष्टमृत्यु दूरगमन।	त स शत्रु
५ तगण	= त	ऽऽ।	जागर्ति	५	व्योम	अनिष्टमृत्यु, शून्य।	
६ जगण	= ज	।ऽ।	धुनोति	४	सूर्य	अनिष्टमृत्यु, रोग।	
७ भगण	= भ	ऽ।।	गच्छति	४	चन्द्र	इष्टयश।	
८ नगण	= न	।।।	भवति	३	स्वर्ग	इष्ट यश, सुख।	

उक्त अष्ट गणो मे मगण, यगण, भगण और नगण नामक इष्ट गणो के काव्यारम्भ मे प्रयोग करने से कवि को कीर्ति लाभ होता है,[१] और रगण, सगण, तगण तथा जगण नामक अनिष्ट गणो के काव्यारम्भ मे प्रयोग से प्रयोक्ता का अनिष्ट होता है।[२] इनमे से कुछ गण मित्र माने जाते है और कुछ अमित्र।[३] मगण और नगण को मित्र, भगण और यगण को भृत्य, जगण और रगण को उदासीन और तगण तथा सगण को नीच गण कहा गया है।[४] काव्यारम्भ मे कवि को केवल मित्र गणो के योग मे धन, भृत्यगणो के योग मे दूरगमन और उदासीन गणो के योग मे दरिद्रता, नीच गणो के योग मे मृत्यु, मित्र और भृत्य गणो के योग मे स्थिरता मित्र और उदासीन गणो के योग मे शून्यत्व, तथा मित्र और नीच गणों के योग मे कलह प्राप्त होती है।[५] इन अष्ट गणो का लौकिक काव्यान्तर्गत अपारच्छन्दो मे प्रयोग होता है। जिस प्रकार भगवान् विष्णु से त्रिलोकी व्याप्त है, उसी प्रकार मगणादि अष्ट वर्णिक गणो से समस्त वाङ्मय व्याप्त हैं।[६] भरत-पिगलादि दुःखभञ्जन पर्यन्त सभी छान्दस आचार्यों ने मगणादि अष्ट गणो का उल्लेख किया है, किन्तु जनाश्रय कृत छन्दोविचिति मे १८ वर्णिक गणों का निरूपण मिलता है[७] जिनमे

---

१ मयभनप्रयोगात्कीर्ति। छन्द सूत्र २।१०।

२ अनिष्ट शेषे। छन्द सूत्र- २।११।

३ मित्रामित्रयोगात्। छन्द सूत्र- २।१२।

४ अखिलानन्द छन्द सूत्र भाष्य-२।१३।

५ भ्यौ ज्रौ त्सौ योगायोगाभ्याम्। छन्द सूत्र- २।१४।

६ भ्यरस्तजम्नगै र्लान्तैरेभिर्दशभिरक्षरै।
समस्त वाङ्मय व्याप्त त्रैलोक्यमिव विष्णुना। भट्टकेदारकृत वृत्तरत्नाकर-१।६।

७ जानाश्रयी छन्दोविचिति-१।१८ से ३५ तक सूत्र।

मगणादि अष्ट त्रिको के अतिरिक्त जो १० गण दिये गये हैं, वे निम्नाकित हैं—

द्विक (द्विवर्णयुक्त)	(१) सगण = स∪∪,	(२) जगण = ज ।∪,[८]
	(३) पगण = प ∪ ।,	(४) रगण = र ॥,
चतुष्क (चतुर्वर्णयुक्त)	(५) दगण = द ॥॥,	(६) यगण = य ।॥∪,
	(७) षगण = ष ∪ ।∪∪,	
पचक (पचवर्णयुक्त)	(८) टगण = ट∪ ।∪ ।∪	(९) त्रगण = त्र ∪ ॥∪∪,
षट्क (षड्वर्णयुक्त)	(१०) णगण = ण ॥॥॥,	

मगणादि अष्ट त्रिकों के निम्न नाम मिलते है—

म = ग, य = ड, र = श, स = ल, त = ब, ज = क, भ = त, न = म।

परन्तु परवर्ती छान्दस आचार्यों ने जनाश्रय द्वारा निर्मित अष्टादश वर्णिक गण प्रणाली को नही अपनाया और सबने पिगल द्वारा स्वीकृत मगणादि अष्टवर्णिक गण प्रणाली का ही अपने अपने छान्दस ग्रन्थो मे प्रयोग किया । अत मगणादि प्रणाली ही उपयुक्त मानी गयी, क्योकि उसमे जनाश्रय द्वारा प्रदर्शित अतिरिक्त दस गणो का भी समावेश हो जाता है।

मात्रिक गण

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में पच मात्र, षण्मात्र आदि का उल्लेख मिलता है।[९] किन्तु पिगल के छन्द सूत्र मे गणवृत्तो के निरूपणार्थ केवल चतुर्मात्रिक गणका भेद तथा स्वरूप सहित निरूपण किया गया है।[१०] और जनाश्रय ने पचमात्रिक गण का भी उल्लेख किया है तथा छन्दोविचिति की वृत्ति मे गणस्वामी ने उस पचामत्रिक गण का सभेद विवरण दिया है।[११] स्वयम्भू छन्द में षाण्मात्रिक गण से द्वैमात्रिक गण तक पच गणो का क्रमश छ, प, च, त, द नाम सहित विवरण मिलता है।[१२] विरहाक ने कुछ गणो के भेदो के नाम भी दिये है।[१३] हेमचन्द ने उनके प्रस्तारभेद भी किये है,[१४] कवि-दर्पण मे जिनके प, त, ट, च, क के रूप में नाम सकेतित हैं[१५] तथा प्राकृत पैंगल मे ट, ठ, ड, ढ, ण नाम भी मिलते

---

८ जनाश्रय द्वारा स्वीकृत हस्व चिह्न ।, दीर्घ चिह्न ∪ ।

९ प्राकृत प्रकृतीनान्तु पचमात्रो गण स्मृत ।
वैतालीय पुरस्कृत्य षण्मात्राद्यास्तथैव च । भरत नाद्यशास्त्र-१५ । १०८-१०९ ।

१० ल समुद्रा गण । गौगन्तमध्यादिर्लश्च । छद सूत्र-४ । १३-१४ ।

११ पचहाश्च । जानाश्रयी छन्दोविचिति-१ ।३९ और इसी सूत्र की वृत्ति मे पचमात्रिक गण के ८ भेद किये गये हैं-कृशागी (-), धीवरा (।), ते श्री क्व (- ।), चन्द्रनतु (॥।), नदी ननु (। ॥), ननु चन्द्र (॥ ।), कमलिनी (॥।), ननुतरति (॥॥।) ।

१२ छप्पचच तिदुअलाछपचतदा पा अम्मि पच गणा । स्वयम्भूच्छन्द (पूर्वभाग)-१ ।२ ।

१३ विरहाककृतवृत्तजातिसम्मुच-१ ।१७-२२, २७-२९

१४ द्वित्रिचतु पचषट्कला दतचपषाद्विविपञ्चाष्टत्रयोदश भेदा मात्रागणा । छदोनुशासन-१ ।३ ।

१५ नेया मताच्छन्दसि दुतिचउपचछकला गणा पच ।
दुतिपचअट्ठतैरसभेइल्ला कचटतपनामा ॥ कविदपर्ण-१ ।२ ।

है,[१६] जो परवर्ती छान्दस ग्रन्थ वाणीभूषण[१७] वृत्तमौक्तिक[१८] तथा वाग्वल्लभ[१९] मे भी नाम सहित स्वीकृत किये गये है।

काव्यो मे गणो की स्थिति

यह आवश्यक माना जाता है कि काव्यगत पद्यो मे ऐसे ही शब्दो का प्रयोग हो, जिसके प्रत्येक गण अलग-अलग दृष्टिगत हो, अपितु जिस छन्द के लिए जितने गणो का निर्देश आवश्यक होता है, उसके अनुसार वर्ण पूरे होते है। अत गणो की गणना कही पृथक्-पृथक् प्रयुक्त वर्णो से, कही एक पद स्थित वर्णों से और कही सयुक्त वर्णो से मिला कर की जाती है। उदाहरणार्थ—

तेन प्रविभक्ता काम वयसा सा।[२०]

इस प्रकार वर्णिक छन्द निश्चित गण वर्ण तथा गुरु लघु क्रमानुसार पक्तिबद्ध होते है किन्तु मात्रिक छन्दो मे वैसा नही होता। मात्रिक छन्दो मे तो मात्राए पूर्ण की जाती है, चाहे उनकी पक्ति मे वर्ण अधिक हो या कम, किन्तु कुछ मात्रिक छन्द ऐसे भी होते है, जिनमे मात्रिक नियम के पालन के साथ-साथ किसी विशिष्ट पाद के अन्तर्गत किसी गणविशेष का नियमन भी आवश्यक होता है। जैसे—

डगणाश्चतुर पादे विधेहि, अन्ते गणमिह मध्यगमवेहि।
इति पज्झटिका निखिलचरणेषु, षोडशमात्रा सर्वचरणेषु॥[२१]

इससे स्पष्ट है कि पज्झटिका छन्द के प्रत्येक पाद मे 16 मात्राए होती है, और प्रत्येक पाद के अन्त मे जगण का भी विधान होता है, इसके अतिरिक्त इसका प्रत्येक चरण निश्चित गण, वर्ण तथा गुरु लघु क्रम मे स्वतत्र है।

लघु गुरु वर्ण विचार

छन्द शास्त्र में लवर्ण से लघु और ग से गुरु का ज्ञान होता है।[२२] लघु से तात्पर्य ह्रस्व है। ह्रस्व मात्रा का सबसे छोटा प्रकार है। एक मात्रा के उच्चारण मे जितना समय लगता है, उस समय मे उच्चरित स्वर को ह्रस्व कहते है और ह्रस्व स्वर के उच्चारण मे प्रयुक्त वर्ण को लघु कहा जाता है।[२३] गुरु से अभिप्राय दीर्घ से है। दीर्घ स्वर मे दो मात्राए होती है और दो मात्राओ के साथ उच्चारण करने में प्रयुक्त वर्ण को दीर्घ कहते है। उसी दीर्घ शब्द को गुरु वर्ण के व्यवहार से जाना जाता है।[२४] महा वैयाकरण महर्षि पाणिनि ने अपने व्याकरण शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाध्यायी मे ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत

---

१६ प्राकृतपैगल-१ ।१२,१३।
१७ टठडढणेति गणा स्यु षट्पचचतुस्त्रियुग्ममात्राणाम्। वाणीभूषण-१ ।७।
१८ वृतमौक्तिक-१ ।१ ।१५-३८।
१९ वाग्वल्लभ-मात्राप्रस्तार-१ से ३४।
२० सुवृत्ततिलक-१ । ६।
२१ वृत्तमौक्तिक-१ । ३ । १।
२२ गुर्वेक गिति विज्ञेय तथा लघु लिति स्मृतम्। नाट्यशास्त्र-१५ ।८९ ग्लौ। छद सूद्ध-१ ।१४।
२३ गृल्। छद सूत्र १ ।९।
२४ हे । छद सूत्र १ ।१२

नामक तीन स्वरो और उनकी मात्राओ पर प्रकाश डाला है।[२५] परन्तु छन्द शास्त्र मे प्लुत स्वर मे युक्त वर्ण, जिसमे तीन मात्राए होती है, का उल्लेख नही मिलता। ह्रस्व स्वर की एक तथा दीर्घ स्वर की २ मात्राए होती है। लघु एक मात्रिक ह्रस्व का और गुरु द्वैमात्रिक दीर्घ का पर्याय है। ह्रस्व का साकेतिक चिह्न है खडी सरल रेखा (।) और दीर्घ का साकेतिक चिह्न है सरल रेखा का विकृत रूप वक्र रेखा (ऽ)।[२६] सयुक्त वर्ण, विसर्ग, जिह्वमूलीय तथा उपध्मानीय चिह्नो मे पूर्व और अनुस्वार से युक्त लघु वर्ण भी गुरु सज्ञक होता है।[२७] किन्तु पाद के अन्त मे स्थित लघु वर्ण की गुरुता विकल्प से स्वीकार की जाती है।[२८] इसका तात्पर्य है कि पादान्त का लघु वर्ण कही गुरु माना जाता है और कही पर वह लघु रूप मे ही रहता है। जैसे—अथ वासवस्य वचनेन[२९]-यह उद्गता छन्द का प्रथम पाद हैं। इसके पादान्तर्गत 'न' लघु वर्ण गुरुता को प्राप्त नही होता, अपितु व्रह अपने लघु रूप मे ही रहता है कितु इसके विपरीत उपजाति छन्द के प्रथमपाद 'सचारपूतानि दिगन्तराणि'[३०] के पादातर्गत ह्रस्व णि वर्ण अपनी लघुता के स्थान पर गुरुता को प्राप्त करता है।

सयुक्त वर्ण से पूर्व लघु वर्ण की जो गुरुता स्वीकार की है, वह पाद के मध्य मे होती है, किन्तु प्र और ह्र सयुक्त वर्ण के पूर्व लघु वर्ण कही-कही विकल्प से गुरु होता है।[३१] छन्दोमन्जरी मे कवियो के कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये गये है, जिनमे प्र और ह्र से पूर्व लघु वर्ण गुरु न होकर ह्रस्व ही रहता है।[३२] जैसे-गृहीत प्रत्युद्गमनीयवस्त्र[३३] इस कुमारसम्भवान्तर्गत उपजातिवृत के द्वितीय पाद मे सयुक्त प्र वर्ण के पूर्व लघुतकार ह्रस्व ही माना जाता है और प्राप्य नाभिह्रद मज्जनमाशु[३४] स्वागता छन्द के इस प्रथम पाद मे सयुक्त ह्र वर्ण के पूर्व लघु मि वर्ण गुरु न होकर ह्रस्व ही रहता है। इस सन्दर्भ मे कण्ठाभरणकार[३५] का मत है कि तीव्र प्रयत्न (झटके) के साथ उच्चारण करने में सयुक्त वर्ण से पूर्व लघु गुरु न होकर ह्रस्व ही रहता है और ऐसी स्थिति में छन्दोभग दोष भी नही होता किन्तु इसी पद्य के द्वितीय तथा तृतीय चरण मे सयुक्त वर्णो के पूर्ण लघु वर्ण गुरुता प्राप्त है।

पादादि मे स्थित वर्ण सयोग को क्रमसज्ञक कहते है। इस क्रमसज्ञक सयोग के पूर्व लघु वर्ण

---

२५ एक मात्रो भवेद् घ्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते। छदोमजरी-१।४। (टीका)।
ऊकालोऽज्झ्स्वदीर्घप्लुत। अष्टाध्यायी-१/२/२७।

२६ (१) जानाश्रयी छन्दोविचिति-१।१७। (ऽ) वान्तेग्वक्र। जयदेवच्छन्द-१।४।

२७ घ्रादिपर। छन्द सूत्र-१।११।

२८ गन्ते। छन्द सूत्र-१।१०। पादान्ते वा। छन्दोविचिति-१।१३।

२९ भारविकृत किरातार्जुनीय-१२।१।

३० कालिदासकृत-रघुवश-२।१५।

३१ प्रह्रे वा। इति पिगलमुनेर्विकल्पविधायकसूत्र नाद्यत्वे प्रचलिते पिगृलच्छन्दसूत्रे दृश्यते। छन्दोमञ्जरी-१।११ और इसकी प्रभाटीका।

३२ सा मगलस्नान .... तथा प्राप्य नाभिह्रद .... पद्या। छन्दोमजरी-१।११।

३३ कालिदासकृत कुमारसम्भव-६।११ का द्वितीय चरण।

३४ छन्दोमञ्जरी-१।११।५, पृ० ७।

३५ यदातीव्रप्रयत्नेन सयोगादेरगौरवम्।
न छन्दोभग इत्याहुस्तदा दोषाय सूरय॥ सरस्वती कण्ठाभरण।

गुरुता को प्राप्त होकर भी इष्ट सिद्धि न कर सकने के कारण लघु माना जाता है ।[३६] जैसे—'अल्पव्ययेन सुन्दरि ग्राम्यजनो मिष्टमश्नाति ।'[३७] इस आर्या छन्द के तृतीय पाद के अन्त मे 'सुन्दरि' सम्बोधन पद का रि वर्ण, छन्द के चतुर्थपाद के आदि मे 'ग्रा' सयुक्त वर्ण के पूर्व मे होने से गुरु है और उसके गुरु होने पर १३ मात्राए हो जाती है, जबकि आर्या छन्द के प्रथम और तृतीय पाद मे बारह मात्राए इष्ट होती है । इस प्रकार इष्ट की सिद्धि न होने से यहा उसके गुरुत्व होने पर भी लघुत्व ही माना जाता है ।

पाद

सामान्यत छन्द में चार चरण होते है । छन्द के एक चरण को पाद कहते है ।[३८] वैदिक छन्दो मे से कुछ छन्द केवल एक पाद के और कुछ दो पादो के तथा कुछ पाच और छ पादो के भी मिलते हैं, किन्तु उनमे त्रिपाद और चतुष्पाद छन्दो की बहुलता है । यजुर्वेद मे कुछ विच्छन्द अर्थात् विषमच्छन्द और सच्छन्द अर्थात् समानपादवाले छन्दो के प्रति भी सकेत मिलता है ।[३९] विषमच्छन्दो मे पाद समान नही होते तो उनमे जितने अक्षरो का जो चरण होता है, उसे ही उस छन्द का पाद माना जाता है । इनमे वृत्त समाप्ति पर्यन्त पाद का ग्रहण होता है ।[४०] समच्छन्दो मे समान पाद और अर्थसमच्छन्दो मे पाद अर्थसम होते है । गणच्छन्दो मे निर्धारित गणो के आधार पर, मात्रिक छन्दो मे मात्राओ के अनुसार तथा वर्णिक छन्दो मे निश्चित वर्णो के आधार पर पाद-व्यवस्था की जाती है ।[४१] श्लोक के चतुर्थ अश को पाद कहा जाता है ।[४२] चार पादो को मिलाकर पद्य बनता है और पद्य के एक भाग को पाद कहते है ।[४३]

व्यूह द्वारा पादपूर्ति

वैदिक मन्त्रो मे सिद्ध सन्धियो को तोडकर दो स्वतन्त्र अक्षरो के ग्रहण को व्यूह कहते है ।[४४] जिस छन्द मे गायत्रादि पादो द्वारा अक्षर सख्या पूर्ण नही होती, उसमे व्यूह द्वारा अक्षर पूर्ति करने का विधान है । आचार्य शौनक ने एकाक्षरीभाव और क्षैप्रवर्ण सयोग में व्यूह करने को कहा है[४५] । यही मत कात्यायन का भी है,[४६] जिससे एकाक्षरीभाव व्यूह मे सवर्ण, गुण, वृद्धि, पूर्व रूपादि सधियो का ग्रहण होता है । जैसे—

सास्माकेभिरेतरी न शूषै । ऋग्वेद–६/१२/४ ।

यह त्रिष्टुप् छन्दस्क मन्त्र का प्रथम चरण है किन्तु इसमे १० अक्षर हैं । अत एक अक्षर की पूर्ति

---

३६ वृत्तरत्नाकर–१ ।१० ।

३७ छन्दोमञ्जरी–१ ।११ मे तरुण सर्षपशाक ....पद्य ।

३८ पादश्च पद्यते धातोश्चतुर्भाग इति स्मृत । नाट्यशास्त्र–१५ ।५० ।

३९ द्विपदा ....शक्यन्तु त्वा । यजुर्वेद ।

४० यथावृत्तसमाप्तिर्वा । छन्द सूत्र–४ ।१२ ।

४१ अखिलानन्दशर्मकृत छन्द सूत्र वैदिक भाष्य–४ ।१२ ।

४२ पादश्चतुर्थभाग । छन्द सूत्र–४ ।११ ।

४३ पद्य चतुष्पदी ....। छञ्दोमन्जरी–१ ।४ ।

४४ आषोडशाक्षरनामा अभिक्रामति विकर्षेण । निदानसूत्र–१ ।१, पृ० २ ।

४५ व्यूहेदेकाक्षरीभावान् पादेषूनेषु सम्पदे ।
क्षैप्रवर्णाश्च सयोगान् व्यवेयात् सदृशै स्वरै ॥ ऋक्प्रातिशाख्य-१७ ।१४ ।

४६ पादपूरणार्थ तु क्षैप्रसयोगैकाक्षरीभावान् व्यूहेत् । ऋक्सर्वानुक्रमाणी ।

के लिये सवर्ण दीर्घ सन्धि का व्यूह (विच्छेद[४७]) करके त्रैष्टुभ पाद के ११ अक्षर पूर्ण किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त पिगल ने व्यूह मे इय, उव भाव का भी विधान बताया है,[४८] जिसके अनुसार गायत्री मन्त्र[४९] मे वरेण्य के स्थान पर 'वरेणिय' पाठ द्वारा पादपूर्ति करनी पडती है, अन्यथा वह निचृद् गायत्री कही जाती[५०]। इसी प्रकार दिव गच्छ स्व पत 'इस मन्त्र मे 'स्व' के स्थान पर 'सुव' पाठ द्वारा पादपूर्ति निरर्थक नही मानी जाती[५१]।

यतिविधान

विच्छेद को यति कहते है।[५२] छन्द के जिस चरण मे जहा पदपाठ का विच्छेद होता है, उस विरामस्थान को यति कहा जाता है। श्रवणसुविधा के लिए नियत स्थानो पर यति का विधान है। जिह्वा द्वारा इष्ट विश्रामस्थल को नियत स्थान कहा गया है।[५३] जिस स्थान पर जिह्वा स्वेच्छापूर्वक विश्राम करती है, उसे कवि यति कहते है। वह यति उच्चारक की इच्छानुसार विच्छेद, विराम, विरति आदि नामातरो से व्यवहृत की जाती है।[५४] यति छन्द मे सर्वत्र नही होती, छन्दो के अनुसार उसके स्थान निश्चित हैं। समवृत्तपरक पद्यो मे मध्यभाग के अतिरिक्त पादान्त मे यति अवश्य होती है। अर्धसमवृत्तपरक पद्यो मे यति पादान्त और श्लोकार्द्ध भाग मे भी पायी जाती है। विषमवृत्तपरक पद्यो मे पादमध्य, पादान्त तथा तीन पादो के अन्त मे भी यति का विधान है।[५५] उपस्थित प्रचुपित छन्द प्रकरण मे छन्द के प्रथम चरण को पढने के बाद शेष तीन पादों को एक साथ पढा जाता है। श्वेत माण्डव्यादि छन्द शास्त्र के आचार्य यति को स्वीकार नही करते।[५६] उनके मतानुसार छन्दों मे सर्वत्र यति का अभाव रहता है।[५७] आचार्य सैतव के मतानुसार पादान्त मे ही यति होती है।[५८] भरत मुनि का मत है कि जहा श्वास का विच्छेद हो, वही छन्द का विरामस्थल होगा।[५९] यास्क मुनि तो सरसपदगत विराम को यतिस्थल स्वीकार करते है[६०] और छन्दोविचितिकार जनाश्रय छन्दोगत पदच्छेद को यतिस्थल

---

४७ सा आस्माकेभिरेतरी न शूषे। ऋग्वेद–६।१२।४।

४८ इयादिपूरण। छन्द सूत्र–३।२।

४९ तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो न प्रचोदयात्॥ ऋग्वेद-३।६२।१०

५० या एकेनाक्षरेणोनास्ता निचत। निदानसूत्र–१।१, पृ० ९। छद सूत्र–३।५९।

५१ अखिलानन्दशर्मकृत छन्द सूत्र वैदिक भाष्य–३।२।

५२ नियत पादविच्छेदो यतिरित्यभिधीयते। नाट्यशास्त्र–१५।९०।

५३ छन्द सूत्र वैदिक भाष्य–६।१।

५४ यतिर्जिह्वेष्ट विश्रामस्थान कविभिरुच्यते।
सा विच्छेद विरामाद्यै पदै र्वाच्या निजेच्छया। छन्दोमञ्जरी-१।१२।

५५ यति सर्वत्र पादान्ते श्लोकार्द्धेतुविशेषत।
क्वचित्पादत्रयस्यान्ते समताविषमादिषु। अखिलानन्द शर्मकृत छन्द सूत्र वैदिक भाष्य–६।१।

५६ श्वेतमाण्डव्यमुख्यास्तु नेच्छन्ति मुनयो यतिम्। छन्दोमञ्जरी–१।१४।

५७ श्वेतमाण्डव्यादीना मते सर्वथा यत्यभाव॥अखिलानन्द शर्मकृत-छन्द् सूत्र वैदिकभाष्य–६।१।

५८ सैतवादीना मते पादान्त एव यति। वही–६।१।

५९ भरतमुनेर्मते श्वासविच्छित्तिरेव विरामस्थलम्। वही–६।१।

६० सरस पदगतरसापेक्षी विराम एव यतिस्थलमिति यास्कमुनेर्मतम्॥ वही–६।१।

मानते है।[६१] जो आचार्य पिगल के मत से भिन्न नही है।

यतिभेद, गुण और दोष

यति दो प्रकार की होती है, शुद्ध यति और अशुद्ध यति। शुद्ध यति दोषरहित होती है, जिसे यति गुण कह सकते है और अशुद्ध यति दोषयुक्त होती है, जिसे यतिदोष कह सकते है। शुद्ध यति के तीन भेद होते है—(१) पादान्तगतयति, (२) पदान्तर्गत यति और (३) सन्धिगत यति। पादान्तगतयति सर्वशुद्ध मानी जाती है, क्योकि वह पाद के अन्त मे होती है, जिसमे किसी प्रकार के दोष की सम्भावना नही रहती।[६२] (२) पदान्तर्गतयति को तब शुद्ध माना जाता है, जब वह पद के अन्त मे होती है, जिससे फिर किसी प्रकार के पदविच्छेद की सम्भावना नही रहती।[६३] (३) सन्धिगत यति वह शुद्ध होती है, जिसमे सन्धियुक्त पद यति ग्रहण के बाद भी पृथक्-पृथक् रहे और यति ग्रहण मे किसी पूर्वापर पद के किसी वर्ण पर आघात न हो।[६४] अन्यथा सन्धियुक्त पद के मध्य मे यति अपनी मधुरता खो बैठती है।[६५] अत सधियुक्त पद के मध्य मे जब यति हो तो वह ऐसे स्थल पर होनी चाहिये, जिससे सधिगत दोनो पद यति ग्रहण के बाद भी पृथक्-पृथक् रहे, ताकि उसमे किसी प्रकार के दोष की सम्भावना न रहे।

अशुद्धछति दो प्रकार की होती है पदमध्यगतयति और सन्धिमध्यगतयति। पदमध्यगतयति तो एक यति दोष है,[६६] जो एक ही पद के दो खण्ड कर देता है, जिससे पद का यति से विभक्त होकर अनर्थ हो जाता है। अत पदमध्यगतयति शोभा नही देती। क्योकि पद के मध्यगत विच्छेद पद की महत्ता को समाप्त कर देता है, जिसमे पद दो खण्डो मे विभक्त-सा होकर निरर्थकता मे परिणत-सा प्रतीत होता है। अत पद मध्यगत यति सर्वथा हेय है। सन्धिमध्यगत यति भी एक यति दोष ही है,[६७] जिससे सन्धियुक्त पद यति से पूर्वापर पद के वर्ण से आक्रान्त हो जाता है। अत सधिमध्यगत यति भी सर्वथा हेय ही है। ये यतिदोष महर्षि यास्क के मतानुसार वृत्तदोष से पृथक् नही होते, क्योकि वृत्त यत्यात्मक होते है।[६८] और वृत्त के स्वरूप से भिन्न होते हुए भी यति वृत्तान्तर्गत होने से वृत्त लक्षणो मे निबद्ध की जाती है।[६९] अत यतिदोष वृत्तदोष है।

निष्कर्ष यह है कि पादमध्यगत विराम लेते समय यदि छन्द अपनी स्वाभाविक रसता से रहित हो जाता है, तो वह विरामस्थल यति दोष मे परिणत हो जायेगा। पादमध्यगत नियत स्थलो पर यति ग्रहण नितान्त आवश्यक है, अन्यथा छन्दोगतलय मे कर्णपटुता का समावेश हो जायेगा। अत नियत स्थलो

---

६१ यति पदच्छेद। जानाश्रयी छन्दोविचिति—१।४०।

६२ अथेप्सित भर्तुरुपस्थितोदयम्। कालिदास, रघुवश—३।१।

६३ कश्चित्कान्ता विरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्त। कालिदास, मेघदूत—१।१।

६४ द्राक्षे। द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत। मृतमसि क्षीर। नीर रसस्ते। इसमे त्वाम् पर यति है। जयदेवकृत गीतगोविन्द—१२।१२।

६५ माक्रन्द। क्रन्दकान्ताधर। धरणितल गच्छ, गच्छन्ति यावत्। गीतगाविन्द—१२।१२।

६६ भाव शृगारसारस्वतमयजयदेवस्य विष्वर वचासि। गीतगोविन्द—१२/१२।

६७ द्राक्षे। द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत ________। इसमे 'त्वाम्' पद का मकार 'अमृत' पद के पूर्व अकार से आक्रान्त है। अत यति दोष है। गीतगोविन्द—१२।१२।

६८ न वृत्तदोषात्पृथग्यतिदोषो वृत्तस्य यत्यात्मकत्त्वादिति। छन्द सूत्र वैदिकभाष्य—६।१।

६९ यतिश्चेय वृत्तस्वरूपाद्भिन्नापि गुणालकाराद्यपेक्षया तदन्त।______।वही—६।१।

पर यतिग्रहण के प्रति एक निश्चित सकेत मिलता है,[७०] जिसके अभाव मे यतिभग दोष होने से छन्द की गति मे बाधा पडती है,[७१] और पद्य मधुरता से हीन होकर श्रवणसुख को ठेस पहुचाता है तथा छन्द की शोभा नष्ट हो जाती है। अत छन्द मे शुद्ध यति का होना अनिवार्य होता है। यति यदि पद के अन्त मे की जाती है, तो वह छन्द की शोभा को बढाती है और यदि वह पद के मध्य मे होती है, तो शोभा को घटाती है किन्तु पदमध्यगत यति यदि स्वर सन्धि से युक्त होती है, तो वह छन्द की मनोहरता को नही खोती।[७२] इसलिये सहृदय जन के हृदय मे जब यति से किसी प्रकार का उद्वेग उत्पन्न नही होता, तो यति माधुर्योत्पादक मानी जाती है।[७३] जिस यति के निर्देश से श्रवणसुख की हानि न हो, लोक मे उस यति का आदर होता है। अत वह यति शुद्ध होगी, जिसमे किसी प्रकार का दोप न होगा।

काव्यादि मे स्वर व्यञ्जन प्रयोगों का फल

काव्यो के आदि मे अवर्ण के प्रयोग करने से कवि की सम्पत्ति बढती है। प्रत्येक व्यक्ति की यह भावना रहती है कि उसके द्वारा किये गये कार्य का सर्वत्र मगल हो, वह शुभ हो, उपकारी हो और अपने मे पूर्ण हो। अत आचार्यों ने वर्ण माला के प्रथम अक्षर 'अ' को शुभ माना है और उसे अपने ग्रन्थो के प्रारम्भ मे 'अथ' पद के रूप मे प्रयुक्त किया है।'अथ' पद के प्रारम्भ का द्योतक है। इस वर्ण के प्रयोग से कवि को धनलाभ होता है। यदि कोई कवि अपने काव्य या ग्रन्थ के प्रारम्भ मे उ वर्ण का प्रयोग करता है तो उसे ख्याति नही मिलती। काव्यारम्भ मे ऋ शब्द के प्रयोग से कवि को सुख और वृ के प्रयोग से द्वेष प्राप्त होता है। प्रत्येक वर्ग के अन्तिम वर्ण ङ ञ ण न म और भ र व ह ल से वर्जित एच् प्रत्याहार के किसी भी वर्ण से यदि काव्य का प्रारम्भ होता है तो कवि को सौख्य मिलता है।[७४] काव्यादि मे प्रयुक्त व्यञ्जन क ख ग घ लक्ष्मी प्रदान करते है। ङ अपयश देता है। च से सुख, ह से प्रीति, ज से मित्रलाभ, झ से भय, ञ से मरण, ट से खेद, ठ से दु ख, ड से शोभा, ढ से विशोभा, ण से भ्रमण, त से सुख, थ से युद्ध, द और ध से सुख, न से आनन्द, प से सुख, फ से भय, ब से मरण, भ से क्लेश, म से दु ख, य से लक्ष्मी, र से दाह, ल और व से व्यसन, श से सुख, ष से खेद, स से सौख्य और ह से दु ख, ठ से विलय और क्ष से समृद्धि प्राप्त होती है। यह उक्त वर्ण-विन्यास के द्वारा गद्य-पद्य समस्त प्रकार के

---

७० श्लोकेषु नियतस्थाने पदच्छेद यति विदु ।——दण्डी-काव्यादर्श।

७१ गीतगोविन्द–१२ ।१२ के चतुर्थ चरण के १४वें वर्ण 'जयदेवस्य' पद के 'दे' पर यति से नियत स्थान के अभाव मे छन्द की यति में बाधा पडती है।

७२ पदान्ते सा शोभा व्रजति पदमध्ये त्यजति च।
पुनस्तत्रैवासौ स्वरविहितसन्धि श्रयति ताम् ॥
छन्दोमञ्जरी–१ ।१३ में उद्धृत पुरुषोत्तमकृत-छन्दोगोविद का पद्य।

७३ एव यथा यथोद्वेग सुधिया नोपजायते।
तथा तथा मधुरतानिमित्त यतिरिष्यते॥ छन्दोमन्जरी–१ ।१३ टीका में उद्धृत देवेश्वरकृत कविकल्पतला का पद्य।

७४ छन्दसूत्र–२ ।१ से २ ।५,७ तक।

सस्कृत-प्राकृत कवि वचनो मे समान रूप से यथोचित फल प्रदान करने के प्रति आचार्य भामह का स्पष्ट सकेत है ।[७५] दण्धाक्षरो को छोडकर समस्त स्वर प्रयुक्त होने पर अपने-अपने फलो को प्रदान करते है। और वे यदि स्वर प्रयोग मे दण्धाक्षरो से युक्त होते है, तो व्यञ्जन प्रधान फल देते है । अदग्धाक्षरों के प्रयोग मे प्रयोक्ता के लिये आचार्य पिगल का यथेष्ट लाभ के प्रति सकेत है ।[७६] अनुस्वार और विसर्ग का प्रयोग मे शुभ फल बताया गया है और लृकार के प्रयोग से प्रयोक्ता को विदेश गमन तथा धन की हानि होती है ।[७७] दग्धाक्षरो से तात्पर्य अशुभ फल प्रदान करने वाले वर्णो से और अदग्धाक्षरो से तात्पर्य शुभ फल देने वाले वर्णो से है ।[७८]

सख्या सूचक शब्द

छन्द शास्त्र मे कुछ ऐसे शब्दो का भी प्रयोग किया जाता है, जिनसे सख्याको का ग्रहण होता है। ऐसे शब्दो को सख्यासूचक शब्द कहते है । पिगलाचार्य ने वसु शब्द के प्रयोग से अष्टबोधक सख्या के ग्रहण की ओर सकेत किया है ।[७९] जिससे छन्द शास्त्रीय ग्रन्थो मे ईश्वर, पक्ष, काल, वेद, भू, ऋतु, ऋषि, वसु, ग्रह, दिशा, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव, भुवन, तिथि, कलादि शब्दो के द्वारा १ से १६ तक की सख्या का ग्रहण किया जाता है । कभी-कभी सख्याधिक्य को प्रकट करने के लिये सख्यासूचक शब्दों के योग को भी प्रयुक्त करते हैं जिससे इष्ट सस्था का ग्रहण होता है । जयदेव, केदारभट्ट आदि ने भी सख्यासूचक शब्दो के प्रयोग से सख्याको के ग्रहण के प्रति सकेत किया है ।[८०] आचार्य हेमचन्द्र ने तो क ख ग आदि वर्णों के प्रयोग से सख्याको का ग्रहण किया है ।[८१] जिससे सूत्र प्रक्रिया द्वारा

---

७५ क खो गो घश्च लक्ष्मी वितरति वियशो डस्तथा च सुख छ ।
प्रीति, जो मित्रलाभ भयमरणकरौ झ्ञौ टठौ खेददु खे।
ड शोभा ढो विशोभा भ्रमणमथ च णस्त सुख थस्तु युद्धम् ।
दो ध सौख्य मुद न सुखभयमरणक्लेशदु ख पवर्ग ।
यो लक्ष्मी रस्तु दाह व्यसनमथ लवौ श सुख षस्तु खेदम् ।
स सौख्य हस्तु दु ख विलयमपि च ल क्ष समृद्धि करोति ।
सयुक्त चेह न स्यात्सुखभरणपटु र्वर्णविन्यास योग ।
पद्यादौ गद्यवक्त्रे वचसि च सकले प्राकृतादौ समोऽयम् ।
अखिलानन्द शर्मकृत छन्द सूत्र वैदिक भाष्य– २ ।९, पृ० १० पर उद्‌धृत आचार्य भामहप्रणीत पद्य ।

७६ दग्धाक्षरवर्जम् । शेषे यथेष्टलाभ । छन्द सूत्र– २ ।८,९ ।

७७ अनुस्वार विसर्गयोस्तु शुभमेव फल........... । छन्द सूत्र– वैदिकभाष्य– २ ।९ ।

७८ दग्धादग्धाक्षरभेदमाह-तत्र शुभफलोपधायकानि शुभान्यशुभफलोपधायकान्यशुभानीति विवेक । छन्द-सूत्र-वैदिकभाष्य-२ ।९ ।

७९ अष्टौ वसव इति । छन्द सूत्र– १ ।१५ ।

८० जयदेवच्छन्द - ३ ।८,९,१५ । वृत्त रत्नाकर– १ ।११,३ ।६५,६८,७१,९४ ।

८१ भ्तौ ल्गौ माणवक घै । भो मौ वक्त्र डै । नौ म्यौ पुटो जै ।
भ्रौ न्रौ न्गौमहिषी ञै । मातनीजप्रभापिपीलका जणै ।
हेमचन्द्रकृत-छन्दोऽनुशासन– २ ।७७,८८,१६४,२७४,३८५ ।

छन्दोलक्षणो मे सख्या बोध में सहायता मिलती है। निम्नाकित कोष्ठ मे सख्यासूचक शब्दों के द्वारा सख्याको को प्रदर्शित किया गया है—

<table>
<tr><td>ईश्वर
चन्द्र</td><td>नेत्र
यक्ष व
पक्ष</td><td>गुण
अग्नि
ग</td><td>वेद
यश
समुद्र
घ</td><td>भूत,
यज्ञ
वाण, ङ
अक्ष</td><td>ऋतु, रस
अग, शास्त्र
च</td><td>ऋषि
स्वर
अश्व
छ
लोक</td><td>वसु
नाग
याम
सिद्धि
ज</td><td>ग्रह
विधि
झ
अभ्र</td><td>दिशा
दोष
ञ</td><td>रुद्र
ईश
ट</td><td>सूर्य
दिङ्-
नेत्र
ठ</td><td>विश्वे-
देव
दिक्का-
ल
दोष—
गुण, ड</td><td>भवन
दिग्
युग
दिग-
ब्धि
ढ</td></tr>
<tr><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>५</td><td>६</td><td>७</td><td>८</td><td>९</td><td>१०</td><td>११</td><td>१२</td><td>१३</td><td>१४</td></tr>
<tr><td>तिथि
दिग्-
वाण
दिग
भूत</td><td>कला
दिगृतु
दि-
ग्रस</td><td>दिवस
वर
दिग-
श्व,
दिगृषि</td><td colspan="2">दिङ्नाग
दिग्याम
दिग्वसु</td><td>दिग्ग्रह
दिड्निधि
दोष ग्रह</td><td colspan="2">नख।
दिग्दोष
द्विदिशा</td><td colspan="2">नखेश्वर
नखचन्द्र
रुद्र दिशा</td><td colspan="2">द्विरुद्र
रुद्रेश
सूर्यदिशा</td><td colspan="2">नखाग्नि
रविरुद्र
तिथियाम</td></tr>
<tr><td>१५</td><td>१६</td><td>१७</td><td colspan="2">१८</td><td>१९</td><td colspan="2">२०</td><td colspan="2">२१</td><td colspan="2">२२</td><td colspan="2">२३</td></tr>
</table>

उपर्युक्त समस्त विवरण छन्दो के लक्षणो मे प्राप्त होते है। उदाहरणार्थ किसी भी छन्द के लक्षण को ले सकते है, जिसमे उक्त विवरण के अश पूर्ण रूप से अथवा आशिक रूप से अवश्य प्राप्त होंगे। जैसे—पिगलकृत शालिनी छन्द के लक्षण को उदाहरणार्थ प्रस्तुत करते है—

शालिनी म्तौ त्गौ ग् समुद्र ऋषय' (छन्द सूत्र–६।२५)

इसमे गण, मात्रा, गुरु, लघु वर्ण, पाद, पदान्त और पादान्त यति सभी विवरणाश नियमित है, सख्यासूचक शब्द समुद्र और ऋषि से यति को पहले चौथे फिर सातवें अक्षर पर प्रकट किया गया है। यह वर्णिक छन्द है, इसके प्रत्येक पाद मे ११ वर्ण (म त त ग ग) होते है, और यदि इसमे मात्राओ की गणना की जावे तो प्रत्येक पाद में २० मात्राए बैठती है किन्तु यह मात्रिक छन्द नही है। मात्रिक छन्दो में छन्द का प्रेत्यक पाद मात्रा प्रधान होता है, यदि उसके प्रत्येक पाद मे गणो को नियमित किया जावे, तो गण एक से नही बैठते। प्रत्येक पाद में एक से गणो का होना तो सम वर्णिक छन्दो की विशेषता है किन्तु कुछ वर्णित छन्दों के पादों में भिन्नता मिलती है, अत उन्हे अर्धसम और विषम छन्दो में विभक्त किया गया है। मात्रिक छन्दो मे भी सम, अर्धसम और विषम भाग होते हैं, क्योंकि उनके पादों में भी मात्रा वैभिन्य मिलता है। अत उक्त विवरणाशो के आधार पर यह छन्द का लक्षण किया जा सकता है—"वह वाक्य, जो गण, मात्रा, गुरु, लघु वर्ण, पाद, पदगत, पदान्त, पादान्त यति से नियमित होता है, वह छन्द कहलाता है।

छन्दोभेद

छन्दो के दो प्रकार हैं, वैदिक और लौकिक। वैदिक छन्द अक्षरच्छन्द हैं, जो अष्टाक्षरपाद गायत्र,[८२] एकादशाक्षरपाद त्रैष्टुभ और द्वादशाक्षरपाद जागत से विकसित होते हैं। ये तीन पाद ही

८२ त्रयश्छन्द पादा भवन्ति। अष्टाक्षर एकादशाक्षरो द्वादशाक्षर इति। निदानसूत्र–१।११।

वैदिक छन्दो के मूल पाद है, इन तीनो से मिश्रित एक दशाक्षरपाद भी है, जिसे वैगज कहते है।[८३] मूलत इन चार पादो मे ही चतुर्वेदो मे प्रथम ऋग्वेद के मन्त्र मिलते है। इन चतुष्पादो मे ही अक्षरो को घटा-बढाकर षडक्षर पाद से षड्विंशत्यक्षरपाद तक गायत्री से उत्कृति पर्यन्त २१ छन्द विकसित किये गये है, जिनका वेद तथा लोक मे प्रयोग मिलता है। इनके अतिरिक्त एकाक्षरपाद से पचाक्षरपाद पर्यन्त उक्ता से सुप्रतिष्ठा तक ५ छन्द कल्पित किये गये है, जिनके प्रयोगो की वेदो मे कल्पना की जाती है, क्योकि कोई भी शब्द विना छन्द के प्रयुक्त नही होता।[८४] इस सिद्धान्त के अनुसार गद्य प्रधान यजुर्वेद मे उनके प्रयोगो को खोज लिया जाता है किन्तु लोक मे इनका व्यवहार नही होता।[८५] छान्दस ग्रन्थो में इनके जो प्रयोग दिखाये गये है, वे निर्मित किये गये है, स्वाभाविक नही। स्वाभाविक वैदिक छन्द तो केवल गायत्र्यादि प्रथम सप्तक के साथ और अतिजगत्यादि द्वितीय सप्तक के अत्यष्टि पर्यन्त ५, सब कुल मिलाकर १२ छन्द है। जिनमे स्वाभाविक रूप से ऋग्वेद के सूक्त निर्मित है। इसके अतिरिक्त धृति से उत्कृति पर्यन्त ९ तथा उक्ता से सुप्रतिष्ठा तक पाच = १४ छन्दो के प्रयोग यजुर्वेद मे खोजे जाते है। अत वैदिक छन्द २६ माने जाते है, जिनके पाद सहित नाम निम्नाकित है—

प्राग्गायत्री पचक		प्रथम सप्तक		द्वितीय सप्तक	
छन्दोनाम	पादाक्षर	छन्दोनाम	पादाक्षर	छन्दोनाम	पादाक्षर
१ उक्ता	१ (४)	६ गायत्री	६ (२४)	१३ अतिजगती	१३ (५२)
२ अत्युक्ता	२ (८)	७ उष्णिक्	७ (२८)	१४ शक्वरी	१४ (५६)
३ मध्यमा	३ (१२)	८ अनुष्टुप्	८ (३२)	१५ अतिशक्वरी	१५ (६०)
४ प्रतिष्ठा	४ (१६)	९ बृहती	९ (३६)	१६ अष्टि	१६ (६४)
५ सुप्रतिष्ठा	५ (२०)	१० पक्ति	१० (४०)	१७ अत्यष्टि	१७ (६८)
		११ त्रिष्टुप्	११ (४४)	१८ धृति	१८ (७२)
		१२ जगती	१२ (४८)	१९ अतिधृति	१९ (७६)

तृतीय सप्तक के छन्द

२० कृति, वर्ण (८०), २१ प्रकृति, वर्ण (८४), २२ आकृति, वर्ण (८८), २३ विकृति, वर्ण (९२), २४ सकृति, वर्ण (९६), २५ अभिकृति, वर्ण (१००), २६ उत्कृति, वर्ण (१०४)।

इन छन्दों मे उक्ता से उत्कृति पर्यन्त २६ छन्दो की पूर्णाक्षर सख्या ४ से १०४ तक होती है। इनमे से उक्ता से सुप्रतिष्ठा तक और गायत्री से अतिधृति पर्यन्त छन्दों मे एक पाद से आठ पाद तक होते हैं और तृतीय सप्तक के कृति से उत्कृति तक वैदिक छन्दो में कोई पाद विधान प्राप्त नही होता, अत इन छन्दो को यजुर्वेद के गद्य खण्डो मे अक्षर गणना से छन्दो की पूर्णाक्षर सख्या तक माना जाता है। त्रिपाद, पचपाद तथा सप्तपाद छन्दों मे दूसरे, तीसरे तथा चौथे पद पर छन्द का अर्धभाग माना जाता है।[८६] एकाक्षरन्यून छन्द को निचृत् और एकाक्षराधिक को भुरिक् तथा द्व्यक्षरन्यून को विराट् एव

---

८३ तन्मिश्र दशाक्षर। निदानसूत्र १।१।

८४ छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न च्छन्दश्शब्दवर्जितम्। नाट्यशास्त्र– १५।४०।

८५ वैदिक छन्दोमीमासा, अध्याय– ६ पृ० ८७।

८६ त्रिपदाप्रभृतीना द्वावुक्त्वा शेषमाह। पचमपदाया द्वौ द्वावथैकम्। सप्तपदायाम्-त्रीनुक्त्वा द्वौद्वौ परान् अथापि द्वौ द्वावथ त्रीन्॥ निदानसूत्र– १।२।

द्वयक्षराधिक छन्द को स्वराट् विशेषणयुक्त छन्दोनाम से व्यवहृत किया जाता है ।[८७] पतञ्जलि, शौनक तथा कात्यायन द्वारा लक्षित छन्दो के अतिरिक्त पिगल ने जिस छन्द के पादो में प्रथम पाद न्यूनाक्षर हो, उसे शकुमती और अधिकाक्षर हो तो उसे ककुम्मती तथा न्यूनाक्षर मध्यमपाद वाले छन्द को पिपीलकमध्या एव अधिकाक्षर मध्यपादयुक्त छन्द को यवमध्या विशेष से व्यवहृत किया है ।[८८] सन्दिग्ध छन्दो मे प्रथम पादानुसार छन्दोनाम की व्यवस्था है ।[८९] दैव, आसुर, प्राजापत्य, आर्ष, याजुष, साम्न, आर्च, ब्राह्म तथा पुर, पर, पुरस्तात्, उपरिष्टात्, पथ्या, आस्तार, प्रस्तार आदि विभिन्न विशेषण लगाकर पतञ्जलि से श्रीकृष्ण भट्ट तक छन्दो के २४४ भेद—प्रभेदो के लक्षणो का विवरण मिलता है, जिनमें से यहा कतिपय मुख्य छन्दो को लक्षित किया जाता है ।

(ख) वैदिक छन्दो निरूपण

उक्ता से उत्कृति पर्यन्त २६ छन्दो मे से गायत्री से उत्कृति पर्यन्त २५ छन्द ही मुख्य है, जिनमे से गायत्री से धृति पर्यन्त १३ छन्दो के उदाहरण तो ऋग्वेद में सरलता से प्राप्त होते हैं और अतिधृति से उत्कृति पर्यन्त ८ छन्दो के उदाहरण यजुर्वेद के गद्य खण्डो मे खोजे जाते हैं । अत उक्त छन्दो को यहा प्राचीन लाक्षणिक ग्रन्थो के अनुसार सरलता के लिए कम से कम प्रत्येक का एक-एक उदाहरण देकर लक्षित करना उचित ही होगा । इसके अतिरिक्त जिस किसी लक्षणकार के किसी विशेष छन्दोभेद को प्रदर्शित करना अपेक्षित समझा है, तो उसे भी लक्षित किया गया है ।

प्रथम सप्तक के छन्द

२१ वैदिक छन्दों मे प्रथम सप्तक के छन्द गायत्री से जगती पर्यन्त ७ छन्दो के लक्षण निदानसूत्र, ऋक्प्रातिशाख्य, ऋक्सर्वानुक्रमणी, छन्द सूत्र, उपनिदानसूत्र, अग्निपुराण, जयदेवच्छन्दस् वेकटमाधवकृत छन्दोऽनुक्रमणी और वृत्तमुक्तावली मे भेद-प्रभेदों के साथ प्राप्त होते है, जिनमें से पतञ्जलि, शौनक, पिगल और जयदेव आदि प्रमुख लक्षणकारो द्वारा निर्दिष्ट लक्षणो से छन्दो को यहा लक्षित कर ऋग्वेद से उन्हे उदाहृत किया जा रहा है ।

गायत्री छन्द

गायत्री का अर्थ स्तुति है । यास्क ने गायत्री की व्युत्पत्ति स्तुत्यर्थक गै धातु से मानी है । इसके अतिरिक्त यास्क ने गायत्री को त्रिगम् (तीन वार अर्थात् तीनो पादो से जाने वाली) से उलटकर निर्मित माना है ।[९०] गायत्री छन्द मे मुख्यतया तीन पाद होते हैं, किन्तु किसी-किसी मे एक, दो, चार और पाच पाद भी देखे जाते है । अत गायत्री एकपदा, द्विपदा, त्रिपदा, चतुष्पदा और पचपदा भी होती है । त्रिपदा गायत्री के प्रत्येक पाद मे आठ-आठ अक्षर होते हैं । अत इसकी रचना विशेषत गायत्रपादो से होती है । जब इसके पादाक्षरो की सख्या मे विपरीत अक-व्यवस्था देखी जाती है, तब प्रत्येक पाद की अक्षर सख्या का बोध कराने के लिये पतञ्जलि से जयदेवपर्यन्त शास्त्रकारो ने अपने-अपने ग्रन्थो मे उनकी

---

८७ या एकेनाक्षरेणोनास्ता निचृत । या एकेन ज्यायस्यस्ता भुरिज । निदानसूत्र–१ ।२ ।
विराजस्तूत्तरस्याह द्वाभ्या या विषये स्थिता ।
स्वराज एव पूर्वस्य या काश्चैव गता ऋच ॥ऋक्प्रातिशाख्य–१७ ।२ ।

८८ छन्द सूत्र–३ ।५५,५६,५७,५८ ।

८९ छन्द सूत्र–३ ।६१ ।

९० गायते स्तुति कर्मण । त्रिगमना वा विपरीता—निरुक्त–७ ।१२ ।

पृथक्-पृथक् सज्ञाओ का उल्लेख किया है ।

गायत्री

चतुविशत्यक्षरा गायत्री, त्रिपदाष्टाक्षरपादा । निदानसूत्र– १ ।१ ।

जिस छन्द मे तीन पाद हो और प्रत्येक पाद मे (८+८+८=२४) अक्षर समान रूप से हो तो उसे गायत्री कहते है । यह त्रिपदा गायत्री नाम से व्यवहृत है ।

यथा—अग्निमीले पुरोहित यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतार रत्नधातमम् ॥ ऋग्वेद– १ ।१ ।१ ।

पादनिचृद् गायत्री

युवाकु हीति गायत्री त्रय सप्ताक्षरा विराट् ।
सैषा पादनिचृन्नाम गायत्र्येवैकविशिका ॥ ऋक्प्रातिशाख्य– १६ ।१३ ।

जिस छन्द मे तीन पाद हो और प्रत्येक पाद मे (७+७+७)=२१ अक्षर हो, तो वह छन्द प्रत्येक पाद मे निचृत् अर्थात् एकाक्षरन्यून होने से पादनिचृद् गायत्री कहा जाता है, और इसे विराड्गायत्री भी कहते है । आचार्य शौनक ने अपने उक्त लक्षण मे छन्द के उदाहरण के लिए 'युवाकु हि' से ऋग्वेद के मन्त्र को सकेतित किया है ।

यथा—युवाकु हि शचीना युवाकु सुमतीनाम् ।
भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ ऋग्वेद– १ ।१७ ।४ ।

गायत्री के अन्य भेद छन्दोलक्षण ग्रन्थो मे यथास्थान दृष्टव्य है ।

(२) उष्णिक् छन्द

उष्णिक् नाम औपमिक है ।[९१] उष्णिक् पगडी को कहते है, जो शिरोभाग पर होती है और दूर से ही स्पष्ट दिखाई देती है । इसी प्रकार गायत्री से इस छन्द में चार अक्षर अधिक होते है । ये बढे हुए चार अक्षर जिस पाद मे होते हैं, वह पाद अन्य पादों की अपेक्षा बडा होने से स्पष्ट रूप से पृथक् भासित होता है । इस छन्द में प्राय तीन पाद और २८ अक्षर होते है किन्तु कही-कही चार पाद भी मिलते है । इस छन्द की रचना दो गायत्र पादो और एक जागत पाद के सम्मिश्रण से होती है ।

उष्णिक्—'अष्टाविशत्यक्षरोष्णिक् त्रिपदैव, पूर्वावष्टाक्षरावुत्तरो द्वादशाक्षर निदानसूत्र– १ ।१ ।

जिस छन्द के प्रथम दो पादों मे आठ-आठ और अन्तिम तृतीय पाद मे १२ अक्षर (८+८+१२)=२८ हों, उस छन्द का नाम उष्णिक् होता है । यथा—

अग्ने वाजस्य गोमत ईशान सहसो यहो ।
अस्मे धेहि जातवेदो, महि श्रव ॥ ऋग्वेद– १ ।७९ ।४ ।

इसके अन्य भेद छन्दोलक्षण ग्रन्थो में यथास्थान दृष्टव्य हैं ।

(३) अनुष्टुप् छन्द

अनुष्टुप् का अर्थ है पीछे स्तुति करने वाला, अर्थात् जो त्रिपदा गायत्री का चतुर्थ पाद से स्तवन करता हुआ अनुगमन करता है, उसे अनुष्टुप् कहते है ।[९२] उसमे चार गायत्र पाद होते हैं । गायत्री छन्द

---

९१ उष्णिक् ——————उष्णीषिणी इव इति औपमिकम् । निरुक्त–७ ।१२ ।

९२ अनुष्टप् (अनु + स्तुभ् पीछे स्तुति करना) अनुष्टोभनात् । गायत्रीमेव त्रिपदा सती चतुर्थेन पादेन अनुष्टोभति-इति ब्राह्मणम् । यास्ककृत निरुक्त–७ ।१२ ।

के तीन गायत्र पादो मे एक पाद अधिक होता है, और इसमे उष्णिक् के २८ अक्षरो से ४ अक्षर अधिक अर्थात् ३२ अक्षर होते है। इस छन्द मे चार गायत्र पादो के अतिरिक्त वैदिक ऋचाओ मे त्रिपाद अनुष्टुप् की अधिकता है। त्रिपाद अनुष्टुप् की रचना मे एक गायत्र पाद और दो जागत पाद होते है। कही-कहा इसमे छ पाद भी मिलते है।

चतुष्पाद अनुष्टुप्

द्वात्रिंशदक्षरानुष्टुप्, चतुष्पदाष्टाक्षरपादा। निदानसूत्र–१।१।

जिस छन्द मे चार पाद हो और प्रत्येक पाद मे ८–८ अक्षर (८+८+८+८)=३२, अक्षर हो, उसे चतुष्पाद अनुष्टुप् कहते है। यथा—

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः।
गवामप व्रज वृधि कृणुष्व राधो अद्रिव॥ ऋग्वेद–१।१०।७।

पिपीलकमध्यानुष्टुप्

मध्येऽष्टाक्षरोऽभितो द्वादशाक्षरौ। निदान सूत्र–१।१।

जिस छन्द के मध्यम पाद मे ८ और आदि तथा अन्त के पादो में १२–१२ अक्षर (१२ + ८ + १२) = ३२ अक्षर हों, उसे पिपीलकमध्यानुष्टुप् कहते हैं। बह्वृचों के मत में इसे मध्येज्योति कहा गया है।[९३] यथा—

पर्यूषु प्रधन्व वाजसातये परिवृत्राणि सक्षणि।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे॥ ऋग्वेद–९।११०।१।

(४) बृहती छन्द

बृहती छन्द मे अनुष्टुप् से ४ अक्षर अधिक ३६ अक्षर होते हैं। इसमें प्राय चार पाद होते है, क्वचित् तीन पाद भी दृष्टिगत होते हैं। इसकी रचना तीन गायत्र पादों और एक जागत पाद से बनती है।

स्कन्धोग्रीवी बृहती

यत्र द्वितीय सोरोबृहती। सैव न्यकुसारिणी। निदानसूत्र–१।२।

जिस छन्द के चार पादो मे क्रमश (८ + १२ + ८ + ८) = ३६ अक्षर हों, उसे पतञ्जलि के मत मे न्यकुसारिणी, यास्क के मत मे उरोबृहती और क्रौष्टुकि के मत में स्कन्धोग्रीवी कहते हैं।[९४] आचार्य क्रौष्टुकि सर्वप्राचीन है। अत उनका सर्वप्राचीन नाम स्कन्धोग्रीवी दिया गया है। यथा—

मत्स्यपायि ते मह पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर् वाजी सहस्रसातमः॥ ऋग्वेद–१।१७५।१।

आचार्य शौनक द्वारा प्रस्तुत इस उदाहरण में प्रथम और तृतीय पाद सप्ताक्षर हैं, जिनमें क्रमश व्यूह द्वारा 'मत्सीय' और 'वृष्ण' विधान से अक्षरपूर्ति की जाती है। इसके द्वितीय उदाहरण में शौनक ने 'इजानिमिद्' (ऋग्वेद–१०।१३२।१) ऋचा दी है।[९५] इसमें सख्या रूप में तो अक्षर पूर्ण हैं किन्तु प्रथम पाद मे ९ और द्वितीय पाद में ११ अक्षर हैं। अत लक्षण का समन्वय नही होता, जिससे स्पष्ट है

---

९३ मध्येज्योतिरिति बह्वृचा। निदानसूत्र–१।१।

९४ उदोबृहती यास्कस्य। स्कन्धोग्रीवी क्रौष्टुके। छन्द सूत्र–३।३०, २९।

९५ ऋक्प्रातिशाख्य–१६।३४।

कि वैदिक छन्दो में पाद-व्यवस्था के अतिरिक्त व्यूह द्वारा अक्षरपूर्ति तथा स्वत ही अक्षरपूर्णता परम आवश्यक है।

सतोबृहती—त्रिभि र्जागतै र्महाबृहती। सतोबृहती ताण्डिन। छन्द सूत्र–३।३५,३६

जिस छन्द मे बारह-बारह अक्षरों के तीन पाद (१२ + १२ + १२) = ३६ हो, उसे सतोबृहती कहते है। पिंगल के मत मे उसका नाम महाबृहती है और ताण्डी के मत में सतोबृहती।[९६] शौनक इसे विराडूर्ध्व बृहती तथा कात्यायन ऊर्ध्वबृहती कहते है। इनमें सर्वप्राचीन ताण्डी है, अत सतोबृहती नाम दिया गया है। यथा—

अध यदि मे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना।
यूथे न नि ष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे॥ ऋग्वेद–९।११०।९।

शौनक ने इस छन्द के उदाहरण मे (ऋग्वेद–९।११०) से चतुर्थ ऋचा दी है, जिसके प्रथम पाद मे व्यूह द्वारा दो अक्षरो की पूर्ति करनी पडती है। किन्तु प्रस्तुत उदाहरण मे व्यूह की आवश्यकता नही होती, क्योकि इसमे प्रकृति से ही पूर्णाक्षर है।

इसके अन्य भेद-प्रभेद छन्दोलक्षण ग्रन्थो मे यथास्थान दृष्टव्य हैं।

(५) पक्ति छन्द

पाच के समाहार का नाम पक्ति है।[९७] तदनुसार जिस छन्द मे अष्टाक्षर पाच पाद हो,[९८] वह पक्ति कहा जाता है किन्तु पचपदापक्ति वेद मे अत्यल्प है। इस छन्द मे अनुष्टुप् के अष्टाक्षर चार पादों से एक पाद अधिक और बृहती से चार अक्षर अधिक ४० अक्षर होते हैं। यह प्राय चार पाद का होता है। कभी-कभी इसमें न्यूनाधिक पाद भी देखे जाते है। इसकी रचना दो गायत्र पादो और दो जागतपादो के सम्मिश्रण से होती है। यथा—

पक्ति—चत्वारिंशदक्षरा पक्ति, पचपदा ऽष्टाक्षरपादा। निदानसूत्र–१।१।

जिस छन्द मे ८–८ अक्षरो के पाच पाद (८ + ८ + ८ + ८ + ८) = ४० हो, तो उसे पक्ति कहते है। यथा—

क्रत्वा महाँ अनुष्वध भीम आ वावृधे शव।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायसम्॥ ऋग्वेद–१।८१।४।

विराट् पक्ति—चत्वारो दशका विराट्। ऋक्प्रातिशाख्य-१६।३८।

जिस छन्द मे १०–१० अक्षरो के चार पाद (१० + १० + १० + १०) = ४० हो, उसे विराट्पक्ति कहते है। यथा—

मन्ये त्वा यज्ञिय यज्ञियाना मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानाम्।
मन्ये त्वा सत्वनामिन्द्र केतु मन्ये त्वा वृषभ चर्षणीनाम्॥ ऋग्वेद–८।९६।४।

इसके अन्य भेद-प्रभेद छन्दोलक्षण ग्रन्थो मे यथास्थान द्रष्टव्य हैं।

(६) त्रिष्टुप् छन्द

त्रिष्टुप् का अर्थ है तीन वार स्तुति करने वाला, अर्थात् जिसने तीन वार स्तुति की, उसे त्रिष्टुप्

---

९६ ऋक्प्रातिशाख्य–१६।३३।
९७ अष्टाध्यायी–५।१।५९।
९८ पक्ति पंचपदा। निरुक्त–७।१२।

कहा गया। त्रिष्टुप् के नामकरण का तात्पर्य है कि वह छन्द, जिसमे तीन वार इन्द्र के वज्र की स्तुति की गयी थी, जिससे वह त्रिष्टुप् नाम से प्रसिद्ध हुआ।[९९] इसमे प्राय चार पाद होते है और कही-कही पाच पाद तथा षट् पाद भी दृष्टिगत होते है। प्राय इसकी रचना एकादशाक्षर पादो से होती है और गायत्र, जागत तथा वैराज पादो के सम्मिश्रण से भी त्रिष्टुप् छन्द बनता है। इसमे पक्ति से चार अक्षर अधिक अर्थात् ४४ अक्षर होते है।

त्रिष्टुप्—चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप्, चतुष्पदैकादशाक्षरपादा। निदान सूत्र १।१।

जिस छन्द मे ११–११ अक्षरो के चार पाद (११ + ११ + ११ + ११) = ४४ हो, उसे त्रिष्टुप् कहते है। यथा—

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्व गव्य महि गृणान इन्द्र।
वियो धृष्णो बधिषो व्रजहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभि ॥ ऋग्वेद–६।१७।१।

इसके अन्य भेद प्रभेद छन्दोलक्षण ग्रन्थो मे यथास्थान दृष्टव्य है।

(७) जगती छन्द

जगती छन्द मे त्रिष्टुप् से चार अक्षर अधिक ४८ अक्षर होते है। इसमे प्राय बारह-बारह अक्षरो के चार पाद (१२+१२+१२+१२)=४८ होते है। इसकी रचना चार जागत पादो से प्राय होती है किन्तु जागत पादो के अतिरिक्त गायत्र पादो से भी रचना होती है जिसमें ६ गायत्र पाद होते हैं।

जगती—अष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती चतुष्पदैव द्वादशाक्षरपादा ॥निदानसूत्र–१।१।

जिस छन्द मे बारह-बारह अक्षरो के चार पाद (१२+१२+१२+१२+१२)=४८ हो, उसे जगती कहते है। यथा—

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविर् अग्नि सुदक्ष सुविताय नव्यसे।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद् विभाति भरतेभ्य शुचि ॥ ऋग्वेद-५।११।१

इसके अन्य भेद-प्रभेद छन्दोलक्षण ग्रन्थो मे यथास्थान दृष्टव्य है।

द्वितीय सप्तक के छन्द

सर्वप्राचीन छन्दोग्रन्थ पतञ्जलि के निदानसूत्र मे द्वितीय सप्तक के छन्दो के नाम 'विधृति, शक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, महना, सरित् और सम्पा मिलते है, जो चतुरक्षर वृद्धि के द्वारा ५२ से ७६ वर्ण तक होते है किन्तु निदानसूत्र मे इन छन्दो की पाद व्यवस्था का कोई उल्लेख नही मिलता, क्योकि प्राचीन छन्द शास्त्रकारो ने प्रथम सप्तक के समान द्वितीय सप्तक के भेद-प्रेभदो का निर्देश नही किया। पतञ्जलि शौनक, कात्यायन प्रभृति प्राचीन ग्रन्थकारो ने छन्दो का जो वर्णन किया है, उसका मूल आधार ब्राह्मण ग्रन्थ और श्रौत सूत्र है। ब्राह्मण ग्रन्थ और श्रौत सूत्रों में याज्ञिक विधि के प्रसग मे प्रथम सप्तक के छन्दों के ही अनेक भेद-प्रभेदो का निर्देश किया गया है, किन्तु द्वितीय सप्तक के छन्दो का सामान्य नाम से ही उल्लेख मिलता है। अत पतञ्जलि प्रभृति छान्दस आचार्यों ने द्वितीय सप्तक की केवल अक्षर सख्या का ही उल्लेख किया, किन्तु पादाक्षर सख्या और उसके भेद से उनके जो अवान्तरभेद हो सकते थे, उनका निर्देश नही किया।

---

९९ त्रिवृत् वज्र। तस्य स्तोभनीति। यत् त्रिरस्तोभत् तत् त्रिष्टुभ त्रिष्टुप्त्वम् इति ज्ञायते। निरुक्त–७।१२।

आचार्य शौनक ने ऋग्वेद प्रातिशाख्य मे पतञ्जलि निर्दिष्ट नामो मे अन्तर किया है,[१००] और अपने ग्रन्थ पादविधान मे उनके पादो को व्यवस्थित किया है। शौनक निर्दिष्ट नाम है—अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति और अतिधृति, जो आज तक प्रचलित है, और परवर्ती छन्द शास्त्रियो ने जिन्हे सादर ग्रहण किया है, उन्हे क्रमश लक्षित किया जा रहा है—

(१) अतिजगती

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे क्रमश (१२ + १२ + १२ +८ + ८) = ५२ अक्षर हो, उसे अतिजगती छन्द कहते है। इसमे पाच पाद होते है। यथा—

प्र वों महे मतयों यन्तु विष्णंवे मरुत्वंते गिरिजा एवयामंरुत्।
प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादयें तव सें भन्ददिष्टये धुनिंव्रताय शवंसे ॥ ऋग्वेद—५ ।८७ ।१ ।

(२) शक्वरी

सप्तपदा ते शक्वरीम्। तैत्तिरीयसहिता–२ ।६ ।२

जिस छन्द मे ८–८ अक्षरो के सात पाद (८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८) = ५६ हो, उसे शक्वरी कहते हैं। यथा—

प्रो ष्वंस्मै पुरोरथम् इन्द्रांय शूषमंर्चत। अभीकें चिदु लोककृत् सगे समत्सुं
वृत्रहास्माक बोधि चोदिता नभंन्तामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वंसु ॥ ऋग्वेद–१० ।१३३ ।१ ।

यह उदाहरण शौनककृत पादविधान में निर्दिष्ट है और ऋक्सर्वानुक्रमणी मे कात्यायन ने, वेकटमाधवकृत छन्दोनुक्रमणी मे वेकटमाधव ने तथा ऋक्प्रातिशाख्य के व्याख्याकार उव्वट ने एव छन्द सूत्र के सम्पादक केदारनाथ[१०१] ने भी शक्वरी का यही उदाहरण दिया है, किन्तु उसके प्रथम, पचम, षष्ठ तथा सप्तम पाद मे सात-सात अक्षर है, जो मूलत ५२ ही होते है अत न्यूनाक्षरो की पूर्ति व्यूह द्वारा करनी पडती है।

(३) अतिशक्वरी

जिस छन्द मे क्रमश (१६ + १६ + १२ + ८ + ८) = ६० अक्षरो के पाच पाद हो, उसे अतिशक्वरी कहते हैं। यथा—

साक जात ऋतुंना साकमोजंसा विवक्षिथ साक वृद्धो वीर्यै सासहिर्मृधोविचंर्षणि।
दाता राधं स्तुवते काम्य वसु सैन सश्चद्देवदेव सत्यमिन्द्र सत्य इन्दुं ॥ऋग्वेद—२ ।२२ ।३ ।

शौनक, कात्यायन, वेकटमाधव और केदारनाथ द्वारा निर्दिष्ट इस उदाहरण के द्वितीय पाद मे १५ तथा तृतीय पाद में ११ अक्षर है। इनमें दो अक्षरो की पूर्ति यथास्थान व्यूह से करनी पडती है।

(४) अष्टि

जिस छन्द में क्रमश (१६ + १६ + १६ + ८ + ८) = ६४ अक्षरो के पाच पाद हो, उसे अष्टि कहते हैं। यथा—

त्रिकंद्रुकेषुमहिषो यवांशिर तुवि शुष्मंस्तृपत् सोमंमपिबद्विष्णुंना सुत यथावंशत्।
स ई ममाद महिकर्म कर्तवे महामुरु सैन सश्चद्देव देव सत्यमिन्द्र सत्य इन्दुं ॥
ऋग्वेद—२ ।२२ ।१ ।

---

१०० ऋक्प्रातिशाख्य-१६ ।५३-५५ ।

१०१ केदारनाथ द्वारा सम्पादिक पिगल छन्द सूत्र, निर्णयसागर, बम्बई १९५७ ।

(५) अत्यष्टि

जिस छन्द मे क्रमश (१२ + १२ +८ + ८ + ८ + १२ + ८) = ६८ अक्षरो के सात पाद हो, उसे अत्यष्टि कहते है। यथा—

अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयस्त रश्मिभि,
चक्षुर्भगस्य रश्मिभि द्युक्ष मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च।
अथा दधाते बृहदुक्थ्य वय उपस्तुत्य बृहद् वय ॥ ऋग्वेद–१ ।१३६ ।२ ॥

इसमे षष्ठपाद मे ११ अक्षर है, अत एक अक्षर का व्यूह करना पडता है, तब ६८ वर्ण होते है।

(६) धृति

जिस छन्द मे क्रमश (१२ + १२ + ८ + ८ + ८ + १६ + ८) = ७२ अक्षरो के सात पाद हो, उसे धृति कहते है। यथा—

अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी न शुशोच हि द्यौक्षा न भीषॉ अद्रिव।
घृणान्न भीषॉ अद्रिव शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभि बधैरुग्रेभिरीयसे ॥
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभि स्त्रिसप्ते शूर सत्वभि ॥ ऋग्वेद–१ ।१३३ ।६

उसके षष्ठ पाद मे १४ अक्षर है, अत दो अक्षरो की पूर्ति व्यूह से करनी होगी, अन्यथा विराड् विशेषण देना होगा। धृति का अक्षर सख्या की दृष्टि से शुद्ध उदाहरण यजुर्वेद–९ ।९ मे 'जवो यस्ते .... जिघ्रत' मन्त्र है, जिसमे ७२ अक्षर है, किन्तु इसमे पाद व्यवस्था नही है क्योकि याजुष मन्त्र पादव्यवस्था से रहित होते है।

(७) अतिधृति

जिस छन्द मे क्रमश (१२ + १२ + ८ + ८ + ८ + १२ + ८ + ८) = ७६ अक्षरो के आठ पाद हो, उसे अधिधृति कहते है। यथा—

प्रजापतये त्वा जुष्ट प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्या त्वा जुष्ट प्रोक्षामि वायवे
त्वा जुष्ट प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्ट प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा
देवेभ्यो जुष्ट प्रोक्षामि ।-योऽअर्वन्त जिघामति तमभ्यमीति वरुण।
परो मर्त्त पर श्वा ॥ यजुर्वेद–२२ ।५ ।

वैदिक छन्द अक्षरच्छन्द है। अत अक्षर सख्या की दृष्टि से तो यह शुद्ध उदाहरण है, किन्तु इसमे शौनककृत पादविधान नही है। अतिधृति से उत्कृति पर्यन्त आठ छन्दो के उदाहरण ऋग्वेद सहिता मे प्राप्त नही होते। अत उन्हे यजुर्वेद से प्रदर्शित किया जाता है, किन्तु अतिधृति छन्द के उदाहरण मे शौनक तथा वेकटमाधव ने ऋग्वेद–१ ।१२७ की छठी ऋचा प्रस्तुत की है, जिसमें ६८ अक्षर है। व्यूह भी करें तो ७२ अक्षर होते है, जबकि अतिधृति मे ७६ अक्षर होने चाहिए। 'गतानुगतिको लोक' के अनुसार शौनक द्वारा निर्दिष्ट उक्त उदाहरण को ही कात्यायन, उव्बट, वेकटमाधव और केदारनाथ ने भी माना है, जो अक्षरो से अपूर्ण होने के कारण चिन्त्य है। अत यहा यजुर्वेद से उक्त उदाहरण दिया गया है।

तृतीय सप्तक के छन्द

तृतीय सप्तक के छन्द ऋग्वेद मे प्राप्त नही होते किन्तु वे यजुर्वेद में प्राप्त होते है। याजुष मन्त्रो मे पाद व्यवस्था नही होती—यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है।[१०२] अत पतञ्जलि से जयदेवपर्यन्त किसी भी

---

१०२ वैदिक छन्दोमीमासा– पृ० १७९ ।

छान्दस आचार्य की रचना मे इन छन्दो की पाद-व्यवस्था का उल्लेख नही मिलता, किन्तु केदारनाथ ने यत्र-तत्र उनमे भी पाद-व्यवस्था प्रदर्शित की है।[१०३] तृतीय सप्तक के वैदिक छन्द तो पूर्णत गद्यच्छन्द है, इन गद्य छन्दो मे छन्द के अनुसार प्रारम्भ से जहा भी अक्षर सख्या पूर्ण हो जाती है, वही वह छन्द मान लिया जाता है। अत ये छन्द स्वाभाविक नही, अपितु कृत्रिम है, जो गद्य की स्वाभाविकता को भी छन्द मे ढालकर समाप्त कर देते है, किन्तु लौकिक सस्कृत मे इनसे कुछ विकसित छन्दो के उदाहरण पद्यो मे प्राप्त होते है, जिन्हे लौकिक छन्दोनिरूपण मे प्रदर्शित किया जायेगा।

पतञ्जलि ने निदानसूत्र मे तृतीय सप्तक के छन्दो के नाम सिन्धु, सलिल, अम्भ, गगन, अर्णव, आप और समुद्र दिये है किन्तु शौनक के ऋक्प्रातिशाख्य मे उनके नाम क्रमश कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, सकृति, अभिकृति, उत्कृति मिलते है। जो आज तक प्रचलित है, जिसके अनुसार उन्हे यहा क्रमश लक्षित किया जा रहा है—

(१) **कृति**—जिसमे ८० अक्षर हो, उसे कृति कहते है। यथा—
आपये स्वाहा स्वापये स्वाहा पिजाय स्वाहा ऋतवे स्वाहा, वसवे
स्वाहार्हर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय मुग्धाय वैनशिनाय स्वाहा विनशिन
आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा ॥
यजुर्वेद–९।२०।

(२) **प्रकृति**—जिसमे ८४ अक्षर हो, उसे प्रकृति छन्द कहते हैं। यथा—
नम पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्‌गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम
आस्विदते च प्रस्विदते च नम इषुकृद्‌भ्यो धनुष्कृद्‌भ्यश्च वो नमो
नमो व किरिकेभ्यो देवाना, हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो
विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्य ॥ यजुर्वेद–१६।४६।
इसमे ८६ अक्षर है, अत यह स्वराट्प्रकृति छन्द है।

(३) **आकृति (अम्भ)** —जिसमे ८८ अक्षर हो, उसे आकृति छन्द कहते है। यथा—
परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वती प्रथस्वती दिव यच्छ दिव दृह दिव मा हिसी।
विश्वस्मै प्राणयापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय।
सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽग्निरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥
यजुर्वेद–१५।६४।

(४) **विकृति**—जिसमें ९२ अक्षर होते है, उसे विकृति छन्द कहते है। यथा—
ये देवा अग्निनेत्रा पुर सदस्तेभ्य स्वाहा।
ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्य स्वाहा।
ये देवा विश्वदेवनेत्रा पश्चात्सदस्तेभ्य स्वाहा।
ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्य स्वाहा।
ये देवा सोमनेत्रा उपरिसदो दुवस्वन्त स्तेम्भ्य स्वाहा ॥ यजुर्वेद–९।३६।

श्री केदारनाथ ने विकृति छन्द मे क्रमश (८ × १० + १२) = ९२ अक्षरो के ११ पाद माने है और इसके उदाहरण में यजुर्वेद-२१।४२ वा मन्त्र दिया है, जिसमे ९१ अक्षर हैं, अत वह निचृद्

---

१०३ केदारनाथ द्वारा सम्पादित पिगलसूत्र, निर्णयसागर, बम्बई–१९५७।

विकृति छन्द है, क्योकि उसके दशम पाद मे ७ अक्षर है, जिससे उसमे एक अक्षर न्यून है।

(५) **सकृति**—जिस छन्द मे ९६ अक्षर हो, उसे सकृति कहते है। जैसे—

अश्वस्तूपरो गोमगस्ते प्राजापत्या कृष्णग्रावऽआग्नेयो रराटे
परस्तात्सारस्वती मेष्युधस्ताद्धन्वो राश्विनावधोरामौ बह्वो
सौमापौष्ण श्यामोनाभ्या सौर्ययामौ श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ
सक्थ्योर्वायव्य श्वेत पुच्छऽइन्द्राय स्वपस्याय वहद्वैष्णवा वामन ॥ यजुर्वेद–२४।१॥

इसमे एक अक्षर अधिक है। अत यह भुरिक्सकृति छन्द है। यजुर्वेद–२४।२ में एकाक्षरन्यून होने से निचृत्सकृति छन्द भी मिलता है किन्तु सकृति छन्द का शुद्ध उदाहरण यजुर्वेद मे भी नही मिलता, जिसमे ९६ अक्षर हो। श्री युधिष्ठिर मीमासक ने भी वैदिक छन्दोमीमासा में लिखा है कि इसका उदाहरण हमे उपलब्ध नही हुआ।[१०४] पण्डित केदारनाथ जी को भी उसका शुद्ध उदाहरण प्राप्त न हो सका तो उन्होने इसके उदाहरण मे तैतिरीय ब्राह्मण–३।६।१३ का मन्त्र प्रदर्शित किया है।[१०५] जिसमे ९७ अक्षर है तथा क्रमश (७ + ८ + ८ + ८ + ८ + ११ + ११ + ११ + ८ + १७) = ९७ अक्षरो के १० पाद प्रदर्शित किये हैं।

(६) **अभिकृति**—जिस छन्द मे १०० अक्षर होते है, उसे अभिकृति छन्द कहते है। यथा—

अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सन्नमतामदो वायुश्चान्तारिक्ष च सन्नते ते मे
सन्नमतामदऽआदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सन्नमतामदऽआपश्च वरुणश्च
सन्नते ते मे सन्नतामद । सप्तससदो अष्टमी भूतसाधनी । सकामा २ ॥ऽ
अर्ध्वनस्कुरु सज्ञानमस्तु मेऽमुना। यजुर्वेद–२६।१।

(७) **उत्कृति**—जिस छन्द मे १०४ अक्षर होते है, उसे उत्कृति कहते है। यथा—

विष्णो क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्र छन्दऽआरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व।
विष्णो क्रमोऽस्यमिमातिहा त्रैष्टुभ छन्दऽआरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व॥
विष्णो क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागत छन्दऽआरोहदिवमनु विक्रमस्व।
विष्णो क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽऽनुष्टुभ छन्द ऽ-आरोह दिशोऽनु विक्रमस्व॥
यजुर्वेद–१२।५।

इसमे एकाक्षर अधिक होने से भुरिगुत्कृति छन्द है, किन्तु इसका भी शुद्ध उदाहरण यजुर्वेद मे भी नही मिलता, जिसमे १०४ अक्षर ही हो। इसके अतिरिक्त यजुर्वेद–११।५८ के एक खण्ड मे दो उत्कृति छन्द माने गये है, किन्तु पूरे खड मे अक्षर १९८ ही होते है और यजुर्वेद–५।८ तथा २।२५ मे क्रमश १०५ तथा १०८ अक्षर है।

(ग) लौकिक छन्दोनिरूपण

लौकिक छन्दोनिरूपण मे सर्वप्रथम भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र मे १६वा एव ३२वा—ये दो अध्याय छन्दोविवरणात्मक मिलते है। १६वे अध्याय का नाम छन्दोविचिति है और ३२वे अध्याय को ध्रुवाविधान कहा गया है। १६वा अध्याय तो छन्दोनिरूपण मे प्रमुख अध्याय है, जिसमे सस्कृत के

---

१०४ वैदिक छन्दोमोमासा–पृ० १८९।
१०५ केदारनाथ, पिगलसूत्र–निर्णयसागर, बम्बई-१९५७।

मुख्य-मुख्य छन्दो के लक्षण तथा उदाहरण दिये गये है, और ३२वे अध्याय मे भी सगीतविषयक ध्रुवाओ को प्रकट करने मे प्रसगवश पुन सस्कृत के छन्दो के लक्षण दिये गये है, और उनके उदाहरण तात्कालिक सार्वजनीन प्राकृत भाषा मे प्रकट किये गये है। इन लौकिक छन्दो का मूल भरत से लेकर दु खभञ्जन पर्यन्त समस्त छन्दोलक्षणकारो ने गायत्री से उन्कृति पर्यन्त उन समस्त वैदिक छन्दो को माना है,[१०६] जिनका उल्लेख पतञ्जलि और शौनक ने अपने ग्रन्थो मे किया है।[१०७] गायत्री से उत्कृति पर्यन्त प्रयोग मे आने वाले तो केवल २१ छन्द है, जिनके पाद मे ६ अक्षरो से २६ अक्षरो तक वर्ण होते है, किन्तु प्राग्गायत्रीपचक के उन पाच छन्दो को भी, जिनका लोक व्यवहार मे कवियो द्वारा प्रयोग नही किया जाता, उन्हे भी उनमे पतञ्जलि से लेकर दु खभञ्जन पर्यन्त सभी छन्दोलक्षणकारो ने सम्मिलित किया है, जिन्हे मिलाकर उक्ता से उत्कृति पर्यन्त २६ मूल छन्द माने जाते है,[१०८] जिनके प्रत्येक पाद मे एक अक्षर से छब्बीस अक्षर तक वर्ण होते है, उन्हे क्रमश उक्ता से उत्कृति पर्यन्त एक अक से २६ अको तक गिना जाता है, अर्थात् उक्ता छन्द के पाद मे एक अक्षर और उत्कृति छन्द के पाद मे २६ अक्षर होते है, जो क्रमश निम्न है।

१ उक्ता, २ अत्युक्ता, ३ मध्यमा, ४ प्रतिष्ठा, ५ सुप्रतिष्ठा, ६ गायत्री, ७ उष्णिक्, ८ अनुष्टुप्, ९ बृहती, १० पक्ति, ११ त्रिष्टुप्, १२ जगती, १३ अति अगती, १४ शक्वरी, १५ अतिशक्वरी, १६ अष्टि, १७ अत्यष्टि, १८ धृति, १९ अतिधृति, २० कृति, २१ प्रकृति, २२ आकृति, २३ विकृति, २४ सकृति, २५ अभिकृति और २६ उत्कृति।

उक्त छन्दो के अतिरिक्त २६ से अधिकाक्षर पाद वाले छन्दो को दण्डक कहते है।[१०९] इनमे से अनुष्टुप् से प्रकृति पर्यन्त छन्दो के आधार पर निर्मित छन्दो (वृत्त) का प्रयोग कवियो की रचनाओ मे अधिकतर मिलता है, शेष छन्द प्राय अप्रयुक्त अथवा यत्र-तत्र प्रयुक्त या छन्दोग्रन्थो मे लाक्षणिक रूप से प्रयुक्त ही मिलते है। अत यहा सर्वाधिक प्रयोग मे आने वाले कुछ विशिष्ट छन्दो के उल्लेख के साथ क्रमश उक्ता से उत्कृति पर्यन्त मूल छब्बीस छन्दोवृत्तियों के अन्तर्गत लक्षण ग्रन्थो मे प्राप्त १५३९ वृत्तो मे से २६ वृत्तों के लक्षण और **प्रत्येक का कम से कम एक-एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—**

१ वर्णवृत्त सम चतुष्पदी, उक्ता (एकाक्षरपाद)

(१) **श्री**— ग श्री। छन्द सूत्र–६।२।

जिसके प्रेत्यक पाद में एक-एक अक्षर गुरु हो–(ऽ), उसे श्री छन्द कहते है। यथा—

या श्री।
सा गौ॥ जानाश्रयी छन्दोविचितिवृत्ति–४।३।

इस उक्ता छन्दोवृत्ति में प्रस्तार से दो भेद होते है।

---

१०६ नाट्यशास्त्र–१५।४१-४७, छन्द सूत्र–४।१–९।जानाश्रयी छन्दोविचिति–१।१–२ का वृत्ति भाग, वाग्वल्लभ-वर्णवृत्तानि–१–४, पृ० ९६।

१०७ निदानसूत्र–१।१–२, ऋक्प्रातिशाख्य–१६।१, ५३–५७।

१०८ जानाश्रयी छन्दोविचिति-वृत्ति–१।२।

१०९ नाट्यशास्त्र–१५।४७, छन्द सूत्र–७।३४, वाग्वल्लभ-वर्णवृत्त–५।

२ अत्युक्ता (द्व्यक्षरपाद)

(२) **धी**—धी गौं । छन्द सूत्र – ६ ।३ ।

जिस छन्द मे प्रत्येक पाद मे दो अक्षर गुरु (ऽऽ) हो, उसे धी छन्द कहते है । यथा—

ईश देवम् ।
शर्व वन्दे ॥ नाट्यशास्त्र– ३२ ।४९ ।

इस अत्युक्ता वृत्ति मे प्रस्तार से चार भेद बनते है ।

३ मध्यमा (त्र्यक्षरपाद)

(३) **तटि**—यत्पद मध्यत, स्याल्लघु सा तटि । नाट्यशास्त्र– ३२ ।५० ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे तीन अक्षर हो और उसमे पादगत मध्यम अक्षर लघु हो तथा शेष दोनो अक्षर गुरु हो अर्थात् प्रत्येक पाद मे रगण (ऽ ।ऽ) हो, तो उसे तटि छन्द कहते है । यथा—

शकर शूलभृत् ।
पातु मा लोककृत् ॥ नाट्यशास्त्र– ३२ ।५१ ।

इस त्र्यक्षरा वृत्ति मे प्रस्तार से ८ छन्दोभेद होते है ।[११०]

प्रतिष्ठा (चतुरक्षरपाद)

(४) **पुष्प**—चतुर्णा च पदा यस्य द्वितीय ह्रस्वमेव वा ।
प्रतिष्ठाया गत वृत्त पुष्प स्यात् तद्धि नामत ॥ ना० शा० ३२ ।५७ ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे चार अक्षर हो और उसमे पादगत मध्यम अक्षर लघु हो तो शेष तीनो अक्षर गुरु हो, अर्थात् प्रत्येक पाद मे एक र गण और एक गुरु वर्ण (ऽ ।ऽऽ) हो, तो उसे पुष्प छन्द कहते है । यथा—

पुण्यपात्रे शुद्धचित्त ।
या प्रदत्ता सा समृद्धि ॥ हेमचन्द्रकृत छन्दोऽनुशासनवृत्ति– २ ।१८ ।१ ।

इस चतुरक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से १६ छन्दोभेद होते है ।

५ सुप्रतिष्ठा (पचाक्षरपाद)

(५) **शिखा**—द्वितीय नैधन चैव चतुर्थ च गुरु यदा ।
सुप्रतिष्ठाकृते पादे सा शिखा कथिता तथा ॥ ना० शा० ३२ ।७१

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में पाच अक्षर हो और उसमें पादगत द्वितीय, चतुर्थ तथा अन्तिम वर्ण गुरु हो, शेष दोनो अक्षर लघु हो, अर्थात् एक जगण और दो गुरु वर्ण (।ऽ ।ऽऽ) हो तो, उसे शिखा छन्द कहते है । यथा—

स्वभर्तृभक्ता विशुद्धशीला ।
निरीहचित्ता सती सतीयम् ॥ हेमचन्द्रकृत छन्दोनुशासनवृत्ति– २ ।२७ ।१ ।

इस पचाक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से ३२ छन्दोभेद होते है ।

---

११० प्रस्तार नामक छन्दोभेद विधि यह है कि उस छन्द के पाद मे गुरु लघु वर्णक्रम से जो भी परिवर्तन हो सकता हो, वह किया जाता है, तब उसमे छन्दोभेद बढते चले जाते हैं ।

६ गायत्री (षडक्षरपाद)

(६) **तनुमध्या**—आद्ये पुनरन्त्ये द्वे द्वे गुरुणी चेत्।[१११]

वृत्त तनुमध्या गायत्रसमुत्था ॥ नाट्यशास्त्र–१६ ।२ ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे ६ अक्षर हो और उसमे प्रारम्भ तथा अन्त के दो-दो वर्ण गुरु तथा मध्य के दो वर्ण लघु हो, अर्थात् तगण, यगण (ऽऽ।, ।ऽऽ) हो तो उसे तनुमध्या कहते है। यथा—

नश्यन्ति ददर्श, वृन्दानि कपीन्द्र ।

हारीण्यवलाना, हारीण्यवलानाम् ॥ भट्टिकृत-रावणवध–१० ।१२ ।

इस षडक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से ६४ छन्दोभेद होते है, जिनमे भरत ने १३, पिगल ने एक, जयकीर्ति ने १०, हेमचन्द्र ने १९ और दु खभञ्जन ने समस्त ६४ भेद प्रदर्शित किये है। इनमे से कुछ छन्दोभेदो का उदाहरणस्वरूप मूलरूप ऋग्वेद मे प्राप्त होता है, जिससे स्पष्ट होता है कि लौकिकछन्दो का मूल वेद है, क्योकि उनकी ध्वनिया भी वेदो से ही निस्सृत है। उदाहरणस्वरूप नाट्य शास्त्र मे कतिपय लक्षित छन्दोभेदो का उदाहरण मूल एक पक्ति के रूप मे ऋग्वेद मे निम्नाकित रूप से प्राप्त होता है—

(१) मालिनी—(भ र) ना० शा० – ३२ ।७८ यथा—'ब्रह्म च नो वसो'। ऋग्वेद– १ ।१० ।४

(२) जला—(त र) ना० शा० – ३२ ।८८ यथा—चम्यर्कमर्किण । ऋग्वेद– १ ।१० ।१

(३) रम्या—(म य) ना० शा० – ३२ ।९० यथा—युञ्जन्त्यस्य काम्या। ऋग्वेद– १ ।६ ।२

(४) नीलतोया—(र म) ना० शा० – ३२ ।९८ यथा—हव्यवाड् जुह्वास्य। ऋग्—१ ।१२ ।६

७ उष्णिक् (सप्ताक्षरपाद)

(७) **कुमारललिता** - कुमारललिता ज्सौग्। छन्द सूत्र-६ ।८

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे सात अक्षर और जगण, सगण एक गुरुवर्ण (।ऽ ।।।ऽऽ) हो, तो उसे कुमारललिता छन्द कहते है। यथा—

इद वदनपद्म प्रिये ।तव विभाति ।

इह व्रजति मुग्धे । मनो भ्रमरता मे ॥ हेमचन्द्र छदोनुशासनवृत्ति – २ ।५४ ।२

ऋग्वेद मे इसका एक पक्ति रूप मे उदाहरण मिलता है—

स चैषु सवनेष्वा। ऋग्वेद-१ ।९ ।३ का तृतीय चरण ।

इस सप्ताक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से १२८ छन्दोभेद होते है।

८ अनुष्टुप् (अष्टाक्षरपाद)

(८) **मतचेष्टित**– चतुर्थ च द्वितीय च षष्ठमष्टममेव च ।

गुरूण्यष्टाक्षरे पादे वदन्ति मत्तचेष्टितम् ॥ना० शा० – १६ ।१४

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे आठ अक्षर हों और उसमे द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ और अष्टम वर्ण गुरु हों तथा शेष लघु, उसे मतचेष्टित कहते है। भरत के इस लक्षण के अनुसार ही पिगल ने भी लघु गुरु वर्ण निर्देश द्वारा इसी छन्द के नामवाची प्रमाणी का लक्षण किया है।(ल्गिपि प्रमाणी-छन्द सूत्र-५ ।७)।

---

१११ भरत ने छन्दो के लक्षण गुरुलघुवर्णनिर्देशपद्धति से किये है, और पिगल ने गणात्मक पद्धति से। अत यहा से गणात्मक पद्धति द्वारा ही छन्दो के लक्षण निर्दिष्ट किये जायेगे, क्योकि छन्दोनिर्देश मे यही पद्धति अब तक मान्य रही है। यदि किसी लक्षणकार की कोई विशेष पद्धति उसके लक्षणो मे होगी तो उसे उसके पूर्व ही यथास्थान प्रदर्शित किया जायेगा।

जिसके अनुसार वह छन्द, जिसके प्रत्येक पाद की पूर्ति उत्तरोत्तर लघु गुरु वर्णो से की जावे, प्रमाणी कहलाता है, जबकि वे अपनी मुख्य गणात्मक पद्धति से भी प्रमाणी का लक्षण कर सकते थे। जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे क्रमश जगण, रगण, और एक लघु तथा एक गुरु वर्ण (।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ) हो, तो उसे प्रमाणी कह सकते है, किन्तु गणात्मक पद्धति मे इसका लक्षण न कर भरत की लघु गुरु वर्ण निर्देश पद्धति मे ही उसका लक्षण किया है, जबकि कुछ छन्दो[११२] के लक्षणों को छोडकर समस्त ग्रन्थ मे छन्दो के लक्षण गणात्मकपद्धति से ही प्राप्त होते है, जिससे स्पष्ट होता है कि भरत की वर्णनिर्देश पद्धति प्राचीनपद्धति है, जिसका प्रथमत अनुगमन करते हुए भी उन्होने उसमे सुधार कर सक्षिप्त सूत्र प्रणाली द्वारा गणात्मकपद्धति का विकास किया है, जिसे कुछ ही छन्द रचियताओ[११३] को छोडकर परवर्ती सभी लक्षणकारो ने अपनाया और वह उचित मानी गयी। यथा—

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले,
गलेऽवलम्ब्य लम्बिता भुजग तुग मालिकाम् ॥१॥
डमड् डमड् डमड् डमन्निनादवड्डमर्वयम्,
चकार चण्डताण्डव तनोतु न शिव शिवम् ॥२॥ रावणकृत शिवताण्डवस्तोत्र– १-२।

ऋग्वेद मे भी उसका एक पक्ति रूप में उदाहरण प्राप्त होता है—

हृदि स्पृगस्तु शन्तम । ऋग्वेद–१।१६।७।

इस अष्टाक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से २५६ छन्दोभेद होते है।

९. बृहती (नवाक्षरपाद)

(९) **हलमुखी**—हलमुखी र्नौस्। छन्द सूत्र-६।१४

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे ९ अक्षर हो और उसमे रगण, नगण और सगण (ऽ।ऽ- ।।।- ।।ऽ) हो तो उसे हलमुखी कहते है। यथा—

दन्तुर कपिशनयन, यन्मुख विकटचिबुकम्।
ता स्त्रिय सुखमभिलषन्, दूरतस्त्यज हलमुखीम्॥ हेमचन्द्र छदोऽनुशासन वृ०–२।९०।११।

इस नवाक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से ५१२ छन्दोभेद कल्पित होते हैं।

१० पक्ति (दशाक्षरपाद)

(१०) **हसी**—मन्द्राक्रान्ताऽन्त्ययतिरहिता सद्योग्राहिन्! भवति यदि सा।
तद् विद्वद्भिर्ध्रुवमभिहिता ज्ञेया हसी शुचितममते॥ श्रुतबोध–१९।

मन्द्राक्रान्ता छन्द यदि अन्तिम सात प्रकारो से रहित हो, तो उसे हसी छद कहते हैं, अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे मन्दाक्रान्ता छन्द के प्रथम १० अक्षरो मे पहले चार और अन्तिम एक वर्ण दीर्घ तथा शेष मध्य के पाच वर्ण ह्रस्व हो, अर्थात् मगण, भगण, नगण तथा एक गुरु वर्ण (ऽऽऽ-ऽ ।।- ।।।-ऽ) हो, तो उस छद को हसी कहते है। यह मन्दाक्रान्ता से विकसित है। यथा—

हिसाद्वेषौ प्रकृति सुलभौ दुर्वृत्तानामनुदिनमत।
तै ससारो घृणितनरको रम्योऽप्येव सदयहृदय ॥ श्रुतबोधविमलाटीका–१९।

---

११२ पिगल ने समानी, वितान और वृत्त नामक छन्दों के लक्षण भी भरत की वर्णनिर्देश पद्धति से किये है। दृष्टव्य—ग्लिति समानी—वितानमन्यत्—'ग्लितिवृत्तम्"—छद सूत्र–५।६,८,७।२५।

११३ कालिदास ने श्रुतबोध के छन्दो के लक्षण वर्णनिर्देशपद्धति से किये हैं।

इस दशाक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से १०२४ छन्दोभेद होते है, जिसमे गोपाल[११४] (पद्मावर्त) नामक छन्दोभेद का उदाहरण एक पक्ति रूप मे ऋग्वेद मे भी मिलता है। यथा—

अग्नि होतार मन्ये दास्वन्तम् । ऋग्वेद १ ।१२७ ।१ का प्रथम चरण।

इसके अतिरिक्त इस वृत्ति के छन्दोभेद जयकीर्ति द्वारा छन्दोनुशासन–२ ।८८ मे लक्षित मदिराक्षी का उदाहरण भर्तृहरिकृत शृगारशतक-९० मे प्राप्त होता है।

११ त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरपाद)

(११) उपेन्द्रवज्रा—उपेन्द्रवज्राकेजृ—जानाश्रयी छन्दोविचिति–४ ।३५ ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे ११ अक्षर हो और उसमे केजृ =(विभातिक्[११५] ।U ।, तेश्रा क्वब् UU ।, नदी ज् ।U, कुशागीड) हो, अर्थात् क्रमश जगण, तगण, जगण और दो गुरु वर्ण (।S ।–SS ।– ।S ।-SS) हो, तो उसे उपेन्द्रवज्रा छन्द कहते है। यथा–

हत त्वया राज्यमिद सराष्ट्र हतस्तथात्मा सह मन्त्रिभिश्च ।
हता सपुत्राऽस्मि हताश्च पौरा सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ ॥वा० रा० – अयोध्या० –६१ ।२६ ।

इस छन्द के अन्य उदाहरण रघुवश–६ ।८४, किरातार्जुनीय–१५ ।५०, शिशुपालवध–४ ।२७ मे देखे जा सकते है। ऋग्वेद में भी इसका एक पक्ति के रूप मे उदाहरण मिलता है—

वयश्च नामी पतयन्त आपु । स्तुहि श्रुत गर्त सद युवानम् ॥ऋग्- १ ।२४ ।६, २ ।३३ ।११

इस दशाक्षरवृत्ति मे २०४८ छन्दोभेद कल्पित होते है, जिनमे से १२७ भेदो के लक्षण भरत से दुखभञ्जनपर्यन्त छान्दस रचयिताओ के ग्रन्थो मे मिलते है। उनमे उपेन्द्रवज्रा, स्वागता, वातोर्मी, रथोद्धता, शालिनी, दोधक और भ्रमर विलसिता वृत्त तो काव्यो मे प्रयुक्त है और शेष वृत्त अप्रयुक्त है। इनमें से इन्द्रवज्रा, लयग्राही, सेनिका, इहामृगी, सौभगकला, वातोर्मी, शालिनी और उद्यत (नीला) वृत्तों के एक पक्ति रूप मे मूलभूत उदाहरण ऋग्वेद में भी प्राप्त होते है। यथा—

(१) इन्द्रवज्रा (त त ज ग ग) यथा– पूषण्वते ते चकृमा करम्भम् । ऋग्वेद-३ ।५२ ।७
(२) लयग्राही (त त त ग ग) यथा– माज्यायस शसमा वृक्षिदेवा ऋग्वेद-१ ।२७ ।१३
(३) सेनिका (जर जग ल) यथा– अबाधम वि मध्यम श्रयाय—ऋग्वेद-१ ।२४ ।१५
(४) इहामृगी (त भ त ग ग) यथा– अग्ने र्वय प्रथमस्यामृतानाम्—ऋग्वेद-१ ।२४ ।२
(५) सौभगकला (भ ज स ल ग) यथा– भेषजमपामुत प्रशस्तये—ऋग्वेद-१ ।२३ ।१९
(६) वातोर्मी (म भ त ग ग) यथा– आ देवानामभव केतुरग्ने—ऋग्वेद-३ ।१ ।१७
(७) शालिनी (म त त ग ग) यथा– इन्द्रासोमा दृष्कृते मा सुग भूत्—ऋग्वेद-७ ।१०४ ।७
(८) उद्यत (त न र ल ग) यथा– अप्स्वन्तर मृतमप्सु भेषजम्—ऋग्वेद-१ ।२२ ।१९

इससे स्पष्ट है कि लौकिकछन्दों का भी मूल स्थल ऋग्वेद है।

---

११४ दृष्टव्य—चन्द्रशेखरभट्टकृत वृत्तमौक्तिक– २ ।१२५ ।

११५ जनाश्रय ने पिगल के अष्टगणों के अतिरिक्त १० गण और प्रदर्शित किये है और गुरु का चिह्न U दिया है, तथा गणों के नाम भी पृथक् दिये हैं। द्रष्टव्य-जानाश्रयी छन्दोविचिति–१ ।१८–३५ ।

१२ जगती (द्वादशादारपाद)

(१२) **द्रुतविलम्बित**—द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ । जयदेवच्छन्द–६ ।३० ।
छदोमञ्जरी–२ ।१२ ।१०

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे १२ अक्षर हों और उसमें क्रमश नगण, भगण, भगण, रगण (।।।–ऽ ।।–ऽ ।।–ऽ ।ऽ।) हो तो उसे भरत के मत में हरिणप्लतु और पिगल के मत में द्रुतविलम्बित कहते हैं ।[११६] यथा—

दशशताक्षकुकब्दरिनि सृत किरण केसरभासुर पिञ्जर ।
तिमिरवारणयूथविदारण समुदियादुदयाचलकेशरी ॥ महाभारत–द्रोणपर्व १८४ ।४७

इस द्वादशाक्षरवृत्ति मे ४०९६ प्रस्तार से छन्दोभेद कल्पित होते हैं, जिनमें से १४६ भेदो के लक्षण मिलते है, उनमे से तोटक, प्रमिताक्षरा, वशस्थ, द्रुतविलम्बित, भुजग-प्रयात, स्रग्विणी, इन्द्रवशा, जलोद्धतगति, वैश्वदेवी, प्रमुदितवदना, जलधरमाला, वलभी छदो के उदाहरण तो काव्यो मे मिलते है, जिनमे से वशस्थ और इन्द्रवशा के अतिरिक्त ललिता तथा विधारिता छन्दोभेदो के उदाहरण ऋग्वेद में केवल एक पक्ति रूप में मूलत प्राप्त होते हैं । यथा–

(१) **वशस्थ**–(ज त ज र) —यथा-रथ न दुर्गाद् वसव सुदानव । ऋग्वेद-१ ।१०६ ।१
(२) **इन्दवशा**–(त त ज र) —यथा-यूना ह सन्ता प्रथम वि जज्ञतु. । ऋग्वेद-९ ।६८ ।५
(३) **ललिता** (त भ ज र)—यस्तातृषाण उभयाय जन्मने । ऋग्वेद-१ ।३१ ।७
(४) **विधारिता** (ज ज ज र)—पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तर –ऋ० १ ।३१ ।४

१३ **अतिजगती (त्रयोदशाक्षरपाद)**

(१३) **मत्तमयूर**– विश्रामोऽब्धौ मत्तमयूर मतया स्गौ । जयकीर्तिकृत छदोऽनुशासन– २ ।१५ ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में १३ अक्षर हों तथा उसमें मगण, तगण, यगण, सगण और एक गुरु वर्ण (ऽऽऽ–ऽऽ।– ।ऽऽ– ।।ऽऽ) हों और चतुर्थ वर्ण पर यति हो, तो उसे मत्तमयूर कहते हैं । यथा–

जातप्रीतिर्या मधुरेणानुवनान्त कामे कान्ते सारसिका काकुरुतेन ।
तत्सम्पर्कं प्राप्य पुरामोहनलीला कामेकान्ते सा रसिका का कुरुते न ॥ शिशुपालवध—६ ।७६

इस त्रयोदशादक्षरवृत्ति में ८१९२ छन्दोभेद प्रस्तार से होते हैं, जिनमे ११७ भेदों के लक्षण मिलते है, उनमे से रुचिरा, मतमयूर, कुटिलगति, मृगेन्द्रमुख, भ्रमरी, प्रहर्षिणी तथा मञ्जुभाषिणी का काव्यों मे प्रयोग मिलता है ।

१४. शक्वरी (चतुर्दशाक्षरपाद)

(१४) **वसन्ततिलका**—'वसन्ततिलका त्भौ जौ गौ । छन्द सूत्र–७ ।८ ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में १४ अक्षर हों तथा उसमें तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु वर्ण (ऽऽ।–ऽ ।।– ।ऽ।— ।ऽ।–ऽऽ) हों, तो उसे सेतव के मत में उद्धर्षिणी, काश्यप के मत में सिहोन्नता, शाकल्य के मत में मधुमाधवी और भरत के मत में वसन्ततिलका, कविसुन्दर के मत में कर्णोत्पला और भुजगाधिष के मत में शोभावती कहते हैं ।[११७] किन्तु यह छन्द वसन्ततिलका नाम से प्रसिद्ध है । यथा—

---

११६ दृष्टव्य—नाट्यशास्त्र–१६ ।४८ तथा छन्द सूत्र–६ ।३६ ।

११७ छन्द· सूत्र–७ ।१०, ९, ११, ८ । जयदामन् में वृत्तरत्नाकर-३ ।७५ ।३,४

एषा मया तव नराधिप । राक्षसानामुत्पत्तिरद्य कथिता सकला यथावत् ।
भूयो निबोध रघुसत्तम रावणस्य जन्मप्रभावमतुल ससुतस्य सर्वम् ॥

वाल्मीकि कृत रामायण—७ ।८ ।२८ ।

इस चतुर्दशाक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से १६३८४ छन्दोभेद होते हैं, जिनमे ९९ भेदो के लक्षण मिलते है, उनमे वसन्तलिका, प्रहरणकलिता, कुटिला, मणिकटिक, प्रथिता, छन्द काव्यो मे प्रयुक्त है, जिनमे वसन्ततिलका का काव्यो मे सर्वाधिक प्रयोग मिलता है ।

१५. अतिशक्वरी (पचदशाक्षरपाद)

(१५) मालिनी—ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकै । छन्दोमञ्जरी—२ ।१५ ।४

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे १५ अक्षर हों तथा उसमे क्रमश दो नगण, एक मगण, दो यगण (।।।– ।।।–ऽऽऽ— ।ऽऽ– ।ऽऽ) हो और अष्टम तथा सप्तम वर्ण पर यदि हो, तो उसे भरत के मत में नान्दीमुखी और पिगल के मत मे मालिनी कहते है ।[११८] यथा—

अथ हरिवरनाथ प्राप्तसग्रामकीर्ति र्निशिचरपतिमाजौ योजयित्वा श्रमेण ।
गमनमतिविशाल लघयित्वार्कसूनुर्हरिगणबलमध्ये रामपार्श्व जगाम ॥

वाल्मीकीय रामायण–६ ।४० ।२९ ।

इसके अतिरिक्त माघ ने शिशुपालवध मे ११ वे सर्ग मे १ से ६६ तक पद्य इसी छद मे लिखे हैं । इस पचदशाक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से ३२७६८ छन्दोभेद होते है, जिनमे ५७ भेदो के लक्षण मिलते है, उनमें रमणीयक का क्वचित् किन्तु मालिनी का काव्यो मे अधिक प्रयोग मिलता है ।

१६ अष्टि (षोडशाक्षरपाद)

(१६) पचचामर—जरौ जरौ जगाविद वदन्ति पचचामरम् ।

जयकीर्तिकृत छन्दोनुशासन—२ ।२०३

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे १६ अक्षर हो तथा उसमे क्रमश जगण, रगण, जगण, रगण, जगण, एक गुरु वर्ण (।ऽ।–ऽ।ऽ– ।ऽ।—ऽ।ऽ– ।ऽ।–ऽ) हो, तो उसे पचचामर कहते हैं । यथा—

सुदद्रुमूलमण्डपे विचित्ररत्ननिर्मिते लसद्वितानभूषिते सलील विभ्रमालसम् ।
सुरागनाभवल्लवीकरप्रपञ्चचारमस्फुरत्समीरवीजित सदाऽच्युत भजामि तम् ॥

छन्दोमञ्जरी—२ ।१६ ।४ ।

उक्त छन्द की रचना भरत के मत्तचेष्टित छन्द के दो पदो के मेल से होती है ।[११९] वाणीभूषण और वाग्वल्लभ मे इसकी नराच सज्ञा मिलती है ।[१२०] जिसमें प्रमाणिका के दो पदो के मेल से इसे लक्षित बताया गया है। प्रमाणिका का ठीक वही लक्षण होता है, जो कि मत्तचेष्टित का है ।[१२१] प्रमाणिका पिगल के प्रमाणी छन्द[१२२] का ही द्योतक नाम है । पिगल से भरत प्राचीन है, अत पचचामर की रचना मे मत्तचेष्टित के दो पद माने गये हैं। लाक्षणिक ग्रन्थो के लक्षण के साथ उदाहरण के

---

११८ नाट्यशास्त्र–१६ ।७०, तथा छन्द सूत्र–७ ।१५ ।

११९ दृष्टव्य–नाट्यशास्त्र–१६ ।१४ ।

१२० वाग्बल्लभ–१६ ।२० तथा वाणीभूषण–२ ।१७५ ।

१२१ प्रमाणिका और मत्तचेष्टित का लक्षण-जरलग ।ऽ।-ऽ।ऽ- ।ऽ

१२२ छन्द सूत्र–५ ।७ ।

अतिरिक्त लौकिक काव्यो मे तो इसका उदाहरण प्राप्त नही हो सका किन्तु ऋग्वेद मे एक पक्ति के रूप मे इसका उदाहरण मूल रूप मे अवश्य मिलता है, जिससे लौकिक छन्दो की उत्पत्ति मे ऋग्वेद उनके मूलरूप मे प्रमाणित होता है। यथा—

अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुति चर। ऋग्वेद–१ ।१० ।३ ।

इस षोडशाक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से ६५५३८ छन्दोभेद कल्पित होते है, जिनमे ५२ भेदों के लक्षण मिलते है, किन्तु उनमे से किसी का काव्यो मे अधिकतर प्रयोग नही मिलता।

१७ अत्यष्टि (सप्तदशाक्षरपाद)

(१७) **शिखरिणी**—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला ग शिखरिणी।

वृत्तरत्नाकर– ३ ।८७, छदोमजरी– २ ।१७ ।१

जिस छन्द मे प्रत्येक पाद मे १७ अक्षर हो तथा उसमे क्रमश यगग, मगण, नगण, सगण, भगण, एकलघु तथा एक गुरु वर्ण (।ऽऽ– ऽऽऽ– ।।।– ।।ऽ– ऽ ।।– ।– ऽ) हो और छठे एव ग्याहरवें वर्ण पर यति हो, तो उसे शिखरिणी कहते है। यथा—

अनाहरे तुल्य प्रततरुदितक्षामवदन शरीरे सस्कार नृततिसमदु ख परिवहन्।

दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपति नृप प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरम ।

स्वप्नवासवदत्तम्– १ ।१४ ।

इसके अतिरिक्त कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तल, भवभूतिकृत उत्तररामचरित, श्री हर्षकृत नैषधीयचरित में यत्र-तत्र शिखरिणी के उदाहरण दृष्टिगत होते हैं, किन्तु पण्डितराजजगन्नाथकृत गगालहरी शिखरिणी से परिपूर्ण रचना है।

इस सप्तदशाक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से १३१०७२ छन्दोभेद कल्पित होते है, जिनमें ४१ भेदो के लक्षण मिलते है, उनमे शिखरिणी, वृषभललित, मन्द्राक्रान्ता, वशपत्रपतित, अतिशायिनी, अवितथ, विलम्बितगति नामक छन्दोभेदो का काव्यों मे प्रयोग प्राप्त होता है, जिनमे शिखणी तथा मन्द्राक्रान्ता का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है।

१८ धृति (अष्टादशाक्षरपाद)

(१८) **नाराचक**—नाराचक नौ रौ रौ। छन्द सूत्र– ८ ।१७

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे १८ अक्षर हो तथा उसमे क्रमश दो नगण, और चार रगण (।।।- ।।।-ऽ ।ऽ-ऽ ।ऽ– ऽ ।ऽ– ऽ ।ऽ) हो तो उसे नाराचक कहते है। जयकीर्ति छन्दोनुशासन– २ ।२२४ मे इसका नाम वरदा निशा और छन्दोमञ्जरी– २ ।१८ ।३ मे नाराच तथा मल्लिनाथकृत शिशुपालवध की सर्वकषा नामक टीका– ११ ।६७ मे महामालिका भी मिलता है। यथा—

रघुपतिरपि जातवेदोविशुद्धा प्रगह्य प्रिया प्रियसुहृदि विभीषणे सगमय्य श्रिय वैरिण ।

रविसुतसहितेन तेनानुयात स सौमित्रिणा भुजविजितविमानरत्नाधिरूढ प्रतस्थे पुरीम् ॥

रघुवश– १२ ।१०४ ।

इसके अतिरिक्त माघकृत शिशुपालवध– ११ ।६७ में भी इसका उदाहरण प्राप्त होता है।

इस अष्टादशाक्षरवृत्ति मे प्रसार से २६२१४४ छन्दोभेद कल्पित होते हैं, जिसमें ५१ भेदो के लक्षण मिलते हैं, उनमे नाराचक और नन्दन ये दो भेद काव्यो में प्रयुक्त हैं।

१९. अतिधृति (एकोनविशत्यक्षरपाद)

(१९) **शार्दूलविक्रीडित**—सूर्याश्वैर्मसजा स्तता सगुरव शार्दूलविक्रीडितम्।

भट्टकेदारकृत वृत्तरत्नाकर– ३ ।९६,९९ ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे १९ अक्षर हो तथा उसमें क्रमश मगण, सगण, जगण, सगण, दो

तगण, एक गुरु वर्ण (ऽऽऽ– ॥ऽ– ।ऽ।– ॥ऽ– ऽऽ।– ऽऽ।-ऽ) हो, और द्वादश तथा सप्तम वर्ण पर यति हो, तो उसे शार्दूलविक्रीडित कहते है। यथा—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदय सस्पृष्टमुत्कण्ठया,
कण्ठ स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजड दर्शनम्।
वैक्लव्य मम तावदीदृशमपि स्नेहादरण्यौकस,
पीड्यन्ते गृहिण कथ नु तनयाविश्लेषदु खैर्नवै ॥ अभिज्ञान शाकुन्तल–४।६।

इसके अतिरिक्त महाभारत अनुशासनपर्व–१४।२३४ मे, कुमारसम्भव–१५।५३ शिशुपालवध—१।७५, १६।८४, १७।६९, १९।१२०, २०।७८ भर्तृहरिकृत वैराग्यशतक मे ५१ तथा श्रीहर्षकृत नैषधीयचरित मे यत्र–तत्र १०२ श्लोको मे शार्दूलविक्रीडित के उदाहरण देखे जा सकते हैं। इस एकोनविशत्यक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से ५२४२८८ छन्दोभेद कल्पित होते है, जिनमे ३९ भेदो के लक्षण मिलते है, उनमे शार्दूलवक्रीडित और विस्मिता—ये दो छन्द कात्यो मे प्रमुख है, जिसमे शार्दूलविक्रीडित का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है।

२० **कृति (विशत्यक्षरपाद)**

(२०) **गीतिका**—सजजा भरौ सलगा यदा कथिता तदा खुल गीतिका।
छदोमञ्जरी–२।२०।२

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे २० अक्षर हो तथा उसमे क्रमश सगण, दो जगण, भगण, रगण, सगण, एक लघु और एक गुरु वर्ण (॥ऽ– ।ऽ।– ।ऽ।–ऽ॥–ऽ।ऽ– ॥ऽ– ।–ऽ) हो तो उसे प्राकृतपैगलकार के मत मे गीता और दामोदरमिश्र के मत मे गीतिका कहते है।[१२३] यथा—

करतालचञ्चलककणस्वनमिश्रणेन मनोरमा।
रमणीयवेणुनिनादरगिमसगमेव सुखावहा ॥
बहुलानुरागनिवासरासससमुद्भवा भवरागिण।
विदधौ हरिं खलु वल्लवीजनचारुचामरगीतिका ॥ छदोमजरी–२।२०।२।

इस विशत्यक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से १०४८५७६ छन्दोभेद कल्पित होते है, जिनमे २५ भेदो के लक्षण मिलते हैं, उनमे किसी भी छन्द का काव्यगत प्रयोग नही मिलता, किन्तु लाक्षणिकग्रन्थकारो ने अपने ग्रन्थो मे उनके उदाहरण स्वनिर्मित प्रस्तुत किये है।

२१ **प्रकृति (एकविशत्यक्षरपाद)**

(२१) **स्रग्धरा**—म्रौभ्नौ याश्च त्रय स्यु स्वरमुनितुरगै स्रग्धरा स्याद्विरामै।
जयदेवच्छन्द–७।२४।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे २१ अक्षर हों तथा उसमे क्रमश मगण, रगण, भगण, नगण एव तीन यगण हो (ऽऽऽ–ऽ।ऽ–ऽ॥– ।।।– ।ऽऽ– ।ऽऽ– ।ऽऽ) और सात-सात अक्षरों पर विराम हो तो उसे स्रग्धरा कहते हैं। यथा—

या सृष्टि स्रष्टुराद्या वहति विधिहुत या हविर्या च होत्री,
ये द्वे काल विधत्त श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहु सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिन प्राणवन्त,
प्रत्यक्षाभि प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीश ॥ अभिज्ञान शाकुन्तल–१।१

---

१२३ प्राकृतपैगल–२।१६९ तथा वाणीभूषण–२०।२०७।

इसके अतिरिक्त शिशुपालवध–१५ ।९६ मे १, शृगारशतक मे ९, जानकीहरण मे १०, नैषीधीयचरित मे २७ और मयूरशतक मे १०० पद्य स्रग्धरा छन्द मे मिलते है। इस एकविशतिवर्णवृत्ति मे २०९७१५२ छन्दोभेद कल्पित होते है, जिनमे २६ भेदो के लक्षण मिलते है, उनमे स्रग्धरा और शशिवदना छन्द काव्यो मे प्रयुक्त है, जिसमे केवल स्रग्धरा का काव्यो मे सर्वाधिक प्रयोग मिलता है।

२२ **आकृति (द्वाविशत्यक्षरपाद)**

(२२) **मदालस**—कर्ण जकाररसयुग्म विधेहि सखि कर्णतत कुरु रसम्।
हार नकारमथ कर्ण नरेन्द्रमिह हस्त विधेहि च तत।
सूर्याश्वसप्तयति कुर्याद् यथाऽभिरुचि पश्चाद् वसौ च विरति।
नेत्रद्वयेन कुरु पादान्तवर्णमिति वृत्त मदालसमिदम्॥

भट्टचन्द्रशेखरकृत वृत्तमौक्तिक–२ ।१ ।५५२ ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे २२ अक्षर हो तथा उसमे क्रमश कर्ण, जकार, रसयुग्म, कर्ण, रस, हार, नकार, कर्ण, नरेन्द्र हस्त (ऽऽ, ।ऽ।, ।।, ऽऽ, ।, ऽ, ।।।, ऽऽ, ।ऽ।, ।।ऽ) हो और सात-सात तथा आठ अक्षरो पर यति हो, तो उसे मदालस छन्द कहते है। यथा—

कुन्दातिभासि शरदिन्दावखण्डरुचि वृन्दावनव्रजवधू–
वृन्दागमच्छलनमन्दावहासकृतनिन्दार्थवादकथनम्।
वन्दारुविभ्यदरविन्दासनक्षुभितवृन्दारकेश्वरकृत–
च्छन्दानुवृत्तिमिह नन्दात्मज भुवनकन्दाकृति हृदि भजे॥

रामचन्द्रभट्टकृत नारायणाष्टक-वृत्तमौक्तिक–२ ।१ ।५५५ ।

श्री चन्द्रशेखर भट्ट की लक्षण शैली पिंगल की गणात्मक शैली से भिन्न है।[१२४] इसी छन्द का लक्षण दु खभजन ने सितस्तवक नामक छन्द के रूप मे गुणात्मक पद्धति से इस प्रकार किया है—

उक्त सितस्तवकवृत्त तभौ यजसरा नो गुरुर्यदि तदा। वाग्वलल्भ—२२ ।१६ ।

अर्थात् जिस छन्द के पादगत क्रमश तगण, भगण, यगण, जगण, सगण, रगण, नगण, एक गुरु वर्ण (ऽऽ ।–ऽ ।।– ।ऽऽ– ।ऽ।— ।।ऽ–ऽ ।ऽ– ।।।–ऽ), हो तो उसे सितस्तवक कहते हैं। यह लक्षण मदालस छन्द मे पूर्णत घटित होता है। अत गणात्मक पद्धति से यह लक्षण चन्द्रशेखर की विस्तृत पद्धति से सक्षिप्त और समुचित है। इस द्वाविशत्यक्षवृत्ति मे प्रस्तार से ४१९४३०४ छन्दोभेद कल्पित होते है, जिनमे ३१ भेदो के लक्षण मिलते है, किन्तु उनके लाक्षणिक ग्रन्थो मे प्रदर्शित तथा छन्दोलक्षणकारो द्वारा प्रणीत उदाहरणो के अतिरिक्त काव्यो मे प्रयोग नहीं मिलता।

२३ **विकृति (त्रयोविशत्यक्षरपाद)**

(२३) **वृन्दारक**—वृन्दारक रि ति तौ तौ। रत्नमञ्जूषा—७ ।१९ ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे २३ अक्षर हो तथा उसमे क्रमश र्, इ, त्, इ, त्, औ, त्, औ (।ऽ, ।।।, ऽ।ऽ, ।।।, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ) हो, तो उसे वृन्दारक कहते हैं।

---

१२४ श्री चन्द्रशेखरभट्ट की लक्षणशैली के प्रवर्तक विरहाक हैं। विरहाककृत लक्षण शैली मे वृत्तजातिसमुच्चय, प्राकृतपैगल, दामोदरमिश्रकृत वाणीभूषण, वृत्तमौक्तिक तथा वाग्वल्लभ मे मात्रावृत्तविभाग परिलक्षित मिलते है।

यथा— स्रवन्मदजलार्द्रगण्डमदगन्धहस्तिषरद्रक्तपानोचित,
मृगेन्द्रनखवज्रदारुणकरुक्षवक्षोमुखो व्याघ्रवृन्दारक ।
जरामुदितनष्टबलवीर्यमानावलेपो वराक पुन,
स भक्षयति दर्दुरान् मृगगणैरवक्षिप्यमाण शृगालादिभि ॥ रत्नमञ्जूषा—७ ।१९ ।

रत्नमञ्जूषाकार की लक्षणशैली गणात्मकशैली का प्रतिरूप है। उन्होने द्विक, त्रिक गणो की रचना के साथ म् को गुरु और न् को लघुवर्णसूचक प्रदर्शित किया है।[१२५] और गणो के नामो मे अन्तर है।[१२६] उक्त छन्द का लक्षण हेमचन्द्र ने गणात्मक शैली मे निम्न प्रकार से किया है—

ज्सौ ज्सौ यिल्गा वृन्दारकम्। छन्दोऽनुशासन—२ ।२६४ ।

अर्थात् जिस छन्द के पादगत क्रमश जगण, सगण, जगण, सगण, तीन यगण, एक लघु तथा एक गुरु वर्ण (।ऽ।– ॥ऽ– ।ऽ।– ॥ऽ– ।ऽऽ– ।ऽऽ– ।ऽऽ- ।–ऽ) हो, उसे वृन्दारक कहते है। यह लक्षण रत्नमञ्जूषाकार द्वारा लक्षित उक्त छन्द मे पूर्णत घटित होता है।

दोनो ही लक्षण सूत्र शैली मे सक्षिप्त है, उनमे केवल प्रकार और गणनामों मे अन्तर है। इस त्रयोविशत्यक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से ८३८८६०८ छन्दोभेद कल्पित होते है, जिनमें २८ भेदो के लक्षण मिलते है, उनमे से किसी विरले छन्द का ही काव्यगत प्रयोग होता है। जैसे—छन्द सूत्र—७ ।२७,२८ मे लक्षित अश्वललित छन्द का उदाहरण भट्टिकाव्य—८ ।१३१ मे मिलता है।

२४ संस्कृति (चतुर्विशत्यक्षरपाद)

(२४) **दुर्मिला**—विनिधाय कर कुरु रत्नमनोहरबाहुयुग कुरु रत्नधर,
सगण च तत कुरु पाणितल वरपुष्पयुग विनिधाय गुरुम्।
इति दुर्मिलका फणिनायकसरचिता किल वर्णविलासपरा,
चतुराश्रितविशतिवर्णकृता कविता सुकृताश्रयशिल्पधरा ॥

वाणीभूषण—२ ।२१९ ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे २४ अक्षर हो तथा उसमे क्रमश कर, रत्न, बाहुयुग, रत्नधर, सगण, पाणितल, पुष्पयुग, गुरु (॥ऽ, ॥ऽ, ॥ऽ– ॥ऽ, ॥ऽ, ॥ऽ, ॥ऽ, ॥ऽ) हो, तो उसे दुर्मिला कहते है, जिसके गणात्मक शैली मे अष्ट सगण होते हैं। दुखभञ्जन ने इसे द्विमिला नाम देकर निम्नाकित रूप से लक्षित किया है—

सगणा यदि चाष्ट तथा फणिनायकसलपिता भवति द्विमिला। वाग्वलल्भ—२४ ।१५ ।

अर्थात् जिस छन्द के पादगत क्रमश आठ सगण हो, तो उसे द्विमिला छन्द कहते हैं। यह दुर्मिला का नामान्तर है। यथा—

कति सन्ति न गोपकुले ललिता स्मरतापहताश्च विहाय च ता,
रतिकेलिकलारसलालसमानसमागतमुज्झितमानरसम्।
वनमालिनमालि नमस्य नमस्य नमस्य मुदस्य चिरस्य वृथा,
भविता परितापवती भवती युवती जनससदि हासकथा ॥ वाणी भूषण २ ।२२०

---

१२५ रत्नमञ्जूषा–१ ।१–२ सूत्रो का भाष्य।
१२६ रत्नमञ्जूषा–१ ।१–८।

इस चतुर्विंशत्यक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से १६७७७२१६ छन्दोभेद कल्पित होते है, जिनमे २८ भेदो के लक्षण मिलते है।

२५ अभिकृति (पचविंशत्यक्षरपाद)

(२५) **क्रौञ्चपदा**—अभिकृतौ भ्मस्भनीगा क्रौञ्चपदा डड्जै ।

हेमचन्द्रकृत छन्दोऽनुशासन—२ ।३७२ ।

जिस छन्द मे प्रत्येक पाद मे २५ अक्षर हो तथा उसमे क्रमश , भगण, मगण, सगण, भगण, चार नगण, एक गुरु वर्ण (ऽ ।।—ऽऽऽ— ।।ऽ—ऽ ।।— ।।।— ।।।— ।।।— ।।।—ऽ) हो और ड ड ज अर्थात् पाच-पाच और आठ अक्षरो पर यति हो, तो उसे क्रौञ्चपदा कहते है। जैसे—

प्रोज्झय पूराणि त्वदयोगान्नृपवर भवदरिरतिशयविधुरो
दूरमरण्य प्राप्य कलत्रै सह समजनि गतिरयवशतृषित ।
सारसनादात् स स्वयमादो प्रसरति कियदपि भुवमथ सहसा,
प्रेक्ष्य चकोर क्रौञ्चपदाका ध्रुवमिह सरिदिति निगदति दयिता ॥

हेमचन्द्रकृत छन्दोऽनुशासनवृत्ति—२ ।३७२ ।१ ।

उस पचविंशत्यक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से ३३५५४४३२ छन्दोभेद कल्पित होते हैं, जिनमे २४ भेदो के लक्षण मिलते है।

२६ उत्कृति (षड्विंशत्यक्षरपाद)

(२६) **भुजगविजृम्भित**—

आदौ बाले । मुक्तायुग्म विकसितकुवलयनयने । भवेत्तु सचामरम्,
पश्चात्कर्णौ मुग्धे । तस्मात् सुमुकुटरसरवपटहैस्तथाप्यपरो रव ।
स्पर्श भाव रत्न दत्वा वरतनु । शशिमुखि । सुभगे । मया तव कथ्यते,
मुग्धे । भूभृद्युक्त देय पुनरपि नरपतिकटक भुजगविजृम्भितम् ॥

वृत्तजातिसमुच्चय —५ ।५० ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे २६ अक्षर हो तथा उसमे क्रमश मुक्तायुग्म, चामर, कर्णौ (दोकर्ण), मुकुट, रस, रव, पटह, रव, स्पर्श, भाव, रत्न, भूभृत्, नरपति, कटक (ऽऽ, ऽ, ऽऽ—ऽऽ, ऽ, ।।, ।, ।।।, ।, ', ।।, ऽ, ।ऽ ।, ।ऽ ।, ऽ) हो, तो उसे भजग विजृम्भित कहते है। यही लक्षणपद्य इसका उदाहरण भी है। उक्त लक्षण पूर्णपद्य मे व्याप्त हो प्रकट हो रहा है। यह विरहाक की लक्ष्य लक्षण विस्तार शैली है। इसका गणात्मक लक्ष्य लक्षण शैली में ही सक्षिप्त लक्षण यह होगा—

मौलौनौर सल्गा प्राहुर्वसुमदनदहनमुनिभिर्भुजगविजृम्भितम् । ज्यदेवच्छन्द—७ ।३०

जिसके अनुसार छन्द के प्रत्येक पाद मे क्रमश म, म, त, न, न, न, र, स, ल, ग (ऽऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽ ।, ।।।, ।।।, ।।।, ऽ ।ऽ, ।।ऽ, ।, ऽ) हो और वसु (८), मदनदहन (११) तथा मुनि (७) अक्षरों पर यति हो, तो उसे भुजगविजृम्भित कहते है। यह छन्दोलक्षण ही स्वय अपने में एक पक्ति रूप में उदाहरण भी है। इससे भी अति सक्षिप्त लक्षण हेमचन्द्र ने सूत्र-शैली मे किया है—'मौ तो निरसल्गा भुजगविजृम्भित जटै'—(छन्दोऽनुसाशान—२ ।३७६), जिसका अतिप्राचीन उदाहरण भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में प्रस्तुत किया है—

रूपोपेता देवै स्पृष्टा समदगजविलसितगति निरीक्ष्य तिलोत्तमाम्,
प्राप्त द्रष्टु कन्दर्प त बहुवदननयनसहित तिरस्तुतवान् हर ।

दीर्घ निश्वस्यान्तर्गूढ स्तनवदनजघनकलिता निरीक्ष्य तथा पुन ,
पृष्ठन्यस्ता देवेन्द्रेण प्रवरमणिगणकवलय भुजगविजृम्भितम् ॥ ना० शा० – १६ ।१११ ।

इस षड्विशत्यक्षरवृत्ति मे प्रस्तार से ६७१०८८६४ छन्दोभेद कल्पित होते है, जिनमे ३४ भेदो के लक्षण मिलते है, किन्तु लाक्षणिक ग्रन्थो मे प्रदर्शित उदाहरणो के अतिरिक्त लौकिक कविरचनाओ मे उनका स्वाभाविक साधारण प्रयोग प्राप्त नही होता ।

वर्णवृत्त–सम (सीमित) दण्डक

दडक नामक वृत्त वे है, जिनके पाद मे २६ अक्षर से अधिक अक्षर होते है, उनसे निर्मित वृत्तो को मालावृत्त भी कहते है ।[१२७] लाक्षणिक ग्रन्थो मे २७ अक्षरपाद वाले दण्डक से ९९९ अक्षरपाद वाले दण्डक तक लाक्षणिक उल्लेख मिलता हे ।[१२८] इनमे से आदर्श कुछ दण्डको के लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे है—

(१) **चण्डवृष्टिप्रपात**—दण्डको नौ र, प्रथमश्चण्डवृष्टिप्रपात । छन्द सूत्र–७ ।३४,३५ ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे २७ अक्षर हो तथा उसमे क्रमश दो नगण और सात रगण (।।।- ।।।-ऽ ।ऽ-ऽ ।ऽ-ऽ ।ऽ-ऽ ।ऽ-ऽ ।ऽ-ऽ ।ऽ-ऽ ।ऽ), हो, उसे चण्डवृष्टिप्रपात दण्डक कहते है । यह मत माण्डव्य तथा रात आदि प्राचीन छान्दस आचार्यो का भी है,[१२९] जिसके उदाहरण मे भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र मे यह पद्य प्रस्तुत किया है—

मुदितजनपदाकुला स्फीतसस्याकरा भूतधात्री भवन्त समभ्यर्चति,
द्विरदकरविलुप्तहिन्तालतालीवनास्त्वा नमस्यन्ति विन्ध्यादय पर्वता ।
स्फुटितकलशशुक्तिनिर्गीणमुक्ताफलैरूर्मिहस्तैर्नमस्यन्ति वस्सागरा,
मुदितजलचराकुलास्ते प्रकीर्णामला कीर्तयन्तीव कीर्ति महानिम्नगा ॥

नाट्यशास्त्र–१६ ।११३ ।

यही पद्य जानाश्रयी छन्दोविचिति के वृत्तिकार गणस्वामी ने भी चण्डवृष्टि-प्रपात नामक दण्डक के उदाहरण मे प्रदर्शित किया है ।[१३०]

(२) **ललित**—मध्ये दवृद्ध्या मेघ-पिपीलिका-पणव-करम-ललितानि ।
जानाश्रयी छन्दोविचिति-४ ।११६

जलदण्डक के मध्य मे दकार (।।।।) वृद्धि से क्रमश मेघ से ललितपर्यन्त दण्डको की रचना होती है । उसके अनुसार जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे ५० अक्षर हो तथा उसमे क्रमश म, म, त, ११ न, र, स, ल, ग (ऽऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽ।, ।।।- ।।।- ।।।- ।।।- ।।।- ।।।- ।।।- ।।।- ।।।- ।।।- ।।।-ऽ ।ऽ, ।।ऽ, ।, ऽ) हो, तो उसे

---

१२७ नाट्यशास्त्र–१६ ।११२ ।

१२८ छन्द सूत्र–७ ।३४ मे २७ अक्षरपाद दण्डक और रामचन्द्र विबुधकृत टीका, वृत्तरत्नाकर–३ ।१०९ ।२ मे ९९९ अक्षरपाद दण्डक का उल्लेख देखे, जयदामन् में प्रकाशित वृत्तरत्नाकर-पृ० ८६ ।

१२९ अन्यत्र रातमाण्डव्याभ्याम् । छन्द सूत्र–७ ।३६, रात से माण्डव्य पूर्ववर्ती है, दृष्टव्य-वैदिक छन्दोमीमासा, पृ० ५९ ।

१३० जानाश्रयी छन्दोविचिति–४ ।११८ का वृत्तिभाग ।

ललितदण्डक कहते है, जिसके उदाहरण मे गणस्वामी ने निम्नाकित रचना प्रस्तुत की है—

येन प्राशु क्रौञ्चस्याग्र मणिकनकविमलनवरजतपटल
हरवृषभसकलशशिकिरणकुमुदसदृश सिताम्बुजसन्निभम्,
भिन्न शक्त्या लीलावत्यास्तटविटपकुटचसितपनर्सातिमिश-
धवखदिरतिलकतरुगहनललितशिखर लतागृहसकटम्।
क्रीडाभूमिर्गन्धर्वाणा गजगवयमहिषरुरुपृषतशरभमृग-
मिथुनपरमबहुविविधशकुनिचरित विपद् द्रुतकिन्नरम्,
सो रीन् वो द्भिर्देवो रोषात्तृषित इव पिबतु दहन-
इव दहतु पवन इव वहतु तरुणरविसदृशवदनो मयूरवरध्वज ॥

जानाश्रयीछन्दोविचिति-४ ।११६-वृत्तिभाग

इन सीमित दण्डको मे ८३ दण्डको के लक्षण मिलते है, जिनका छन्दोग्रन्थों में प्रदर्शित उदाहरणो के अतिरिक्त कवियो की रचनाओ मे प्रयोग नही मिलता।

वर्णवृत्त-असीमित दण्डक

असीमितदण्डक वे है, जिनके पादो मे कुछ विशिष्ट गणो के अतिरिक्त अन्य गणो की कोई सीमा नही होती। इनमे २१ दण्डको के लक्षण मिलते है, जिनमे दो गद्यदण्डक भी है।[१३१] आदर्शरूप मे उत्कलिका नामक दण्डक को सलक्षण उदाहृत किया जा रहा है—

(१) **उत्कलिका**—नाम्या पचमात्रैरुत्कलिका। हेमचन्द्रकृत छन्दोऽनुशासन-२ ।४०१

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे दो नगणो के बाद यथेच्छ पचमात्रिक गणो (ऽ।ऽ, ।ऽऽ, ऽऽ।, ।।।।।, ऽ।।।, ।।।ऽ) से रचना की जाय, तो उसे उत्कलिका नामक दण्डक कहते है। यथा—

स्मितबकुलशिरीषककेल्लिकवकोलनव्यप्रसूनावली।
परिमलविलोलरोलम्बरोलाकुलीकृताखिलचारुलीलावनौ।
मृदुमलयसमीरशैलूष शिक्षाक्रमानुगुणविविधागहारप्रयोग-
प्रपचप्रवल्गल्लतानर्तकीरम्यरगावनि ।
अभिनवसहकारकोरकास्वादमाद्यत्पिकयुवतिपचमोच्चार-
मन्त्रास्त्रसाधितविषममानिनीमानदुर्ग समन्तादयम्।
कमिव सपदि सन्ततोत्कलिकमिह नौ विधत्ते जन हेलया-
निर्जिताशेषलोकस्य देवस्य कामस्य निर्व्याजबन्धुर्मधु ॥

हेमचन्द्र छन्दोनुशासन वृत्ति–२ ।४०१ ।१

वर्णवृत्त-अर्धसमचतुष्पदी

अर्धसमचतुष्पदी वे वृत्त है, जिनका प्रथम पाद तृतीय पाद से और द्वितीय पाद चतुर्थ पाद से मेल खाता है। इनमे १७३ अर्धसमवृत्तों के लक्षण मिलते है, जिनमे से कुछ छन्दो के उदाहरण लक्षणपूर्वक प्रदर्शित किये जा रहे हैं—

---

१३१ महाचण्डवृष्टि और मकरालय, दृष्टव्य-श्री कृष्णभटकृत वृत्तमुक्तावली–३ ।२८४, २९९ के बाद।

(१) **सुबोधिता (मालभारिणी)**

ससजा गुरुयुग्मसयुता स्यु सभरा यश्च सुबोधिता प्रिया वा ।

जयकीर्तिकृत छन्दोनुशासन-३ ।१६ ।

जिस छन्द के प्रथम तथा तृतीय पाद मे ससजगग (॥ऽ- ॥ऽ- ।ऽ ।-ऽऽ) हो और द्वितीय तथा चतुर्थ पाद मे स, भ र, य (॥ऽ-ऽ ॥-ऽ ।ऽ- ।ऽऽ) हो तो उसे सुबोधिता कहते है । रत्नमञ्जूषा-२ ।२३ मे इसे मालभारिणी कहा गया है। यदि इसकी मात्रिक गणना की जाय, तो यह पिगललक्षित ओपच्छन्दसक[१३२] छन्द है । हेमचन्द्र ने इसका मालभारिणी नाम स्वीकृत कर औपच्छन्दसिक छन्द का भेट माना है।[१३३] मल्लिनाथ ने रघुवश की सजीवनी नामक टीका मे इसके उदाहरण को औपच्छन्दसिक[१३४] नाम से स्वीकार किया है, किन्तु औपच्छन्दसिक छन्द के लक्षण से सुबोधिता छन्द के लक्षण मे बहुत अन्तर है।[१३५] अत यह उससे भिन्न सुबोधिता छन्द है, जो विवोधिता से पादगत एक गुरु वर्ण के अन्त मे अधिक होने से उसी का एक विकसित स्वरूप है । यथा—

अथ सा वदने नवेन्दुकान्ति स्मितमेव विनिवेश्य चामर च ।
जगतीपतिमेवमाबभाषे मसृण मूर्तिमती विदग्धतेव ॥ नवसाहसाकचरित-५ ।१

इसके अतिरिक्त रघुवश-९ ।६६, ७२, किरातार्जुनीय-१३ ।१-३४, शिशुपालवध– २० ।१-७५, और नवसाहसाकचरित-५ ।१-८० पर्यन्त इसके उदाहरण देखे जा सकते है ।

(२) **उपजाति**—आद्यन्तावुपजातय । छन्द सूत्र– ६ ।२३

(क) जिस छन्द के प्रथम तथा द्वितीय पाद मे इन्द्रवज्रा का पाद (ततजगग- ऽऽ ।-ऽऽ ।- ।ऽ ।-ऽऽ) हो और तृतीय तथा चतुर्थपाद मे उपेन्द्रवज्रा का पाद (जतजगग ।ऽ ।-ऽऽ ।- ।ऽ ।-ऽऽ) हो, अथवा—

(ख) जिस छन्द के प्रथम तथा द्वितीय पाद मे उपेन्द्रवज्रा का पाद हो और तृतीय तथा चतुर्थ पाद मे इन्द्रवज्रा का पाद हो, तो उसे उपजाति कहते है । यथा—

(क) सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ य य व्यतीयाय पति वरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव 'प्रपेदे विवर्णभाव स स भूमिपाल ॥ रघुवश-६ ।६७ ।

(ख) लताप्रतानोद्ग्रथितै स केशैरधिज्यधन्वा विचचार दावम् ।
रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनोर्वन्यान्विनेष्यन्निव दुष्टसत्वान् ॥ रघुवश-२ ।८ ।

वर्णवृत्त-विषम चतुष्पदी

वर्णवृत्तो मे विपम चतुष्पदी वे वर्णवृत्त है, जिनका प्रत्येक पाद सम न होकर विषम वर्णस्थिति से युक्त होता है । इनमे ९७ विषमवृत्तो के लक्षण मिलते है, जिनमे से कुछ छन्दो के उदाहरण लक्षणपूर्वक प्रदर्शित किये जा रहे है—

(१) **गाथा**—अत्रानुक्त गाथा ।– छन्द सूत्र–८ ।१

जो छन्द वर्णादि नियमो के नियत्रण से रहित हो, उसे गाथा कहते हैं। ऐसे छन्द महाभारत मे

---

१३२ गौपच्छन्दसकम् । छन्द सूत्र–४ ।३४ (लक्षण-६ + रलगग, ८ + रलगग = १६,१८ मात्राए)

१३३ हेमचन्द्रकृत छन्दोनुशासन-३ ।१७ का वृत्तिभाग ।

१३४ रघुवश-९ ।६६ की सजीवनीटीका । काशी सस्कृत-ग्रन्थमाला, ५१, १९५३ ।

१३५ जयकीर्तिकृत छन्दोऽनुशासन-३ ।१६ और छन्द सूत्र-४ ।३४ के लक्षणो की तुलना करे ।

बहुत मिलते है। यथा—

सकृत्सता सगत लिप्सितव्य, तत पर भविता भव्यमेव।
नातिक्रामेत् सत्पुरुषेण सगत, तस्मात्सता सगत लिप्सितव्यम्॥ उद्योगपर्व-१० ।२३ ।

और श्रीमद्भागवत-५ ।५ ।२ मे भी—

महत्सेवा द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्धार योषिता सगिसगम्।
महान्तस्ते समचित्ता प्रशान्ता विमन्यव सुहृद साधवो ये॥

उद्योगपर्वीय पद्य के चतुर्थ चरण मे तो दु खभजन द्वारा लक्षित प्राकारबन्ध की पक्ति है, किन्तु दोनो पद्यो के किसी भी चरण मे उक्त पक्ति को छोडकर भरत तथा पिगल से लेकर दु खभञ्जन पर्यन्त छन्दोलक्षणकारो द्वारा लक्षित छन्दो का लक्षण सगत नही होता। अत पिगलानुसार उक्त पद्यो मे गाथा छन्द है।

(२) (क) **अनुष्टुप्**—(श्लोक)

श्लोके षष्ठ गुरु ज्ञेय सर्वत्र लघु पचमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययो॥ श्रुतबोध—१० ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे ८ अक्षर हो और उसमे षष्ठ वर्ण गुरु तथा पचमवर्ण लघु हो एव द्वितीय तथा चतुर्थ पाद मे सप्तम वर्ण ह्रस्व और प्रथम तथा तृतीय पाद मे गुरु (४ + ।ऽऽ + १,४ + ।ऽ ।+ १,४+ ।ऽ ।+१,४+ ।ऽ ।+ १) हो, तो उसे अनुष्टुप् श्लोक कहते है। यथा—

मा निषाद ! प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी काममोहितम्॥ वाल्मीकीय रामायण-१ ।२ ।१५ ।

वाल्मीकीय रामायण मे अनुष्टुप् श्लोको की सख्या-२२७०४ प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त कालिदास ने रघुवश मे ५४८, कुमारसम्भव मे २६५, भारवि ने किरातार्जुनीय मे १२५ श्रीहर्ष ने नैपधीयचरित मे ३७६ अनुष्टुपो का प्रयोग किया है, और भट्टिकाव्य मे १३०८ जानकीहरण मे २८० तथा नवसाहसाकचरित मे ४५४ अनुष्टुपो का प्रयोग मिलता है।

(ख) **अनुष्टुप् पद्य**—पचम लघु सर्वत्र सप्तम द्वि चतुर्थयो ।
षष्ठ गुरु विजानीयादेतत्पद्यस्य लक्षणम्। श्रुतबोध-११ ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे ८ अक्षर हो तथा उसमे पचम अक्षर तो सर्वत्र लघु और द्वितीय तथा चतुर्थ पाद मे षष्ठवर्ण गुरु हो तथा सप्तम वर्ण द्वितीय और चतुर्थ पाद मे लघु हो, इसके अतिरिक्त शेष वर्ण स्वेच्छया लघु या गुरु रूप मे प्रयुक्त (४+ ।+३,४+ ।ऽ ।+१,४+ ।+३,४+ ।ऽ ।+१) हो, तो उसे अनुष्टुप् पद्य कहते है। यथा—

तप स्वाध्यायनिरत तपस्वी वाग्विदा वरम्।
नारद परिपप्रच्छ वाल्मीकि मुनिपुगवम्॥ वाल्मीकीय रामायण १ ।१ ।१

अनुष्टुप्-श्लोक और पद्य, ये दोनो लौकिक छन्द वैदिक गायत्र पाद से निस्सृत और विकसित हैं, जिनका उदाहरण निम्नाकित वैदिक गायत्री छन्द मे परिलक्षित होता है—

अग्निमीडे पुरोहित, यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतार रत्नधातमम्॥ ऋग्वेद—१ ।१ ।१

उक्त गायत्री छन्द मे तीन गायत्रपाद होते है, अत जब उसमे एक और गायत्र पाद जोड दिया जाता है, तब वैदिक अनुष्टुप् की रचना हो जाती है। निम्नाकित वैदिक अनुष्टुप् मे श्लोक के तृतीय पाद को जोडकर पद्य का समस्त उदाहरण पूर्णत घटित होता है—

पुराणामनुवेनन्त चरन्त पापयामुया ।
असूयन्नभ्येचाकश तस्मा अस्पृहय पुन ॥ ऋग्वेद-१० ।१३५ ।२ ।

अत अनुष्टप् छन्द ऋग्वेद के अनुष्टुप् से विकसित छन्द है ।

(३) **उपजाति**—(इन्द्रमाला)

उभयमिश्रेन्द्रमाला, सा चतुर्दशभेदा । जानाश्रयी छन्दोविचिति-४ ।३६ ।

जिस छन्द के पाद इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के पादो के मिश्रण से बनते हो, उसे पिगल के मत में उपजाति और जनाश्रय के मत मे इन्द्रमाला कहते है । जनाश्रय ने इसके १४ भेद माने है और भामह ने भी उपजाति के चतुर्दश भेदो का समर्थन किया है।[१३६] जिनमे पिगल लक्षित अर्धसम छन्द आख्यानकी, विपरीताख्यानकी और उपजाति तथा कालिदास लक्षित आख्यानकी का भी समावेश हो जाता है, अत यहा उन्हे छोडकर विषमपाद उपजाति का लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

(क) जिसके प्रथम तथा चतुर्थ पाद मे त, त, ज, ग ग (ऽऽ ।-ऽऽ ।- ।ऽ ।-ऽ-ऽ), तथा द्वितीय और तृतीय पाद मे ज, त, ज, ग, ग (।ऽ ।-ऽऽ ।- ।ऽ ।-ऽ- ऽ) हो, अथवा

(ख) जिस छन्द के प्रथम तथा चतुर्थ पाद मे ज, त, ज, ग, ग और द्वितीय तथा तृतीय पाद मे त त, ज, ग, ग हो तो वह विषमपाद उपजाति होता है । यथा—

(क) पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणामनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी ।
तमातपक्लान्तमनातपत्रमाचारपूत पवन सिषेवे ॥ रघुवश-२ ।१३ ।

(ख) स मातर चैव विसज्ञकल्पामार्त च सौमित्रिमभिप्रतप्तम् ।
धर्मे स्थितो धर्म्युमुवाच वाक्य यथा स एवार्हति तत्र वक्तुम् ॥ वा० रा० २ ।२१ ।५५

मात्रावृत्त

मात्रावृत्त वे है, जिनके प्रत्येक पाद मात्राओ तथा मात्रिकगणो और लघु गुरु निर्देश द्वारा नियमित किये जाते है । इनमे दो भाग है, द्विपदी और चतुष्पदी । द्विपदी मात्रावृत्तो मे आर्या के अनेक भेद प्रभेदों का वर्णन मिलता है । इनमे गणवृत्त भी सम्मिलित किये गये है । गणवृत्त पूर्णत लौकिक माने गये है ।

गणवृत्त

गुणवृत्त वे है, जो मात्रिक गणो द्वारा नियमित किये जाते है । गणवृत्तो को नियिमत करने वाले मुख्यत पाच गण है—म, स, ज, भ, न, जिनका क्रमश स्वरूप—ऽऽऽ, ॥ऽ, ।ऽ ।, ऽ ॥, ॥। चिह्नित होता है । इन गणवृत्तो मे प्रमुखत दो भाग माने जाते है, पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध । इनमे आर्या से उद्गीति पर्यन्त छन्दो का छन्द सूत्रानुसार परिगणन किया जाता है ।[१३७] आर्या के प्रत्येक अर्द्धभाग मे साढे सात गणो का निर्देश माना गया है, किन्तु उसमे गण बढते और घटते भी रहते है । मात्रावृत्तो मे १२० छन्दो के लक्षण मिलते है, जिनमे से आदर्श रूप मे कतिपय छन्द यहाँ लक्षणपूर्वक उदाहृत किये जा रहे है—

मात्रावृत्त चतुष्पदी

(१) **आर्या**—यस्या प्रथमे पादे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पचदश सार्या ॥ श्रुतबोध-४ ।

---

१३६ एकत्रपादे चरणद्वये वा पादत्रये वाऽन्यतरस्थितिश्चेत् ।
तयोरिहाऽन्यत्र तदोहनीयाश्चतुर्दशोक्ता उपजातिभेदा ॥
अखिलानन्दशर्मकृत-छन्द सूत्र वैदिक भाष्य-६ ।२३ ।

१३७ अखिलानन्दशर्मकृत-छन्द सूत्र-वैदिक भाष्य—४ ।१२ ।

जिस छन्द के प्रथम तथा तृतीय पाद मे १२ मात्राए और द्वितीय पाद मे १८ तथा चतुर्थ पाद मे १५ मात्राए हो, उसे आर्या कहते है। यथा—

कोपवति पाणिलीलाचञ्चलचूताकुरे त्वयि भ्रमति।
करकम्पितकरवाले स्मर इव सा मूर्च्छिता सुतनु ॥ आर्यासप्तशती–१९०।

इसके अतिरिक्त नाट्यशास्त्र मे यत्र-तत्र, भट्टिकाव्य-१०।५७, अभिज्ञान शाकुन्तल मे यत्र-तत्र ३८, गाथासप्तशती मे ७०० और आर्यासप्तशती मे १ से ७०२ अकित पद्यो मे आर्या के उदाहरण देखे जा सकते है।

(२) **गीत्यार्या**—गात्यार्या ल। छन्द सूत्र–४।४९

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे १६, १६, १६, १६ लघु वर्ण अर्थात् १६–१६ मात्राए हो, उसे गीर्त्याया कहते है। यथा—

शुचिरुचिमुडुगणमगणनममुमति-
कलयसि कृशतनु । न गगनतटमनु।
प्रतिनिशशशितलविगलदमृतभृत-
रविरथहयचयखुरविलकुलमिव ॥ नैषधीयचरित-२२।१४६।

इसे वर्णवृत्त समचतुष्पदी मे भी रखा जा सकता है, क्योकि इसके १६ लघुवर्ण युक्त प्रत्येक पाद मे न, न, न न, न, ल (।।।- ।।।- ।।।- ।।।- ।।।- ।) रूप मे लक्षण घटित होता है, किन्तु पिगल ने इसकी गणना मात्रिक वृत्तो मे की है, अतएव इसे मात्रिक वृत्तो मे ही लक्षित किया गया है।

मात्रावृत्त (द्विपदी)

(१) **गीति**—आद्यर्धसमा गीति। छन्द सूत्र–४।२९

जिस छन्द मे आर्या के पूर्वार्द्ध के समान प्रत्येक अर्धभाग रचित हो, अर्थात् प्रत्यर्धभाग मे साढे सात गण (३० + ३० मात्राए), जिनमे छठा गण जगणात्मक (।ऽ।) अथवा चतुर्लघुरूप नगणात्मक (।।।।) हो तो उसे गीति कहते है। यथा—

तव न जाने हृदय मम पुन कामो दिवापि रात्रावपि।
निर्घृण । तपति वलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथाया अगानि ॥ अभिज्ञान शाकुन्तलम्-३।१३

(२) **उपगीति**—अन्त्येनोपगीति। छन्द सूत्र–४।३०

जिस आर्या का पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्धवत् हो, अर्थात् दोनो अर्धभागो मे २७–२७ मात्राए हो तो उसे उपगीति कहते है। यथा—

यदि नाम जन्म भूयो भवति मदीयै पुनर्दोषै।
तस्मिस्तस्मिञ्जन्मनि भवे भवेन्मेऽक्षया भक्ति ॥ महाभारत अनुशासनपर्व–१४।१९१

(३) **आर्यागीति**—अर्द्धे वसुगण आर्यागति। छन्द सूत्र–४।३२

जिस छन्द के प्रत्यर्धभाग मे कोई भी यथेष्ट अष्ट मात्रिक गण हो, जिनमे षष्ठगण जगणात्मक या नगणात्मक हो, अर्थात् ३२-३२ मात्राए हो, तो उसे आर्या-गीति कहते है। यथा—

मधुकरविटपानमितास्तरुपक्ति र्बिभ्रतोऽस्य विटपानमिता।
परिपाकपिशगलतारजसा रोधश्चकास्ति कपिश गलता ॥ शिशुपालवध-४।४८।

इसके अतिरिक्त इस छन्द के उदाहरण शिशुपालवध-४।५१, तथा भट्टिकाव्य–१३।१-२५, २९-५० पर्यन्त पद्यों मे देखे जा सकते है। इस छन्द को जयकीर्ति ने छन्दोऽनुशासन-५।१३ मे स्कन्ध नाम दिया है।

इस प्रकार इस अध्याय मे सम, अर्धसम, विषम, मात्रावृत्त आदि छन्दोविभागो मे लक्षणपूर्वक उदाहरण देकर विचार किया गया है। भरत और पिगल से दु खभञ्जन तथा दत्त दीनेशचन्द्र पर्यन्त छान्दस आचार्यो तथा सकलयिताओ की छान्दस रचनाओ मे वर्ण मात्रादिवृत्तविभागो मे २०४६ छन्दो के लक्षण मिलते है। जिनमे प्राय ७० वृत्त ही काव्यो मे प्रयुक्त हुए है, अवशिष्ट छन्दो मे से बहुत-से छन्दो के उदाहरण तो लक्षणो के साथ लक्षणग्रन्थो मे ही मिलते है और बहुत-से छन्द ऐसे भी है, जिनके छन्दोग्रन्थो मे लक्षण ही प्राप्त होते है, किन्तु उदाहरण वहा भी नही मिलते। अत उन छन्दो की लक्षण पक्तिया ही उनके उदाहरण है।



पञ्चम अध्याय

आधुनिक संस्कृत साहित्य में प्राप्त नवीन छन्दों का स्वरूप, उनका नामकरण, लक्षण तथा उदाहरण

(१) **सस्कृतीकृत लक्षित नवीन छन्द**

निर्धायिका	विरुदावली छन्द
शीर्षक	द्विगाकलिका
दोहा	द्विभङ्गी कलिका
चौपैया	उत्पलचण्ड वृत्त
कुण्डलिका	बकुल भासुर चण्ड वृत्त
मोरठा	मञ्जरी खण्डावली
हरिगीत	झुल्लन
पज्झटिका	खञ्जविशाल
चौबोला	आन्दोलिता
सवया	शुद्धध्वनि
घनाक्षर	

(२) **अलक्षित प्राचीन छन्द**

निरूपण	पवन	सत्यवती
कस्तूरी	सुशीला	शकुन्तला
राजेश	रञ्जना	गङ्गा
साधना	प्रफुल्लक	राजबाला
किशोरक	यतन	अर्चना
भैरव	पुष्पा	रमा
श्रीमती	सौभाग्यवती	पार्वती
कलावती	यतीन्द्र देवी	विषमगति
		चतुष्कर

(३) **अलक्षित नवीन छन्द**

किशोरगीत
नवधारा
पथिका
त्रिचला
चतुष्पदा

(४) **लोकगीत ध्वनियो के आधार पर सस्कृतीकृत छन्द**

चञ्चलगीत
विषमपथ
धरा

पंचम अध्याय

आधुनिक सस्कृत साहित्य मे प्राप्त नवीन छन्दों का स्वरूप, उनका नामकरण, लक्षण तथा उदाहरण

सस्कृत मे नवीन छन्दो से तात्पर्य सस्कृत भाषा मे सस्कृतेतर प्राकृत, अपभ्रश, हिन्दी भाषा तथा कवियो के समसामयिक बोलियो के छन्दो का सस्कृत भाषा मे प्रयोगात्मक अवतरण से है। यह प्रक्रिया पिगल के बाद जनाश्रयकृत जानाश्रयी छन्दोविचिति मे तात्कालिक जनभाषा के कतिपय छन्दो के सस्कृत मे लक्षण तथा उदाहरण रूप मे स्वीकृति द्वारा परिलक्षित होती है।[1] किन्तु उसका सम्यक् प्रयोग वाणीभूषण मे प्राप्त होता है, जिसमे दामोदर मिश्र ने सामयिक भाषा के छन्दो को सस्कृत भाषा मे उस ढग से अवतरित कर प्रस्तुत किया है, जिससे वे कतिपय छन्द अपनी मूल भाषा के न होकर सस्कृत भाषा के ही जान पडते है। यह प्रक्रिया परवर्ती छन्दोविषयक लाक्षणिक ग्रन्थो मे भी दृष्टिगत होती है, जिसके अनुसार सस्कृतेतर भाषाओ के ४०१ छन्दो का सस्कृत भाषा मे सस्कृतीकरण प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक सस्कृत साहित्य मे बहुत से ऐसे छन्दो का भी सस्कृत मे आजकल प्रयोग हो रहा है, जो सस्कृतेतर सामयिक जनभाषाओ तथा उनके अन्दर व्यवहार मे आने वाली विभिन्न बोलियो की ध्वनियो से नि सृत है, जिनका सस्कृत कवियो ने सस्कृतीकरण कर अपने काव्यो मे प्रयोग किया है, किन्तु उनके नाम तथा लक्षण किसी लाक्षणिक ग्रन्थ मे नही मिलते। अत इन दोनो प्रकार के नवीन छन्दो का स्वरूप प्रस्तुत करने के लिए उन्हे दो विभागो मे विभक्त किया गया है—

(१) सस्कृतीकृत लक्षित नवीन छन्द।

(२) अलक्षित छन्द।

सस्कृतीकृत लक्षित नवीन छन्दोविभाग मे छन्दोलक्षणकारो के द्वारा कालक्रमानुसार स्वतन्त्र रूप से लक्षित कुछ लौकिक नवीन सस्कृत छन्दो का और सस्कृतेतर प्राकृत, अपभ्रश तथा हिन्दी भाषा के कतिपय छन्दो का सस्कृतीकृत सकलन लाक्षणिक सकेत सहित निम्न लाक्षणिक रचनाओ से रचयिताओ के नाम तथा ग्रन्थ सकेत के अनुसार किया गया है[2]—

१ जनाश्रयकृत जानात्रयी छन्दोविविति।
२ दामोदरमिश्रकृत वाणीभूषणम्।
३ गगादासकृत छन्दोमञ्जरी।
४ चन्द्रशेखर भट्ट कृत वृत्तमौक्तिकम्-भाग–१
५ लक्ष्मीनाथ भट्ट कृत वृत्तमौक्तिकम्-भाग–२। (विषमवृत्त से अन्ततक रचना)
६ नारायणकृत वृत्तरत्नाकर टीका नारायणी।
७ श्रीकृष्ण भट्ट कृत वृत्तमुक्तावली।
८ दु ख भञ्जनकृत वाग्वल्लभ।

---

१ इदानीमन्याश्च काश्चिज्जातयो लोके प्रचरन्त्यो वक्ष्यन्ते। दृष्टव्य-जानाश्रयी-छन्दोविचिति–५/४४–४५ के मध्यगत वृत्तिभाग, जिससे ज्ञात होता है कि उस समय लोक मे प्रचलित कुछ छन्दो को सस्कृत मे लक्षित किया गया है।

२ दृष्टव्य-परिशिष्ट–१।

उपर्युक्त दोनो प्रकार के सस्कृत भाषा मे अपनाये गये लगभग ४०१ छन्दो का समग्र रूप से विवेचन करने से इस ग्रन्थ का कलेवर अनावश्यक रूप से विशाल हो जायेगा, अत उनमे से कुछ छन्दो के लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे है—

(१) सस्कृतीकृत लक्षित नवीन छन्द

(१) **निर्धायिका**—चत्वारो निर्धायिका, यी वान्त्य , क्तृतीय ।

जानाश्रयी छन्दोविचिति—५,४६/,४७,४८ ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में चतुर्मात्रिक चार गण हो, जिनमे अन्तिम गण मे यकार (।।।ऽ) या ईकार (ऽ ।ऽ) हो तथा तृतीयगण मे ककार (।ऽ ।) हो, उसे निर्धायिका कहते है । यथा—

बाले !बालेन्दुखण्डधारिणा, क्रोधाद्‌ग्धोऽपि मन्मथाधम ।
सकल लोक हि चण्डमानसो निशितैर्वाणैर्भिनत्ति मर्मसु ॥

छन्दोविचिति-वृत्ति-५ ।४८

उक्त उदाहरण के प्रत्येक पाद के अन्त मे ईकार (ऽ ।ऽ) और तृतीय गण में ककार (।ऽ ।) है । यह चतुष्पदी छन्द है ।

(२) **शीर्षक**—शीर्षक गीतिकापरग । छन्दोविचिति—५/५७ ।

जिस छन्द मे प्रथम चार पादो मे अधिकाक्षरा के पाद (प्रतिपाद[३] मे छ चतुर्मात्रिक गण हों, जिनमे तृतीय गण मे ककार (।ऽ ।) तथा अन्तिम गण मे यकार (।।।ऽ) या ईकार (ऽ ।ऽ) और शेष यथेच्छ गणों का प्रयोग) हो तथा अन्तिम दो पादो मे गीतिका के पाद (प्रतिपाद[४] साढे सात चतुर्मात्रिक गण, जिनमें ७वे गण मे यकार (।।।ऽ) या ईकार (ऽ ।ऽ) हो और शेष गणो का यथेच्छ प्रयोग) हो, तो उसे शीर्षक कहते है । यह षट्पदी छन्द है जो दो छन्दो का मिश्रण है ।[५] यथा—

विचरन्ति महेन्द्रगोपका नीलशाड्वलाश्रिय ,
स्तोक ग्रहचन्द्रभास्कराञ्छादयन्ति नीरदा ।
मेघोदकचारिणी च विलसति तटित् समन्तत ,
प्रणदन्ति वनस्थलीषु मुदितमनसश्च चातका ।
कुटचुकुसुमाधिवासितसिलिन्ध्रकन्दलवनान्तसेविनश्च,
वान्ति पवना प्रवासिना कुर्वन्ति सोत्सुकानि मानसानि ।

छन्दोविचिति-वृत्ति—५/५७ ।

जनाश्रय ने छन्दोविचिति मे ५/५५ से ७५ तक लोक मे प्रचलित २३ छन्दों का सस्कृतीकरण किया है ।

---

३ छन्दोविचिति—५/५२—५६ । अधिकाक्षरा अपभ्रश का छन्द है, दृष्टव्य- वृत्तजातिसमुच्चय—४/२४ ।

४ दृष्टव्य-छन्दोविचिति—५/४२-४३ । इस गीतिका का प्रयोग अपभ्रश मे भी है, दृष्टव्य-वृत्तजाति समुच्चय—२/२-३,४/१३ ।

५ इसका प्रयोग अपभ्रश में होता है, दृष्टव्य-वृत्तजातिसमुच्चय—४/४१-४२ । इसी प्रकार के छन्दों के मिश्रण के रूप मे जनाश्रय ने दशपदी त्रिकलय (५/५९)अष्टपदीरासक (५/७२) के लौकिक प्रयोग का भी सस्कृतीकरण किया है ।

(३) **दोहा**—षट्कलतुरगौ त्रिकलमपि विषमपदे विनिधेहि ।
समपादान्ते चैककलमिति दोहामवधेहि ॥ वाणीभूषण– १/५५ ।

जिस छन्द के विषम पादो (प्रथम तथा तृतीय) मे षट्कल (छह मात्राऍ) + तुरग (चार मात्राऍ) + त्रिकल (तीन मात्राऍ) = 13 मात्राए हो ओर समपादो (द्वितीय तथा चतुर्थ) मे षट्कल + तुरग + एककल (एकमात्रा) = 11 मात्राए हो, तो उसे दोहा कहते है । यथा—

चरणसरोरुहमस्तु हृदि, मे वदने तव नाम ।
चक्षुषि रूप यावदसु, रमय मनो मम राम ॥ वाणीभूषण– १/५६ ।

वाणीभूषणकार दामोदर मिश्र ने दोहा को कविदर्पण– २/१५ अथवा प्राकृतपैगल– १/७८ से ग्रहण कर सस्कृतीकृत किया है। एक दोहक (१४ + १२ + १४ + १२) का सस्कृत प्रयोग तो हेमचन्द्र ने भी छन्दोनुशासनवृत्ति– ६/२०/४३ मे भी दिया है किन्तु सस्कृतीकृत दोहा का मूल स्वयम्भूछन्द– ६/७७ मे प्राप्त होता है, जिसका प्राचीन अपभ्रश नाम—कुसुमाउलमहुअर (कुसुमाकुलमधुकर) है । यह अर्धचतुष्पदी छन्द है । परवर्ती ग्रन्थ छन्दोमजरी-के पचम स्तवक के अन्त मे दोहडिका नाम से, वृत्तमौक्तिक– १/२/१-३, वृत्तमुक्तावली– २/१-२ मे द्विपथा नाम से और वाग्वल्लभ मे मात्रार्द्धसमवृत्त– १ मे उसका लक्षणोदाहरण सहित सस्कृतीकरण किया गया है। प० ब्रह्मानन्द शुक्ल ने इसे काव्य मे भी प्रयुक्त किया है । यथा—

यानि कुत्र करुणाकर, दीनबन्धुमपहाय ?
याति न जलधारा क्वचित्, जलनाथ परिहाय ॥

यह पर्यनुयोग– २ विश्वसस्कृतम् (नवम्बर १९६३) मे विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध सस्थान, साधुआश्रम होशियारपुर से प्रकाशित है ।

(४) **चौपैया (चतुष्पदी)** —

चौपैयावृत्त त्रिशन्मात्र फणिपतिपिगलगीत,
कुरु सप्ततुरगममतिहृदयगममन्ते गुरुमुपनीतम् ।
यदि दशवसुरविभिश्छन्दोविद्भि क्रियते यतिरभिराम,
सपदि श्रवणसमये नृपति कवये वितरति ससदि कामम् ॥
वाणीभूषण– १/६३ ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे ३० मात्राए हो और १०, ८ तथा १२ मात्राओं पर यति हो तो उसे चौपैया कहते है । यथा—

कालियुकुलगञ्जनदुरित विभञ्जनसज्जनरञ्जनकारी,
गोवर्धनधारी गोपविहारी वृन्दावनसञ्चारी ।
हतदुर्जयदानवपालितमानवमुदिताखण्डलपाली,
गोपाली विधुवनसुखरसशाली भवतु मुदे वनमाली ॥
वाणीभूषण– १/६४

इसके अतिरिक्त वृत्त मौक्तिक– १/२/२५, वृत्तमुक्तावली– २/९-१० और वाग्वल्लभ में मात्रासमवृत्त– २३ मे भी इसका सस्कृतीकरण प्राप्त होता है, जिसका मूल प्राकृतपैगल १/९७-९८ में मिलता है ।

(५) **कुण्डलिका (अष्टपदी)** —

कुण्डलिका सा कथ्यते प्रथम दोहा यत्र, रोलाचरणचतुष्टय प्रभवति विमल तत्र।
प्रभवति विमल तत्र पद प्रति सुललितयमकम्, अष्टपदी सा भवति विविधकविकौशलगमकम् ।

अष्टपदी सा भवति सुखितपण्डितमण्डलिका, कुण्डलनायकभणिता विबुधकर्णकुण्डलिका ॥
वाणीभूषण–१/८१ ।

जिस छन्द के प्रथम चारपादो में दोहा (१३, ११, १३, ११) और अन्तिम चार पादो मे रोला (२४, २४, २४, २४) छन्द का मिश्रण हो, तथा रोला छन्द के प्रथम चरण के प्रारम्भ मे दोहा छन्द के अन्तिम चरण की पुनरुक्ति हो और रोला छन्द के तृतीय चरण के प्रारम्भ में भी रोला के द्वितीय चरण के पूर्वार्द्ध की भी पुनरुक्ति की जावे,[६] तथा प्रतिपाद का अन्त यमकान्त हो, तो उस छन्द को कुण्डलिका कहते हैं। श्री मथुरानाथ शास्त्री ने इस छन्द का सस्कृत काव्य मे प्रयोग भी किया है। यथा—

सज्जनमैत्री सन्तत स्नेहभर पुष्णाति। क्रमशो वृद्धिमुपागता दोषानपि मुष्णाति।।
दोषानपि मुष्णाति निर्गुणे गुणमाधत्ते। निर्वेद निर्वास्य मनसि सम्मोद दत्ते ॥
सत्कार्येषूत्साहवर्द्धिनी जडताजेत्री। स्नेहसार विश्रम्भसन्तता सज्जनमैत्री ॥
प्रकृतिपर्यवेक्षणम्–११ ॥ सस्कृतप्रतिभा (अप्रैल १९५९)

इसके अतिरिक्त वृत्तमौक्तिक–१/४/३-४, वृत्तमुक्तावली–२/२५ और वाग्वल्लभ में विषममात्रावृत्त–१ मे भी इसका सस्कृतीकरण सलक्ष्यलक्षण किया गया है।

(६) **सोरठा** (अर्धसम चतुष्पदी)—

तत्सोरठा वृत्तममलमुरगपतिरिति वदति।
तद्दोहाविपरीतमिह जनहृदि मुदमुपनयति। वाणीभूषण–१/९५ ।

जिस छन्द के चारों पादों में दोहा के विपरीत पाद हों, अर्थात् प्रथम तथा तृतीय पाद में ११, ११ मात्राए और द्वितीय तथा चतुर्थ पाद में १३, १३ मात्राए हों, तो उसे सोरठा कहते हैं। यथा—

अभिनवजलधरनीलममलकमलदललोचनम्।
सखि! पश्यामि कदापि मधुमथन भवमोचनम् ॥ वाणीभूषण–१/९६ ।

इसके अतिरिक्त वृत्तमौक्तिक–१/४/१८२१ में सोरट्ठा, वृत्तमुक्तावली–२/३३-३४ में सौराष्ट्रम् और वाग्वल्लभ में मात्रार्द्धसमवृत्त-२ में सरट्ठा नाम से इसका सस्कृतीकरण किया गया है, जिसका मूल प्राकृतपैंगल–१/७०-७१ में मिलता है।

(७) **हरिगीत** (चतुष्पदी)—

इन्द्रासन प्रथम विसर्जय तदनु सचिनु षट्कल
ननु तदनु पञ्चकलत्रय किल कुरु विरामे कुण्डलम्।
अष्टाधिकामिह विशति च कला कलावति सुन्दर
हरिगीतमिति हरिगीतक वरवृत्तमतिरसमन्दिरम् ॥ वाणीभूषण–१/११५

जिस छन्द के प्रत्येकपाद में २८ मात्राए, जिनमें इन्द्रासन (पंचकलगण), षट्कलगण तथा तीन पचकलगण और एक अन्त में कुण्डल (गुरु) हो, तो उसे हरिगीत कहते हैं। यथा—

सखि बभ्रमीति मनो भृश जगदेव शून्यमवेक्ष्यते।
परिभिद्यते मम हृदयमर्म न शर्म सम्प्रति वीक्ष्यते।

---

६ रोला के तृतीय चरण के प्रारम्भ में रोला के द्वितीय चरण के पूर्वार्द्ध की पुनरुक्ति में भिन्नता मिलती है। वृत्तमुक्तावली–२/२५ में प्रदर्शित उदाहरण में उक्त प्रकार की पुनरुक्ति प्राप्त नहीं होती। अत· सम्भवत: यह ऐच्छिक हो।

परिहीयते वपुषाभृश नलिनीव हिमततिसगता
रुदती पर वदतीति सा सुदती रतीशवशगता । वाणीभूषण–१/११६ ।

इसके अतिरिक्त वृत्तमौक्तिक–१/४/५४-५५, वृत्तमुक्तावली–२/४८ और वाग्वल्लभ में मात्रासमवृत्त–१७ मे इसे संस्कृतीकृत कर परिलक्षित किया गया है। यह हिन्दी मे प्रयुक्त होने वाला हरिगीतिका छन्द है जिसका मूल प्राकृतपैंगल–१/१९३-९५ मे मिलता है।

दामोदर मिश्र ने वाणीभूषण में १/५५ से १/१२६वे पद्य तक लोक मे प्रचलित ३२ छन्दों का संस्कृतीकरण किया है।

(८) **पज्झटिका** (सम चतुष्पदी)

प्रतिपदयमकितषोडशमात्रा नवमगुरुत्वविभूषितगात्रा ।
पज्झटिका पुनरत्र विवेक क्वापि न मध्यगुरुर्गण एक ॥ छन्दोमञ्जरी–५/१ ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे १६ मात्राए हो, जिनमे नवममात्रा गुरु हो और पादान्त में जगणरहित यमक हो, तो उसे पज्झटिका कहते है। यथा—

तरलवर्तसाश्लिष्टस्कन्धश्चलतरपज्फटिकाकटिबन्ध ।
मौलिचपलशिखिचन्द्रकवृन्द कालियशिरसि ननर्त मुकुन्द ॥ छन्दो मञ्जरी–५/१ ।

कही-कही पज्झटिका के पाद में गगादास ने नवममात्रा के गुरुत्व मे व्यभिचार भी प्रदर्शित किया है।[७] वाग्वल्लभ में मात्रासमवृत्त–३ मे भी इसे संस्कृतीकृत किया गया है।[८] इसका मूल स्वयम्भूछन्द–८/१५ मे मिलता है।

(९) **चौबोला** (अर्धसमचतुष्पदी)

रसविधुकलकमयुगमवधारय सममपि वेदविधूपमितम् ।
सर्वमपि षष्टिकल विचारय चौबोलाख्य फणिकथितम् । वृत्तमौक्तिक—१/३/७

जिस छन्द के प्रथम-द्वितीय पाद में १६,१६ और द्वितीय-चतुर्थ पाद में १४,१४ मात्राए हों, उसे चौबोला कहते हैं। यथा—

दिशि दिशि विलसति जलधरगर्जितमथ ता केका राजयते ।
सा मम चेत कुरुते तर्जितमपि का कान्तो भासयते ॥ वृत्तमौक्तिक–१/३/८

इसके अतिरिक्त वृत्तमुक्तावली–२/३६ में चतुर्वचन नाम से इसका संस्कृतीकृत लक्षण तथा उदाहरण प्राप्त होता है, और इसका मूल प्राकृतपैंगल–१/१३१-३२ में मिलता है।

(१०) **मागधी सवया** (मात्रासम चतुष्पदी)

अन्यदिद मुनिनायकभाषितमन्त्यलघु गुरुयुग्मसुयुक्त
योगचतुष्कलपूजितमन्यमिद युगवहनिकलाभिरमुक्तम् ।
पण्डितमण्डलनायकभूपतिमानसरञ्जनमद्भुतवृत्त
सर्वमिद सवयाभिधमुक्तमशेषकवीन्द्रविमोहितचित्तम् ॥
वृत्तमौक्तिक–१/५/२

---

७ नवमगुरुत्व व्यभिचरति च । छन्दोमजरी–५ पज्झटिका–२ ।
उदाहरण—रणधरणीजितरजनिविहारी ।
पज्झटिका में दो मात्राओं की वृद्धि से पद्धति छन्द बनता है, किन्तु इसे दुःखभञ्जन ने पादाकुलक से विकसित माना है। वाग्वल्लभ-मात्रासमवृत्त–२, पृ० ५७ ।

जिस छन्द मे प्रत्येक पाद मे ३२ मात्राए चतुष्कलगणो से नियमित हों और पादान्त में दो गुरु वर्ण हो, तो उसे मागधी सवया (सवैया) कहते है। यथा—

माधव विद्युदिय गगने तव कलयति पीतवसनमभिराम
जलधरनीलगगनपद्धतिरपि तव तनुरुचिमनुसरति निकामम्।
इन्द्रशरासनमपि तव वक्षसि मासितवरवनमालाशोभ
कुरु मम वचन सफलमहृदय राधाधरमधुविरचितलोभम्॥
वृत्तमौक्तिक–१।५।३

यह हिन्दी भाषा मे प्रयुक्त होने वाला सवैया छन्द का सस्कृतीकृत रूप है।

(११) **घनाक्षरम्** (मात्रावर्णसमचतुष्पदी)

रसभूमिवर्णयतिक तदनु च शरभूमिविरतिक यत्तु।
विधुवह्निवर्णसगतमिदमप्रतिम घनाक्षर वृत्तम्॥ वृत्तमौक्तिक–१/५/११।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे ४८ मात्राए तथा ३१ वर्ण हों, जिनमे १६ और १५ वर्णों पर यति रहे, उसे घनाक्षर छन्द कहते हैं। यथा—

रावणादिमानपूरदूरनाशनेति वीर राम कि विशालदुर्गमायाजालमेव ते।
मैथिलीविलासहासधूतसिन्धुवासरास भूतपतिशरासनभगकर भासते।
दीनदु खदानसावधान पारावारपारयान वीरवानरेन्द्रपक्ष कि महामते।
ते रणप्रचण्डबाहुदण्डमेव हेतुमत्र बाणदावदग्धशत्रुसैनिका प्रकुर्वते॥ वृत्त मौक्तिक–१/५/१२

चन्द्रशेखर भट्ट ने वृत्तमौक्तिक मे लोक मे प्रचलित २०० छन्दो का सस्कृतीकरण किया है।

विरुदावली छन्द

गद्य-पद्यमय राजस्तुति को विरुद कहा जाता है, और उन विरुदो के समूह को विरुदावली कहते हैं।[१] इन विरुदावलियों के लक्षण वृत्तमौक्तिक से पूर्व किसी रचना में नही मिलते। वृत्तमौक्तिक में चन्द्रशेखर भट्ट की रचना द्वितीय खण्ड के चतुर्थ प्रकरण तक मानी जाती है, और उसके बाद पचम प्रकरण से अन्त तक उनके पिता श्री लक्ष्मीनाथ भट्ट की रचना है। अत **विरुदावलियो के लक्षणकार श्री लक्ष्मीनाथ भट्ट है**। उन विरुदावलियों में से कुछ छन्दों को लक्षणपूर्वक उदाहरण देकर प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१२) द्विगाकलिका—

चतुर्भिस्तुरगै र्निजैर्द्विगा मैत्री हयद्वये। वृत्तमौक्तिक–२/९/५।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में १६ मात्राएं चार तुरगों (चतुष्कलगणों) से नियमित हों, जिनमें दो हयों (चतुष्कलगणों) में द्विगा मैत्री (दो गुरुवर्ण युक्त वर्ण समता) हो, तो उसे द्विगा कलिका कहते हैं। यह चतुष्पदी होती है, जिसके उदाहरण में एक पाद उद्धृत है—

जय जय वीर। क्षितिपतिहीर। वृत्तमौक्तिक–२/९/६

इसमें चार चतुष्कलों (।।।।-ऽऽ- ।।।।-ऽऽ) का प्रयोग है, जिसमें द्वितीय तथा चतुर्थ चतुष्कलों

**१ गद्यपद्यमयी राजस्तुतिर्विरुदमुच्यते।
तदावली समाख्याता कविभिर्विरुदावली। वृत्तमौक्तिक–२/९/२**

(हयो) मे एक-एक गुरु वर्ण और रेफ से मैत्री प्रदर्शित है। द्वितीय हय का रेफ सयोग से गुरु और चतुर्थ हय का रेफ पादान्त मे होने से गुरु माना गया है।

(१३) **द्विभगीकलिका**—द्वितुर्यौ मधुरश्लिष्टौ षड्गा लान्ताश्चतुर्गुरु।
अत्र भगात्तयोर्मैत्री षड्भगा स्याद् द्विभगिका। वृत्तमौक्तिक–२/९/९

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे २८ वर्ण हों, जिनमें गुरुलघुक्रम से २४ और अन्त मे ४ वर्ण गुरु हों तथा पादान्तर्गत प्रथम २४ वर्णो मे छह भग हो, जिनमे परस्पर मित्रता हो, और प्रत्येक भग के अन्तर्गत द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ग श्लिष्ट हो और अन्तिम चार गुरु वर्णो में भी द्वितीय वर्ण श्लिष्ट हो, तो उसे द्विभगीकलिका कहते है। यथा—

रगरक्त सगसक्त चण्डचक्र दण्डशक्र चन्द्रमुद्र सान्द्रभद्र विष्णो जिष्णो। वृत्तमौक्तिक–२/९/९

(१४) **उत्पलचण्डवृत्त**—

भद्वय चोत्पल मत श्लिष्टौ द्विपञ्चमौ। वृत्तमौक्तिक–२/९/२/१५

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे ६ वर्ण भ भ (ऽ ॥-ऽ ॥) से नियमित हों, द्वितीय तथा पचम वर्ण श्लेष्ट हो अथवा १२ वर्णो के पाद हो, जिनमे ४ भगण हो, तो उसे उत्पलचण्डवृत्त कहते हैं। यथा—

नर्तितशर्क्कर-चर्कृतकर्क्कर, वृद्धमरुद्भर-नर्दन निर्भर।
दुष्ट विमर्दन-शिष्ट विवर्द्धन, सर्वविलक्षण-मित्रकृतक्षण।

श्री रूपगोस्वामिकृत श्रीगोविन्द विरुदावली। वृत्तमौक्तिक-२/९/२/१५

(१५) **वकुलभासुर चण्डवृत्त**—

चतुर्भिस्तुरगै र्निजै पद यत्रातिसुन्दरम्।
रसेन्दुमात्र सोल्लालमयो बकुलभासुरम्॥ वृत्तमौक्तिक–२/९/२/३३

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे चार तुरग (चतुर्मात्रिकगण) हों, जिनमें द्विजगण (॥॥), कर्ण (ऽऽ), गण (ऽ ॥) और सगण (॥ऽ) का प्रयोग हो किन्तु जगण (।ऽ।) नही। प्रथम पाद का अन्त द्वितीयपाद प्रारम्भ से, द्वितीय का तृतीय से और तृतीय का चतुर्थपाद से शृखलताबद्ध यमक से अलकृत हो, तो से बकुलभासुरचण्डवृत्त कहते हैं। यथा—

जय जय वशीवाद्यविशारद, शारदसरसीरुहपरिभावक।
भावकलितलोचनसञ्चारण, चारणसिद्धवधूधृतिहारक। वृत्तमौक्तिक–२/९/२/३३

(१६) **मञ्जरी खण्डावली**—

नरेन्द्रवर्जिता यत्र रचिता स्युस्तुरगमा।
आद्यन्तपदसयुक्ता मञ्जरी सा निगद्यते॥ वृत्त मौक्तिक–२/१०/३

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में १६ मात्राए जगणरहित चतुष्कलगणों से नियमित हों और आदि था अन्त में आशीर्वादात्मक पद्य हों तो उसे मञ्जरी खण्डावली कहते हैं। यथा—

पिशगसिञ्चयान्वित चटुलनैचिकीधारक चमत्कृतदृगञ्चलैश्चलुकितावलानिश्चयम्।
चलद्रुचिरचन्द्रिकाभरण चुम्बिचूडाञ्चलं तमालदलमेचक सुचिरमाविरास्तां मह.॥
दैव।
जय लीलासुधासिन्धो। जय शीलादिमन्दिर। जय राधैकसौहार्द जय कन्दर्पविभ्रम।
वीर।
जय जय जम्भारि भुजस्तम्भा-कलिताहम्भा-वाहिनजम्भा-
मुदवष्टम्भा-पहसररम्भा-श्रमनिर्दम्भा-सादितरम्भा-
लघुकुचकुम्भा-दरपरिरम्भा- विधुवनपुम्भा-वप्रारम्भा-

धिकसुखसम्भा-वनविश्रम्भा-भाषणसम्भारैरिह सम्भा-
वय न सम्भानितमुज्जृम्भा-म्बुजसदृशम्भाषणमधुरम्भा-
रत्थालम्भाग्याययतनम्भा-त्तमुख सम्भालयत किम्भा-
लाक्षरसम्भावनया देव ।
कुमारपत्रपिच्छेन विराजत्कुन्तलश्रियम् । सुकुमारमह वन्दे नन्दगोपकुमारकम् ॥
धीर ।
नित्य यन्मधुमन्थरा मधुकरायन्ते सुधास्वादिन-
स्तन्माधुर्यधुरीणतापरिणते प्राय परीक्षाविधिम् ।
कर्तु स्वाध्रिसरोरुह करपुटे कृत्वा मुहु सलिहन्
दोलान्दोलनदोलिकाखिलतनु पायाद् यशोदार्भक ॥ वृत्त मौ० – २/१०/३

श्री लक्ष्मीनाथ भट्ट ने वृत्तमौक्तिक मे लोक मे प्रचलित विरुदावली आदि ६५ छन्दो का सस्कृतीकरण किया है ।

(१७) झुल्लन—यस्य चरणे सप्त पञ्चकलास्ततो द्वे कले तज्झुल्लन नाम ।

वृत्तमुक्तावली– २/६१

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे ३७ मात्राए, ७ पचकलगणो (य, त, र) से यथेच्छ और अन्त मे एक द्विकल (ऽ) से नियमित हों, उसे झुल्लन कहते है । यथा—

शेषपतगेशविबुधेशभुवनेशभूतेशसविशेषसुनिदेशधरणी,
कन्दलितसुन्दरानन्दमकरन्दरसमज्जनमिलिन्दभवसिन्धुतरणी ।
ज्ञानमण्डनपरा कर्मखण्डनधरा शमनदण्डनपराभूतिहरणी,
नित्यमिह वक्ति मुनिवृन्दमनुरक्तिमज्जयति हरिभक्तिरासक्तिकरणी ।

वृत्तमुक्तावली– २/६१

(१८) खञ्जविशाल—यत्र चरणे पूर्व पचदशादौ विरामस्तत षोडशादौ,
तत् खञ्जविशाल भवति । वृत्तमुक्तावली– ३/२७३

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे ३१ वर्ण हो, जिनमें १५ और १६ वर्णो पर यति रहे, उसे खञ्जविशाल कहते हैं । यथा—

वृन्दारण्यचारिणी कदम्बपुष्पभारिणी मिलिन्दवृन्दहारिणी सुगधिपूरगामिनी,
भक्तलोकपालिनी दयालुतानिभालिनी रमेशसगलालिनी महाघशैलदामिनी ।
पारिजातपुष्पतारकौघमण्डिता रमेशचन्द्रसगिनीव कापि नीलयामिनी,
भूरिभगरगिणी तरगिणीषु निस्तुला करोतु में शुभानि सा कलिन्दजेतिनामिनी ।

वृत्तमुक्तावली– ३/२७३ ।

श्रीकृष्णभट्ट ने वृत्तमुक्तावली में लोक में प्रचलित १५ छन्दों का सस्कृतीकरण किया है ।

(१९) आन्दोलिता

यत्र दशदशकला अनुविरतिरुज्ज्वला तदनु मुनिमितकला यर्हि जाता ।
सप्तगुणसम्मिता पादमात्रा स्थिता ललितपदराजिता याऽवदाता ।
रसिकजनमानिता सपदि मुदमाहिता वितरति विगाहितालोकजाता ।
भुजगपतिनोदिता कविकुलविनोदिता छन्द आन्दोलिता यातपाता ॥

वाग्वल्लभ-मात्रासम– ६ ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे ३७ मात्राए हो, जिनमे १०, १०, १० तथा ७ मात्राओ पर यति हो, तो

उसे आन्दोलिता छन्द कहते है। उक्त छन्दोलक्षण ही उसका उदाहरण भी है, क्योंकि वाग्वल्लभ लक्ष्यलक्षणात्मक छन्दोग्रन्थ है, जिसमे छन्दोलक्षण के अतिरिक्त पृथक् से उदाहरण नही दिये गये हैं, अत वे ही उसके आदर्शरूप मे उदाहरण माने जाते है।

(२०) **शुद्धध्वनि**

आदौ षण्मात्रा यदि चरमे त्रा लघुरिति मध्ये वदतितराम्।
दण्डीवृतमोहा रचितजनोहा रसिकमनोहारि च नितराम्।
भजगाधिपशेषो विहितविशेषो नियतमशेषोऽपहतमद।
शुद्धध्वनिवृत्त सुकविविवृत्त हृतजनचित्त सततमद॥

वाग्वल्लभ, मात्रासम–३३।

जिस छन्द के प्रत्येक पादारम्भ मे पहले ६ मात्राए, पुन मध्य मे दण्डी छन्द का लक्षण–त न त न त न, अन्त मे एक गुरु (ऽ) हो, तो उसे शुद्धध्वनि कहते हैं। यही लक्षणपद्य उदाहरण भी है।

उक्त प्रकार के छन्दो के अतिरिक्त प्राचीन तथा आधुनिक सस्कृत साहित्य में कुछ ऐसे छन्द दृष्टिगत होते है, जिनके लक्षण प्राप्त लक्षणग्रन्थो मे देखने को नही मिलते। ऐसे छन्दों को इस ग्रन्थ के अन्दर अलक्षित छन्द कहा गया है, जिनका सम्प्रति विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

(२) **अलक्षित छन्द**—इन अलक्षित छन्दो में दो प्रकार के छन्द प्राप्त होते हैं—

(क) अलक्षित प्राचीन छन्द

(ख) अलक्षित नवीन छन्द।

अलक्षित प्राचीन सस्कृत छन्दों में वाल्मीकीय रामायण से कुछ ऐसी पक्तिया उद्धृत की जा सकती हैं, जिनके पिगल से लेकर दुखभञ्जन पर्यन्त २७ प्राप्त होने वाले छन्दोलक्षणकारों के ग्रन्थों में और हलायुध से लेकर देवीप्रसाद पर्यन्त ९ टीकाकारों की टीकाओं में भी पृथक् स्वतन्त्र रूप से लक्षित कतिपय छन्दो के अन्तर्गत भी लक्षण प्राप्त नही होते। प्रस्तुत रचना मे मैंने इन अलक्षित नवीन छन्दों को नाम देने का तथा उनके लक्षण करने का भी प्रयत्न किया है। इस प्रकरण को लिखते हुए जब मैं यह कहता हू कि इन छन्दों के कही नाम और लक्षण नही मिलते हैं, तब मेरा सीधा-साधा-सा यह आशय होता है कि जितना मैने अध्ययन किया है, उस अध्ययन के समय मुझे इन छन्दों के नाम तथा लक्षण कही देखने को नही मिले। यदि कही किसी विद्वान् को इस विषय में कुछ ज्ञान हो तो मुझे सूचना देकर अनुगृहीत करें, जिससे मैं अपने आपको सुधार लू। सम्प्रति मैं अपने द्वारा किये गये नवीन छन्दों के नाम-निरूपण के साथ-साथ उनका लक्षण तथा उदाहरण भी दे रहा हूँ। यथा—

(क) अलक्षित प्राचीन छन्द

(१) **निरूपणम्**—जतौ रगू चेन्निरूपण तत्।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमश जगण, तगण, रगण और एक गुरुवर्ण हो, तो उसे निरूपण छन्द कह सकते हैं। यथा—

उदङ्मुख तद्रथ चकार। वाल्मीकीय रामायण[१०]–२/४६/३४ का तृतीय चरण।

(२) **कस्तूरी**—कस्तूरी सा भवति मभननलगुभि।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में मगण, भगण, दो नगण, लघु-गुरु (एक-एक वर्ण) हो तो उसे कस्तूरी

१० वाल्मीकीयरामायण-खेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित।

कह सकते हैं। यथा—

राम सशोध्य ऋषिगणमनुगमनात्। वाल्मीकि रामायण–२/११६/२५ का प्रथम चरण।

(३) **राजेश** —राजेशो वै मभनजलगुभी रमते।

जिस छन्द के प्रत्यक पाद मे मगण, भगण,नगण,जगण और एक लघु तथा एक गुरु वर्ण हो,तो उसे राजेश कह सकते है। यथा—

देशात्तस्मात्कुलपतिमभिवाद्य ऋषिम्। वाल्मीकि रामायण–२/११६/२५ का द्वितीय चरण।

(४) **साधना**—साधना रनसलगुभि सदा।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे रगण, नगण, सगण और एक लघु तथा एक गुरु वर्ण हो, तो उसे साधना कह सकते हैं। यथा—

आश्रम त्वृषिविरहित प्रभु। वाल्मीकि रामायण[११]–२/११६/२६ का प्रथम चरण।

(५) **किशोरक** —स भवति ननजरै किशोरक।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे नगण, नगण, जगण, रगण हों, तो उसे किशोरक कह सकते है। यथा—क्षणमपि न विजहौ स राघव। श्रीमद्वाल्मीकि रामायण–२/११६/२६ द्वितीय चरण।

(६) **भैरव** —भैरवोऽस्ति स रननलगुभि।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में रगण,नगण,नगण-१ लघु और १ गुरु वर्ण हो,तो उसे भैरव कह सकते हैं। यथा—राघव हि सततमनुगता। वाल्मीकीय रामायण-२/११६/२६ का तृतीय चरण।

(७) **श्रीमती**–श्रीमती साऽस्ति हि रभनसगणै।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे रगण, भगण, नगण, सगण हों, तो उसे श्रीमती कह सकते है। यथा—तापसाश्चर्षिचरितधृतगुणा। श्रीमद्वाल्मीकि रामायण–२/११६/२६ का चतुर्थ चरण।

(८) **कलावती**—नयसजगै रमते कलावती।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में नगण,यगण,सगण,जगण और १ गुरु वर्ण हो,तो उसे कलावती कह सकते हैं। यथा—इतिरवदोषान् परिकीर्तितास्तथा। वाल्मीकि रामायण–३/३३/३४ प्रथमच०।

(९) **पवन**—यत्र भससजा पवनस्ततो गुरू चेत्।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे क्रमश भगण, सगण, सगण, जगण और २ गुरु वर्ण हों, तो उसे पवन कह सकते हैं। यथा—

तद्ध्वजगहन गहन महारथैश्च। वाल्मीकि रामायण–६/८५/३६ का द्वितीय चरण।

(१०) **सुशीला**—भवति ननसययुता सुशीला।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमश दो नगण, सगण, यगण हों,तो उसे सुशीला कह सकते है। यथा—अथ स रणविगतमुत्तमौजा। वाल्मीकि रामायण–७/२९/३७ का प्रथम चरण।

(११) **रञ्जना**—प्रभवति ननजरैस्तु रञ्जना।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमश नगण-नगण,जगण,रगण हों,तो उसे रञ्जना कह सकते हैं। यथा—यदयमतुलबलस्त्वयाऽद्य वै। वाल्मीकिरामायण–७/२९/३८ का तृतीय चरण।

(१२) **प्रफुल्लकम्**—प्रफुल्लक यत्र च जतौ स जो गुरु।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमश जगण, तगण, सगण, जगण और १ गुरु वर्ण हो तो उसे

---

११ श्रीभद्वाल्मीकिरामायण-अनुवादक-चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा-इलाहाबाद।

प्रफुल्लक कह सकते है। यथा—

सदेवगन्धर्वऋषियक्षराक्षसै। वाल्मीकिरामायण—७/३५/६५ का चतुर्थ चरण।

(१३) **यतनम्**—मसयैर्यतन भवेत्तत्।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे क्रमश सगण, सगण, यगण हो, तो उसे यतनम् कह सकते हैं। यथा—इतिरामनिवेदित तु। वाल्मीकिरामायण ७/६१/२४ का प्रथम चरण।

(१४) **पुष्पा**—पुष्पा प्रकीर्णा सा तमाभ्या ययाभ्याम्।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे क्रमश तगण, मगण, यगण, यगण हो, तो उसे पुष्पा कह सकते हैं। यथा—अगै प्रहृष्टै कार्यसिद्धि विदित्वा। वाल्मीकि रामायण—५/६३/३३ का तृतीय चरण।

इसी प्रकार महाभारत तो ऐसी अलक्षित पक्तियो के अतिरिक्त बहुत-से अलक्षित पद्यो से भी परिपूर्ण है, जिन्हे यदि मगणादि गणो से नियमित किया जावे, तो बहुत-से ऐसे छन्द प्रकाश मे आ सकते है, जिनकी ओर मनीषियो का ध्यान ही नही गया है। उदाहरण के लिए छन्दोरूप में कुछ पक्तियों तथा पद्यो को नामकरण के साथ लक्षित किया जा रहा है।

(१५) **सौभाग्यवती**—जतौ तगौ गश्च सौभाग्यवत्याम्।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे क्रमश जगण, तगण, तगण और दो गुरु वर्ण हो, तो उसे सौभाग्यवती कह सकते हैं। यथा—

युधिष्ठिर सौबलेनाक्षमत्याम्। महाभारत[१२]-उद्योगपर्व—१/१० का द्वितीय चरण।

(१६) **यतीन्द्रदेवी**—मस्तो जो गौ चाथ यतीन्द्रदेवी।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमश मगण, तगण, जगण और दो गुरु वर्ण हों, तो उसे यतीन्द्र देवी कह सकते हैं। यथा—

स्वर्णाल्लोकाद् भ्रश्यति नष्टचेष्ट। महाभारत-उद्योगपर्व—१२/२० का प्रथम चरण।

(१७) **सत्यवती**—लभते सत्यवती स भतौ गौ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमश सगण, भगण, तगण और दो गुरु वर्ण हो, तो उसे सत्यवती कह सकते हैं। यथा—अवरुद्धा रथिन केकयेभ्य। महाभारत-उद्योगपर्व—२२/२० का प्रथम चरण।

(१८) **शकुन्तला**—शकुन्तला प्राप्नोति जमौ सयौ च।

जिस छन्द के प्रत्येकपाद में क्रमश जगण, मगण, सगण, यगण हों, तो उसे शकुन्तला कह सकते हैं। यथा—न तस्य बीज रोहति रोहकाले। महाभारत-उद्योगपर्व—१२/१९ का प्रथम चरण।

(१९) **गगा**—गंगा छन्दोऽभ्येति मताभ्या ययाभ्याम्।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमश मगण, तगण और दो यगण हो, तो उसे गगा कह सकते हैं। यथा—राजा देवाना नहुषो घोर रूप। महाभारत-उद्योगपर्व—१६/३० का प्रथम चरण।

(२०) **राजबाला**—करोति वै जरौ सरगान् राजबाला

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमश जगण, रगण, सगण, रगण और एक गुरु वर्ण हो, तो उसे राजबाला कह सकते हैं। यथा—

रिपु जयाय त नहुष घोरदृष्टिम्। महाभारत-उद्योगपर्व—१६/३२ का द्वितीय चरण।

(२१) **अर्चना**—अर्चना सा रभता गौ च यस्मिन्।

---

१२ महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर से सवत् २०१२ से २०३ के मध्य १—६ खण्डों में प्रकाशित।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे रगण, भगण, तगण और दो गुरु वर्ण हो, तो उसे अर्चना कह सकते है। यथा—क स्विदेको रमते ब्राह्मणाना क स्विदेको बहुभिर्जोषमास्ते।

क स्विदेको बलवान् दुर्बलोऽपि क स्विदेषा कलह नान्ववैति।

महाभारत-शान्तिपर्व–२९९/४१।

(२२) **रमा**—रमा सा यत्र यभौ तो गुरू च।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे यगण, भगण, तगण और दो गुरु वर्ण हो, तो उसे रमा कह सकते है। यथा—गुरु शिष्यो वरयेद् गोप्रदाने स वै गन्ता नियत स्वर्गमेव।

विधिज्ञाना सुमहान् धर्म एष विधि ह्याद्य विधय सविशन्ति॥

महाभारत-अनुशासनपर्व–७१/५५।

(२३) **पार्वती**—यदि ननरलगा सन्त्वसमे नजजरगाश्च समे हि पार्वती सा।

जिस छन्द के विषम पाद प्रथम तथा तृतीय मे नगण नगण रगण १ लघु और १ गुरु वर्ण हो और समपाद द्वितीय तथा चतुर्थ मे नगण, जगण, जगण, रगण और एक गुरु वर्ण हो, तो उसे पार्वती कह सकते हैं। यथा—स च किल कृतनिश्चयो द्विजौ भुजगपतिप्रतिदेशितात्मकृत्य।

यमनियमसहो वनान्तर परिगणितोञ्छशिलाशन प्रविष्ट।

महाभारत-शान्तिपर्व–३६५/९।

(२४) **विषमगति**—प्रथमे मसजभा गुरू ननरसगाश्च पादे द्वितीये स्यु।

ननसननलगाश्चाग्रे नननजया विषमगतिरन्ते॥

जिस छन्द के प्रथम पाद मे मगण, सगण, जगण, भगण तथा दो गुरु वर्ण हो, द्वितीय पाद मे नगण, नगण, रगण, सगण और एक गुरु वर्ण हो, तृतीय पाद मे दो नगण, सगण दो नगण एक लघु और एक गुरु वर्ण हो और चतुर्थ पाद मे तीन नगण, जगण, यगण हो तो उसे विषमगति कह सकते है। यथा—

यो लुब्ध सुभृश प्रियानृतश्च मनुष्य, सततनिकृतिवञ्चनाभिरति स्यात्।

उपनिधिभिरसुखकृत्स परमनिरयगो, भृशमसुखमनुभवति दुष्कृतकर्मा॥

महाभारत शान्तिपर्व–३२१/३१।

(२५) **चतुस्करम्**—पूर्व ननजरगा स्युर्नजजाश्च रगौ तत।

ननरया, नजौ जरौ क्रमशस्तच्चतुस्करम्॥

जिस छन्द के प्रथमपाद मे २ नगण, जगण, रगण और एक गुरु, द्वितीय पाद मे नगण, दो जगण, रगण एक गुरु वर्ण, तृतीय पाद में दो नगण, रगण, यगण और चतुर्थपाद मे नगण, दो जगण, रगण हो, तो उसे चतुष्कर कह सकते है। यथा—

यदुपनिषदमुपाकरोत्तथासौ जनकनृपस्य पुरा हि याज्ञवल्क्य।

यदुपगणितशाश्वताव्यय तच्छुभममृतत्वमशोकमर्च्छति॥ महाभारत-शान्तिपर्व–३१८/११२।

इनके अतिरिक्त महाभारत मे अनेक अलक्षितवृत्त प्राप्त होते हैं, जिन्हे लक्षित कर लौकिक छन्द शास्त्र को उदाहरण सहित समृद्ध बनाया जा सकता है।

(ख) अलक्षित नवीन छन्द

अलक्षित नवीन छन्द वे हैं जो—(१) आधुनिक सस्कृत कवियो द्वारा सस्कृत मे ही नवीन ध्वनियों को विकसित कर लिखे गये है, अथवा (२) हिन्दी लोकगीतो की ध्वनियो के आधार पर जिनका सस्कृतीकरण किया गया है। इस प्रकार के छन्दो का विकास वर्तमान बीसवी सदी मे भारत के विभिन्न स्थानों से प्रकाशित होने वाली सस्कृत पत्रिकाओ मे प्राप्त होता है। उसके आधार पर उक्त दोनो प्रकार के छन्दों में कुछ छन्द यहा पर आदर्श रूप मे निम्न प्रकार से नाम तथा लक्षण सहित प्रस्तुत किये जा रहे है। यथा—

(१) सस्कृत-नवीन छन्द

(१) **किशोरगीतम्**—यत्र चतुर्दशमात्रा षट्पादास्त्यक्तद्वितीयचतुर्था ।
तुकान्तविशिष्टपादास्तद्धि किशोरगीत छन्द ॥

जिस छन्द मे १४ मात्राओं के छह पाद हो, जिसमें द्वितीय तथा चतुर्थ पाद को छोडकर शेष पादों के अन्त मे यमक हो, तो उसे किशोरगीत कह सकते है । यथा—

सर्वत, इव उदधिभगा, यूनियनजेकीयभागे,
कम्पिता सन्ति हि त्रिरगा ।
सदा पश्याम सहर्षम्, खे सवायुस्पन्दनन्ते,
भारतध्वज । वन्दनन्ते[१३] ॥

(२) **नवधारा**—यत्र नव पादा समे द्वादश विषमे च षोडश मात्रा हि ।
समे चान्ते तुकान्ता मधुरा सा भवति नवधारा ॥

जिस छन्द मे ९ पाद हो, जो समपादो मे १२ और विषमपादो मे १६ मात्राओ से नियमित हो और समपादों के तथा नवम पाद के अन्त मे यमक हो, तो उसे नवधारा कह सकते हैं । यथा—

त्वामन्तरेण विश्वे कोऽपि न, एकस्त्वमेव बन्धु । सखा मैत्री गत सर्वत, रक्षककरुणासिन्धु ।
नारिकेलसम उपरि राजितो, नीचैरिव कर्कन्धु । गति विचार्य परामर्शं नो देहि न मामभिराम ।
इतो मामवलोक्य मे राम[१४] ।

(३) **पथिका**—प्रथमे चतुर्दशान्ते चतुष्षु त्रिशत् षोडशे च विरति ।
प्रथमान्तिमान्तमैत्री मध्ये तुकान्ता सा पथिका ॥

जिस छन्द मे पाच पाद हों, प्रथम पाद मे १४ और अन्तिम चार पादों में ३०, ३० मात्राए हों, जिनमें १६ मात्राओं पर यति रहे, प्रथम तथा अन्तिम पादान्त मे मैत्री हो, तथा मध्यम तीनों पाद तुकान्त हो, तो उसे पथिका कह सकते हैं । यथा—

पथिक । न पथो विचलितव्यम् ।
काम पथि पथि कण्टकगुल्मा एव विकीर्णा भूरि स्यु,
पदे पदे तव गतिमभिरोद्धु तुगशिखरिणस्तिष्ठेयु ।
निर्जनभीषणकान्तारा अपि गह्वराणि वाऽऽगच्छेयु ।
विघ्नैरपि हसता लसता भोस्त्वयाऽविरतमभिगन्तव्यम्[१५] ॥

(४) **त्रिचला**—विशति षोडश त्रयोविशतिश्च मात्रा पादत्रये ।
त्रयोदशेऽन्तिमे यति पूर्वान्तमैत्री सा त्रिचला ॥

जिस छन्द में तीन पाद हो, प्रथम में २०, मध्य मे १६ और अन्तिम पाद में २३ मात्राए हों, प्रथम दो पादो के अन्त में मैत्री तथा अन्तिम पाद में १३वी मात्रा पर यति रहे, तो उसे त्रिचला कह सकते हैं । यथा—

---

१३ १५ अगस्त्य—३, कवि—रामकिशोर मिश्र, दिव्यज्योति (अगस्त १९५९) शिमला ।

१४ एकस्त्वमेव बन्धु—रामकिशोर मिश्र, दिव्यज्योति (अप्रैल १९५८) शिमला ।

१५ वेदकुमारी घई कृत-जीवनपथिक प्रति—२—विश्वसस्कृतम् पृ० २२, (नवाम्बर, १९९३) विश्वेश्वर वैदिक शोध-सस्थानम्, होशियारपुरम् ।

क्षपयसि निजनिवेह विहरज्जनपापम्, दिनकरदहनविहितमपि तापम् ।
शङ्करधृतसलिलशरीर । विरचय शर्म जने[१६] ॥

(५) **चतुष्पदा**—द्वाविशतिस्तुपूर्व चतुर्विशतिश्च तत प्रतिपादम् ।
मध्यमयतिरन्तमैत्री सा भवति चतुष्पदा गीति ॥

जिस छन्द के प्रथम पाद मे २२ और अन्तिम तीन पादो में २४ मात्राए हों, प्रत्येक पाद के मध्य में ११ तथा १२ मात्राओ पर यति रहे और पादान्त मे मैत्री हो, तो उसे चतुष्पदा कह सकते हैं । यथा—

वन्दना विधीयता श्रद्धया समर्च्यताम् ।
स्वराष्ट्रगीतिरागिणी दिवानिश सुगीयताम् ।
स्वमातृभूमिरर्च्यता स्वभाषित निगद्यताम् ।
स्वदेशवासिनो जना स्वसस्कृतौ निधीयताम्[१७] ॥

(२) लोकगीतध्वनियो के आधार पर सस्कृतीकृत छन्द

(१) **चञ्चलगीत**—पूर्वार्द्धे प्रतिपाद षोडशोत्तरार्द्धे त्रयोदश कला ।
बहाररागनिबद्ध तुकान्त तच्चञ्चलगीतम् ॥

जिस छन्द के पूर्वार्द्ध के प्रतिपाद में १६,१६ मात्राए और उत्तरार्द्ध के प्रतिपाद में १३,१३ मात्राए हो तथा बहारराग की ध्वनि पर जिसकी रचना तुकान्त हो,उसे चञ्चलगीत कह सकते हैं । यथा—

कुकुमरागविभूषितभाले चलदधरीकृतमुदितमराले
प्रियसुखमनुभव मञ्जुले चल वामे चल चञ्चले[१८] ।

(२) **विषमपथम्**—पादत्रये प्रतिपद षोडश तुर्ये दशान्ते पञ्चदश ।
त्यक्ततृतीय तुकान्त लोकध्वनिकृत विषमपथम् ॥

जिस छन्द के प्रथम तीन पादो मे १६,१६,१६ मात्राए तथा चतुर्थपाद में १० और पचमपाद में १५ मात्राए हो, जिसकी रचना अन्तिम तीन पादो में हिन्दी लोकगीत—'देख तेरे ससार की हालत, क्या हो गई भगवान् । कितना बदल गया इन्सान' की ध्वनि पर की गयी हो, जो तृतीय पाद को छोडकर पूर्व और अन्तिम दो पादो में तुकान्त हो, तो उसे विषमपथ कह सकते हैं । यथा—

शीततापसुनियन्त्रितभवने, केऽपि शेरते विद्युत्पवने ।
कर्मान्तेषु तपन्ति केऽपि धुरि, यन्त्राणा ज्वलताम् ।
कियत्कथयामाधि जगताम्[१९] ॥

(३) **धरा**—प्रतिपदविशतिमात्रा दशयतिका त्यक्ततृतीयतुकान्ता ।
तृतीययमकभरा सा केदाररागबद्धा धरा ॥

जिस छन्द के प्रत्येक पाद मे २० मात्राए हो, जिनमे १० पर यति हो, तृतीय पाद को छोडकर शेष तीनो पाद तुकान्त हो और तृतीय पाद यमकयुक्त हो, तथा जिसकी रचना केदार राग मे निबद्ध हो, तो

---

१६ श्रीरामजिद्भट्टकृत गीतगिरीश काव्य से अष्टमूर्तिस्तव–२, दृष्टव्य-सगमनी (सस्कृतत्रैमासिकी पत्रिका पृष्ठ-४) शिशिर अक–स० २०२२, प्रयाग ।

१७ अभयसोमराजकृत सैन्यगीतम्–३, दृष्टव्य–जयतुसस्कृतम्(वैशाख २०२१) काठमांडू, पृ० ६ ।

१८ जगदीशचन्द्र कृत–प्रियदर्शनोत्सुका–२ सस्कृत-प्रतिभा (अप्रैल १९५९) देहली–पृ० १४ ।

१९ व्रजमोहन झा कृत विषमता–३ सस्कृत-प्रतिभा–(अप्रैल १९५९) पृ० १६ ।

उसे धरा कह सकते है। यथा—

मदनमन्दिरधृता गोण्डवनराधिका, कौसलानामसौ देवता शासिका।
देहलीवर्णन श्रवणकटुकर्णन, परिणमतु मा ततो गोपशोकान्तिका[२०] ॥

इस प्रकार आधुनिक सस्कृत साहित्यकार सस्कृत परम्परागत छन्दो की अपेक्षा सस्कृत मे ही कुछ नवीन ध्वनयियो को विकसित कर तथा अपनी-अपनी भाषाओ की लोकध्वनियो के आधार पर सस्कृत मे जिन नवीन रचनाओ का प्रणयन कर रहे है, उन रचनाओ का गहन अवगाहन कर छन्दोदृष्टि से एक ऐसे छन्दोलक्षण ग्रन्थ की रचना की आवश्यकता है, जिसमे उन नवीन छन्दो के लक्षण तथा उदाहरण हो, जिसकी रचना प्रक्रिया की ओर जैसा इस अध्याय के अन्त मे अलक्षित नवीन छन्द के अन्तर्गत कुछ छन्दो के लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत कर सकेत किया गया है। यह एक पृथक् खोज का विषय है, जिसमे एक नवीन सस्कृत छन्दोलक्षण ग्रन्थ की रचना की जा सकती है, जो छन्दो की लक्षणग्रन्थ परम्परा के विकास मे अभाव की पूर्ति होगी। यह मेरे इस ग्रन्थ के क्षेत्र से पृथक् विषय है, जिसमे लिखित छन्दोलक्षण ग्रन्थो के अनुसार ही विचार करना है, अत उस प्रक्रिया के प्रति मैने सकेतमात्र कर देना ही उचित समझा है।



२० श्री श्री भि० वेलणकरकृत राज्ञी दुर्गावती (नाटिका)–१/४, दृष्टव्य–'अमृतलता' (मई १९६५) पारडी (गुजरात) पृ० २५।

षष्ठ अध्याय

संस्कृत के काव्यों में काव्यकला, वर्ण्यविषय की दृष्टि से छन्दों का उपयोग

वृत्तविनियोग—

अनुष्टुप्

उपजाति

रथोद्धता

वशस्थ

वसन्ततिलका

मालिनी

शिखरिणी

हरिणी

मन्दाक्रान्ता

शार्दूलविक्रीडित

स्रग्धरा

षष्ठ अध्याय

सस्कृत के काव्यों में काव्यकला, वर्ण्यविषय की दृष्टि से छन्दो का उपयोग

लौकिक सस्कृत साहित्य के आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण से आज तक सस्कृत मे जितने काव्य प्राप्त होते हैं, उनमे कौन-सा छन्द किस काव्यकला और वर्ण्यविषय की दृष्टि से उपयुक्त हुआ है, तथा कौन-सा छन्द किस वर्ण्यविषय के प्रस्तुत करने मे प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है, यह इस अध्याय का प्रमुख विवेच्य विषय है। सामान्यत सस्कृत के छन्दोलक्षणग्रन्थो मे २०४६ छन्दों के लक्षण प्राप्त होते है, जिनमे लगभग ७० छन्दों का काव्यो मे प्रयोग मिलता है। इन ७० छन्दो मे से भी निम्नाकित १२ छन्दो का काव्यकला तथा वर्ण्यविषय की दृष्टि से उपयोग हुआ है, जिससे ये छन्द अन्य छन्दो की अपेक्षा काव्यजगत् में अधिक प्रसिद्ध हुये है।

(१) **अनुष्टुप्**—अनुष्टुप् छन्द का उपयोग महाकाव्य के आदि मे, कथा प्रारम्भ के प्रसग मे वैराग्यजनक उपदेश में तथा काव्यों मे प्रयुक्त विभिन्न छन्दो के अन्त मे किया जाता है।[1] काव्यो में अनुष्टुप् छन्द का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है। वाल्मीकीय रामायण का प्रारम्भ भी इसी छन्द से हुआ है।[2] लौकिक छन्दोजगत् मे तो अनुष्टुप् को आदि छन्द का गौरव प्राप्त है, क्योकि महर्षि वाल्मीकि के मुख से निस्सृत सर्वप्रथम उसी छन्द की वाणी है,[3] जिसे अनुष्टुप् नाम से व्यवहत किया गया है। वाल्मीकि के बाद महर्षि व्यास, कालिदासादि कवियो ने भी अपने अपने काव्यो मे इसका अधिकाधिक उपयोग किया है।[4] उपदेशात्मक दृष्टि से महाभारत से गीता भाग को उद्धृत किया जा सकता है, जो कि अनुष्टुप् छन्दो में ही उल्लिखित है।[5] इस सबके अतिरिक्त कवि क्षेमेन्द्र ने अभिनन्द नामक कवि की अनुष्टुप् छन्द के रचना-प्रयोग मे प्रशसा की है,[6] जबकि वाल्मीकि इसकी रचना में प्रसिद्ध है।

काव्यकला की दृष्टि से भी अनुष्टुप् छन्द का सर्वाधिक उपयोग किया गया है। भारवि ने किरातार्जुनीय के १५वें सर्ग मे और माघ ने शिशुपालवध के १९वें सर्ग में इसी छन्द में अर्थत्रयवाची[7]

---

१ आरम्भे सर्गबन्धस्य कथाविस्तरसग्रहे।
समोपदेशवृत्तान्ते सन्त शसन्त्यनुष्टुभम्॥ सुवृततिलकम्-३।१६।

२ तप स्वाध्यायनिरत तपस्वी वाग्विदा वरम्।
नारद परिप्रपच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम्॥ वाल्मीकीय रामायण-१।१।१

३ मा निषाद। प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी काममोहितम्॥ वाल्मीकीय रामायण-१।२।१५।

४ महाभारत में अधिकतम श्लोक अनुष्टुप्। रघुवश-१ सर्ग में १-९४ अनुष्टुप्

५ श्रीमद्भागवतगीता में अधिकतम श्लोक अनुष्टुप्।

६ अनुष्टुप्-सततासक्ता साभिनन्दस्य नन्दिनी।
विद्याधरस्य वदने गुलिकेव प्रभावभू। सुवृततिलक-३।२९।

७ किरातार्जुनीय-१५।४५, शिशुपालवध-१९।११६।

एकाक्षरपाद[८], गोमूत्रिकाबन्ध[९], एकाक्षर[१०], समुद्गक[११], प्रतिलोमानुलोमपाद[१२], सर्वतोभद्र[१३] अर्धभ्रमक[१४] द्वयक्षर[१५], शृखलायमक[१६], गूढचतुर्थपाद[१७], मुरजबन्ध[१८], गतप्रत्यागत[१९] आदि से रचना प्रक्रिया में काव्यकला का प्रदर्शन किया है। भाव तथा कला की दृष्टि से भी यह छन्द सर्वथा उपयुक्त है। यथा—

जगतीशरणे युक्तो हरिकान्त सुधासित ।
दानवर्षी कृताशसो नागराज इवाबभौ ॥ किरातार्जुनीय-१५।४५

यह अर्थत्रयवाची श्लोक है। भाव की दृष्टि से इसमें प्रयुक्त पद तीन प्रकार के अर्थों को प्रकट करते हैं, जिनका क्रमश उल्लेख किया जाता है—

(१) अगराज (हिमालय) के पक्ष मे—

जगति = ससार मे, ईशरणे = भगवान् शकर के रण में, युक्त = समर्थ, हरिकान्त = सिह के समान मनोहर, सुधासित = सुष्ठुदधाति पालयति प्रजा इति सुधा = प्रजा पालकश्चासौ सित = धवलवर्ण = प्रजापालक धवलवर्ण, दानवर्षी = दानदाता, कृताशस = कृता आशसा-जयाभिलाष येन स = जयकी अभिलाषा रखता हुआ, ना = नर अर्जुन, अगराज इव = पर्वतों के राजा हिमालय के समान, आबभौ = सुशोभित हुए। उपर्युक्त अर्जुन सम्बन्धी सभी विशेषण अगराज (हिमालय) के भी विशेषण है, जैसे-अगराज (हिमालय) जगतीशरणे युक्त = ससार की रक्षा करने में समर्थ है, हरिकान्त = सिंहों को आवास स्थान प्रदान करने से वह उनका प्रिय है, सुधासित = सुधालेपद्रव्य के समान सित अर्थात् हिम के होने से धवलवर्ण है, दानवर्षी = अनेक प्रकार के रत्नो का प्रदाता है और दानवर्षीकृताशस = जिससे दानव, ऋषि तथा लक्ष्मी अनेक फल प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं। इस प्रकार श्लेष युक्त पदो से हिमालय के समान अर्जुन की उपमा प्रदर्शित की गयी है, जो भारवि की रचनाप्रक्रिया में काव्यकला की दृष्टि से भी अनुपम है।

(२) नागराज (ऐरावत) के पक्ष मे—

जगतीशरणे-जगतीश्यन्ति = (जो पृथ्वी को सूक्ष्म करते हैं), इति जगतीशा = राक्षसा, तेषां रणे-उनके युद्ध में युक्त = समर्थ (यह अर्थ अर्जुन तथा ऐरावत दोनों के पक्ष मे लगता है), हरिकान्त

---

८ किरातार्जुनीयम्-१५।५,
९ किरातार्जुनीयम्-१५।१२,
१० किरातार्जुनीयम्-१५।१४,
११ किरातार्जुनीयम्-१५।१६,
१२ किरातार्जुनीयम्-१५।१८,
१३ किरातार्जुनीयम्-१५।२०,
१४ किरातार्जुनीयम्-१५।२७,
१५ किरातार्जुनीयम्-१५।३८,
१६ किरातार्जुनीयम्-१५।४२।
१७ किरातार्जुनीयम्-१५।४३।
१८ शिशुपालवधम्-१९।२९।
१९ शिशुपालवधम्-१९।८८।

शिशुपालवधम्-१९।३।
शिशुपालवधम्-१९।४६।
शिशुपालवधम्-१९।११४।
शिशुपालवधम्-१९।११।
शिशुपालवधम्-१९।४०।
शिशुपालवधम्-१९।२७।
शिशुपालवधम्-१९।७२।
शिशुपालवधम्-१९।६६,८४/८६।

शिशुपालवधम्-१९।९६।

= इन्द्र का प्रिय (दोनो), सुधासित = अमृत के समान स्वच्छ (यह अर्थ अर्जुन के पक्ष मे शक्ति के कारण स्वच्छ तथा ऐरावत के पक्ष मे वर्ण से स्वच्छ अर्थात् शुभ्र, दानवर्षी = अर्जुन पक्ष में दान की वर्षा करने वाला तथा ऐसावत के पक्ष मे मदस्रावी, कृताशस = विजयेच्छुक (दोनों) वह पार्थ नागराज इव = ऐरावत के समान, आबभौ = सुशोभित हुए।

(३) नागराज (शेषनाग) के पक्ष मे—

जगतीशरणे = जगत्या पृथिव्या शरणे रक्षणे = पृथ्वी की रक्षा करने में युक्त = नियुक्त (दोनो), दानवर्षीकृताशस = दानव, ऋषि और ई = लक्ष्मी के द्वारा प्रशसित (दोनों) वह अर्जुन, नागराज इव = शेषनाग (अहिराज) के समान, आबभौ = सुशोभित हुए।

इस प्रकार भारवि ने अनुष्टुप् जैसे छोटे छन्द मे तीन अर्थो से युक्त भाव को प्रदर्शित करते हुए अर्जुन की उपमा श्लिष्ट पदो से अगराज (हिमालय) नागराज (ऐरावत तथा अहिराज) से प्रकट की है, जो उनकी रचना प्रक्रिया में छोटे से छन्द द्वारा अनेक भावो को प्रदर्शित करने की क्षमता का प्रदर्शन करती है, जिससे प्रकट होता है कि अनुष्टुप् छद मे किस प्रकार अनेक भावों का एक साथ एक ही पद्य में समावेश किया जा सकता है, जोकि अन्य छन्दों में दुष्कर है।

(ख) काव्यकला की दृष्टि से अनुष्टुप छन्द के उपयोग का प्रदर्शन भी सर्वप्रथम भारवि के काव्य मे ही देखने को मिलता है, जिसमे विविध बन्धो मे पद्यो का प्रणयन किया गया है। उदाहरण के लिए उनमे से सर्वतोभद्र का प्रदर्शन प्रस्तुत किया जाता है—

दे वा का नि नि का वा दे,
वा हि का स्व स्व का हि वा।
का का रे भ भ रे का का,
नि स्व भ व्य व्य भ स्व नि ॥ किरातार्जुनीयम्-१५।२५

उपर्युक्त पद्य की प्रत्येक पक्ति वाम भाग से भी पढी जा सकती है और यदि पद्य की प्रत्येक पक्ति को पार्श्व भागो से भी पढे तो भी वे ही पक्तिया पढने को मिलेंगी, जो कि पद्यगत प्रदर्शित हैं। पार्श्व भागो से पक्तिपाठ में पक्ति के अनुसार ही पद्य में ऊपर से अक्षरों को क्रमश. ग्रहण करना होगा। उदाहरणार्थ—यदि आपको पार्श्व भागों से तृतीय पंक्ति का पाठ करना है, तो पद्य की प्रथम पक्ति के तृतीय अक्षर से नीचे नीचे के सभी अक्षरों को क्रमश ग्रहण करने से पंक्तिपाठ सुगम हो जायेगा। यदि सर्वतोभद्रपद्य को चारो पक्तियों के बाद पलटकर लिख दिया जावे, तो पद्य की प्रत्येक पक्ति को पूर्णतया किसी भी तरफ से पढा जा सकता है, अर्थात् यथेष्ट पक्ति को ऊपर से, नीचे से तथा पार्श्व भागों से कही से भी पढें तो सर्वत वह पक्ति हमें पढने को मिलेगी, जो कि पद्यगत है, उस पक्ति के पाठ में तनिक भी अन्तर नही होगा। इसी कारण पद्य का नाम सर्वतोभद्र रखा गया है, जिसकी प्रत्येक पक्ति को सब ओर से पढा जा सकता है। जैसे—

दे	वा	का	नि	नि	का	वा	दे
वा	हि	का	स्व	स्व	का	हि	वा
का	का	रे	भ	भ	रे	का	का
नि	स्व	भ	व्य	व्य	भ	स्व	नि
नि	स्व	भ	व्य	व्य	भ	स्व	नि
का	का	रे	भ	भ	रे	का	का
वा	हि	का	स्व	स्व	का	हि	वा
दे	वा	का	नि	नि	का	वा	दे

इस प्रकार काव्यकला में प्रयोग के अतिरिक्त सम्पूर्ण काव्यजगत् के चारों विभागो (शास्त्र, काव्य, शास्त्र काव्य और काव्यशास्त्र) मे अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया जाता है।[२०]

(२) **उपजाति**—अन्य विषयो की अपेक्षा कवि क्षेमेन्द्र ने उपजाति छन्द मे शृगार रस के आलम्बन भूत उदात्त नायिकाओ के रूपो का, वसन्तादि षड् ऋतुओं का और उसी के अनुकरण पर ऋतुओ के अगो का वर्णन करना उचित बताया है।[२१] उपर्युक्त वर्णन प्रसग मे जितनी शोभा इस छन्द की होती है, उतनी अन्य किसी छन्द की नही। उदाहरणार्थ नायिका रूप वर्णन में कालिदासकृत उपजाति छन्द का प्रयोग प्रस्तुत किया जाता है—

मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलित्रय चारु बभार बाला।
आरोहणार्थ नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ॥ कुमारसभवम्- ।१ ।३९ ।

इस छन्द में पार्वती के रूप सौन्दर्य का कितना सुदर वर्णन किया गया है। कृशोदरी पार्वती ने उच्च स्थल पर कामदेव के चढने के लिए युवावस्था के द्वारा निर्मित सुदर सीढी के समान मध्य भाग (उदर) में सुन्दर त्रिवली को धारण किया। यहा पर उदात्तनायिका (पार्वती) के रूप वर्णन में कालिदास ने उपजाति छन्द का प्रयोग किया है, जो कि अत्यन्त समुचित है।

क्षेमेन्द्र ने उपजाति छन्द के प्रयोग में पाणिनि की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है।[२२] उन्होंने लिखा है कि जैसे चमेली की लता से वाटिका की शोभा बढ जाती है, उसी तरह चमत्कारिक उपजाति छन्द के द्वारा पाणिनि का काव्य स्पृहणीय बन गया है। उक्त पाणिनि का काव्य पाताल विजय या जाम्बवती विजय काव्य जिनमे उपजाति छन्द का चमत्कारिक प्रयोग हुआ था, आज उपलब्ध नही है किन्तु उसका इतिहास मे उल्लेख तथा सुभाषित सग्रहों में पाणिनि के नाम से उक्त दोनों काव्यों से पद्यों के उद्धरण प्राप्त होते हैं।[२३] सम्भवत कवि क्षेमेन्द्र के समय में वे दोनों काव्य उपलब्ध रहे हों, जिससे उन्होंने पाणिनि के उपजाति छन्द के प्रयोग की कालिदास आदि के प्रयोग की अपेक्षा अधिक प्रशसा की है।

(३) **रथोद्धता**—चन्द्रचन्दनादि उद्दीपन विभावों के वर्णन में रथोद्धता छद का प्रयोग अच्छा होता है।[२४] इस छन्द में उक्त उद्दीपन विभाव जितने उत्कृष्ट ढग से उद्दीप्त होते हैं, उतने अन्य किसी छन्द में नही। उदाहरण के लिए उद्दीपन विभाव के वर्णन मे कालिदास के पद्य को प्रस्तुत करते हैं—

अगुलीभिरिव केशसञ्चय सन्नियम्य तिमिर मरीचिभि।
कुड्मलीकृतसरोजलोचन चुम्बतीव रजनीमुख शशी ॥ कुमारसम्भव-८ ।६३

चन्द्रमा अगुलियो के समान अपनी किरणो से केशो के समान अन्धकार को हटा कर मुदी हुई कमलरूपी आखो वाले रजनी रूपी नायिका के मुख का मानो चुम्बन ले रहा है। यहा पर चन्द्रोदय वर्णन से ठीक वह भाव उद्दीप्त हो रहा है, जैसे कोई हठी कामुक अपनी प्रियतमा के मुख पर फैले हुए

---

२० क्षेमेन्द्र कृत सुवृततिलकम्-३ ।२-९, हरिदास सस्कृत ग्रन्थमाला-२७६ ।

२१ शृगारालम्बनोदारनायिकारूपवर्णनम्।
वसन्तादि तदग च सच्छायमुपजातिभि ॥ सुवृत्ततिलकम्-३ ।१७ ।

२२ स्पृहणीयत्वचरित पाणिनेरुपजातिभि ।
चमत्कारैकसाराभिरुत्थानस्येव जातिभि । सुवृत्ततिलकम्-३ ।३० ।

२३ ए० बी० कीथ-सस्कृत साहित्य का इतिहास-(हिन्दी, अनु० मगलदेवशास्त्री, पृ० ५७

२४ रथोद्धता विभावेषु भव्या चन्द्रोदयादिषु। सुवृत्तिलक-३ ।१८ का पूर्वार्द्ध ।

केशो को अपनी अगुलियो से हटाकर उसका मुख चूम रहा हो और वह भी उस चुम्बन का रस लेने के लिए अपने नेत्र मूदे हुए हो। कालिदास ने चन्द्रोदय रूप उद्दीपन विभाव के वर्णन मे रथोद्धता छन्द का प्रयोग किया है,जो कि विषय के समान ही रस के उद्दीपन मे सहायक बन रहा है।

(४) **वशस्थ**—सन्धिविग्रहादि षड्‌गुणो से प्रशस्त राजनीति के वर्णन मे वशस्थ छन्द का प्रयोग सुन्दर माना गया है।[२५] महाकवि भारवि ने राजनीति के वर्णन में वशस्थ छन्द का प्रयोग कर विशेष ख्याति अर्जित की,जिससे उन्हे आतपत्र की उपाधि से अलकृत किया गया। जैसे बास के दण्डे मे लगा हुआ छाता अपनी छाया देकर लोगो की कार्य शक्ति को बढा देता है,ठीक उसी प्रकार छन्दो मे प्रधान वशस्थ छन्द की ही यह विशेषता है कि उसने महाकवि भारवि को आतपत्र की उपाधि दिलाकर उनकी प्रतिभा को चमका दिया।[२६] भारवि को राजनीति के वर्णन मे वशस्थ छन्द द्वारा जो सफलता प्राप्त हुई, वह किसी अन्य कवि की नही। अत भारवि का वशस्थ छन्द विशेषत प्रसिद्ध है और उस पर उनका अधिकार माना जाता है। उदाहरणार्थ राजनीति-वर्णन मे भारवि के एक पद्य को प्रस्तुत करते है—

व्रजन्ति ते मूढधिय पराभव भवन्ति मायाविषु ये न मायिन ।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसवृताङ्गान्निशिता इवेषव ॥ किरातार्जुनीयम्-१ ।३०

वे विवेकरहित पुरुष सदा पराजित होते है,जो मायावियो के समक्ष मायावी नही बनते। वे मायावी शठ तो अमायावी जनो को उसी प्रकार मार देते है,जैसे तीक्ष्ण धार वाले बाण कवचादि से न ढके हुए शरीरवालो को उनके शरीर मे प्रविष्ट होकर मार देते है। अत कहने का तात्पर्य यह है कि जो 'शठे शाठ्य समाचरेत्' नीति का अवलम्बन नही करते, वे सदा धोखा खाते है, क्योकि कुटिल व्यक्तियो के प्रति सीधा रहना कोई नीति नही होती।[२७] भारवि ने नीतिवर्णन मे वशस्थ का जो प्रयोग किया है,वह समुचित है। काव्यकला की आलकारिक दृष्टि से भी भारवि ने इसी छन्द मे महायमक का प्रयोग प्रदर्शित किया है—

विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा ।
विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयु जगतीशमार्गणा ॥ किरातार्जुनीयम्-१५ ।५२ ।

इसमें एक ही पक्ति की चार वार आवृति हुई है किन्तु चारों वार अर्थ पृथक् पृथक् लगता है। जैसे पक्ति के अनुसार क्रमश —

(१) जगतीश = पृथ्वी के स्वामी अर्जुन के,मार्गणा = बाण,विकाशमीयु = फैल गये।

(२) जगति = लोक में,ईशमार्गणा = शकर के बाण विकाश = विषम गति को,ईयु = प्राप्त हुए अर्थात् खण्डित हो गये।

(३) जगती पृथ्वी श्यन्ति तनूकुर्वन्ति इति जगतीशा दानवास्तान् मारयन्तीति जगतीशमारा एते च ते गणा = पृथ्वी को सूक्ष्म करने वाले दानवो को मारने वाले प्रमथगण,विकाश = उल्लास को,ईयु = प्राप्त हुए अर्थात् आश्चर्य में पड गये।

---

२५ षाड्‌गुण्यप्रगुणा नीति वशस्थेन विराजते। सुवृत्ततिलकम्-३ ।१८ का उत्तरार्द्ध।

२६ वृत्तच्छत्रस्य सा कापि वशस्थस्य विचित्रता।
प्रतिभा भारवेर्येन सचयेनाधिकीकृता ॥	सुवृत्ततिलकम्-३ ।३१ ।

२७ 'आर्जव' हि कुटिलेषु न नीति। मल्लिनाथसूरिकृत घण्टापथव्याख्या, किरातार्जुनीयम्-१ ।३०-हरिदास सस्कृत ग्रन्थमाला-१०५,१९६८।

(४) जगतीशस्य = शिव के, मार्गयन्तीति मार्गणा = अन्वेषक, वीना = पक्षियो की, काश = गति को, ईयु = प्राप्त हुए अर्थात् शिव को देखने के लिए उनके भक्त आकाश में उपस्थित हुए। इसमे कितने शब्दवैचित्र्य के साथ महायमक का प्रदर्शन किया गया है, जो काव्यकला की दृष्टि से विश्व साहित्य मे दुर्लभ है।

(५) **वसन्ततिलका**—वीर और रौद्र रसो के मिश्रण मे वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग सुशोभित होता है।[२८] कवि क्षेमेन्द्र ने वसन्ततिलका के रसानुरूप प्रणयन मे कवि रत्नाकार की प्रवीणता प्रदर्शित की है। उन्होने लिखा है कि जैसे वसन्त ऋतु के भूषणस्वरूप तिलपुष्पके वृक्ष पर अच्छी तरह फैली हुई लता वन मे कुसुमित होकर सुशोभित होती है, ठीक उसी तरह वसन्ततिलका छन्द से आबद्ध वाणी कवि रत्नाकर के मुख मे प्रौढता प्राप्त कर भूषित होती है।[२९] उदाहरण के लिए वीर तथा रौद्र रस के मिश्रण मे वसन्ततिलका के प्रयोगस्वरूप कवि रत्नाकर का एकफुटकर पद्य प्रस्तुत किया जाता है—

जृम्भाविकासितमुख नखदर्पणान्तराविष्कृतप्रतिमुख गुरुरोषगर्भम्।
रूप पुनातु जनितारिचमूविमर्शमुद्वृत्तदैत्यवधनिर्वहण हरे र्व ॥ सुवृत्ततिलक-३ ।१९ ।१

जभाई आने के कारण मुह फैलाए हुए प्रतिबिम्ब पडनेवाले बडे बडे नाखूनो से युक्त शत्रुसैन्य का अनुमान लगाकर दुर्वृत्त हिरण्यकशिपु के वध को पूर्ण करने वाले भगवान् विष्णु का क्रोध पूर्ण नरसिह रूप सासारिक जीवो को पवित्र करे। यहा पर वीरता मे क्रोध का समावेश हो जाने से वीर और रौद्र रस का सकर स्पष्ट लक्षित हो रहा है, उसके वर्णनक्रम में कवि ने जो वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया है, उससे प्रसगोचित उत्साह द्विगुणित होता हुआ-सा प्रतीत होता है, जिससे वसन्ततिलका छन्द के प्रयोग मे कवि की प्रवीणता सार्थक होती है।

(६) **मालिनी**—कवि क्षेमेन्द्र ने मालिनी छन्द का प्रयोग सर्गो के अन्त में ही स्पृहणीय माना है। उन्होंने लिखा है कि सर्गों के अन्त मे मालिनी छन्द का प्रयोग उसी तरह स्पृहणीय होता है, जैसे गीतों के अन्त मे ताल की द्रुत गति सुशोभित होती है।[३०] किन्तु इसके अतिरिक्त कवियो ने प्रभात तथा विरह-वर्णन मे भी मालिनी छन्द का प्रयोग किया है, जो कि समुचित प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ सर्ग के अन्त में कालिदास के कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग का अन्तिम पद्य प्रस्तुत किया जाता है—

अवचितवलिपुष्पा वेदिसमार्गदक्षा नियमविधिजलाना वर्हिषा चोपनेत्री।
गिरिशमुपचचार प्रत्यह सा सुकेशी नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादै ॥

कुमारसम्भवम्-१ ।६०।

शिव की सेवा मे लगी हुई पार्वती कभी पूजा के लिए फूल तोड लाती थी, तो कभी वेदिका को लीपने में लग जाती थी, कभी अच्छिन्न जल ले आती थी तो कभी कुश लाने निकल जाती थी और जब थक कर चूर हो जाती थी तो उनके जटाजूट से वर्तमान चन्द्र किरणों से श्रान्ति मिटाने के लिए शिव जी के आगे तन्मय होकर बैठ जाती थी, इस तरह वह शिव की आराधना में शिवमय हो रही थी। यहा पर कवि ने सर्गान्त में मालिनी छन्द का प्रयोग किया है, जो स्वय ही गीतों के अन्त की गति के समान सर्गान्त की सूचना देता है।

---

२८ वसन्ततिलक भाति सकरे वीररौद्रयो । सुवृत्ततिलकम्-३ ।१९ का पूर्वार्द्ध।

२९ वसन्ततिलकारूढावाग्वल्ली गाढसगिनी।
रत्नाकरस्योत्कलिका चकास्त्याननकानने ॥ सुवृत्ततिलकम्-३ ।३२।

३० कुर्यात्सर्गस्य पर्यन्ते मालिनी द्रुततालवत्। वृत्ततिलक-३ ।१९ का उत्तरार्द्ध।

प्रभातवर्णन मे महाकवि माध ने शिशुपालवध के ११वे सर्ग मे अन्तिम पद्य को छोडकर शेष सभी पद्य प्रथम से ६६वे पर्यन्त मालिनी छन्द में ही लिखे है और श्रद्धाजलि के[३१] अन्तर्गत मातृवियोग के प्रथम से षष्ठ पर्यन्त पद्य मालिनी छन्द में जनसाधारण का मनोहरण करते है।

(७) **शिखरिणी**—कवि क्षेमेन्द्र ने किसी विषय के सीमा निर्धारण मे शिखरिणी छन्द के प्रयोग को सकेतित किया है।[३२] किन्तु विरह के वर्णन प्रस्तुत करने मे भी शिखरिणी की प्रसिद्धि है। अत कवियो मे भवभूति के शिखरिणी छन्द के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन करते हुए क्षेमेन्द्र ने लिखा है कि भवभूति के द्वाराप्रयुक्त शिखरिणी छन्द उस पार्वती नदी के समान है, जो मेघ के सम्पर्क में आकर सुदर मयूरी के समान स्वच्छन्द फुदकती हुई नाच उठती है।[३३] उदाहरण मे भवभूति का एक पद्य प्रस्तुत किया जाता है—

तटस्थ नैराश्यादपि च कलुष विप्रियवशाद्
वियोगे दीर्घेऽस्मिञ्झटिति घटनात्स्तम्भितमिव।
प्रसन्न सौजन्याद्दयितकरुणै र्गाढकरुण
द्रवीभूत प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव॥ उत्तररामचरितम्-३ ।१३

वत्से । सीते । तुम्हारा हृदय इस अवसर मे निराशा के कारण उदासीन की तरह, पति के परित्याग रूप अप्रिय आचरण से क्रोधयुक्त की तरह, बहुतकालतक रहनेवाले इस विरह मे आकस्मिक सम्मेलन से निश्चल की तरह, प्रिय की सम्बोधनरूप सुजनता से प्रसन्न की तरह और प्यारे राम की शोकमयी अवस्थाओ से दृढ शोक से युक्त हो प्रेम से द्रवीभूत हो रहा है।

यहा पर विरह-वर्णन में भवभूति की शिखरिणी विरहिणी बन रही है। इसके अतिरिक्त स्तोत्र रूप मे जगन्नाथ की गगालहरी के शिखरिणीपद्य प्रसिद्ध है।

(८) **हरिणी**—उदारता के औचित्यपूर्ण सुदर वर्णन मे हरिणी छन्द का प्रयोग प्रभावशाली माना जाता है।[३४] उदाहरणस्वरूप सुवृत्ततिलक में उद्धृत भर्तृहरि विरचित एक फुटकर पद्य प्रस्तुत किया जाता है—

विकलहृदयैरन्यै कैश्चिज्जगज्जनित पुरा, विधृतमपरैर्दत्त चान्यैर्विजित्य तृण यथा।
इह हि भुवनान्यन्ये धीराश्चतुर्दश भुञ्जते, कतिपयपुरस्वाम्ये पुसा क एष मदज्वर।
सुवृत्ततिलकम्-३ ।२० ।१

पहले किन्ही विशालहृदय पुरुषो ने इस विश्व की रचना की, दूसरों ने इसे धारण किया, और कुछ ने इसे जीतकर निस्सार तृण के समान दूसरों को दान मे दे दिया। आज भी अनेक धीर पुरुष चौदह भुवनो का भोग कर रहे हैं, फिर थोडे से नगरों की स्वामिता प्राप्त कर कुछ लोगों मे मदज्वर क्यो होने लगता है ? यहा पर पूर्ण विश्व का तृणवत् उत्सर्ग करनेवाले महर्षि परशुराम के औदार्य के वर्णन में हरिणी छन्द का प्रयोग अत्यन्त औचित्य प्रकट कर रहा है।

---

३१ डा० हरिदत्त पालीवाल निर्भय, श्रद्धाञ्जलि, पृ० ५।

३२ उपयन्नपरिच्छेदकाले शिखरिणी मता। सुवृत्ततिलकम्-३ ।२० का पूर्वार्द्ध।

३३ भवभूते शिखरिणी निरर्गलतरगिणी।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति॥ सुवृत्ततिलकम्-३ ।३३।

३४ औदार्यरुचिरौचित्यविचारे हरिणी वरा॥ सुवृत्ततिलकम्-३ ।२० का उत्तरार्द्ध।

(९) **पृथ्वी**—निन्दा और क्रोधपूर्वक तिरस्कार के वर्णन में पृथ्वी छन्द ही तात्पर्य ग्रहण करने में समर्थ होता है।[३५] उदाहरणार्थ निन्दापूर्वक तिरस्कार के वर्णन मे कवि यशोवर्मा के एक फुटकर पद्य को प्रस्तुत करते है—

स यस्य दशकन्धर कृतवतोऽपि कक्षान्तरे
गत स्फुटमवन्ध्यतामधिपयोधि सान्ध्यो विधि ।
तदात्मज इवागद प्रहित एष सौमित्रिणा,
क्व स क्व स दशाननो ननु निवेद्यता राक्षसा ।

सुवृततिलकम्-३ ।२१ ।१

रावण को काख तले दबाकर रखने पर भी समुद्र के किनारे सन्ध्या वन्दन के सम्पादन में जिसे कोई असुविधा नही हुई, उस महाबली बाली का पुत्र अगद यहा लक्ष्मण के द्वारा भेजा गया है। वह रावण कहाँ है ? राक्षसो ! उसे सूचित कर दो। यहा पर रावण की निन्दापूर्वक उपेक्षा के वर्णन में पृथ्वी छन्द का प्रयोग अभिधेयार्थ के प्रकटन मे चार चाद लगा रहा है।

(१०) **मन्दाक्रान्ता**—वर्षाऋतु, प्रवास तथा किसी व्यसन विशेष के वर्णन मे मन्दाक्रान्ता छन्द की अपनी निराली ही शोभा होती है।[३६] और उक्त प्रकार के वर्णन विशेष में कालिदास के मन्दाक्रान्ता की विशेष ख्याति है। कवि क्षेमेन्द्र ने इस विषय मे लिखा है कि जैसे कम्बोज देश की घोडी सक्षम और सशक्त घोडे के पास पहुचकर धीरे-धीरे वशवर्तिनी हो हिनहिनाने लगती है, उसी तरह मन्दाक्रान्ता भी कालिदास के वशवर्तिनी होकर स्वय बोल उठती है।[३७] उदाहरणार्थ-कालिदास के मेघदूत से एक पद्य प्रस्तुत करते है—

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिल यत्र बिम्बाधराणा,
क्षौम रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ।
अर्चिस्तुगानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्,
ह्रीमूढाना भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टि ॥ मेघदूतम्-२ ।५ ।

हे मेघ ! जिस अलकापुरी मे चचल हाथों वाली कामीप्रियो के द्वारा सभोग के समय लाल अधरोष्ठ वाली रमणियो के नीवीबन्ध के ढीले पडने से खिसके वस्त्र खीच लिये जाते हैं, उस समय लज्जाशीला वे रमणिया देदीप्यमान दीपको के ऊपर चूर्णमुष्टि को फेककर मणिमय दीपको को बुझाने का यत्न करती है, किन्तु वह बुझाना उनका विफल हो जाता है, क्योकि चूर्णमुष्टि से तो तेलदीपक ही बुझाये जाते है, मणिदीपक नही। यहा पर प्रवासी यक्ष द्वारा पत्नी वियोग मे मेघ से सन्देश प्रेषित करते हुए उसकी काम-भावना मन्दाक्रान्ता छन्द द्वारा अपने अभिधेयार्थ के प्रकाशन मे शोभावृद्धि कर रही है।

(११) **शार्दूलविक्रीडित**—राजाओ की वीरता की प्रशसा मे शार्दूलविक्रीडित छद का प्रयोग श्रेष्ठ माना जाता है।[३८] और कवि क्षेमेन्द्र ने शार्दूलविक्रीडत के प्रणयन में कवि राजशेखर की प्रशसा

---

३५ साक्षेपक्रोधधिक्कारे पर पृथ्वी भरक्षमा। सुवृत्ततिलकम्-३ ।२१ का पूर्वार्द्ध।

३६ प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते। सुवृत्ततिलकम्-३ ।२१ का उत्तरार्द्ध।

३७ सुवशा कालिदासस्य मन्दाकान्ता प्रवल्गति।
सदश्वदमकस्येव कम्बोजतुरगागना ॥ सुवृत्ततिलकम्-३ ।३४ ।

३८ शौर्यस्तवे नृपादीना शार्दूलक्रीडित मतम्। सुवृत्ततिलकम्-३ ।२२ का पूर्वार्द्ध।

की है। उन्होने लिखा है कि जैसे सिहो के द्वारा खेल-खेल मे किये गये टेढे मेढे नख-चिह्नो से पर्वत प्रसिद्ध हो जाता है, उसी तरह उल्लेख और वक्रोक्ति अलकारो से युक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द के द्वारा ही राजशेखर कविशेखर बन गये।[३९] उदाहरणार्थ-राजशेखर का एक पद्य प्रस्तुत किया जाता है—

भो लकेश्वर। दीयता जनकजा राम स्वय याचते,
कोऽय ते मतिविभ्रम स्मर नय नाद्यापि किञ्चिद् गतम्।
नैव चेत् खरदूषणत्रिशिरसा कण्ठासृजा पकिल,
पत्री नैष सहिष्यते मम धनुर्ज्याबन्धबन्धूकृत ॥ बालरामायण-९।१९।

अरे लकेश्वर। सीता को दे दो। यह राम तुमसे स्वय याचना कर रहा है। तुम्हे यह कैस भ्रम हो गया है? नीति का स्मरण करो। अभी भी कुछ नही बिगडा है। अन्यथा खर, दूषण और त्रिशिरा के कण्ठ रुधिर से लिप्त धनुष की ज्या पर चढा हुआ मेरा बाण इसे सहन नही करेगा। यहा पर राम की लकेश्वर के प्रति कही गयी यह उक्ति वीररस के परिपाक का एक सुदर उदाहरण है। राजशेखर ने अपने नाटक बाल रामायण मे २०८ वार[४०], बालभारत मे ४१ वार[४१], विद्धशालभजिका मे ३९ वार[४२] और कर्पूर मञ्जरी में २४ वार[४३] शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग किया है।

काव्यकला के विशिष्ट वैचित्र्य को प्रदर्शित करते हुए महाकवि माघ ने शिशुपाल वध के १९वे सर्ग के अन्त मे शार्दूलविक्रीडित छन्द मे ही एक चक्रबन्ध पद्य भी प्रस्तुत किया है, जिसकी प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पक्तिया अक १ से ३ तक क्रमश ऊपर से नीचे तक पूर्ण होती है और अन्तिम चतुर्थ पक्ति अक-४ के नीचे रे से चक्राकारपक्ति के रूप मे प्रारब्ध होकर पुन रे पर ही समाप्त होती है। चतुर्थ पक्ति अपने चक्र मे प्रथम तीनो पक्तियो के प्रारम्भिक तथा अन्तिम एक-एक शब्द को ग्रहण कर अपने में समाविष्ट करती है। चक्र की नाभि के अन्तर्गत स्थित र प्रथम तीनो पक्तियो के दशमाक्षर रूप मे सलग्न है, जो ठीक मध्य मे स्थित होकर तीनो पक्तियो के अर्धभागो को नौ-नौ अक्षरो के रूप मे चक्र के छह अरो मे विभक्त करता है। चक्र के तृतीय घेरे मे अक १ से ५ तक 'माघ काव्यमिदम्' वाक्य पूरा होता है, जो पद्य की प्रथम तीन पक्तियों के तृतीय तथा सप्तदशाक्षर को ग्रहण कर पूर्ण किया गया है। यह कवि के नाम के साथ काव्य की प्रसिद्धि का द्योतक है और छठे घेरे मे अक १ से ६ तक काव्य का नाम शिशुपालवध प्राप्त होता है, जो पद्य की प्रथम तीन पक्तियो के षष्ठ तथा चतुर्दशाक्षर को ग्रहण कर पूर्ण किया गया है। इस प्रकार की काव्य-कला के वैचित्र्य के प्रवर्तक सस्कृत के कवि भारवि तथा प्रसारक माघ रहे है, जो विश्व की अन्य भाषाओं के ग्रन्थों में दुर्लभ है। (दृष्टव्य चक्रबध-अग्रिमपृष्ठ)।

---

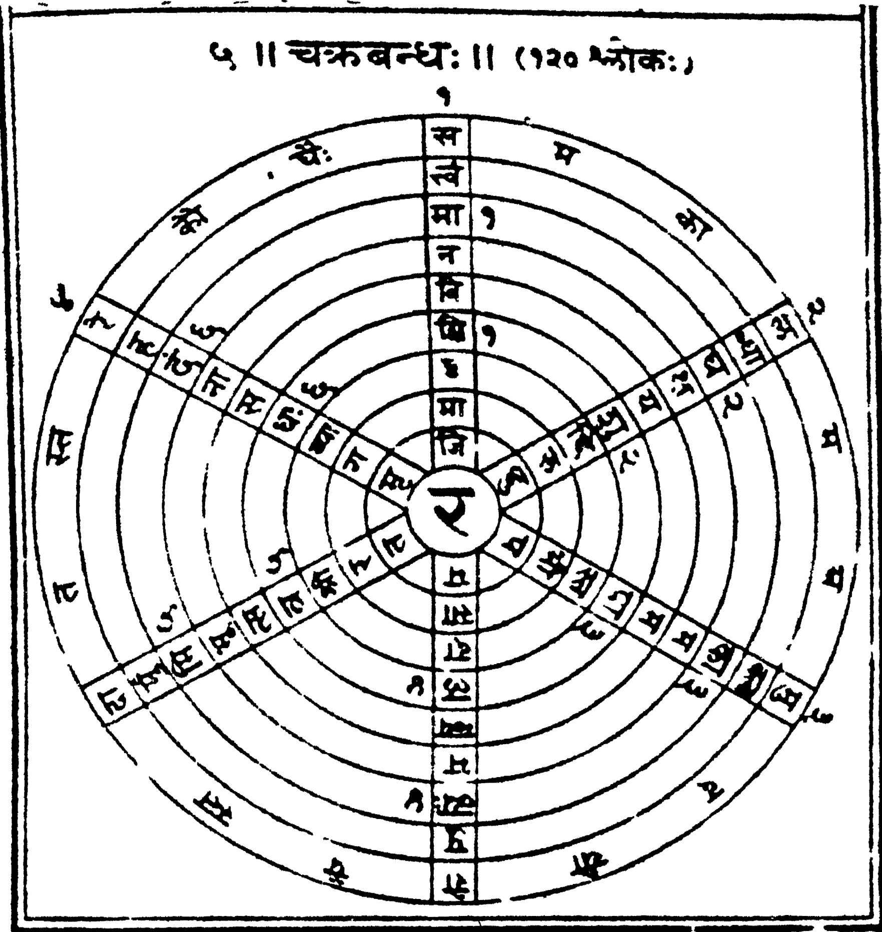
३९ शार्दूलक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखर।
शिखरीव पर वक्रै सोल्लेखैरुच्चशेखर ॥ सुवृत्ततिलकम्-३।३५।

४० राजशेखरकृत-बालरामायण।

४१ राजशेखरकृत-बालभारत।

४२ राजशेखरकृत-विद्धशालभजिका।

४३ राजशेखरकृत-कर्पूरमजरी।



(१२) **स्रग्धरा**—कवि क्षेमेन्द्र के अनुसार आवेग युक्त पवनादि के वर्णन मे स्रग्धरा छन्द का प्रयोग श्रेष्ठ माना जाता है,[४४] किन्तु देवस्तुति मे भी स्रग्धरा छन्द की कोई समता नही रखता। मयूरभट्ट (६५० ई०) ने स्रग्धरा छन्द का सर्वाधिक प्रयोग किया है। उन्होने सूर्यदेव की स्तुति मे सूर्यशतक की रचना की, जो समस्त स्रग्धरा छन्द मे है। इसमें १०१ पद्य प्राप्त होते हैं[४५] जिनमें से उदाहरणार्थ एक पद्य प्रस्तुत किया जाता है—

---

४४ सा वेगपवनादीना वर्णने स्रग्धरा मता। सुवृत्ततिलकम्-३ ।२२ का उत्तरार्द्ध

४५ मयूरभट्टकृत सूर्यशतक, १९६४।

सा नो सा नोदेये नारुणितदलपुनर्यौवनाना वनाना-
मालीमालीढपूर्वा परिहृतकुहरोपान्तनिम्ना तनिम्ना ।
भा वो भावोपशान्ति दिशतु दिनपतेर्भासमाना समाना
राजी राजीवरेणो समसमयमुदेतीव यस्या वयस्या ॥

मयूरभट्टकृत-सूर्यशतकम्-३८ ।

सखी के समान विकसित पद्मराग की पक्ति से युक्त, रक्तिम दलो के कारण, पुनर्योवन को धारण करने वाले वनो की पक्तियो का सस्पर्श करनेवाली एव उदयाचल के शृगदेश मे अपनी सूक्ष्मता से रन्ध्रभाग की अगाधता को दूर करनेवाली दिनपति की भासित होनेवाली दीप्ति आप लोगो के अभाव का उपशमन करे। यहा पर प्रत्येक पक्ति मे अनुप्रास तथा यमक से अलकृत स्रग्धरा सूर्यदेव की स्तुति मे अक्षरमाला को धारण करती हुई अपने स्रग्धरा नाम को सार्थक बना रही है ।

इसके अतिरिक्त कालिदास ने छन्दो मे उपजाति[४६], रथोद्धता[४७], वैतालीय[४८] (वियोगिनी) का, भट्टि ने उपगीत्यार्या[४९] का, कुमारदास ने पुष्पिताग्रा[५०], द्रुतविलम्बित का[५१], माघ ने प्रहर्षिणी[५२], प्रमिताक्षरा, मालिनी, विलम्बिता (मञ्जुभाषिणी), उद्गता, रुचिरा तथा शालिनी का, परिमलपद्मगुप्त ने औपच्छन्दसिक[५३] का, और श्रीहर्ष ने[५४] वशस्थ, स्वागता[५५], वसन्ततिलका[५६] और हरिणी[५७] का सर्वाधिक प्रयोग किया है, किन्तु इन छन्दो मे उनकी प्रसिद्धि का कोई उल्लेख नही मिलता। यद्यपि उक्त काव्यकारो ने अपने अपने काव्यो मे विभिन्न छन्दो का प्रयोग किया है, परन्तु निर्दिष्ट छन्दो के प्रति उनका विशेष आदर देखने को मिलता है। अत उन्ही को यहाँ छन्दोरत्नाकर से छन्दोरत्नरूप मे निकाल कर प्रदर्शित किया गया है ।



४६ रघुवश सर्ग-२,५,६,७,१३,१४,१६,१८ और कुमारसभव-सर्ग-१,३,७,९,११-१३ ।
४७ रघुवश सर्ग-११,१९, कुमारसम्भव सर्ग ८ ।
४८ रघुवश सर्ग ८, कुमारसभव सर्ग-४ ।
४९ भट्टिकाव्य सर्ग-१३ ।
५० जानकीहरण सर्ग-१,१६ ।
५१ जानकीहरण् सर्ग-११,१४ ।
५२ शिशुपालवध-सर्ग-८,९,११,१३,१५,१७ तथा १८ ।
५३ नवसाहसाकचरित-सर्ग ५ ।
५४ नैषधीयचरित-सर्ग-१,९,१२,१५,१६ ।
५५ नैषधीयचरित-सर्ग-५,२१ ।
५६ नैषधीयचरित-सर्ग-११,१३,२१ ।
५७ नैषधीयचरित-सर्ग-१९ ।

सप्तम अध्याय

उपसंहार

वैदिक छन्दोग्रन्थो मे लक्षित वैदिक छन्दोभेद	२४४
लौकिक छन्दोग्रन्थो मे लक्षित लौकिक छन्दोभेद	२४६
लौकिक छन्दोग्रन्थों मे लक्षित सस्कृतीकृत छन्द	४०१
अलक्षित छन्द	३३
	२७२४

सप्तम अध्याय

उपसंहार

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में छन्दो का सक्षिप्त विवरण दिया गया है, जिसके अनुसार सस्कृत साहित्य की विधाओ मे छन्दो का प्रवाह वैदिक युग से ही सतत गतिशील है, जिसमे से विभिन्न वृत्तधाराए निरन्तर निस्सृत होती रहती है, जिनमे मानव निमग्न हो रसभाव तथा वर्ण्यविषयो के द्वारा मनोरजन करता है। पहले छन्द का अर्थ स्वेच्छाचार था, जिसके कारण वेद भी छन्द के नाम से व्यवहृत होने लगा, क्योकि वेदो मे जो छन्द व्यवहृत है, वे छन्दोनियम नियत्रण से रहित हो अपने मे स्वतत्र रहे है। कवि की वह वाणी, जो अपने स्वच्छन्द छन्दो मे प्रवाहित होती है, कृत्रिमता से रहित, स्वाभाविक प्रवाह से युक्त और भावाभिव्यक्ति से परिपूर्ण तथा जनमानस को प्रभावित करनेवाली होती है, जिसके कारण कवि का वह स्वच्छन्द छन्द, जो अपनी प्रगति में किसी प्रकार का छन्दोनियम नियत्रण स्वीकार नही करता, नाना भावो तथा वर्ण्यविषयो को अपने मे समेटे रखता है। वेद तथा वैदिक युग की रचनाओ मे प्राप्त छन्द इसी परिधि मे आते है।

शाखायन श्रौतसूत्र के पूर्व तक छन्द अपने मे सर्वथा स्वच्छन्द रहे। तदनन्तर छन्दो की लक्षणादि प्रक्रिया का प्रारम्भ हुआ, जिसमे पातञ्जल निदानसूत्र ही छन्दोनियामक ग्रन्थो मे सर्वप्रथम वह आद्य ग्रन्थ है, जिसमे वैदिक छन्दो का विवेचन मिलता है। यही से छन्दो पर उनको लक्षणादि नियमो से सर्वथा नियत्रित रखने के लिए लक्षण ग्रन्थों की रचनाओ का प्रारम्भ होता है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत निदानसूत्र के साथ शौनककृत ऋक्प्रातिशाख्य और कात्यायनकृत ऋक्सर्वानुक्रमणी की गणना होती है, जिनमे वेदो मे प्रचलित छन्दों पर विस्तृत विवरण के साथ विचार किया गया है। इसके साथ ही अनुक्रमणी साहित्य के अन्तर्गत शौनककृत छन्दोनुक्रमणी और कात्यायनकृत याजुषानुक्रमणी तथा बृहत्सर्वानुक्रमणी छन्दोविषयक दृष्टि से विशेषत उल्लेखनीय है। जिनमे वैदिक छन्दों की सख्या, नाम तथा तद्विषयक महनीय बातो का क्रमबद्ध विवरण मिलता है, यद्यपि इनमे छन्दों के लक्षण नही मिलते।

पिगल से पूर्व लौकिक छन्दो के विषय पर भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र के (अध्याय १६ तथा ३२) मे विचार किया था, किन्तु सम्मिलित रूप से किसी भी आचार्य ने अभी तक छन्दों को शास्त्रीय बन्धन मे नही बाधा था, इस दिशा मे सर्वप्रथम कार्य पिगल ने किया, जिन्होने छन्द सूत्र की रचना कर दोनो प्रकार के छन्दो को शास्त्रीय परिधान पहनाया, जिसमे वैदिक छन्दो के साथ लौकिक छन्द भी, जो इधर-उधर बिखरे हुए थे, उन्हें एकत्रित कर लक्षणो से सुरक्षित किया। इनमे से कुछ छन्दों के उदाहरण तो पूर्ववर्ती वाल्मीकीय रामायण मे मिलते है और कुछ के महाभारत में। शेष छन्दों के उदाहरण परवर्ती कवि भास और कालिदास की रचनाओ एव उनके बाद भारवि-माघ आदि महाकवियो की काव्य-रचनाओ मे प्राप्त होते है। छदों की लयात्मक गेयता उनकी अपनी निजी विशेषता है, जो अपरिचित कानो पर भी ऐसा सम्मोहन डालती है कि केवल उसका समुचित ढग से कवितापाठ ही प्रभाव उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त होता है।

छन्दो को परिभाषित करने का क्रम ऋग्वेद १।१६४।२४ से ही प्राप्त होता है, जिसमें 'अक्षरेण मिमते सप्तवाणी' के प्रति सर्वप्रथम सकेत मिलता है। यह संकेत ही छन्दों की परिभाषा का मूल है, जिसके आधार पर कात्यायन ने 'यदक्षरपरिमाण तच्छन्द' कहकर छन्द को परिभाषित किया है। इस प्रकार ऋग्वेद से लेकर वर्तमान बीसवी शताब्दी तक प्राप्त होनेवाली छन्दोविषयक रचनाओ में से २४ लेखको की छद परिभाषाओं द्वारा समन्वयात्मक दृष्टि से छन्द को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है।

लौकिक सस्कृत काव्य-परम्परा मे आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण से लेकर वर्तमान बीसवी शताब्दी तक प्राप्त काव्य रचनाओ मे अधिकतर ७० छन्दो का प्रयोग मिलता है, उनमे से २८ छन्द ही ऐसे है, जिनका सर्वाधिक प्रयोग हुआ है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत छन्द शास्त्रविषयक ग्रन्थो का सामान्य परिचय दिया गया है। वेद के षडगो मे छन्द की गणना की जाती है, जिसके अनुसार छद को वेद का पाद माना गया है। विना पाद के गति नही होती, अत छन्द काव्य का सर्वप्रमुख साधन है। जो भी काव्य-रचनाए होती हैं वे सब छन्दो पर आश्रित रहती है। वैदिक छन्दोविवरण मे ९ ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जिनमें तीन ग्रन्थ पिगल से पूर्ववर्ती है और पाच परवर्ती, जिनमे क्रमश पतञ्जलि, शौनक, कात्यायन, पिगल, उपनिदान-सूत्रकार गार्ग्य, अग्निपुराणकार, जयदेव, वेकटमाधव और श्रीकृष्ट भट्ट के छन्दोलक्षण ग्रन्थों मे स्वतत्र रूप से लक्षित २४४ वैदिक छन्दो के लक्षण मिलते है।

लौकिक छन्दोनिरूपण मे २७ ग्रन्थ मिलते है, जिनमे पिगल का छन्द-सूत्र सर्वप्रथम आद्य ग्रन्थ माना जाता है किन्तु भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र के १६ और ३२वे अध्यायो मे जो छन्दोविवरण प्राप्त होता है, वह लघु गुरु वर्णशैली तथा काल की दृष्टि से उससे भी प्राचीन है। अत उसे प्रथम तथा पिगल को द्वितीय स्थान देकर इस ग्रन्थ मे छन्दो का उद्भव तथा विकास की दृष्टि से छन्दों पर विवेचन किया गया है। भरत के पश्चात् पिगल, अग्निपुराणकार, कालिदास, जनाश्रय, जयदेव, स्वयम्भु, नन्दिताढ्य, जयकीर्ति, विरहाक, राजशेखर, क्षेमेन्द्र, भट्टकेदार, रत्नमञ्जूषाकार, हेमचन्द्र कविदर्पणकार, प्राकृतपैगलकार, रत्नशेखर, दामोदरमिश्र, गगादास, वेकटेश, भट्टचन्द्रशेखर, लक्ष्मीनाथ भट्ट, श्रीकृष्ण भट्ट, राधादामोदर, दु खमञ्जन और दत्तदीनेशचन्द्र के लक्षण ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त छन्दोलक्षण ग्रन्थो पर हलायुध (९५० ई०) से लेकर वर्तमान बीसवी शताब्दी तक बहुत से टीकाग्रन्थ भी मिलते है, जिनमे से उत्पल भट्ट, सुल्हण, जिनप्रभ, रामचन्द्र विबुध, समयसुन्दर, भास्कर नारायण, जनार्दन और देवीप्रसाद पर्यन्त ९ टीकाकारो की टीकाओ मे भी कतिपय छन्दों के स्वतन्त्र रूप से लक्षण प्राप्त होते हैं। इन समस्त ३६ छन्दोलक्षणकारो की रचनाओं मे स्वतत्र रूप से लक्षित २०४६ छन्दो के लक्षण मिलते है।

तृतीय अध्याय मे छन्दो का स्रोत, काल तथा उनके विकास पर प्रकाश डाला गया है। वेद ससार के प्राचीनतम ग्रन्थ है। सर्वप्रथम छन्द प्रवाह वेदो में ही प्राप्त होता है। वेदो मे ऋग्वेद सर्वप्रथम तथा प्राचीन है। अत ऋग्वेद ही छन्दो का सर्वप्रथम वह उद्गम स्थल है, जिससे विभिन्न छन्दोधाराए प्रवाहित हुई है।

ऋग्वेद मे गायत्री से धृति पर्यन्त १३ छन्द प्राप्त होते हैं, तथा यजुर्वेद में अतिधृति से उत्कृति पर्यन्त ८ छन्द मिलते है। इन २१ वैदिक छन्दों के प्रतिष्ठा वर्धमाना पिपीलकमध्या, यवमध्या, आर्षी, त्रिपाद्, ब्राही, आर्ची, ककुम्मती, स्वराट्, विराट्, निचृत्, भुरिक्, पुर , ककुप् आदि विभिन्न भैदिक पदो के साथ २६१ भेद-प्रभेद प्राप्त होते हैं। इन विभिन्न भेद-प्रभेदों में प्रजापति से लेकर भार्गव वैदर्भी तक ४६९ वैदिक ऋषियों की रचनाए चारो वेदो मे मिलती हैं।

छन्दों के काल को निश्चित करने के लिए वेदो के समय पर ही विचार किया गया है। इसमें लोकमान्य बालगगाधर तिलक, डा० सम्पूर्णानन्द, पण्डित भगवद्दत्त, डा० अविनाशचन्द्रदास तथा युधिष्ठिर मीमासक आदि भारतीय विद्वानो एव डा० मैक्समूलर, डा० मैक्डानल, डा० याकोबी, आर० ई० एम० व्हीलर, आदि पाश्चात्य विद्वानो के द्वारा निर्दिष्ट वैदिक काल पर दिये गये मतों पर विचार करते हुए छन्द काल को आज से ८००० वर्षों से पूर्व वैदिक मन्त्रो के काल के समकक्ष माना है।

अध्याय के अन्त मे छन्दों का विकास प्रदर्शित किया गया है, जिसमे वैदिक छन्दों को पादक्रम

से तथा अक्षरक्रम मे वर्णो के घटाने और बढाने से विकसित माना गया है। अन्त मे सृष्टि के क्रम से वैदिक छन्दो मे दैवासुर छन्दो के विकास पर भी प्रकाश डाला गया है। इसी क्रम मे लौकिक छन्दो को भी एकाक्षरा उक्ता नामक छदोवृत्ति से षड्विशत्यक्षरा उत्कृति नामक छन्दोवृत्ति पर्यन्त क्रमश एक-एक अक्षर की वृद्धि से और प्रत्येक छन्दोवृत्ति मे मगणादि अष्ट गणो को पक्ति के अन्दर इधर-उधर परिवर्तित कर प्रयुक्त करने से विकसित मना है। इस प्रवृति को लाक्षणिक ग्रन्थो मे छान्दस आचार्यों ने प्रस्तार प्रक्रिया कहा है, जिसके द्वारा उन्होने छन्दो का विकास प्रदर्शित किया है।

चतुर्थ अध्याय मे छन्दो के वर्गीकरण प्रस्तुत करने से पूर्व छन्दो के शास्त्रीय विवेचन मे मगणादि अष्टवर्णिक गण तथा मात्रिक गणो पर विचार करते हुए गुरु लघु वर्ण पर विचार किया गया है। पाद, पादपूर्ति, यतिविधान और उसके गुणदोष को प्रकट करते हुए काव्यो मे स्वर-व्यजन प्रयोगो के फल को प्रकाशित कर छन्दो के वैदिक तथा लौकिक-दो प्रकार प्रदर्शित किये गये है। वैदिक छन्दोलक्षणकार पतञ्जलि से लेकर श्रीकृष्ण भट्ट तक गायत्री से उत्कृति पर्यन्त २१ वैदिक छन्दो के २४४ भेदो के लक्षण मिलते है, जिनमे से इस अध्याय के वैदिक छन्दोनिरूपण मे २५ भेदो के लक्षण तथा उदाहरण दिये गये है जो प्रत्येक छन्दोवृत्ति से सम्बद्ध है।

लौकिक छन्दोनिरूपण मे उक्ता से उत्कृति पर्यन्त २६ छन्दोवृत्तियो के अन्तर्गत भरत और पिगल से लेकर दु खभञ्जन तथा दत्तदीनेशचन्द्र पर्यन्त ३६ लक्षणकारो की रचनाओ मे २०४६ वृत्तो के लक्षण प्राप्द होते हैं, जिनमे १५३९ समवृत्त, ११७ दण्डक, १७३ अर्धसमवृत्त, ९७ विषमवृत्त और १२० मात्रावृत्त है। इनमे से इस अध्याय मे ३८ वृत्तो के लक्षण तथा उदाहरण दिये गये है, जो प्रत्येक विभाग से सम्बद्ध है। इन उदाहृत वृतो मे बहुत-से वृत्त ऐसे भी है, जिनका एकपक्ति रूप मे मूलभूत उदाहरण ऋग्वेद मे प्राप्त होता है, उसे यथास्थान प्रदर्शित करने का भी प्रयत्न किया गया है, जिससे जनसाधारण पाठक को भी यह ज्ञान हो सके कि लौकिकवृत्तो का भी मूलभूत आधार वेद है।

पचम अध्याय में सस्कृत साहित्य मे प्राप्त नवीन छन्दो के स्वरूप पर विचार किया गया है। इसमे जनाश्रय से दुःखभञ्जन पर्यन्त ८ लक्षणकारो की रचनाओ मे ४०१ ऐसे छन्द मिलते है, जो मूल रूप मे सस्कृतेतर प्राकृत, अपभ्रश, तथा हिन्दी भाषा के है, किन्तु वे सस्कृत भाषा मे उस ढग से अवतरित किये गये हैं, जिनमे से कुछ तो अपनी मूल भाषा के न होकर सस्कृत भाषा के ही जान पडते है। ऐसे छन्दो को सस्कृतीकृत लक्षित नवीन छन्द कहा गया है। इनमे से आदर्श रूप मे २० छन्दो के लक्षग तथा उदाहरण इस अध्याय में प्रदर्शित किये गये है।

वाल्मीकीय, रामायण तथा महाभारत मे कुछ ऐसी पक्तिया और पद्य भी मिलते है, जो अभी तक किसी भी लक्षणकार द्वारा/लक्षित नही हुए हैं। ऐसे २५ छन्द यहा प्रदर्शित किये गये है, जिन्हे अलक्षित प्राचीन छन्द कहा गया है। इसके अतिरिक्त वर्तमान २० वी शताब्दी मे भारत के विभिन्न स्थानो से प्रकाशित होनेवाली सस्कृत पत्रिकाओ मे आधुनिक कवियो द्वारा सस्कृत मे कुछ नवीन ध्वनियो को विकसित कर अथवा हिन्दी लोकगीतों की ध्वनियो के आधार पर विकसित छन्दो मे कुछ ऐसी रचनाए प्रकाशित हो रही हैं, जिन्हे सस्कृत के नवीन छन्द कह सकते है। इनमे से आदर्श रूप मे ८ छन्द यहा प्रदर्शित किये गये हैं। इन समस्त अलक्षित छन्दो को इस अध्याय मे मैने नाम सहित लक्षित करने का प्रयास किया है, जो छन्दो की लक्षणग्रन्थ परम्परा के विकास मे एक देन नही तो दुस्साहस अवश्य है। यदि मेरे इस दुस्साहस के अनुसार कोई विद्वान् वर्तमान समय मे प्रकाशित सस्कृत की नवीन रचनाओ का आलोडन कर छन्द शास्त्रीय दृष्टि से उनमे प्राप्त नवीन छन्दों को लक्षित करे, तो लौकिक छन्द शास्त्र को उदाहरण सहित समृद्ध बनाया जा सकता है।

षष्ठ अध्याय मे सस्कृत काव्यो के अन्तर्गत काव्य कला और वर्ण्यविषय की दृष्टि से कतिपय

छन्दो का उपयोग प्रदर्शित किया गया है। सस्कृत के छन्दोलक्षण ग्रन्थों मे २०४६ छन्दों के जो लक्षण प्राप्त होते है, उनमे से लगभग ७० छन्दो का काव्यो मे प्रयोग मिलता है, जिनमें से केवल १२ छन्दो का काव्यकला और वर्ण्यविषय की दृष्टि से कतिपय कवियो ने अपने काव्यों में उपयोग किया है। उपर्युक्त छन्द है—अनुष्टुप्, उपजाति, रथोद्धता, वशस्थ, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, हरिणी, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा। यद्यपि काव्यकारों ने अपने अपने काव्यों में इनके अतिरिक्त विभिन्न छन्दो का प्रयोग किया है, तथापि निर्दिष्ट छन्दों के प्रति उनका कुछ विशेष आदर देखने को मिलता है। अत उन्ही छन्दो को इस अध्याय मे छन्दोरत्नाकर से छन्दोरत्न रूप में निकाल कर प्रदर्शित किया गया है।

उपसहाररूप मे समस्त इस ग्रन्थ का निष्कर्ष यह है कि छन्द मानव जीवन का रस है और विना रस के जीवन नीरस है। अत मानव ने जीवन को सरस बनाने के लिए अपनी हृत्तन्त्री को झकृत किया, उसकी झकार से सर्वप्रथम उसके मुख से जो वाणी निकली, वह पद्य रूप में थी, जिसने उसके भावो को आच्छादित कर सुरक्षित किया, उसे ही छन्द कहा गया। छन्द वैदिक काल में पूर्णत स्वच्छन्द था, उस पर किसी प्रकार का कोई नियत्रण नही था, जिससे वह ऋग्वेद से लेकर वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत तक अपनी स्वच्छन्दता के साथ विकसित होता रहा। यही कारण है कि वैदिक छन्दों की पक्तियो में कही वर्णों की न्यूनता मिलती है तो कही वर्णो की अधिकता। वाल्मीकीय रामायण और महाभारत ही लौकिक छन्दो के अन्तर्गत दो ऐसी रचनाए है, जिनमें छन्दों का स्वच्छन्द गति से विकास हुआ है, जो सर्वथा छन्दोनियमादि के नियत्रण से रहित है। महाभारत तो छन्दों का वह अपार सागर है, जिसमे विभिन्न छन्दोधाराए स्वच्छन्दगति से प्रवाहित हैं।

उक्त दोनो रचनाओ के बाद भास और कालिदास की रचनाओं से लेकर जयदेवकृत गीतगोविन्द से पूर्व के साहित्य मे उपलब्ध छन्द स्वच्छन्द न होकर छन्दोनियमादि से नियत्रित हो परतन्त्र ही रहे है। ऐसे छन्दों को वृत्त कहा गया है। वृत्त वे छन्द होते हैं, जो वर्ण तथा मात्राओं मे नियमित होते है। भास से जयदेव के पूर्ववर्ती समय से प्रणीत रचनाओं मे जो छन्द प्रयुक्त हुए हैं, उन पर छन्दोनियामक भरत-पिगलादि से नियत्रित शास्त्रीय नियमो का प्रतिबन्ध था। तत्कालीन कवि भी उन छन्दोनियामकों द्वारा निर्दिष्ट उन्ही घिसे-पिटे छन्दों में अपने काव्यों का प्रणयन करते रहे, जिससे छन्दो की विकास-प्रक्रिया में कवियो के स्वरो से छन्दों के विकास में बाधा रही। छन्द यदि अपने नाम के अनुसार स्वच्छन्द ही रहते तो भविष्य में भी उनके आकार-प्रकार में परिवर्तन तथा निरन्तर परिवर्द्धन होता रहता और अनवरत नये-नये छन्द विकसित होकर सामने आते रहते, जिससे छन्द साहित्य निरन्तर समृद्ध होता रहता। किन्तु उनका विकास मार्ग बदल गया जिससे छन्दोनियामकों द्वारा प्रस्तार-प्रक्रिया से भेद-प्रभेद रूप मे उनका विकास होता रहा। यही कारण है कि लाक्षणिक ग्रन्थों में २०४६ छन्दों के जो लक्षण प्राप्त होते है, उनमें से काव्यों में अधिकतर ७० छन्दों का ही प्रयोग मिलता है।

प्रारम्भ से सस्कृत काव्यों में वर्णिक छन्दों की प्रधानता रही, किन्तु आचार्य गोवर्द्धन ने उस प्रणाली मे परिवर्तन किया और वर्णिक छन्दो को छोडकर उन्होंने मात्रिक छन्द आर्या को प्रश्रय दिया।[१] जिसके परिणामस्वरूप कविवर जयदेव ने अपनी स्वरतन्त्री की झकृत ध्वनियों के अनुरूप छन्दो के

१ गोवर्द्धनाचार्यकृत आर्यासप्तशती।

विकास क्रम मे क्रान्तिकारी परिवर्तन करते हुए एक ऐसी काव्य-रचना[२] प्रस्तुत की, जिसके गीत, छन्द, ताल, लय तथा मात्राप्रधान है, और वर्णिक छन्दो के अनुसार गुरुलघुक्रमबन्धन से मुक्त, मनोहर तथा हृदयग्राही है। यह रचना (गीतगोविन्द) छन्दो मे परिवर्तनीय क्रान्ति लायी और उसने सस्कृत मे एक नवीन रचना-प्रणाली प्रस्तुत की, किन्तु प्राचीनता के अक्षय पक्षपाती सस्कृत के विद्वानो ने उसे वह आदर नही दिया, जिसे पाकर उसकी वह प्रणाली पल्लवित और पुष्पित होती। यदि इसके साथ ही सस्कृत के अन्य कवियो ने भी जयदेव के कण्ठस्वर से अपना स्वर भी मिलाया होता तो आज सस्कृत का दिन ही दूसरा होता, और छन्दो मे विभिन्न परिवर्तनो के साथ वे नयी-नयी स्वर लहरिया निकलती, जिनकी आज साथ-साथ चलने के लिए सस्कृत समाज को आवश्यकता प्रतीत होती है।

देश मे कुछ ऐसे सस्कृत कवि भी आज उत्पन्न हो रहे है, जो छन्दो की प्राचीन रचना-प्रक्रिया मे परिवर्तन चाहते है, और उस दिशा के प्रति भी प्रगतिशील है, जिससे छदो को नया मोड देकर सस्कृत साहित्य के नवीन उदय के लिए एक नये क्षितिज का निर्माण कर सके। सस्कृत के आधुनिक नवीन कवि ऐसी रचनाए भी प्रस्तुत कर रहे है, जो सस्कृत के प्राचीन छन्दो मे न होकर प्रादेशिक जनभाषाओ की ध्वनियो के अनुसार संस्कृत मे लिखी जा रही है।[३] गीतगोविन्द से लेकर अब तक के सस्कृत मे नीवन रचना-प्रणाली के अनुसार लिखे जा रहे काव्यो मे प्रयुक्त छन्दो का कोई लाक्षणिक ग्रन्थ भी नही है, अत उसकी रचना की भी नितान्त आवश्यकता है, जिसमे समस्त नवीन सस्कृत छन्दो के लक्षण तथा उदाहरण भी प्राप्त हो सके। इसके साथ ही एक ऐसे छन्दोलक्षण ग्रन्थ की भी आवश्यकता है, जिसमे वैदिक लौकिक तथा नवीन सस्कृत छन्दो का लक्षण तथा उदाहरण सहित समावेश हो, जिससे प्राचीन सस्कृत साहित्य के साथ नवीन तथा आधुनिक सस्कृत साहित्य के छन्दो का एक साथ दिग्दर्शन कराया जा सके।

छन्द ने मानव जीवन का बडा उपकार किया है, जिसके कारण आज हम प्राचीन से प्राचीनतम मानव-जीवन की झाकी के दर्शन कर पाते हैं। जो छन्द का सहारा लेता है, वह अमर हो जाता है। अमरता प्रदान करना छन्द का प्रधान कर्म है। अत सर्वसाधारण जन को छन्दो का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। अन्त में मैं आचार्य शौनक के इस कथन के साथ ग्रन्थ का विसर्जन करता हू-'जो व्यक्ति छन्दों की विशेषता को उसके विभिन्न रूपों के साथ जानता है, वह स्वर्ग तथा अमृतत्व को प्राप्त करता है—

यश्छन्दसा वेद विशेषमेत भूतानि च त्रैष्टुभजागतानि।
सर्वाणि रूपाणि च भक्तितो य स्वर्ग जयत्येभिरथाऽमृतत्वम् ॥
ऋक्प्रातिशाख्यम्-१८।३४।

---

२ गीतगोविन्द

३ **देहली से प्रकाशित सस्कृत-प्रतिभा, होशियारपुर से विश्वसस्कृतम्, शिमला से दिव्यज्योति आदि सस्कृत पत्रिकाओं का अवलोकन करें।**

परिशिष्ट

परिशिष्ट-१

इस परिशिष्ट मे छन्दोलक्षणकारो के द्वारा कालक्रमानुसार स्वतत्र रूप से लक्षित ४०१ लौकिक नवीन सस्कृत छन्दो का और सस्कृतेतर प्राकृतापभ्रश छन्दो का सस्कृतीकृत सकलन निम्नाकित लाक्षणिक रचनाओ से किया गया है—

१ जनाश्रयकृत जानाश्रयी छन्दोविचिति (६०० ई०)।
२ दामोदरमित्रकृत वाणीभूषण (१४०० ई०)।
३ गगादासकृत छन्दोमञ्जरी (१५०० ई०)।
४ चन्द्रशेखरभट्टकृत वृत्तमौक्तिक (१६१८ ई०)।
५ लक्ष्मीनाथभट्टकृत वृत्तमौक्तिक-भाग-२ में विषमवृत्त से अन्त तक रचना (१६१९ ई०)।
६ नारायणकृत वृत्तरत्नाकर टीकानारायणी (१६८० ई०)।
७ श्रीकृष्णभट्टकृत वृत्तमुक्तावली (१७३२-४३ ई०)
८ दु खभञ्जनकृत वाग्वल्लभ (१८८३ ई०)

सस्कृतीकृत नवीन छन्द

जनाश्रय द्वारा लक्षित २३ छन्द[१] (जानाश्रयी छन्दोविचिति-५ ।४५ से ५ ।७५)

चतुष्पदी छन्द—

१ गलित, २ निर्धायिका, ३ नर्कटुक, ४ अधिकाक्षरा, ५ भगद्विपदी, ६ त्रिशद्धा भगद्विपदी, ७ विदारी, ८ भगुराशक, ९ अवलम्बन, १० गाथा।

षट्पदी छन्द—

११ शीर्षक, १२ ललित, १३ सुभद्रा शीर्षक, १४ विद्रुम शीर्षक, १५ वशपत्र, १६ कुञ्जर, १७ पुष्पदन्त, १८ माला, १९ द्विपदी, २० गाथा।

अष्टपदी छन्द—

२१ रासक।

दशपदी छन्द

२२ त्रिकलय शीर्षक, २३ द्विपदी।

(२) **दामोदरमित्र द्वारा लक्षित ३२ छन्द** (वाणीभूषण १ ।५५-१२६)।

द्विपदी छन्द

२४ घत्ता, २५ घत्तानन्द (मूल-प्राकृत पैगल)[२] २६ द्विपदी (प्रा० पै०) २७ रुचिरा (स्वतत्र)।[३]

चतुष्पदी छन्द

२८ दोहा (स्वयम्भू छन्द), २९ रोला, ३० गन्धानक, ३१ चौपैया (प्रा० पै) ३२ प्रज्झटिका

---

१ इदानीमन्याश्च काश्चिज्जातयो लोके प्रचरन्त्यो वक्ष्यन्ते। दृष्टव्य-जानाश्रयी छन्दोविचिति-५ ।४४-४५ के मध्य वृत्तिभाग, जिससे ज्ञात होता है कि उस समय लोक में प्रचलित कुछ छन्दो को सस्कृत मे लक्षित किया गया है।

२ मूल ग्रन्थ कोष्ठक मे दिये गये है, जिनसे लक्षणकार ने छन्दों के लक्षण ग्रहण कर अपने ग्रन्थ में उनका सस्कृतीकरण प्रस्तुत किया है।

३ कोष्ठक मे जहा स्वतत्र पद दिया गया है, वह छन्द ग्रन्थकार का अपना निजी है।

(स्वयम्भू छन्द), ३३ अरिला (वृतजातिसमुच्चय) ३४ पादाकुलक (प्रा० पैं०) ३५ पद्मावतिका, ३६ गगनागन, ३७ चुलिआला, ३८ सोरठा, ३९ हाकलि, ४० आभीर, ४१ दुर्मिला, ४२ दीपक, ४३ सिंहविलोकित, ४४ प्लवगम, ४५ लीलावती, ४६ हरिगीतिका, ४७ त्रिभगी, ४८ हीरक, ४९ जनहरण, ५० मदहट्ठा, ५१ मरहट्ठा (इन समस्त छन्दों का मूल प्राकृत पैंगल है)।

षट्पदी छन्द

५२ ललित (प्रा० पैं), ५३ षट्पद (गाथालक्षण)

अष्टपदी छन्द

५४ कुण्डलिका (प्रा० पै०)।

नवपदी छन्द

५५ नवपद (स्वयम्भू छन्द)

(३) **गगादास द्वारा लक्षित एक छन्द** (छन्दोमञ्जरी-५ ।१)

चतुष्पदी छन्द

५६ पज्झटिका (स्वयम्भू छन्द-८ ।१५)।

(४) **चन्द्रशेखर भट्ट द्वारा लखित** २०० छन्द (वृत्तमौक्तिक-१ ।२ ।४-९)

दोहा के २३ भेद

५७ भ्रमर, ५८ भ्रामर, ५९ शरभ, ६० श्येन, ६१ मण्डूक, ६२ मर्कट, ६३ करभ, ६४ मदकल, ६५ पयोधर, ६६ चल, (भ्रमर से चल तक मूल ग्रन्थ गाथा लक्षण)।

६७. नर, ६८ मराल, ६९ त्रिकल, ७० वानर, ७१ कच्छ, ७२ मत्स्य, ७३ शार्दूल, ७४ अहिवर, ७५ व्याघ्र, ७६ इन्दुर, ७७ शुनक, ७८ विडाल, ७९ सर्प (इन सबका मूल प्राकृत पैंगल)।

रसिका के ८ भेद (वृत्तमौक्तिक-१ ।२ ।१२-१५)

८० रसिका, ८१ हसी, ८२ रेखा, ८३ तालाका, ८४ कम्पिनी, ८५ गम्भीरा, ८६ कली, ८७ कलरुद्राणी (इन सबका मूल प्राकृत पैंगल १ ।८९-९०)।

रोला के १३ भेद (वृत्तमौक्तिक-१ ।२ ।१८-२१)

८८ कुन्द, ८९ करतल (९० मेघ, ९१ तालाक, ९२ रुद्र, ९३ कोकिल, ९४ कमल, ९५ इन्दु, ९६ शम्भु, ९७ चामर, ९८ गणेश, ९९ शेष, १०० सहस्राक्ष। (मूल प्रा० पैं०-१ ।९३)।

काव्य और उसके ४५ भेद (वृत्तमौक्तिक-१ ।२ ।३४-३७ तथा ४१ से ४२)

१०१ काव्य (कविवर्पण-२ ।२५), १०२ शक्र, १०३ शम्भु, १०४ सूर्य, १०५ गण्ड, १०६ स्कध, १०७ विजय, १०८ तालाक, १०९ दर्प, ११० समर, १११ सिंह, ११२ शेष, ११३ उत्तेजा, ११४ प्रतिपक्ष, ११५ परिधर्म, ११६ मराल, ११७ दण्ड, ११८ मृगेन्द्र, ११९ मर्कट, १२० मदन, १२१ राष्ट्र, १२२ वसन्त, १२३ कण्ठ, १२४ मयूर, १२५ बन्ध, १२६ भ्रमर, १२७ भिन्नमहाराष्ट्र, १२८ बलभद्र, १२९ राजा, १३० वलित, १३१ राम, १३२ मन्थान, १३३ मोह, १३४ बली, १३५ सहस्रनेत्र, १३६ बाल, १३७ दृप्त, १३८ शरभ, १३९ दम्भ, १४० दिवस, १४१. उद्दम्भ, १४२ बलिताक, १४३ त्वरग, १४४ हरिण, १४५ अंध, १४६ भृग। (शक्र से भृग तक मूल प्राकृत पैंगल-१ ।१०९-११५)।

षट्पद के ७१ भेद (वृत्तमौक्तिक-१ ।२ ।५६-६३) (मूल प्राकृतपैंगल-१ ।१२१-१२४)।

१४७ अजय, १४८ विजय, १४९ बलि, १५० कर्ण, १५१. वीर, १५२ वैताल, १५३. वृहन्नर, १५४ मर्क, १५५ हरि, १५६ हर, १५७ विधि, १५८ इन्दु, १५९ चन्दन, १६० शुभंकर, १६१ श्वा, १६२ सिंह, १६३ शार्दूल, १६४ कूर्म, १६५ कोकिल, १६६ खर, १६७ कुजर, १६८

मदन, १६९ मत्स्य, १७० तालाक, १७१ शेष, १७२ साराश, १७३ पयोधर, १७४ कुन्द, १७५ कमल, १७६ वारण, १७७ जगम, १७८ शरभ, १७९ द्युतीष्ट, १८० दाता, १८१ शर, १८२ सुशर, १८३ समर, १८४ साग्स, १८५ शारद, १८६ मद, १८७ मदकर, १८८ मेरु, १८९ सिद्धि, १९० बुद्धि, १९१ करतल, १९२ कमलाक, १९३ धवल, १९४ मानस, १९५ ध्रुवक, १९६ कनक, १९७ कृष्ण, १९८ रञ्जन, १९९ मेघकर, २०० ग्रीष्म, २०१ गरुड, २०२ शशि, २०३ सूर्य, २०४ शल्य, २०५ नवरग, २०६ मनोहर, २०७ गगन, २०८ रत्न, २०९ नर, २१० हीर, २११ भ्रमर, २१२ शेखर, २१३ कुसुमाकर, २१४ दीप्त, २१५ शख, २१६ वसु, २१७ शब्द।

द्विपदी-छन्द (वृत्तमौक्तिक-१।२।३८,१।६।१९)

२१८ उल्लाल, २१९ झुल्लणा, २२० अपरसमगलितक, २२१ अपरसगलितक।

चतुष्पदी छन्द (वृत्तमौक्तिक-१।२।२६-१।६।३४)

२२२ चौपैया, २२३ चौबोला (प्रा० पैं०) २२४ गगनागण, २२५ हाकलि, २२६ मधुभार, २२७ दण्डकला, २२८ हरिगीतक, २२९ हरिगीत, २३० मनोहर हरिगीत, २३१ हरिगीता, २३२ जनहरण (इन सबका मूल प्राकृत पैगल) २३३ मागधी सवया, २३४ घनाक्षर (दोनो स्वतत्र) २३५ गलितक (वृतजातिसमुच्चय), २३६ विगलितक (मूल हेमचन्द्र शब्दोऽनुशासन) २३७ सगलितक, २३८ सुन्दरगलितक, २३९ भूषणगलितक, २४० मुखगलितक, २४१ विलम्बितगलितक, २४२ समगलितक, २४३ अपरलम्बितगलितक, २४४ विक्षिप्तिकागलितक, २४५ ललितागलितक, २४६ विषमितागलितक, २४७ मालागलितक, २४८ मुग्धमालागलितक, २४९ उद्गलितक (मूल स्वयम्भू छन्द)

नवपदी छन्द (वृत्तमौक्तिक-१।३।१६-१।३।२४)

२५० करभीरङ्गा, २५१ नन्दा, २५२ मोहिनी, २५३ चारुसेना, २५४ भद्रा, २५५ राजसेना, २५६ तालकिनी (मूल वृतजातिसमुच्चय)।

(५) **लक्ष्मीनाथ भट्ट द्वारा लक्षित**[४] **६५ छन्द** (वृत्तमौक्तिक २।९।६,२।१०।३)

विरुदावली छन्द (चतुष्पदी)

२५७ द्विगाकलिका, २५८ रादिकलिका, २५९ मादिकलिका, २६० गलादिकलिका, २६१ मिश्राकलिका, २६२ द्विभगीकलिका, २६३ विदग्धत्रिभगीकलिका, २६४ हरिणप्लुतकलिका, २६५ नर्तकत्रिभगीकलिका, २६६ भुजगत्रिभगीकलिका, २६७ बल्गितात्रिगताकलिका, २६८ ललितात्रिगताकलिका, २६९ वरतनुत्रिगताकलिका, २७० मुग्धाद्विपादिकायुग्मभगकलिका, २७१ प्रगल्भाद्विपादिकायुग्मभगकलिका, २७२ मध्याद्विपादिकायुग्मभगकलिका, २७३ मध्या (२), २७४ मध्या (३), २७५ मध्या (४), २७६ शिथिला द्विपादिका युग्म भगकलिका, २७७ मधुराद्विपादिका युग्मभगकलिका, २७८ तरुणीद्विपादिकायुग्मभंगकलिका, २७९

---

४ वत्तमौक्तिक में पचम-विषमवृत प्रकरण से अन्ततक रचना चन्द्रशेखर भट्ट के पिता श्री लक्ष्मीनाथभट्ट की है (दृष्टव्य-वृतमौक्तिक, भूमिका, पृ० ३७, ग्रन्थ पृष्ठ २९१ पद्य-८-९) क्योंकि चन्द्रशेखर भट्ट की मृत्यु के बाद उनके पिता लक्ष्मीनाथ भट्ट ने ग्रन्थ पूर्ण किया था) दृष्टव्य-वृत्तमौक्तिक पृ० २५१, पद्य ८-९)।

पुरुषोत्तमचण्डवृत्त, २८० अच्युत चण्डवृत।
अष्टपदी छन्द (वृत्तमौक्तिक-२ ।९ ।३-३)
२८१ सम्पूर्ण विदग्ध त्रिभगी कलिका
द्वादशपदी छन्द (वृत्तमौक्तिक-२ ।९ ।२ ।१२-१३)
२८२ वीरचण्डवृत्त।
षोडशपदी छन्द (वत्तमौक्तिक-२ ।९ ।२ ।३७-३८)
२८३ गुच्छक चण्डवृत।
विशतिपदी छन्द (वत्तमौक्तिक-२ ।९ ।२ ।३६)
२८४ मञ्जरीकोरक चण्डवृत्त। २८५ कुसुम चण्डवृत्त
पदसख्यारहित छन्द (चण्डवृत्त, वृत्तमौक्तिक-२ ।९ ।२-११-२ ।१० ।३)
२८६ वर्द्धितचण्डवृत्त, २८७ रणचण्डवृत्त, २८८ शाकचण्डवृत्त, २८९ मातगखेलितचण्डवृत्त, २९० उत्पलचण्डवृत्त, २९१ गुणरतिचण्डवृत्त, २९२ कल्पदुमचण्डवृत्त २९३ अपराजित चण्डवृत्त, २९४ नर्तनचण्डवृत्त, २९५ तरत्समस्तचण्डवृत्त, २९६ वेष्टनचण्डवृत्त, २९७ अस्खलितचण्डवृत्त, २९८ पल्लवित चण्डवृत्त, २९९ समग्रचण्डवृत्त, ३०० तुरगचण्डवृत्त, ३०१ पकेरुहचण्डवृत्त, ३०२ सितकञ्जचण्डवृत्त, ३०३ पाण्डूत्पलचण्डवृत्त, ३०४ इन्दीवरचण्डवृत्त, ३०५ अरुणाम्भोरुत चण्डवृत्त, ३०६ फुल्लाम्बजचण्डवृत्त, ३०७ चम्पकचण्डवृत्त, ३०८ बञ्जुल चण्डवृत्त, ३०९ कुन्दचण्डवृत्त, ३१० बकुलभासुरचण्डवृत्त, ३११ बकुलमगलचण्डवृत्त, ३१२ दण्डकत्रिभगीकलिका, ३१३ सर्वलघुकलिका, ३१४ तामरसखण्डावली, ३१५ मञ्जरीखण्डावली।
अन्य छन्द (वृत्तमौक्तिक-२ ।९,२,३,४,८)
३१६ तिलकचण्डवृत्त, ३१७ मित्रकलिका, ३१८- साधारणचण्डवृत्त, ३१९ साप्तविभक्तिकाकलिका, ३२० अक्षमयी कलिका, ३२१ मध्याकलिका।
(६) नारायणभट्ट द्वारा लक्षित २० छन्द (वृत्तरत्नाकर टीका-अध्याय २)
रसिकाप्रस्तारभेद
३२२ कन्द, ३२३ करमाल, ३२४ मेघ, ३२५ तालाक, ३२६ काल, ३२७ रुद्र, ३२८ कोकिल, ३२९ कमल, ३३० इन्द्र, ३३१ शम्भु, ३३२ चामर, ३३३ गणेश।
रोला प्रस्तार भेद (वृत्तरत्नाकर टीका अध्याय-२)
३३४ लौहागिनी, ३३५ हसी, ३३६ रेखा, ३३७ तालकनी, ३३८ कपी, ३३९ गभीरा, ३४० काली, ३४१-कलरुद्राणी।
(७) श्रीकृष्णभट्ट द्वारा लक्षित १५ छन्द (वृत्तमुक्तावली-२ ।४९ से ३ ।२७८)
द्विपदी छन्द
३४२ वारि, ३४३ उपवारि।
चतुष्पदी छन्द
३४४ अनुहरिगीत, ३४५ मद्रगीत, ३४६ लघुहरिगीत, ३४७ लघुहीरक, ३४८ परिवृत्तहीरक, ३४९ झुल्लन, ३५० उपझुल्लन, ३५१ सुझुल्लन, ३५२ अतिझुल्लन, ३५३ विशाल, ३५४ खजविशाल, ३५५-उपविशाल, ३५६ खञ्जोपविशाल।
(८) दु खभञ्जन द्वारा लक्षित ४५ छन्द (वाग्वल्लभ-मात्रासमवृत्त दो-५०)
द्विपदी छन्द (वाग्वल्लभ मात्राअर्द्धसमवृत्त-१ ।१९)

३५७ करवा, ३५८ शिखा, ३५९ अतिशिखा, ३६० अनगक्रीडा, ३६१ द्विदला, ३६२ खजिका, ३६३ नाकि, ३६४ विरया, ३६५ नृगण।

चतुष्पदी छन्द (वाग्वल्लभ-मात्रासमवृत २ ।५०, अर्द्धसमवृत्त और विषमवृत्त)

३६६ पद्धतिका, ३६७ आन्दोलिता, ३६८ चतुष्पदी, ३६९ किञ्जल्क, ३७० हाकलि, ३७१ निश्रेणी, ३७२ गगनागण, ३७३ हीरक, ३७४ मत्तचचरीक, ३७५ श्रीमती, ३७६ अपरासपादी, ३७७ मत्ता, ३७८ एला, ३७९ दण्डी, ३८० शुद्धध्वनि, ३८१ वसुकला, ३८२ मधुरा, ३८३ विश्लोक, ३८४ नवासिका, ३८५ परिचरिता, ३८६ अचला, ३८७ रतिकरी, ३८८ चरण, ३८९ चटुल, ३९० कलना, ३९१ लीला, ३९२ मदकरण, ३९३ भ्रमर, ३९४ गन्धानक, ३९५ ललितपद, ३९६ चतुष्पदा, ३९७ मोहिनी, ३९८ दक्षिणान्तिका, ३९९ परातिका, ४०० चारुहासिनी, ४०१ अतुला (पचपदी)।

परिशिष्ट-२

निम्नाकित कोष्ठ से मात्रिक गणो और उनके भेदों तथा स्वरूपों के नामसहित विकास पर सम्यक् प्रकाश पडता है—

टगण = ६ मात्रा	ठगण = ५ मात्रा	डगण = ४ मात्रा	ढगण = ३ मात्रा	णगण = २ मात्रा
५०० ई० पू० मे भरतकृत षण्मात्र ८वी० शती मे स्वयम्भूकृत छगण १२वी शती मे हेमचद्रकृत षगण और उसके १३ भेद १५वी शती मे प्राकृतपैगल कारकृत टगण और उसके १३ भेदो के नाम। १ हर ऽऽऽ २ शशी ॥ऽऽ ३ सूर ।ऽऽ। ४ शक्र ऽ॥ऽ ५ शेष ॥॥ऽ ६ अहि ।ऽ।ऽ ७ कमल ऽ।ऽ। ८ ब्रह्मा ॥।ऽ। ९ कलि ऽऽ॥ १० चन्द्र ॥ऽऽ॥ ११ ध्रुव ।ऽ॥। १२ धर्म ऽ॥॥ १३ शालिकर ॥॥॥	भरतकृत पचमात्र छठी शती मे जनाश्रयकृत पचह और गणस्वामिकृत उसके ८ भेद विरहाककृत नाम १ सुरगज ।ऽऽ २ गरुड ऽ।ऽ ३ भुजगेन्द्र ॥।ऽ प्राकृतपैगलकार कृत नाम– ४ तीर ऽऽ। ५ कुसुम ।ऽ॥ ६ शेखर ॥ऽ। ७ अहिगण ऽ॥॥ ८ पापगण ॥॥॥ प्राकृत पैंगलकार कृत ठगण	पिगलकृत चतुर्मात्रिक गण और उसके ५ भेद १ ऽऽ २ ॥ऽ ३ ।ऽ। ४ ऽ॥ ५ ॥॥ १० वी शती मे विरहाककृत उनके नाम– १ कर्ण २ करतल ३ पयोधर, नरेन्द्र ४ चरण ५ विप्र प्राकृतपैगल कारकृत डगण	स्वयम्भूकृत तगण विरहाककृत त्रिमात्र– ध्वजपट ।ऽ कदालिका ।ऽ सूर्य, पटह ॥। गोपालद्वारा सकेतित त्रिमात्रभेद ऽ। प्राकृतपैगलकार कृत नाम– सुरपति, ताल आदि तथा गणनाम ढगण एकमात्रिक—लघु।	भरतकृत नाम गुरु ऽ स्वम्भूकृत दगण विरहाक कृत भेद तथा नाम ॥ रस, भाव प्राकृतपैंगलकार कृत नाम णगण

विशेष—इन समस्त मात्रिक गणो का अष्टवर्णिक गण तथा गुरु लघु वर्ण चिह्नों में समावेश हो जाता है। जैसे— ॥।-ऽ-। ब्रह्मा नामक टगण के स्थान पर नगण गुरु लघु होगा। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए। मात्रिक और वर्णिक गण लघु गुरु वर्ण समूह से विकसित है।

परिशिष्ट-३

अदग्धाक्षर	अ, आ	इ, ई	ऋ, ए, ओ, ऐ, औ, च, त, द, ध, प, श, स	– ()	क, ख, ग, घ, य	छ	ज	ड	न	क्ष
शुभफल	सम्पत्ति	धनलाभ	सुख	शुभ	लक्ष्मी	प्रीति	मित्र लाभ	शोभा	मोद	समृद्धि

दग्धाक्षर अशुभ फल	उ,ऊ अख्याति	लृ धनहानि विदेश गमन	वृ द्वेष	ड वियश	झ,फ भय	ञ,ब मरण	ट,ष खेद	ठ,म,ह दुख	ढ विशोभा	ण भ्रमण	श सोच
				भ क्लेश		र दाह		व व्यसन	ह व्यसन विलय		

उपर्यकित कोष्ठ मे दग्ध और अदग्ध वर्णों का फलाफल प्रदर्शित किया गया है।

सहायक ग्रन्थसूची

(क) वैदिक छन्द शास्त्र विषयक ग्रन्थ

अग्निपुराण	बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा, वाराणसी, १९६६ ई० ।
अग्निपुराण	श्रीराम शर्मा, सस्कृत सस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली १९६९ ई ।
उपनिदानसूत्र	गार्ग्य, मगलदेव सपादित, बनारस, १९३१ ई० ।
ऋक्प्रातिशाख्य	शौनक, मगलदेव सपादित, वाराणसी, १९५९ ई० ।
ऋक्प्रातिशाख्य	उव्वटभाष्य, विष्णुमित्रकृत, वर्गद्वयवृतिसहित, इलाहाबाद, १९३१ ई०
ऋक्सर्वानुक्रमणी	कात्यायन, मैक्डानल सम्पादित, ओक्सफोर्ड, १८८६ ई० ।
छन्द शास्त्र	पिगल, काव्यमाला-९१, बम्बई-१९३८ ई० ।
छन्द सूत्र	पिगल, अखिलानन्दशर्मकृत वैदिक भाष्य सहित, मेरठ, १९०९ ई० ।
पिगलच्छन्द सूत्र	पिगल, अयोध्यानाथ सपादित, चौखम्बा, वाराणसी, १९६९ ई० ।
पिगलसूत्र	पिगल, केदारनाथकृत टीकासहित, निर्णयसागर, बम्बई, १९५७ ई० ।
छन्दोऽनुक्रमणी	वेकटमाधव ।
जयदेवच्छन्द	जयदेव, हर्षटकृत विवृति सहित, (जयदामन् मे प्रकाशित), बम्बई १९४९ ई० ।
निदानसूत्र	पतञ्जलि, के० एन० भटनागरसम्पादित, देहली, १९७१ ई० ।
वृत्तमुक्तावली	श्रीकृष्णभट्ट, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६३ ई० ।
वैदिकछन्दोमीमासा	युधिष्ठिर मीमासक, रामलालकपूरट्रस्ट, अमृतसर १९५९ ई० ।
पादविधान	शौनक, नरहरि सपादित, अड्यार, मद्रास, १९५० ई० ।

(ख) लौकिक छन्द शास्त्रविषयक ग्रन्थ

अग्निपुराण	बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा, वाराणसी, १९६६ ई० ।
अजितशान्तिस्तवटीका	जिनप्रभकृत (कविदर्पण में प्रकाशित) जोधपुर, १९६२ ई० ।
कविदर्पण	राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला, ६२, जोधपुर, १९५९, १९६२ ई० ।
गाथालक्षण	नन्दिताढ्य (कविदर्पण में प्रकाशित) जोधपुर, १९५९, १९६२ ई० ।
छन्दकोश	रत्नशेखर (कविदर्पण में प्रकाशित) जोधपुर, १९६२ ई० ।
छन्दकौस्तुभ (हस्तलिखित)	राधादामोदरकृत, पाण्डुलिपि स० ८६४, १८८६-९२ ई० भाण्डारकर शोध-सस्थान, पूना ।
छन्द शास्त्र	पिगल, काव्यमाला-८१, बम्बई-१९३८ ई० ।
छन्दसूत्र	पिंगल, अखिलानन्दशर्मकृत वैदिक भाष्य सहित, मेरठ, १९०९ ई० ।

छन्द शेखर — राजशेखर (स्वयम्भू छन्द में प्रकाशित) जोधपुर, १९६२ ई० ।
छन्द सन्दोह — दत्तदीनेशचन्द्र, अन्ताराष्ट्रीय ग्रन्थागार, जयपुर, १९६८ ई० ।
छन्दोऽनुशासन — जयकीर्ति (जयदामन् मे प्रकाशित) बम्बई, १९४९ ई० ।
छन्दोऽनुशासन — हेमचन्द्र (जयदामन् में प्रकाशित) बम्बई, १९४९ ई० ।
छन्दोऽनुशासन — हेमचन्द्र, वृत्तिसहित, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९६१ ई० ।
छन्दोमञ्जरी — गगादास, चौखम्बा, वाराणसी, १९६९ ई० ।
जयदामन् — ह० दा० वेलणकर, विल्सन कॉलिज, बम्बई, १९४९ ई० ।
जयदेवच्छन्द — जयदेव ।
जानाश्रयीछन्दोविचिति — जनाश्रय, त्रिवेन्द्रम, १९४९ ई० ।
नाट्यशास्त्र — भरतमुनि, बनारस, १९८५ वि०, चौखम्बा, बनारस, १९२९ ई०, गायकवाड सस्करण, बडौदा, १९३४ ई० । अग्रेजी सस्करण, कलकत्ता, १९६७ ई०, चौखम्बा वाराणसी, १९७२ ई० ।
प्राकृतपैंगल — डा० भोलाशकर व्यास, भाग १,२, वाराणसी, १९५९, १९६२ ।
बृहत्सहितावृत्ति — उत्पल भट्ट, अध्याय-१०३, बनारस, १८९५ ई० ।
रत्नमञ्जूषा — भाष्यसहित, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९४४ ई० ।
वाग्वल्लभ — दुःखभञ्जन, चौखम्बा, वाराणसी, १९३३ ई० ।
वाग्वल्लभ टीका (वरवर्णिनी) — (वाग्वल्लभ में प्रकाशित) देवीप्रसाद शर्मकृत ।
वाणीभूषण — दामोदरमिश्र, निर्णयसागर, प्रेस, बम्बई, १९२५ ई० ।
वृत्तजातिसमुच्चय — विरहाक, गोपालकृत टीकासहित, जोधपुर, १९५९, १९६२ ई० ।
वृत्त मुक्तावली — श्रीकृष्ण भट्ट, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६३ ई० ।
वृत्तमौक्तिक — भट्टचन्द्रशेखर, विनयसागर सम्पादित, जोधपुर, १९६५ ई० ।
वृत्तमौक्तिक-भाग-२ — लक्ष्मीनाथ भट्ट, विनयसागर सम्पादित, जोधपुर, १९६५ ई० ।
वृत्तरत्नाकर — केदारभट्ट, जयदामन में प्रकाशित, बम्बई, १९४९, दिल्ली, १९७१ ।
वृत्तरत्नाकर टीका सुकविहृदयानन्दिनी — सुल्हणकृत, (जयदामन् में प्रकाशित)
वृत्तरत्नाकर टीका — रामचन्द्रबिबुधकृत, बम्बई, १९३६ (वृतरत्नाकर में प्रकाशित)
वृत्तरत्नाकर टीका — समयसुन्दरकृत, (जयदामन में प्रकाशित)
वृत्तरत्नाकरटीकासेतु — भास्करकृत, (जयदामन् में प्रकाशित)
वृत्तरत्नाकरटीका नारायणी — भट्टनारायणकृत, वृतरत्नाकर, काशी, १९२७ ई० ।
वृत्तरत्नाकरटीका भावार्थ दीपिका — जनार्दनकृत (जयदामन् में प्रकाशित)
वृत्तरत्नावली — वेकटेश, नरहरि सम्पादित, आड्यार पुस्तकालय, १९५२ ई० ।
वृत्तरत्नावली — कालिदास, प्रभाकरप्रेस, मद्रास, १८६१ ई० ।
वृत्तरत्नावली — कालिदास, राजगोपालराव द्वारा सम्पादित, मद्रास, १९६४ ई० ।
श्रुतबोध — कालिदास, कनकलाल ठक्कुरकृत टीका, चौखम्बा, वाराणसी, १९७२ ।
सुवृत्ततिलक — क्षेमेन्द्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६८ ई० ।

स्वयम्भूछन्द स्वयम्भू, राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला, ३७, जोधपुर, १९५९ ई० ।

(ग) छन्दोविषयक अन्य ग्रन्थ

ऋक्छन्दोऽनुक्रमणी शौनक ।
ऋग्वेदानुक्रमणी माधव भट्ट, मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास, १९३२ ई० ।
छन्दोऽलकारप्रदीप डा० ससारचन्द, देहली, १९७३ ई० ।
बृहत्सर्वाऽनुक्रमणी दयानन्द महाविद्यालय, लाहौर, १९४१ ई० ।
वैदिक मीटर ए० वी० कीथ
शाखायनश्रोतसूत्र आलफ्रेड हिलेब्राट द्वारा सपादित, कलकता, १८८८ ई० ।
शुक्लयजु कात्यायन, याज्ञिक अनन्तदेवकृत भाष्य, बनारस, १८९३ ई० ।
सर्वानुक्रमसूत्र

(घ) छन्द शास्त्र विषयक हस्तलिखित पाण्डुलिपिया

उपनिदान पाण्डुलिपि बी०-१, सरस्वती भवन सस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी ।

ऋज्वर्थावृत्ति, ऋक्प्रातिशाख्य पर विष्णुमित्र कृत हस्तलेख शक स० १५६२ (= १६४० ई०) पुस्तकालय डेक्कन कॉलिज, पूना (महाराष्ट्र) ।

छन्दोगपरिशिष्ट, पाण्डुलिपि बी०-२, सरस्वती भवन, सस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी ।

जयदेवच्छन्द , हर्षटकृत विवृत्ति सहित, सर्वत्, १९० , पाण्डुलिपि भाण्डागार, जेसलमेर ।

जानाश्रयी छन्दोविचिति, टी० एस० एस०, न० १६३, पाण्डुलिपि पुस्तकालय, विश्व विद्यालय, ट्रावनकोर ।

जानाश्रयी छन्दोविचिति, पाण्डुलिपि स० टी० १७० , पाण्डुलिपि पुस्तकालय, त्रिवेन्द्रम् ।

रत्नमञ्जूषा (पाण्डुलिपि स० ए० ८७१ , तथा बो० १०२५, राजकीय प्राचीन पुस्तकालय, मैसूर ।)

वृत्तजातिसमुच्चय टीका, वि० स० ११९२, गोपालकृत, पाण्डुलिपि भाण्डागार, जैसलमेर ।

वृत्तरत्नाकर केदारभट्टकृत, पाण्डुलिपि स० ७२१, १८९१-९५ ई० , भाण्डारकर शोध-सस्थान, पूना

वृत्तरत्नाकरटीका, कविचिन्तामणि, करुणकरदास, पाण्डुलिपि स० टी० ५४३ । पाण्डुलिपि-पुस्तकालय, विश्वविद्यालय, त्रिवेन्द्रम ।

वृत्तरत्नाकर टीका, वृत्त प्रकाशिका, कृष्णसार अल्यास देवेन्द्र भारती, पाण्डुलिपि स० टी-८०४, पाण्डुलिपि पुस्तकालय, विश्वविद्यालय त्रिवेन्द्रम्

वृत्तरत्नाकरवृत्ति सुकविहृदयानन्दिनी, सुल्हण, पाण्डुलिपि स० १२१, बोम्बे ब्राच आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, बम्बई ।

वृत्तरत्नाकर सेतु, भास्कर, पाण्डुलिपि स० १२२, बाम्बे ब्राच आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, बम्बई-डेस्क्रिप्टिव केटेलाग, वेबर्स मेनुस्क्रिप्ट डब्ल्यू ए० ।

वृत्तरत्नाकर टीका, श्रीकण्ठ, पाण्डुलिपि स० १०४, १९१९-२४, भाण्डारकर शोध सस्थान, पूना ।

वृत्तरत्नाकर टीका, सदाशिव पाण्डुलिपि स० १७६, १९०२, १९०७ भाण्डारकर शोध-सस्थान, पूना ।

वृत्तरत्नाकरवृत्ति, सुकविहृदयानन्दिनी, सुल्हणकृत, पाडुलिपि स० ४४४, १८९५-१९०२ तथा पाडुलिपि स० ८६९ सन् १८८६, भाण्डारकर शोध सस्थान, पूना ।

वृत्तरत्नाकर भावार्थदीपिका-पाण्डुलिपि स० ४८९, १८९९, १९१५, जनार्दनकृत, भा० शो० स० पूना ।

वृत्तरत्नाकर प्रभा, पाडुलिपि स० ६०८, १८८७-९१, विश्वनाथकृत, भा० शो० स० पूना ।

वृत्तरत्नाकर टीका, सोमचन्द्रगणीकृत, पाण्डुलिपि स० ७२४, १८९१-९५ तथा पाण्डुलिपि स० ५५७, १८८४-८७, भाण्डारकर शोध-सस्थान, पूना ।

वृत्तरत्नावलि पाण्डुलिपि स० डी० १७९८ (कालिदासकृत) राजकीय प्राचीन पाण्डुलिपि, पुस्तकालय, तजौर।
वृत्तरत्नावलि, वेंकटेश, पाण्डुलिपि स० ५११४, ५११५, ५११६, सरस्वती महल पुस्तकालय, तजौर।
वृत्तरत्नावली, कालिदास, पाण्डुलिपि स० ५११८, ५११९, ५१२०, सरस्वती म० पु० तजौर।

(ड) अन्य हस्तलिखित पाण्डुलिपिया

शाकुन्तल चर्चा, पाण्डुलिपि स० टी० ३०५, पाण्डुलिपि पुस्तकालय, विश्वविद्यालय, त्रिवेन्द्रम्।
शौनकोपनिषद्, शौनक, पाण्डुलिपि पुस्तकालय, आड्यार, मद्रास।

(च) वैदिक साहित्य ग्रन्थ

अथर्वसहिता	वैदिक मन्त्रालय, अजमेर, वि० स० १९५७।
अथर्वसहिता	विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-सस्थान, होशियारपुर, पजाब १९६१ ई०
अथर्ववेद	क्षेमकरणदास कृत भापा भाष्य सहित, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली, सवत् २०३०।
अथर्ववेद	दयानन्द सस्थान, नई दिल्ली-५, वि० स० २०३०।
आर्षेय ब्राह्मण	हस्तलिखित प्रति, मेरठ।
ऋग्वेदसहिता	ऋष्यादिसवलिता, वैदिक मत्रालय, अजमेर, वि० स० १९५७।
ऋग्वेद सहिता	भारत मुद्रणालय, ओन्धनगर, सतारा, १९४० ई०।
ऋग्वेद	दयानन्द सस्थान, नई दिल्ली, वि० स० २०३०।
ऐतरेय ब्राह्मण	सायणभाष्यसहित, आनन्दाश्रम, पूना, १९३०-३१।
ऐतरेय आरण्यक	आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, १९४३०।
काठकसहिता (यजुर्वेदीया)	स्वाध्यायमण्डल, औन्ध, १९४३ ई०।
कोषीतकी ब्राह्मण	(शाखायन ब्राहमण) आनन्दाश्रम, पूना, १९११ ई०।
गोपथ ब्राह्मण	क्षेमकरणदासकृत भाष्य सहित, इलाहाबाद, १९२४ ई०।
छान्दोग्योपनिषद्	हस्तलिखित प्रति, मेरठ।
ताण्ड्यब्राह्मण	(पचविंशब्राह्मण) ताण्डी, सायणभाष्य, कलकत्ता, १८७०, १८७४ ई०।
तैतिरीयारण्यक	सायणभाष्य सहित, आनन्दाश्रम, पूना, १९३४, १९३८ ई०।
तैतिरीयोपनिपद्	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४८ ई०।
तैतिरीयब्राह्मण	सायणभाष्य सहित, आनन्दाश्रम, पूना, १९३४, १९३८ ई०।
तैतिरीयसहिता	सायणभाष्य सहित, आनन्दाश्रम, पूना, १९४०, १९५१ ई०।
देवताध्यायब्राह्मण	सायणभाष्य सहित, कलकत्ता, १८८१ ई०, देहली, १९६५ ई०।
माध्यन्दिनी सहिता	हस्तलिखित प्रति, अजमेर।
मैत्रायणी सहिता	(यजुर्वेदीया) स्वाध्यायमण्डल, औन्ध, वि० स० १९९८।
यजुर्वेद	दयानन्दकृत हिन्दी भाष्य सहित, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, वि० सं० २०३१।
शतपथब्राह्मण	सायणभाष्य सहित, वेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई, वि० स० १९९७।
सामवेद	तुलसीरामकृत हिन्दी भाष्य सहित, सा० आ० प्र० सभा, नई दिल्ली, वि० स० २०३१।
सामवेदीयददैवत ब्राह्मण	हस्तलिखित प्रति, सोरोशूकरक्षेत्रम्।

(छ) वैदिक साहित्य सम्बधी अन्य ग्रन्थ

अनुवाकानुक्रमणी शौनक ।
ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका दयानन्द सरस्वती, वैदिक मत्रालय, अजमेर, वि० स० १९६० ।
ऋग्वेदभाष्यभूमिका स्कन्दस्वामी, मद्रास, १९३५ ई० ।
ऋक्सूक्त सग्रह डा० हरिदत्त शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, १९६३ ई० ।
ऋग्यजुष परिशिष्ट कातीयपरिशिष्टदशकम् प० श्रीधरशास्त्री वारे, नासिक ।
ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि म० म० विश्वेश्वरनाथ रेउ, देहली, १९६७ ई० ।
दि आर्टिक होम इन दि वेदाज बालगगाधर तिलक, केशरी प्रेस, पूना, १९५६ ई० ।
निरुक्त यास्क, चौखम्बा, वाराणसी, १९६६ ई०,
दुर्गाचार्यकृत वृत्ति सहित, आनदाश्रम, पूना, १९२१, १९२६ ई० ।
बृहदेवता शौनक, मेक्डानल द्वारा सम्पादित, वाराणसी, १९६५ ई० ।
रिलीजन आफ दि वेद व्लूमफीलड, न्यूयार्क, १९०८ ई० ।
वाजसनेयि प्रातिशाख्य उव्वटभाष्य सहित, काशी, १८८८ ई० ।
वेदकालनिर्णय दीनानाथ शास्त्री चुर्टल ।
वेदविद्या डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ।
वैदिक वाङ्मय का इतिहास प० भगद्दत, प्रणव प्रकाशन, नई देहली ।
वैदिक साहित्य और सस्कृति डा० निर्मला भार्गव, देव नागर प्रकाशन, जयपुर, १९७२ ई० ।
वैदिक साहित्य और सस्कृति डा० बलदेव उपाध्याय, शारदा सस्थान, वाराणसी, १९७३ ।
वैदिक साहित्य का इतिहास डा० राममूर्ति शर्मा, साहित्य भण्डार, मेरठ, १९६९ ई० ।
वैदिक साहित्य का इतिहास प्रभाकुमारी अग्रवाल, अमीनाबाद, लखनऊ, १९७३ ई० ।

(ज) पुराण ग्रन्थ

गरुड पुराण डा० रामशकर भट्टाचार्य सपादित, बम्बई, वि० स० १९६३ ।
देवीभागवतपुराण पण्डित पुस्तकालय, काशी, १९५६ ई० ।
नारद पुराण वेंकटेश्वरप्रेस बम्बई, विक्रम सवत् १९८० ।
पद्मपुराण आनन्दाश्रम, पूना, वि० स० १८८३ ।
ब्रह्मपुराण आनन्दाश्रम, पूना, वि० स० १८८५ ।
ब्रह्माण्डपुराण वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, वि० स० १९९२ ।
मत्स्यपुराण आनन्दाश्रम, पूना, वि० स० १९०७ ।
वायुपुराण आनन्दाश्रम, पूना, वि० स० १९०५ ।
विष्णुधर्मोत्तरपुराण वेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई, वि० स० १९६९ ।
विष्णुपुराण गीता प्रेस, गोरखपुर, वि० स० २०१४ ।
श्रीमद्‌भागवतमहापुराण गीता प्रेस, गोरखपुर, वि० स० १९९८, २००६, २०१० ।

(झ) सस्कृत काव्य

आर्यासप्तशती गोवर्धनाचार्य, चोखबा विद्याभवन, वाराणसी, १९६५ ई० ।
किरातार्जुनीय भारवि, घण्टापथव्याख्यायुत, वाराणसी, १९५२ ई० ।
कुमारसम्भव कालिदास, थैकर स्पिक एण्ड को, कलकता, १८७२ ई० ।
गगालहरी जगन्नाथ, चौखम्बा, वाराणसी, वि० स० २०२१, १९६८ ई० ।
गीतगोविन्द काव्य जयदेव, चौखम्बा, वाराणसी, १९६८ ई० ।

जानकीहरण — कुमारदास, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६७ ई० ।
नवसाहसाकचरित — परिमलपद्म गुप्त, चौखम्बा, वाराणसी, १९६३ ई० ।
नारायणाष्टक — रामचन्द्र भट्ट (वृत्तमौक्तिक) जोधपुर, १९६५ ई० ।
नैषधीयचरित — श्रीहर्ष, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९५२ ई० ।
बुद्धचरित — अश्वघोष, चौखम्बा, वाराणसी, १९७२ ई० ।
भट्टिकाव्य — भट्टि, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९७२ ई० ।
महाभारत — महर्षि व्यास, (छ खण्ड) गीता प्रेस, गोरखपुर, वि० स० २०१२-३० ।
मेघदूत — कालिदास, पूना, १९१६ ई० ।
रघुवश — कालिदास, सजीवनी टीकोपेत, चौखम्बा, बनारस, १९५३ ई० ।
वाल्मीकीयरामायण — वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९५७ ई०, इलाहाबाद, १९२७ ई० ।
वैराग्यशतक — भर्तृहरि, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९६७ ई० ।
शर्मधर्माभ्युदय — हरिचन्द्र, काव्यमाला-८, बम्बई १८९८ ई० ।
शिवताण्डवस्तोत्र — रावण, बैजनाथप्रसाद, बुकसेलर, बनारस सिटी, १९५२ ई० ।
शिशुपालवध — माघ, मल्लिनाथकृतसर्वकषाटीका, निर्णयसागर, बम्बई, १९४० ।
श्रद्धाञ्जलि — डा० हरिदत्त पालीवाल निर्भय, कायमगज, वि० स० २०१९ ।
श्रीगोविन्दविरुदावली — रूपगोस्वामी (वृत्तमौक्तिक) जोधपुर, १९६५ ई० ।
सूर्यशतक — मयूरभट्ट, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९६४ ई० ।

(ञ) सस्कृत नाटक

अभिज्ञानशाकुन्तल — कालिदास, कपिलदेवसम्पादित, इलाहाबाद, १९७२ ई० ।
डा० निरुपण विद्यालकार, साहित्य भण्डार, मेरठ ।
उतररामचरित — भवभूति, साहित्य भण्डार, मेरठ, १९६९ ई० ।
कुन्दमाला — दिङ्नाग, सत्य प्रकाशन, होशियारपुर, १९५५ ई० ।
प्रतिज्ञायौगन्धरायण — भास, ओरियण्टल बुक एजेंसी, पूना, १९३९ ई० ।
बालभारत — राजशेखर, निर्णयसागर, बम्बई, १९४९ ई० ।
बालरामायण — राजशेखर, मेडिकल हाल प्रेस, बनारस, १९६९ ई० ।
विक्रमोर्वशीय — कालिदास, बनारस, १९५३ ई० ।
निबद्धशालभजिका — राजशेखर, चौखम्बा, वाराणसी, १९६५ ई० ।
स्वप्नवासवदत्तम् — भास, जयकृष्णदास हरिदास, बनारस, १९५०, आगरा १९५५ ई० ।

(ट) प्राकृत काव्य

गाथासप्तशती — हाल, नर्मदेश्वर चतुवेदी द्वारा सपादित, चौखम्बा, वाराणसी, १९६१ ।
पउमचरिउ — स्वयम्भू, भाग-१, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९७१ ई० ।

(ठ) प्राकृत नाटक

कर्पूरमञ्जरी — राजशेखर, हार्वर्ड, १९०१, कलकता, १९३९, बम्बई, १९४९, पूना, १९६० ।

(ड) चम्पूकाव्य

मन्दारमरन्दचम्पू — काव्यमाला-५२, बम्बई, १८९५ ई० ।

(ढ) काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ

आचार्य मम्मट और काव्य प्रकाश, डा० राजकिशोरसिंह, अमीनाबाद, लखनऊ, १९७२ ई० ।
काव्यमीमासा — राजशेखर, ओरियण्टल इन्स्टीटयूट, बडौदा, १९२४ ई० ।

काव्यादर्श — दण्डी, चौखम्बा, वाराणसी, १९५८ ई० ।
काव्यालकार — भामह, बालमनोरमा प्रेस, मद्रास, १९५६ ई० ।
काव्यालकार — रुद्रट, नेमिसाधकृतव्याख्या सहित, बम्बई, १८८६ ई० ।
ध्वन्यालोक — आनन्दवर्धन, चौखम्बा, वाराणसी, १९६४ ई० ।
सरस्वतीकण्ठाभरण — भोजदेव, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३४ ई० ।

(ण) धर्मसूत्र तथा स्मृति ग्रन्थ

गोतमधर्मसूत्र — मिताक्षरावृत्ति सहित, चौखम्बा, वाराणसी, १९५२ ई० ।
बौधायनधर्मसूत्र — चौखम्बा, बनारस, १९३४ ई० ।
मनुस्मृति — कुल्लूकभट्टकृतव्याख्यासहित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४६ ई० ।

(त) कामशास्त्रीय ग्रन्थ

कामसूत्रम् — वात्स्यायन, जयमगला टीकासहित, चौखम्बा वाराणसी, १९७४ ।

(थ) कोश ग्रन्थ

अनेकार्थसग्रह — हेमचन्द्र, चौखम्बा, वाराणसी, १९६९ ई० ।
अमरकोश — अमरसिह, चौखम्बा, बनारस, वि० स० १९९४ ।
नानार्थार्णव सक्षेप — हस्तलिखितप्रति, हरिद्वार ।
मेदिनीकोश — मेदिनिकर, चौखम्बा, वाराणसी, १९६८ ई० ।
शाश्वत कोश — हस्तलिखित प्रति, वाराणसी ।

(द) व्याकरण ग्रन्थ

अष्टाध्यायी सूत्रपाठ — पाणिनि, चौखम्बा, वाराणसी, वि० स० १९९४ ।
अष्टाध्यायी काशिका — वामनजयादित्य, तिमिरनाशक यन्त्रायल, बनारस, १८९० ई० ।
आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन — डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, वाराणसी, १९६३ ई० ।
चान्द्रगण पाठ — हस्तलिखित प्रति, काम्पिल्य ।
जैन शाकटायन गणपाठ — हस्तलिखित प्रति, हस्तिनापुर ।
जैनेन्द्र गण पाठ — हस्तलिखित प्रति, झज्झर ।
पातञ्जल महाभाष्य — बम्बई, १९०८ ई०, काशी वि० स०, १९४६ ई० ।
वाक्यपदीय — भर्तृहरि, चौखम्बा, वाराणसी, १९५१ ई० ।
वैदिक व्याकरण — डा० रामगोपाल, नेशनल पब्लिसिग हाउस, दिल्ली, १९६९ ई० ।
वैयाकरण सिद्धातकौमुदी — भट्टोजि दीक्षित, बालमनोरमा टीका, चौखम्बा, बनारस, १९५४ । तत्वबोधिनी टीका सहित, बनारस, १९५१ ई० ।
सस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास — युधिष्ठिर मीमासक, बहालगढ, विक्रम स० २०३० ।

(घ) ज्योतिष ग्रन्थ

ज्योतिष शास्त्र का इनिहास — शकर बालकृष्ण दीक्षित, लखनऊ, १९५८ ई० ।
बृहत्सहिता — वराहमिहिर, उत्पलभट्टकृत वृत्ति, बनारस, १८९५ ई० ।
भारतीय ज्योतिष — शकर बालकृष्ण दीक्षित, सूचना विभाग, लखनऊ, १९५७ ई० ।
भारतीय ज्योतिष शास्त्र — शकर बालकृष्ण दीक्षित, लखनऊ, विक्रम स० १८९६ ।

(न) अन्य ग्रन्थ

अभिनव भारती — अभिनव गुप्त, देहली विश्वविद्यालय, देहली, १९६१ ई० ।
अर्ली डायनस्टीज
आफ आध्र देश — वी० वी० कृष्णराव, मद्रास, १९४२ ई० ।
आउटलाइन आफ हिस्ट्री — एच० जी० वेल्स ।
आचार्य भरत — डा० शिवशरण वर्मा, मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी, भोपाल, १९७१ ।
आचार्य सायण और माधव — बलदेव उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
इण्डियन्स लिट्रेचर एड कल्चर — श्रोडर ।
ओरायन — लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, पूना, १८९३ ई० ।
कालिदास ग्रन्थावली — भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ, वि० स० २०१९ ।
जैमिनि मीमासा सूत्र — हस्तलिखित प्रति, कानपुर ।
जैन साहित्य और इतिहास — नाथूराम प्रेमी, बम्बई, १९४२ ई० ।
दी कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया — सर मोर्टीमर व्हीलर, सप्लीमेंट्री वोल्यूम, कैम्ब्रिज, १९५३ ।
पाश्चात्य साहित्यालोचन
के सिद्धान्त — श्री लीलाधर गुप्त ।
पाश्चात्य नाट्य परम्परा और अभिनव दर्पण — वाचस्पति गेरोला, इलाहाबाद, १९६७ ।
फर्स्ट ओरियण्टल कान्फ्रेंस — वी० वी० केलकर, पूना, १९१९ ई० ।
बृहत्कथा मञ्जरी — क्षेमेन्द्र, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९०१ ई० ।
भविसतकहा — डा० ठुणे, गायकवाड सस्करण, बडौदा, १९२३ ई० ।
भारतवर्ष का इतिहास — प० भगवद्दत, माडल टाउन, वि० स० २००३ ।
श्रीमद्भगवद्गीता — गीता प्रेस, गोरखपुर, वि० स० २०१६, २०१७, २०१९ ।
सदुक्तिकर्णामृत — म० म० रामावतार द्वारा सम्पादित, पजाब ओरियटल सीरीज-१५ ।
सनत्कुमारचरित — डा० याकोबी द्वारा सम्पादित, बडौदा विश्वविद्यालय, वोल्यूम ६ ।
सस्कृत ड्रामा — आई० शेखर, (सीडेन), १९६० ई० ।
सस्कृत साहित्य का इतिहास — वे० वरदाचार्य, रामनारायणलाल, इलाहाबाद, १९६२ ।
सस्कृत साहित्य का इतिहास — ए० बी० कीथ, हिन्दी सस्करण, डा० मगलदेव, वाराणसी १९६७ ई० ।
संस्कृत साहित्य का इतिहास — बलदेव उपाध्याय, अष्टम सस्करण, वाराणसी, १९६८ ई० ।
सस्कृत साहित्य का इतिहास — कन्हैयालाल पोद्दार, गोरखपुर ।
सस्कृत साहित्य के इतिहास की भूमिका — डा० एस० एन० दास गुप्त ।
सस्कृत साहित्य का इतिहास — वाचस्पति गेरोला ।
सस्कृत साहित्य की प्रवृत्तिया — डा० जयकिशन खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मदिर, आगरा ६९ ई० ।
सस्कृत साहित्य की रूपरेखा — चन्द्रशेखर पाण्डेय, सस्करण ५, साहित्य निकेतन, कानपुर, ५८ ई० ।
सगीत रत्नाकर — आनन्दाश्रम, पूना, १९४२, अड्यार सस्करण, मद्रास, १९४४ ।
स्टडीज इन दी एपिक्स एण्ड
पुराणाज आफ इण्डिया — ए० डी० पुसारकर, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९५५ ई० ।
हिन्दी काव्यधारा — राहुल साकृत्यायन, बनारस, १९४५ ई० ।
हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र — म० म० पी० वी० काणे, भाण्डारकर शोध-सस्थान, पूना, १९३० ई० ।
हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर — डा० विण्टरनिट्ज, अनुवादक—केतकर, कलकता, १९२७ ई० ।

हिस्ट्री आफ एन्सिएन्ट सस्कृत लिटरेचर मैक्समूलर, लन्दन, १८६० ई० ।
हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर सी० वी० वैद्य, पूना, १९३० ई० ।
हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर ए० ए० मेक्डानल, मुशीराम मनोहरलाल, देहली, १९५८ ई० ।
हिस्ट्री आफ दी बंगाली लेगुएज बी० सी० मजूमदार, कलकता, १९२७ ई० ।
होम आफ आर्यन्स डा० सम्पूर्णानन्द ।

(प) पत्र-पत्रिकाये

एनाल्स आफ भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट, पूना, १९३२-३३ ।
अमृतलता (मासिकी) मई १९६५, पारडी जिला-बलसाड ।
इण्डियन हिस्टोरीकल क्वार्टरली, वोल्यूम ९, १९३३ ई० ।
उषा पत्रिका, सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा सम्पादित, कलकता, १८९६, देहली, १९७१ ।
काव्यालोक (मासिक) कायमगज, नवम्बर १९६० ।
जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, १९०३ ।
जरनल आफ दी आन्ध्र हिस्टोरीकल रिसर्च सोसायटी, वोल्यूम-६, सपादित सुब्बाराव ।
जरनल आफ बी० बी० आर० ए० एस (बाम्बे ब्राच आव रायल एशियाटिक सोसायटी), १९३५ ।
जरनल आफ बम्बई यूनिवर्सिटी बम्बई, नवम्बर १९३६ ।
जरनल आफ बम्बई यूनिवर्सिटी बम्बई, सितम्बर १९४७ ।
जरनल आफ बम्बई ब्राच आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, १९४६ ।
जरनल आफ बम्बई यूनिवर्सिटी, बम्बई, नवम्बर १९३३ ।
जयतु सस्कृतम् (मासिक) वैशाख सवत् २०२१, काठमाडू, नेपाल ।
दी कन्नड क्वार्टरली प्रबुद्ध करनाटक, वोल्यूम-२८ न० ३, जनवरी १९४७, मैसूर ।
दिव्यज्योति (मासिक) अप्रैल, १९५९, शिमला ।
दिव्यज्योति, अगस्त, १९५९, शिमला ।
नवभारत टाइम्स, १० जुलाई १९७६, दिल्ली ।
नागपुर यूनिवर्सिटी, जरनल, वोल्यूम-१, १९३५ ।
विश्व संस्कृतम्, नवम्बर १९६३, वैदिक शोध-सस्थान, होशियारपुर ।
वीर अर्जुन, सपादकीय लेख, १३ जनवरी १९७६, देहली ।
वीर अर्जुन, वेदों में राष्ट्र गान (लेख), २५ जनवरी १९७६, देहली ।
सगमनी (सस्कृत त्रैमासिकी) शिशिराक, सवत् २०२२, प्रयाग ।
सस्कृत प्रतिभा-(षाण्मासिकी) अप्रैल १९५९, साहित्य-अकादमी, नई दिल्ली ।
सी० के० राजा कोमेमोरेशन वोल्यूम, मद्रास, १९४६